उत्तरी भारत का इतिहास
HISTORY OF NORTHERN INDIA

(700 से 1200 ई० तक)

एक प्रमाणिक पुस्तक



लेखक

लक्ष्मीकान्त मालवीय

प्रधी मालवीय



प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ

* प्रकाशक :
प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स,
अमीनाबाद, लखनऊ

* मूल्य : बारह रुपये पचास पैसे (12·50) मात्र

* मुद्रक :
कैक्सटन प्रेस,
१-ए/१, बाई का बाग,
इलाहाबाद ।

भूमिका

अनेकानेक शोध-ग्रन्थों और प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें तत्कालीन ग्रन्थों, शिलालेखों, दानपत्रों आदि के विपुल उद्धरण दिये गये हैं और यथास्थान उनकी विवेचना भी की गई है।

यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है जो अपनी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी में अपने विचार व्यक्त करना चाहते हैं। इसमें ७०० ई० से लेकर मुसलमानों के आक्रमणों तक का इतिहास दिया गया है। इस संकट-काल में जिन यश:काय वीर पुरुषों ने अपने देश, धर्म और समाज की प्रतिरक्षा में तथा अपनी स्वतंत्रता की वैजयन्ती फहरा रखने में अपने प्राणों की बलि दी वे अविस्मरणीय हैं। उन्हीं के प्रयास से राजस्थान, मध्यभारत और बुन्देलखण्ड आदि स्थानों के राज्य स्वतंत्र बने रहे।

श्री विश्वम्भरनाथ शुक्ल, बी० ए० बी० लिब० एस-सी०, पुस्तक-प्रदाता, के सौजन्य और तत्परता से राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद से मानक ग्रन्थ बराबर मिलते रहे।

—लेखक

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	खण्ड ८—पाल वंश और सेन वंश	४१९
१.	वंग राज्य की स्थापना	४२१
२.	शशाङ्क के बाद राजनीतिक विखण्डन	४३१
३.	पाल वंश	४३६
४.	सेन वंश	४६२

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

खण्ड १

हर्षपूर्व का उत्तरी भारत

अध्याय | १

गुप्त साम्राज्य का अन्त

समुद्रगुप्त के समय संपूर्ण गंगा का मैदान उसके प्रत्यक्ष शासन में था और उत्तर पश्चिम के कुषाण नरेश, और नेपाल, कामरूप, समतट आदि के राजा उसको अपना अधीश्वर मानते थे। पूर्वी दक्खिन को भी उसने पद दलित किया था। मालवा और सौराष्ट्र शकों के आधिपत्य में थे जिनको चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने शकों के युग्म से मुक्त किया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य के शासन के अन्तिम दिनों में आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं ने घोर संकट उपस्थित किए। उसने ४५५ ई० तक राज्य किया। स्कन्दगुप्त विपत्तियों को दूर करने में सफल हुआ किन्तु बुधगुप्त के उत्तराधिकारी नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्ततृतीय, और विष्णुगुप्त निर्बल शासक थे और वे साम्राज्य के विखण्डन को रोक न सके।

बर्बर हूणों के अन्धड़ के सामने यूरोप और एशिया के शक्तिशाली साम्राज्यों और महान् सभ्यताओं को सिर झुकाना पड़ा। लगभग ४४८ ई० में वंक्षु के मैदान में हूण आकर जम गए। किन्तु भारत के उत्तर-पश्चिम के सीमान्त पर साम्राज्य की शक्ति और प्रतिरक्षा देखकर भारत पर आक्रमण करने का उनको उस समय साहस न हुआ। छः वर्ष बाद वृद्ध सम्राट् कुमारगुप्त प्रथम के अन्तिम दिनों में हूणों ने ४५४-५५ ई० में भारत पर आक्रमण किया। अभाग्यवश इसी समय पुष्यमित्रों ने विद्रोह किया, कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु हुई और आन्तरिक झगड़े आरंभ हुए। निर्बल शासक पुरुगुप्त स्थिति को संभाल न सका और निर्दय हूण देश में घुस आए और पुण्य मातृभूमि को अपवित्र करने लगे। स्कन्दगुप्त ने ४५७-५८ ई० में हूणों को असाधारण रूप से पराजित किया, उनके गर्व को समूल नष्ट किया, उनके देश तक उनको खदेड़ा जहाँ उसका यशोगान गाया गया। मातृभूमि बर्बर मलेच्छों से मुक्त हुई। किन्तु स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बहुत बाद ४८४-८५ ई० के बाद तोरमाण के

नेतृत्व में उन्होंने बड़े पैमाने पर भारत पर पुनः आक्रमण किया। यह आक्रमण बुधगुप्त के ४८४-८५ ई० के उत्कीर्ण लेखों के बाद, अवश्य ही उसकी आयु के अन्तिम वर्षों में या उसकी मृत्यु के पश्चात् हुआ। हूणों ने मालवा पर अधिकार कर लिया। इसी समय कन्नौज, थानेश्वर, वल्लभी, मगध आदि स्थानीय राजवंशों ने स्वतंत्र होने के लिए सिर उठाया। एक ओर प्रधानता के लिए ये राजे लड़ रहे थे, दूसरी ओर हूण पुण्य मातृभूमि को अपवित्र कर रहे थे। नरसिंह गुप्त अपने को वसुबन्धु का वास्तविक शिष्य प्रमाणित करने में, विद्वानों के लिए विचार-विमर्श गोष्ठियाँ संगठित करने में, और साम्राज्य भर में मठों और चैत्यों का निर्माण करने में लगा था। हूणों की बाढ़ साम्राज्य पर छा गई और कुछ समय तक के लिए मगध तक को जलमग्न कर दिया। आर्य मञ्जु श्री मूलकल्प (ग्रंथ) के कथन से स्पष्ट है कि वे गौड प्रदेश में भी घुस गए। इस समय हूण सम्राट् तोरमाण न केवल उत्तरी भारत के अधिकांश भाग का, बल्कि पश्चिम की ओर मध्य एशिया का भी स्वामी था। तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य की नींव तक को हिला दिया। नरसिंह गुप्त ने उसका अवरोध करने का साहस किया किन्तु वह सामन्त होने और कर देने को विवश हुआ। राजवंश के आपसी विरोध, और सामन्तों की विद्रोहात्मक उच्चाकांक्षाओं ने तोरमाण और मिहिरकुल के समान चतुर आक्रामकों के पथ को सुगम बना दिया। तोरमाण ने प्रकाराख्य या प्रकाराख्य (प्रकटादित्य) को भगवतपुर के बन्दीगृह से छुड़ाकर काशी में मगध के राजा के रूप में उसका राज्याभिषेक किया। आर्य-मञ्जु श्री-मूलकल्प के अनुसार इस अभिषेक के बाद तोरमाण बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हुई। तोरमाण के आक्रमण से गुप्त सम्राट् और साम्राज्य को गहरा धक्का लगा, और विकेन्द्रीकरण प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। प्रतीत होता है कि तोरमाण चाहता था कि गुप्तवंश के राजकुमार गुप्तसाम्राज्य को टुकड़े-टुकड़े कर बाँट लें। इसी उद्देश्य से उसने प्रकटादित्य को कारागार से मुक्त कर राजा के रूप में काशी में उसका अभिषेक किया। उसने अवश्य ही वैन्यगुप्त को स्वतंत्र होने में प्रोत्साहित किया होगा जिसने अपने को सम्राट घोषित किया और अपने नाम की मुद्राएँ ढलवाईं।

अपने पिता तोरमाण की मृत्यु के बाद मिहिरकुल ने विशाल साम्राज्य उत्तराधिकार में पाया जिसकी राजधानी बमियाँ और उप-राजधानी बल्ख थी। चालीस से अधिक देश हूण सम्राट् के करद थे। भारत हूण साम्राज्य का मात्र एक प्रान्त था। मिहिरकुल ने बौद्धों पर घोर अत्याचार किए। अतः बालादित्य ने मिहिरकुल के विरुद्ध विद्रोह किया। मिहिरकुल ने एक बड़ी सेना लेकर मगध की ओर प्रस्थान किया। बालादित्य ने अपने प्रदेश की प्रतिरक्षा करने में अपने को असमर्थ पाकर अपने लाखों राजनिष्ठ प्रजा के साथ राजधानी छोड़कर बंगाल की खाड़ी के द्वीपों में जाकर

आश्रय लिया। निर्दय और प्रतिहिंसात्मक मिहिरकुल के नेतृत्व में हूणों ने मध्यदेश होते हुए प्रयाण किया और रास्ते में अकथ विपत्तियाँ और विनाश ढाया। बौद्ध मठ विशेषरूप से उनकी बर्बरता के ग्रास बने। सेना का नियंत्रण अपने छोटे भाई के हाथ में सौंपकर स्वयं मिहिरकुल बालादित्य को दण्ड देने के लिए समुद्र में उतरा। बालादित्य के सैनिक जगह-जगह छिपे हुए थे। उन्होंने उसे घेर लिया और बन्दी कर लिया। बालादित्य ने उसको मृत्युदण्ड दिया किन्तु बालादित्य की माता ने उसको छुड़ा दिया। मिहिरकुल की यह पराजय ५१९-२० ई० के लगभग हुई। इस युद्ध में मिहिरकुल असाधारण रूप से परास्त हुआ और उत्तर की ओर भागा। इसी बीच में मिहिरकुल के कनिष्ठ भ्राता ने राज्यसिंहासन का अपहरण कर लिया। मिहिरकुल बड़ी विपत्ति में पड़ा और कश्मीर जाकर शरण ली। किन्तु शीघ्र ही उसने कश्मीर के राजा की हत्या कर कश्मीर के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने गन्धार पर आक्रमण किया और बौद्धों को कुचला। उत्कीर्ण लेखों से प्रतीत होता है कि मालवा के राजा यशोधर्मन् ने उत्तर जाकर मिहिरकुल पर आक्रमण किया और उसको परास्त किया। इन युद्धों के फलस्वरूप तथा हूणों की लूट के कारण गुप्त साम्राज्य आर्थिक दृष्टि से बहुत निर्बल हो गया।

कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र पुरुगुप्त साम्राजिक सिंहासन पर बैठा और अपने नाम की मुद्रायें ढलवाईं। वह कुमारगुप्त और 'महादेवी' अनन्तदेवी का पुत्र तथा राजसिंहासन का वैध उत्तराधिकारी था। किन्तु एक साल के अन्दर ही उसके अधिक योग्य सौतेले भाई स्कन्दगुप्त ने उसको हरा कर सिंहासन पर अधिकार किया। उस समय गुप्त परिवार में निश्चय ही कुछ कलह थी जिसकी पुष्टि जूनागढ़ उत्कीर्ण लेख से होती है जिसमें लिखा है कि राज्यलक्ष्मी ने अन्य राजकुमारों की अपेक्षा स्कन्दगुप्त को अपना पति चुना ('व्यपेत्य सर्व्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रांल्लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाम् चकार') भितरी स्तम्भ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'अपने पिता का स्वर्गवास हो जाने पर स्कन्दगुप्त ने अपने बाहुबल से शत्रुओं को विजय किया और अपने वंश की विनष्ट लक्ष्मी को पुनः स्थापित किया'। इससे स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त का सिंहासन पर वैध अधिकार नहीं था। इसी कारण उसने अपने बाहुबल का गर्व किया है।

राजसिंहासन के वैध किंतु निर्बल उत्तराधिकारी पुरुगुप्त के विरुद्ध स्कन्दगुप्त के इस विद्रोहात्मक व्यवहार से अवश्य ही अन्य राजकुमारों को इस विवाद में पड़ने या अपने लिए स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के लिए निश्चय ही प्रोत्साहन मिला होगा। घटोत्कचगुप्त ने सचमुच अधीश्वरता का दावा किया और मुद्राएँ ढलवाईं। दूसरा विद्रोही गुप्तराजकुमार चन्द्रगुप्त तृतीय प्रतीत होता है जिसकी मुद्रायें पाई गई हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद अनेक राजकुमारों पुरुगुप्त, स्कन्दगुप्त, घटोत्कच और संभवतः चन्द्रगुप्त तृतीय ने साम्राजिक सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयास किया। राष्ट्र और साम्राज्य के लिए यह स्थिति बड़ी संकटपूर्ण थी। हूण देश को पददलित कर रहे थे और राजपरिवार में उत्तराधिकार के लिए आन्तरिक कलह चल रही थी। संभवतः स्कन्दगुप्त ने शक्तिशाली पुष्यमित्रों और हूणों को परास्त कर जनता की श्रद्धा प्राप्त करली थी। अतः उसने अपने बाहुबल से राजवंश की लड़खड़ाती हुई राजलक्ष्मी को प्राप्त किया ('विप्लुताम्वंश लक्ष्मी')।

जिस समय तोरमाण ने मगध को विजय किया उस समय राजपरिवार में आन्तरिक कलह चल रही थी और विद्रोही सामन्त अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। प्रतीत होता है कि आरम्भ से ही तोरमाण गुप्त वंश के कुछ असंतुष्ट राजकुमारों के सम्पर्क में था। 'कुवलयमाला' के जैन ग्रन्थकार उद्योतन सूरि ने लिखा है कि भारत में तोरमाण का मुख्य स्थान चेनाब पर स्थित पव्वैया था और हरिगुप्त उसका गुरु था जो स्वयं गुप्त परिवार का एक वंशज था। आर्य-मञ्जु श्री मूल-कल्प के अनुसार प्रकटादित्य जिसको तोरमाण ने काशी में अभिषिक्त किया था समुद्रगुप्त के अनुज का वंशज था। पूर्वी बंगाल में महाराज वैनगुप्त स्वतंत्र हो गया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। प्रतीत होता है कि तोरमाण ने नरसिंह गुप्त को परास्त करने के बाद अपने पिट्ठू वैनगुप्त को सिंहासन पर बैठाया। उसने अपने को सम्राट् घोषित किया, साम्राजिक उपाधियाँ ग्रहण कीं और द्वादशादित्य उपाधि-युक्त मुद्रायें ढलवाईं। स्पष्ट है तोरमाण चाहता था कि गुप्त साम्राज्य के दो टुकड़े हो जाँय। इस कलह का लाभ उठाकर मालवा के राजा यशोधर्मन् ने गुप्त साम्राज्य पर चोट की और इसकी नींव को पूर्ण रूप से हिला दिया और संपूर्ण उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम भाग में मध्य भारत के पुष्यमित्रों ने विद्रोह किया और साम्राजिक गुप्तों की शक्ति पर चोट करना आरम्भ किया। स्कन्द गुप्त ने घनघोर युद्धों के बाद उनका दमन किया। उसी समय हूणों ने भी गुप्त साम्राज्य पर चढ़ाई की तथा वृद्ध कुमारगुप्त प्रथम की ४५५ ई० में मृत्यु हुई। राज्य लड़खड़ा रहा था किन्तु स्कन्दगुप्त ने अपने बाहुबल से पृथ्वी को अपने अधीन किया।

बुधगुप्त की मृत्यु लगभग ४६६ ई० में हुई। उसकी मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य प्रायः छिन्न-भिन्न हो गया और कन्नौज, थानेश्वर, वल्लभी, मालवा और

मगध में नए राज्य वंशों का उदय हुआ। ये राज्य आपस में लड़ रहे थे और उधर हूण पुण्य भूमि को पददलित कर रहे थे। सेनापति भटार्क सौराष्ट्र में प्रायः स्वतंत्र हो गया था। मालवा पर हूणों ने अधिकार कर लिया था, और उधर नरसिंह गुप्त बौद्ध धर्म के प्रचार में दत्तचित्त था, और बाद को सिंहासन त्याग कर बौद्ध-भिक्षु बन गया। हूणों के अत्याचार से जनता पीड़ित थी। ऐसे राष्ट्रीय संकट काल में हिन्दू धर्म और समाज की रक्षा करने के लिए यशोधर्मन् सामने आया। वह एक साधारण सामन्त मात्र था किन्तु उसने लौहित्य से लेकर महेन्द्र तक और हिमालय से लेकर पश्चिमी समुद्र तक के प्रदेश को विजय किया। सम्भवतः इसी युद्ध में कुमार गुप्त तृतीय की मृत्यु हुई। यशोधर्मन् लोकप्रिय विजेता था जनता ने उसको 'जनेन्द्र' की उपाधि दी। उसने देश को बर्बर हूणों से मुक्त किया। बुधगुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य का जो विखण्डन आरम्भ हुआ था वह पूरा हो गया।

पूर्वी बंगाल में गोपचन्द्र के वंशज स्वतंत्र सत्ता भोगने लगे, कामरूप में वर्मन् वंश ने महत्व प्राप्त किया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब में वर्धन वंश, उत्तर प्रदेश में मौखरि वंश, मगध में उत्तरकालीन गुप्त वंश साम्राजिक शक्ति प्राप्त करने की होड़ में लगे। गुप्त वंश मृतप्राय था। मौखरियों और उत्तरकालीन गुप्तों के संघातिक संघर्षों के बीच साम्राजिक गुप्त वंश किस समय और कैसे समाप्त हुआ पता न चला। गया जनपद से प्राप्त कुमारामात्य-महाराज नन्दन के ५५१ ई० के ताम्रपट्ट में गुप्त वंश का उल्लेख नहीं है। प्रतीत होता है कि उस समय तक गुप्त साम्राज्य समाप्त हो गया था। जैन अनुश्रुति के अनुसार गुप्त साम्राज्य का अन्त ५५१ ई० में हुआ। विष्णु गुप्त चन्द्रादित्य इस वंश का अन्तिम सम्राट् था।

अध्याय | २

मौखरियों का उत्कर्ष

१. आरम्भिक मौखरि वंश—मौखरियों की जाति अत्यन्त प्राचीन थी। उनकी एक शाखा ई० पू० दूसरी शती में गया प्रदेश में थी। बाण के ग्रन्थों में मुखर और मौखरि शब्द आए हैं। राजा ईश्वरवर्मन् के जौनपुर उत्कीर्ण लेख में मौखर शब्द आया है। हरहा उत्कीर्ण लेख में महाराजाधिराज ईशानवर्मन् को वैवस्वत मनु के वंश के राजा अश्वपति के परिवार का वंशज लिखा है।

बराबर और नागार्जुनि पहाड़ी गुफा उत्कीर्ण लेख प्रकट करते हैं कि गया जनपद में एक सामन्त मौखरि परिवार था। इसका समय उस वंश के उत्कर्ष के पूर्व था जिसमें ईशानवर्मन् उत्पन्न हुआ। के० पी० जायसवाल ने लिखा है कि वर्तमान मौहरि जाति जो प्रायः मात्र गया जनपद में रहती है उनकी प्रतिनिधि है। वे बनिया अर्थात् वैश्य हैं।

मौखरि की एक अन्य शाखा राजपूताना क्षेत्र में थी। मौखरि की एक तीसरी शाखा प्रत्यक्षतः बाराबंकी, फैजाबाद और जौनपुर (उत्तर प्रदेश) में थी। मौखरि राजा ईशानवर्मन के वंश का एक प्राचीनतम उत्कीर्ण लेख बाराबंकी (उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में) में पाया गया है और ईशानवर्मन् और उसके उत्तराधिकारियों की मुद्राएँ फैजाबाद जनपद में पाई गई हैं। इन तथ्यों से प्रतीत होता है कि मौखरि वंश का मूलस्थान पूर्वी उत्तर प्रदेश था। छठवीं शती ईसवी के अन्तिम भाग में जब विदेशी आक्रमणों के कारण उत्तरी भारत में महान् राजनीतिक उथल-पुथल हुई तो वे कन्नौज क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित हो गए।

उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि इस वंश का संस्थापक महाराज हरिवर्मन् था और इसी वंश में ईशानवर्मन् उत्पन्न हुआ।

असीरगढ़ और नालंदा मुहरों में निम्नलिखित वंशावली दी हुई है :—(१) महाराज हरिवर्मन् (२) महाराज आदित्यवर्मन् (३) महाराज ईश्वरवर्मन् (४) महाराजाधिराज ईशानवर्मन् (५) महाराजाधिराज सर्ववर्मन् (६) महाराजाधिराज अवन्तिवर्मन् (७) महाराजाधिराज सु.........।

प्रथम तीन शासकों का विरुद महाराज था। स्पष्ट है कि पहले यह वंश साम्राजिक गुप्तवंश के अधीन था। इस सूची में ग्रहवर्मन् का नाम नहीं है जो हर्ष का बहनोई, कन्नौज का राजा, और महाराजाधिराज था जैसा कि बाणभट्ट के वर्णनों से प्रमाणित है। सु......ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर उसके मगध राज्य का अपहरण कर लिया था अतः उसने उपर्युक्त सूची में उसका नाम नहीं रखा।

मौखरि वंश के इतिहास में केवल दो निश्चित तिथियाँ हैं—(१) ईशानवर्मन् के हरहा उत्कीर्ण लेख की तिथि ५५४ ई०। (२) दुष्ट मालवाधिपति द्वारा ग्रहवर्मन् के वध की तिथि ६०६ ई०। हर्षचरित से प्रतीत होता है कि ग्रहवर्मन् अवन्ति वर्मन् का ज्येष्ठ पुत्र था। डॉ० त्रिपाठी ने लिखा है कि हराहा लेख की ५५४ ई० की तिथि मौखरि कालक्रम की एक आरम्भिक तिथि है और दूसरी तिथि ६०६ ई० है जब ग्रहवर्मन् का बध किया गया। उपर्युक्त प्रथम ६ शासकों का माध्यमान शासन काल २० वर्ष का मान लेने पर (सातवें शासक का शासन काल अत्यन्त अल्प था) इस वंश का आरम्भ छठवीं शती ईसवी के द्वितीय दशक में अर्थात् ५१० ई० के लगभग माना जा सकता है जब इप्थेलिटों या श्वेतहूणों के आक्रमणों के कारण उत्तर भारत के राजनीतिक क्षेत्र में अत्यन्त उथल-पुथल हुई थी।

२. हरिवर्मन्—हराहा लेख में इस वंश के प्रथम राजा हरिवर्मन् का विरुद्ध ज्वालामुख दिया हुआ है जिसका ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है। प्रतीत होता है कि द्वितीय और तृतीय मौखरि शासकों का विवाह उत्तरकालीन गुप्त परिवार की राजकुमारियों से हुआ था, क्योंकि महाराज आदित्यवर्मन् की पत्नी हर्षगुप्ता संभवतः उत्तरकालीन गुप्त राजा हर्षगुप्त की बहन थी, क्योंकि उन दिनों भाईयों और बहनों का एक-सा नाम रखने की सामान्य प्रथा थी। केवल नाम के अंत्यक्षर में लिंग भेद किया जाता था।

३. ईश्वरवर्मन्—महाराज ईश्वरवर्मन् के जौनपुर लेख का कुछ विवरण हराहा उत्कीर्ण लेख के वर्णनों से मिलता है। उपर्युक्त बातों से प्रतीत होता है कि ईश्वरवर्मन् के समय तक मौखरि वंश और उत्तरकालीन गुप्त वंश में मैत्री भाव था।

४. ईशानवर्मन्—पूरब में गुप्त साम्राज्य का विखण्डन हो रहा था किन्तु मौखरि और उत्तरकालीन गुप्तवंश के नरेश गुप्त सम्राटों के लिए एक साथ युद्ध कर

कर रहे थे। ५५४ ई० का हराहा उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि मौखरि ईशान-वर्मन् ने सिंहासन पर बैठने के पूर्व आन्ध्र के राजा को विजय किया जिसके पास हजारों त्रिमत्त हाथी थे, शूलिकों को परास्त किया जिनके पास अगणित शीघ्रगामी घोड़ों की सेना थी, और गौड़ों को भविष्य के लिए समुद्र के जल में शरण लेने को विवश किया। स्पष्ट है कि ईशानवर्मन् ने अपने वंश के तृतीय महाराजा अपने पिता ईश्वरवर्मन् के जीवन काल में ५५५ ई० के पूर्व इन विजयों को प्राप्त किया था। अफ़सद लेख का कथन है कि तृतीय उत्तरकालीन गुप्त राजा जीवित गुप्त प्रथम के पराक्रम के कारण उसके उग्र शत्रुओं को भय का भयंकर झुलसाने वाला ज्वर हो गया, यद्यपि वे शीतल समुद्र तटों या हिमालय पर्वतीय प्रदेशों में रहते थे। स्पष्ट है कि ५५० ई० के पूर्व ईश्वरवर्मन् के समय में मौखरि और उत्तरकालीन गुप्त वंश के नरेश दोनों ही शीतल समुद्र तटों में रहने वाले शत्रुओं से युद्ध कर रहे थे। स्पष्ट है कि यह शत्रु धर्मादित्यवंश गोपचन्द्र का था और यह अत्यन्त संभाव्य है कि यह एक सम्मिलित अभियान था। जीवित गुप्त प्रथम ने हिमालय पर्वतीय प्रदेशों में रहने वाले शत्रुओं से युद्ध किया जो संभवतः कामरूप का राजा भूतिवर्मन् था, किन्तु मौखरियों की ओर से ऐसा दावा नहीं किया गया है। अतः प्रतीत होता है कि मौखरि और उत्तरकालीन गुप्तवंश के नरेश गुप्तवंश के विरुद्ध पहले एक साथ मिलकर लड़े किन्तु कामरूप शत्रुओं के विरुद्ध लड़ने के लिए उत्तरकालीन गुप्त नरेश गए। दोनों वंशों में साम्राजिक उच्चाकांक्षाएँ थीं, अतः उनमें मनमुटाव हुआ और खटपट आरम्भ हुई।

५. मौखरि साम्राज्य—गुप्तवंश का अंत लगभग ५५१ ई० में हुआ और उसके पश्चात् जैसा कि ५५४ ई० के हराहा उत्कीर्ण लेख में लिखा है मौखरि ईशान् वर्मन् ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उत्तरकालीनगुप्त नरेशों ने ईशान् वर्मन् का दुर्धर्ष विरोध किया। उपर्युक्त उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि ईशान वर्मन् ने आन्ध्रों, शूलिकों और बंगों को विजय किया जब वह मात्र युवराज था। प्रतीत होता है कि ईशान वर्मन् ने विष्णुकुन्दिन परिवार के आन्ध्र राजा को और महाराज गोपचन्द्र द्वारा स्थापित वंश को पराजित किया। शूलिकों का तादात्म्य अनिश्चित है। पुराणों के अनुसार शूलिक भारत के उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भाग में रहते थे। बृहत्संहिता अध्याय ६ श्लोक १५, अध्याय १४ श्लोक ८ के अनुसार शूलिक या सौलिक का संबंध अपरांत (उत्तर कोंनकोन), वनवासी (कनारा) और विदर्भ (बरार) से था। बृहत्संहिता अध्याय ६ श्लोक २१, अध्याय २० श्लोक ७, अध्याय १६ श्लोक ३५ में उनका संबंध गंधार और कोक्कान (वखन) से बताया गया है। प्रतीत होता इनकी एक शाखा उत्तर पश्चिम में थी।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि शूलिक मध्य एशिया से महाराष्ट्र प्रदेश तक फैले हुए थे। डा० पी० सी० बाग्ची के अनुसार शूलिक पैशाची प्राकृत की एक विशेष शाखा थी। इस तथ्य से भी यह स्पष्ट है कि इस बोली को बोलने वाली जाति बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई थी। यह अत्यंत संभाव्य है कि हराहा लेख में नामोल्लिखित शूलिक यही जनजाति थी जो उत्तर पश्चिमी प्रदेश में रहती थी। अफसद लेख के ग्यारहवें श्लोक में स्पष्ट रूप से संकेत है कि ईशानवर्मन् ने हूणों को भी हराया था। छठवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में हूण उस प्रदेश में रहते थे जहाँ पैशाची प्राकृत बोली जाती थी। अतः हराहा लेख के शूलिकों से उनका तादात्म्य किया जा सकता है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि हराहा लेख में मौखरियों के राज्य के विभिन्न सीमाओं पर के शत्रुओं का नाम गिनाया गया है— पूरब में वंगवासी, दक्षिण में आंध्रवासी। अतः स्पष्ट है कि शूलिक मौखरि राज्य के पश्चिम या उत्तर में रहते थे। इस तरह उनका हूणों से तादात्म्य है।

महाशिव गुप्त के सिरपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि सूर्यवर्मन् 'उज्जवल वर्मन् वंश में उत्पन्न हुआ जो मगध की अधीश्वरता के कारण महान् था'। इस सूर्यवर्मन् का तादात्म्य हराहा लेख में उल्लिखित ईशानवर्मन् के पुत्र सूर्यवर्मन् से किया गया है। यह प्रकट करता है कि मगध का कुछ भाग मौखरियों के हाथ में संभवतः ईशानवर्मन् के समय में चला गया। अफसद उत्कीर्ण लेख का कथन है कि जीवित गुप्त प्रथम के पुत्र कुमार गुप्त ने ईशानवर्मन् को पराजित किया और वह प्रयाग तक बढ़ता गया और वहाँ 'सूखे उपलों की प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया'। स्पष्ट है कि प्रयाग के युद्ध क्षेत्र में ईशानवर्मन् पर विजय प्राप्त करने के तुरन्त बाद कुमारगुप्त की मृत्यु हुई। इस दारुण विपत्ति के बाद कुमारगुप्त का पुत्र दामोदरगुप्त सिंहासन पर बैठा। अफसद लेख का कथन है कि उत्तरकालीन गुप्त राजा 'मौखरियों के विशालकाय गजों के सगर्व चलते हुए सैन्यबल को तोड़कर जिसने युद्ध में हूणों के सैनिकों को पैरों से कुचलने के लिए हवा में उछाल दिया था, अचेत हो गया'।

के० सी० चट्टोपाध्याय ने उपर्युक्त श्लोक का अर्थ लगाया है कि दामोदरगुप्त को मूर्छा आ गई थी और बाद को उसकी चेतना लौट आई। डॉ० सरकार ने संस्कृत ग्रन्थों के उदाहरण देकर यह अर्थ लगाया है कि इस श्लोक में दामोदरगुप्त की मृत्यु का उल्लेख है। डॉ० बसक का विचार है कि इस युद्ध में दामोदरगुप्त की पराजय हुई। इस श्लोक में मौखरि राजा की दुहरी विजय का उल्लेख है। प्रथम दामोदरगुप्त की पराजय, और द्वितीय हूणों या इप्थेलिटों की पराजय जिनको हराहा उत्कीर्ण लेख में शूलिक कहा है। किन्तु रायचौधरी, मजुमदार, अरवमूथन, डॉ० सिन्हा आदि विद्वानों की राय है कि इस युद्ध में दामोदरगुप्त की विजय हुई यद्यपि वह इस विजय का

फल न भोग सका। उसके पुत्र महासेनगुप्त ने युद्ध का संचालन तुरन्त अपने हाथ में ले लिया।

मिहिरकुल के बाद इफ्थेलिटों का इतिहास प्रायः तमाच्छादित है । डॉ० हीरानन्द शास्त्री ने दो खण्डित मुहरों का वर्णन किया है जिसमें किसी शासक की वंशावली दी हुई है जिसका नाम लुप्त है। इन मुहरों में जिन शासकों के नाम आए हैं वे इफ्थेलिट जाति के हैं जैसा कि सिक्कों से प्रमाणित हुआ है । इन मुहरों के कुछ राजाओं का विरुद महाराज है और कुछ का महाराजाधिराज। प्रतीत होता है कि इन राजाओं का समय बड़े कष्ट में बीता। कभी कभी उनकी स्वतंत्रता छिन जाती थी। प्रतीत होता है कि मिहिरकुल के बाद जिस हूण वंश ने राज्य किया उसकी यह वंशावली है। छठवीं शती के उत्तरार्द्ध में ईशानवर्मन् ने और थानेश्वर के प्रभाकर-वर्धन ने हूणों को परास्त किया । हो सकता है कि ईशानवर्मन् ने इस वंश के किसी राजा को हराया हो।

६. शर्ववर्मन्—ईशानवर्मन् के पश्चात् उसका पुत्र शर्ववर्मन् सिंहासन पर बैठा जैसा की असीरगढ़ और नालन्दा मुहरों से प्रकट है । हराहा उत्कीर्ण लेख में ईशानवर्मन् के एक पुत्र सूर्यवर्मन् का नाम आया है। वह शर्ववर्मन् का कनिष्ठ भ्राता था। देवबारनार्क उत्कीर्णलेख से स्पष्ट है कि शर्ववर्मन् का आधिपत्य मगध प्रदेश पर था। प्रतिहार भोज प्रथम के वराह दानपत्र से प्रकट है कि बुन्देलखण्ड प्रदेश पर भी उसका स्वत्व था। प्रतीत होता है कि असीरगढ़ में उसकी जो मुहर पाई गई है वह उसी स्थान से निस्सृत की गई थी। अरवमूथन ने लिखा है कि असीरगढ़ (नीमर जनपद मध्यप्रदेश) 'दक्खिन में मौखरियों की एक सीमा चौकी थी। चालुक्यों की बढ़ती शक्ति पर दृष्टि रखने के लिए संभवतः शर्ववर्मन् द्वारा यह सीमाचौकी स्थापित की गई थी।'

शर्ववर्मन् मौखरिवंश का प्रथम राजा था जिसने मगध को मौखरि राज्य में मिलाया। देवबरनार्क उत्कीर्णलेख में लिखा है कि उसने 'परमेश्वर' उपाधि धारण की। नालंदा में उसकी एक मुहर पाई गईहै जिसमें उसकी साम्राजिक उपाधियाँ दी हुई हैं। प्रतीत होता है कि शर्ववर्मन् ने मगध विजय करने के बाद अपने भाई सूर्यवर्मन को वहाँ का राज्यपाल या सामन्त बनाया।

उसके पूर्व ईश्वरवर्मन् और ईशानवर्मन् ने आन्ध्र और शूलिकों के विरुद्ध युद्ध किया था। मिराशी का विचार है कि महाकोसल के सोमवंशी राजाओं ने आंध्रों के विरुद्ध मौखरि राजा की सहायता की। प्रतीत होता है कि शर्ववर्मन् ने हूणों से युद्ध किया जो पंजाब प्रदेश में थे। उसने दामोदर गुप्त से भी युद्ध किया जिसमें उसकी हार हुई। यह घटना सम्भवतः ५६२-६३ ई० में घटित हुई।

शर्ववर्मन् एक विस्तृत राज्य का शासक था। उसके राज्य में मगध सम्मिलित था और पश्चिम की ओर उसके राज्य की सीमा थानेश्वर की सीमा से सटी हुई थी। उत्तर में हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण में विन्ध्य श्रेणी तक उसका राज्य था। गौड प्रदेश पर उसका राज्य नहीं था। उसने ५८६ ई० के लगभग तक राज्य किया।

७. अवन्ति वर्मन्—शर्ववर्मन् का उत्तराधिकारी अवन्तिवर्मन् था। अवन्तिवर्मन् के नालंदा मुहर से निश्चित रूप से प्रमाणित है कि वह शर्ववर्मन् का पुत्र था और ५८६ ई० के लगभग कन्नौज के सिंहासन पर बैठा। अपने पिता की तरह उसने भी 'परमेश्वर' तथा यथासामान्य साम्राजिक उपाधियाँ धारण की थीं। नालंदा में प्राप्त एक मुहर के अनुसार अवन्तिवर्मन् की मृत्यु के बाद मगध के सिंहासन पर उसका पुत्र श्री सुव...या सुच...(सुचन्द्रवर्मन्, मुहर के सम्पादक के अनुसार) पर बैठा। हर्षचरित से प्रतीत होता है कि ग्रहवर्मन् अवन्तिवर्मन् का ज्येष्ठ पुत्र एवं कन्नौज के सिंहासन का युवराज था। किन्तु मगध के सिंहासन पर सुव...या सुच...बैठा जो मगध का उपराजा था। प्रतीत होता है कि अवन्ति वर्मन् के अन्तिम दिनों में या उसकी मृत्यु के बाद मौखरि परिवार में कुछ गृहकलह हुई।

अवन्तिवर्मन् की मृत्यु के बाद जो लगभग ६०० ई० में हुई उसका ज्येष्ठ पुत्र कन्नौज के साम्राजिक सिंहासन पर बैठा, और सुव...या सुच...ने अपने को मगध का स्वतन्त्र राजा घोषित किया और मुहर निस्सृत की जिसमें उसके पूर्वजों के नाम और उसकी साम्राजिक उपाधियाँ दी हुई हैं। उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता ग्रहवर्मन् के विरुद्ध विद्रोह किया था, अतः उसने इस मुहर में उसका नाम नहीं दिया।

८. मगध में मौखरि राज्य का अन्त—ईशानवर्मन् के पुत्र शर्ववर्मन् ने नव-विजित मगध राज्य की देख रेख करने के लिए अपने कनिष्ठ भ्राता सूर्यवर्मन् को नियुक्त किया। उसने दक्षिणी कोसल के सोमवंशी वंश से मैत्री की। इससे अवश्य ही उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी होगी। प्रतीत होता है अवन्तिवर्मन् को यह बात अप्रिय लगी। उसने अपने कनिष्ठ पुत्र सुव...या सुच...को मगध का उप-राजा नियुक्त किया। सूर्यवर्मन् के पुत्र भाष्कर वर्मन् ने अपने भांजे महाशिवगुप्त के यहां शरणली। अवन्तिवर्मन् की मृत्यु के बाद ग्रहवर्मन् कन्नौज के सिंहासन पर बैठा और सुव...या सुच...ने मगध के सिंहासन का अपहरण कर अपने को स्वतंत्र घोषित किया।

यह गृह कलह मगध के मौखरि राज्य के लिए संघातिक प्रमाणित हुई। मौखरियों की इस कलह से गौडों ने लाभ उठाया। जयनाग के शासन में वे मध्य

बंगाल के शासक थे ही, अब उन्होंने पश्चिम की ओर और अधिक बढ़ने का प्रयास किया। ईशान वर्मन् के समय से ही गौड और मौखरियों में शत्रुता चल रही थी। अतः मौखरि वंश के गृहकलह से उनको लाभ उठाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने इस समय जब जयनाग गौड में शासन कर रहा था शशाङ्क के नेतृत्व में सोन नदी तक मगध पर अधिकार किया और रोहतासगढ़ को अपना केन्द्र बनाया जिसका सामरिक दृष्टि से महत्व था। उन्होंने मौखरियों को मगध से उत्तर प्रदेश में खदेड़ दिया, और अब मौखरियों का राज्य केवल सोन नदी के पश्चिम तक शेष रह गया। इस तरह मगध पर गौडों का आधिपत्य हुआ। प्रतीत होता है कि सुव...या सुच...गौडों को विस्तार नीति का ग्रास हुआ। यह घटना ६०० ई० के आस-पास घटित हुई। गौडाधिपति जयनाग ने शशांक को मगध का महासामन्त नियुक्त किया। इसी काल में शशांक ने अपनी मुहर निश्चत की।

६. ग्रहवर्मन्—कन्नौज के मौखरि राज्यसिंहासन पर ग्रहवर्मन् था जिसका राज्य सोन नदी के पश्चिम तक था। मगध से सुख...या सुच...से राज्य छिन जाने पर भी वह इस प्रदेश पर राज्य करता रहा। वह अवन्तिवर्मन् का ज्येष्ठ पुत्र था। गौडों का आधिपत्य मगध पर हो जाने के बाद वह गौडों की ओर से शंकित हुआ। अतः उसने थानेश्वर के पुष्यभूति वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। प्रभाकर वर्धन ने भी इस वैवाहिक मैत्री के प्रस्ताव का स्वागत किया क्योंकि मालवा के देवगुप्त से उसका मनमुटाव था जिसने उसके साले महासेन गुप्त के राज्य का अपहरण कर लिया था। हो सकता है कि मालव के देवगुप्त ने और गौडाधिपति ने थानेश्वर के वर्धनों और कन्नौज के मौखरियों के विरुद्ध गठबन्धन किया हो। प्रतीत होता है कि ग्रहवर्मन् और राज्यश्री का विवाह ६०४ ई० के लगभग हुआ।

इस हर्षोत्सव के बाद पुष्यभूति वंश और मौखरिवंश दोनों पर विपत्ति आई। प्रभाकरवर्धन ने राजवर्धन को हूणों पर आक्रमण करने के लिए उत्तर की ओर भेजा। इसी बीच प्रभाकरवर्धन असाध्य रूप से अस्वस्थ हुआ और उसकी मृत्यु हुई। उसकी राज्ञी यशोमती सती हुई, हर्ष किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुआ। उसकी आयु उस समय १६ वर्ष की थी। उसका बड़ा भाई राजवर्धन राजधानी में उपस्थित नहीं था। इस समय थानेश्वर राज्य के ऊपर घोर विपत्ति आई हुई थी। राजवर्धन युद्ध क्षेत्र से थका-मांदा और आहत लौटा। कुछ ही दिनों बाद यह सूचना मिली कि दुष्ट मालव राज ने ग्रहवर्मन् का वध करके और राज्यश्री को शृंखला में जकड़ कर कारागार में डाल दिया है, और वह थानेश्वर पर आक्रमण करने और इस पर अधिकार करने को प्रस्तुत है। प्रतीत होता है कि यह घटना ६०६ ई० के प्रारम्भिक महीनों में हुई।

दुष्ट मालव-राजा जिसने ग्रहवर्मन्। की हत्या की थी ह्वेनसांग के मो-ल-को का शीलादित्य (जिसका तादात्म्य वल्लभी के शीलादित्य से किया गया है) नहीं था, क्योंकि हर्ष के शिलालेखों की उस सूची में उसका नाम नहीं है जिनसे राजवर्धन ने युद्ध किया। हर्ष के शिलालेखों की सूची में उन शत्रुओं का नाम दिया हुआ है जिनको राजवर्धन ने परास्त किया किन्तु इस सूची में शंकरगण के पुत्र बुद्धराज का भी नाम नहीं है। अतः उस समय बुद्धराज मालवा का राजा नहीं था।

उज्जैन ५९५ ई० में कलचुरि राजा शंकरगण के हाथ में था और ६०९ ई० में उसके पुत्र बुद्धराज ने पूर्वी मालवा के अन्तर्गत विदिशा से एक दानपत्र निस्सृत किया था। इसका एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि मालवा ५९५ ई० से लेकर ६०९ ई० तक लगातार कलचुरियों के हाथ में रहा। कलचुरि राजा शंकरगण ने ५९५ ई० में महासेन गुप्त को हराकर मालवा पर अधिकार किया। किन्तु ६०२ ई० के पूर्व चालुक्य मङ्गलेश ने कलचुरि बुद्धराज को परास्त कर उसके सम्पूर्ण धन का अपहरण किया। कुछ काल के बाद ६०९ ई० के लगभग बुद्धराज ने विदिशा से भूमि-दान किया। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि ६०२ और ६०९ ई० के बीच में मालवा बुद्धराज के अधिकार में था। प्रतीत होता है कि चालुक्यों से पराजित होने के बाद बुद्धराज के हाथ से मालवा निकल गया और गुप्तवंशज देवगुप्त ने इस पर अधिकार कर लिया। इस अपहरण से मालवा पर महासेन गुप्त के पुत्र कुमार गुप्त और माधव गुप्त के राजा होने की आशा जाती रही। अतः प्रभाकर वर्धन ने मालव-राजा पर आक्रमण किया। अतः अवसर पाकर देवगुप्त ने प्रभाकर वर्धन के सम्बन्धी मौखरियों पर आक्रमण किया। मौखरि वंश और गुप्त वंश से वंशागत शत्रुता थी ही, और गौडों की बढ़ती हुई शक्ति से मौखरि ग्रहवर्मन् को भय था ही अतः ग्रहवर्मन ने वर्धन वंश से वैवाहिक मैत्री-गठन किया। उधर देवगुप्त ने गौड राजा से मैत्री की और प्रभाकर वर्धन के मरते ही ग्रहवर्मन् पर धावा किया और उसको मार डाला। यह घटना लगभग ६०६ ई० में हुई। इस तरह उत्तर प्रदेश में भी मौखरिवंश का अन्त हुआ।

साम्राजिक गुप्त वंश के अवशेषों पर दो वंशों का उदय हुआ था—मौखरियों और उत्तरकालीन गुप्तों का जो साम्राजिक प्रतिष्ठा के लिए आपस में लड़ते रहे और अन्त में ६०६ ई० तक दोनों वंश समाप्त हो गए।

अध्याय | ३

उत्तरकालीन गुप्तवंश और उनका मूल स्थान

१. उत्तर कालीन गुप्त वंश—बुधगुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य निरंतर क्षीण होता गया। नरसिंह गुप्त, कुमार गुप्त तृतीय, और विष्णु गुप्त निर्बल शासक थे। वे गुप्त सामाज्य के विघटन को रोकने में असमर्थ थे। गुप्त साम्राज्य की सीमा निरन्तर कम होती गयी और उसके रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिये उत्तर भारत में उत्तरकालीन गुप्त वंश, मौखरि वंश, पुष्यभूति वंश और दक्षिण में कलचुरि वंश और चालुक्य-वंश उत्पन्न हुए। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरकालीन गुप्त वंश और मौखरि वंश का संघर्ष उत्तर भारत के इतिहास का मुख्य अंश है।

उत्तरकालीन गुप्त वंश साम्राजिक गुप्त वंश का वंशज नहीं था। उनके नाम के अन्त में गुप्त शब्द है इसका कोई अर्थ या महत्व नहीं है। इस वंश का 'उत्तर-कालीन गुप्तवंश' नाम इसलिए पड़ा कि इनके अधिकांश राजाओं के नामों के अन्त में 'गुप्त' शब्द था जो उनके नामों का ही एक अंश था, न कि वंश नाम। कृष्ण गुप्त केवल "नृपति" कहा गया है और उसके पुत्र हर्ष गुप्त के नाम के साथ केवल श्री उपाधि लगी है। स्पष्ट है कि यह वंश सामंत वंश था और संभवतः इसने गुप्त साम्राज्य के विघटन के समय महत्व प्राप्त किया।

२. उत्तरकालीन गुप्त वंश का मूल स्थान—इस वंश के मूलस्थान का प्रश्न विवादास्पद और महत्वपूर्ण है। इतना निश्चय है कि आदित्य सेन से लेकर जीवित गुप्त द्वितीय के समय तक उनका कार्यक्षेत्र मगध था किन्तु उनका मूलस्थान कहाँ था इस प्रश्न का समाधान करना कठिन है। आदित्य सेन के उत्कीर्ण लेख मगध में पाए गए हैं जिनमें उसकी वंशावली दी हुई है। इससे अनुमान होता है

कि उसके पूर्वज मगध में राज्य करते थे। किन्तु अनेक विद्वानों की धारणा है कि वे साम्राजिक गुप्तवंश की एक शाखा थे और पूर्व मालवा में राज्य करते थे।

निम्नलिखित आधार पर उन्होंने यह माना है कि इस वंश का मूल स्थान पूर्वी मालवा था। हर्षचरित का माधवगुप्त हर्ष का घनिष्ठ सखा था, और अफसड उत्कीर्ण लेख का माधवगुप्त "हर्ष के साहचर्य का इच्छुक था।" अतः होर्नले तथा कुछ अन्य विद्वानों ने दोनों माधवगुप्त को एक ही व्यक्ति माना है। यच० सी० रायचौधरी ने लिखा है कि बाण ने केवल एक माधवगुप्त का उल्लेख किया है जो हर्ष का मित्र था। बाण ने लिखा है कि कुमार गुप्त और माधवगुप्त मालवपति के पुत्र थे। अतः माधवगुप्त का पिता महासेनगुप्त मालवा का राजा था, मगध का नहीं। मगध में मौखरि राज्य कर रहे थे। अतः उत्तरकालीन गुप्तों के लिए वहाँ स्थान नहीं था देवबरनार्क उत्कीर्णलेख उत्तरकालीन गुप्तों के सम्बन्ध में मौन है। मौखरि 'वर्मनों' के उत्कीर्णलेख बराबर और नागार्जुनि पहाड़ियों में पाए गए हैं। ह्वेनसांग ने जो हर्ष के समय मगध गया था शशांक और पूर्णवर्मन् की चर्चा की है किन्तु मगध के संबन्ध में माधवगुप्त या उसके पिता महासेनगुप्त के सम्बन्ध में वह मौन है। अतः रायचौधरी ने यह परिणाम निकाला है कि माधगुप्त का पिता महासेनगुप्त जो हर्ष का सखा था मालव का राजा था और मगध पर गुप्तों का प्रत्यक्ष राज्य नहीं था। वहाँ वर्धमान् वंश राज्य कर रहा था।

एडवर्ड ए० पियर्स का विचार है कि मौखरि बहुत पूर्व समय से मगध में राज्य कर रहे थे। उसने हर्षचरित्र में उल्लिखित क्षत्रवर्मन् को मगध का मौखरि राजा और कौमुदीमहोत्सव के मगधकुल को मौखरिवंश माना है। उसने अफसड उत्कीर्णलेख के माधवगुप्त को तथा बाण के मालव राजपुत्र माधवगुप्त को एक माना है। उसने लिखा है कि उत्कीर्णलेख के साक्ष्य से प्रमाणित है कि मौखरि अधीश्वर थे। अतः वहाँ उत्तरकालीन गुप्त के शासन की संभावना नहीं है।

डॉ० बी० पी० सिन्हा ने लिखा है कि यह ठीक है कि मगध में शर्ववर्मन् और अवन्तिवर्मन् नामक मौखरि राजाओं का राज्य था किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्णगुप्त और उनके वंशजों का कार्यक्षेत्र मगध नहीं था। आदित्यसेन के अफसड उत्कीर्णलेख में लिखा है कि श्री सुस्थितवर्मन् पर माधवगुप्त के पिता महासेनगुप्त के विजय की कीर्ति लौहित्य नदी के तटों पर गाई जाती है। निधानपुर पट्टों और नालन्दा मोहर से स्पष्ट है कि महासेनगुप्त ने लौहित्य के तटपर सुस्थित-वर्मन् को परास्त किया। रायचौधरी ने लिखा है कि इस विजय के कुछ समय पूर्व

मालवपति यशोधर्मन् ने लौहित नदी तक के प्रदेश को विजय किया था। अतः मालवपति महासेनगुप्त भी कामरूप तक विजय अभियान कर सकता था।

रायचौधरी ने लिखा है कि उत्तरकालीन गुप्तों ने मालवा से गंगा के मैदान तक एवं लौहित्य नदी तक अपनी सत्ता का विस्तार किया और मौखरियों को असाधारण रूप से परास्त किया। इसका अर्थ यह है कि कुमारगुप्त और दामोदरगुप्त ने मगध और उत्तरी बंगाल पर अधिकार करने के बाद कामरूप पर चढ़ाई की। इसका अर्थ यह है कि मगध दामोदरगुप्त तथा महासेनगुप्त से नियंत्रण में था किन्तु दामोदरगुप्त का समकालीन शर्ववर्मन् था जिसके सम्बन्ध में देवबरनार्क उत्कीर्णलेख में लिखा है कि मगध शर्ववर्मन् और अवन्तिवर्मन् का राज्य था। दामोदरगुप्त मोखरियों से लड़ता हुआ मारा गया। अतः यह निश्चय है कि दामोदर गुप्त का पुत्र महासेनगुप्त शर्ववर्मन् का समकालीन था। अतः अफसड उत्कीर्णलेख और देवबरनार्क लेख को एक साथ पढ़ने पर प्रतीत होता है कि या तो मगध पर उत्तरकालीन गुप्तों का एवं मौखरियों का दोनों का नियंत्रण था, या लौहित्य के तटों पर विजय प्राप्त करने के बाद मगध उत्तरकालीनगुप्त के महाराजा महासेनगुप्त के हाथ से निकल कर मौखरियों के हाथ में चला गया जो उनके वंशानुगत शत्रु थे। उत्तरकालीनगुप्त वंश का राज्य अवश्य ही मगध पर था किन्तु मगध पर उनका शासन मौखरियों के पूर्व था। दो या तीन पीढ़ियों तक मौखरि मगध के कुछ भाग के अधीश्वर थे और उन्होंने 'परमेश्वर' की उपाधि धारण की थी। अतः ऐसी स्थिति में मौखरियों के बाद उत्तरकालीन गुप्तवंश का मगध का शासक होना प्रायः असम्भव था। ईशानवर्मन् पर विजय प्राप्त करने बाद कुमारगुप्त की मृत्यु प्रयाग में हुई। स्पष्ट है कि प्रयाग उसके राज्य के अन्तर्गत था। स्पष्ट है कि उत्तरकालीन गुप्तवंश पूर्व से पश्चिम की ओर प्रयाग तक बढ़ गया था और मौखरि कन्नौज से पूर्व की ओर बढ़ रहे थे। लौहित्य नदी के तटों पर महासेन की विजय से प्रतीत होता है कि वह उत्तर बंगाल का स्वामी था। देव बरनार्क उत्कीर्ण लेख के इस कथन से की शर्ववर्मन् और अवन्तिवर्मन् मगध के शासक थे यह अर्थ नहीं निकलता कि उत्तरकालीन गुप्तवंश का राज्य नहीं था। यह उत्कीर्णलेख इस मान्यता को नहीं काटता कि मगध उत्तरकालीन गुप्तवंश का क्रियाक्षेत्र था। प्रतीत होता है कि लौहित्य के तटों पर विजय प्राप्त करने के बाद महासेनगुप्त की भाग्यलक्ष्मी अत्यन्त मन्द पड़ गई और वह शर्ववर्मन् के आक्रमण के सामने ठहर न सका और मौखरियों ने मगध में अपना राज्य स्थापित कर लिया। यह अधिक युक्तिसंगत है कि लौहित्य तट पर महासेनगुप्त की विजय के बाद मगध पर मौखरियों का आधिपत्य हुआ। कुमारगुप्त और दामोदरगुप्त ने ईशानवर्मन् और शर्ववर्मन् नामक

मौखरि राजाओं पर विजय प्राप्त की थी । अतः दामोदरगुप्त की मृत्यु के बाद ही मगध पर मौखरियों का राज्य हो सकता था ।

पियर्स ने लिखा है कि मालव राजा महासेनगुप्त ने मौखरि राजा के सहमति से कामरूप के राजा के दर्प को तोड़ने का बीड़ा उठाया और मौखरि राजा ने महासेनगुप्त को मगध से होकर जाने दिया । इस सुझाव का कोई आधार नहीं है । उत्तरकालीन गुप्तवंश के उत्कीर्णलेखों से स्पष्ट है कि मौखरियों और उत्तर-कालीन गुप्तवंश में कट्टर शत्रुता थी और कई पीढ़ियों से उनमें संघर्ष चल रहे थे । अतः यह कहना कि मौखरियों ने उत्तरकालीन गुप्तवंश की सेना को अपने देश से होकर जाने दिया अत्यन्त भ्रामक है । इसके अतिरिक्त मौखरिवंश के हित के लिए महासेनगुप्त क्यों आग में हाथ डालता । इसके अतिरिक्त महासेन के लिए कामरूप के राजा के विरुद्ध युद्ध करने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी जब कि उसके और कामरूप राजा के राज्य के बीच में एक स्वतन्त्र राज्य था । इससे स्पष्ट है कि मगध तथा गौड में महासेनगुप्त का राज्य था जब उसने कामरूप के राजा को परास्त किया ।

आदित्य सेन के अफसड उत्कीर्णलेख में लिखा है कि हर्षगुप्त का पुत्र जीवितगुप्त दर्पयुक्त शत्रुओं के लिए भयकारी साक्षात् भंयकर दाधकारी ताप था जिसने (उसके) दर्पयुक्त शत्रुओं को नहीं छोड़ा यद्यपि वे समुद्र की ओर के तटों पर थे जो ज्वार और भाटा की जलधारा से शीतल थे, (और) श्रेष्ठ ताल वृक्षों के ऊंचे कुंजों में घूमते हुए हाथियों के सुण्डों से विछिन्न किए हुए कदली वृक्षों की शाखाओं से आच्छादित थे, यद्यपि वे उस (हिमालय) पर्वत पर थे जो हिमपूर्ण तीव्र एवं तरंगित जलधाराओं से शीत था । स्पष्ट है कि इसमें गौड़ों और वर्मनों की ओर संकेत है । इससे भी स्पष्ट है कि उत्तरकालीन गुप्तवंश का कार्यक्षेत्र बंगाल के समीप मगध में था, दूरस्थ मालवा में नहीं ।

आदित्य सेन के अफसड (गया के समीप) उत्कीर्ण लेख ने समुद्र तट पर जीवित गुप्त के पराक्रमों को, और कामरूप नरेश सुस्थितवर्मन् पर महासेनगुप्त की विजय की चर्चा की है । अप्रत्यक्ष रूप से यह लेख प्रमाणित करता है कि उत्तर-कालीन गुप्त नरेश पूर्वी भारत में रहते थे, क्योंकि यदि वे इस समय मालवा में रहते होते तो वे उत्तरी भारत के अधीश्वर माने जाते और उनके पास एक विशाल साम्राज्य होता । इसके अतिरिक्त यदि महासेनगुप्त का साम्राज्य मालवा से कामरूप तक होता तो स्पष्ट है कि मौखरि नरेशों का शासन समाप्त हो गया होता, किन्तु महाराजाधिराज सु...की नालन्दा मुहर तथा बाण कृत हर्षचरित अस-

दिग्ध रूप से प्रमाणित करते हैं कि उस समय तक मौखरि अपना साम्राजिक पद बनाए हुए थे। इसके अतिरिक्त अफसड लेख ने महासेनगुप्त के नाम के साथ केवल सामान्य 'श्री' शब्द लगाया है।

ईशानवर्मन् के हराहा उत्कीर्ण लेख के आधार पर कुछ विद्वानों ने लिखा है है कि मौखरियों का राज्य बंगाल से लेकर पंजाब तक था। ऐसी स्थिति में उत्तर कालीन गुप्तवंश मगध में नहीं हो सकता था। किन्तु इससे प्रतीत नहीं होता कि ईशानवर्मन् का राज्य गौड पर था। हराहा उत्कीर्णलेख में केवल इतना ही लिखा है कि ईशानवर्मन् ने समुद्रतट पर रहने वाले गौडों को परास्त किया। यह तथ्य ज्ञात है कि जीवितगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त ने ईशानवर्मन् को हराया। अवश्य ही यह घटना गौडों पर ईशानवर्मन् की विजय के बाद हुई होगी। इसके अतिरिक्त आदित्यवर्मन् और ईश्वरवर्मन् का विवाह साम्राजिक गुप्तवंश में हुआ था, और प्रतीत होता है कि मैत्री भाव से ईशानवर्मन् ने साम्राजिक गुप्तवंश की सहायता करने के लिए गौड देश पर चढ़ाई की थी।

जब कुमारगुप्त को ईशानवर्मन् की उच्चाकांक्षा ज्ञात हुई और उसने देखा कि यह उसकी उच्चाकांक्षा में रोड़ा है तो उसने ईशानवर्मन् से युद्ध किया और उसको परास्त किया। देवबरनार्क उत्कीर्णलेख केवल इतना ही प्रकट करता है कि शर्ववर्मन् ने मगध पर राज्य स्थापित किया।

देवबारणार्क लेख में उत्तरकालीन गुप्त नरेशों का नामोल्लेख न होना केवल इतना ही प्रकट करता है कि उनका इस गाँव के दान से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह उसी प्रकार है जिस तरह नालंदा बिहार के दान-दाताओं की सूची में चीनी अभिलेखों में केवल उन्हीं राजाओं का नाम है जिन्होंने दान दिया था, शेष राजाओं का नाम नहीं है। इन वर्णनों की कोई राजनीतिक सार्थकता नहीं है। देवबरणार्क लेख केवल इतना प्रकट करता है कि बालादित्य के बाद यह गाँव मौखरि राजाओं सर्ववर्मन और अवन्तिवर्मन के हाथ चला गया। यह लेख यह नहीं प्रमाणित कर सकता कि सर्ववर्मन के समय के पूर्व यह गाँव उत्तरकालीन गुप्तवंश के अधिकार क्षेत्र में नहीं था।

इससे यह आशय नहीं निकलता कि कृष्णगुप्त के पूर्वज मगध के शासक नहीं थे। इस तर्क का इससे भी वैषम्य नहीं है कि महासेनगुप्त के हाथ से मगध का पैतृक राज्य मौखरियों द्वारा छीने जाने के बाद महासेनगुप्त मालवा का राजा बना।

पियर्स ने कौमुदीमहोत्सव नामक नाटक में उल्लिखित मगध-कुल का समुद्रगुप्त के इलाहाबादस्तम्भ उत्कीर्ण लेख के कोटवंश से तादात्म्य किया है। किन्तु विद्वानों ने इस नाटक की ऐतिहासिकता स्वीकार नहीं की है। पियर्स ने लिखा है कि मयूर शर्मन् के चन्द्रवल्ली उत्कीर्ण लेख में मोकरि (मौखरि) शब्द आया है। उसको उसने मगध का राजा मौखरि क्षत्रवर्मन् माना है जिसका नाम बाण के हर्षचरित में आया है। बाण ने यह नहीं लिखा है कि मौखरि क्षत्रवर्मन् मयूरशर्मन् द्वारा परास्त किया गया या वह मगध का राजा था। इसके अतिरिक्त डा० के० ए० शास्त्री इस अभिलेख की सत्यता पर विश्वास नहीं करते कि मयूरशर्मन् ने मैसूर से मगध पर धावा किया होगा, क्योंकि ऐसा उल्लेख किसी भी उत्कीर्ण लेख में नहीं है। यदि मयूरशर्मन् ने किसी मौखरि राजा को हराया तो वह राजपूताने की बड्वा मौखरिवंश या कर्णाटक का मौखरि वंश हो सकता है।

यह सुझाव भी अमान्य है कि मगध में यज्ञवर्मन् के वंश के उत्तराधिकारी हरिवर्मन् के वंशज थे जिन्होंने साम्राजिक मौखरि राज्य स्थापित किया, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं है कि मौखरियों के इतिहास में यज्ञवर्मन् का क्या स्थान है। इसके अतिरिक्त यज्ञवर्मन् के वंश ने कोई सार्वभौमिक और साम्राज़िक उपाधियाँ नहीं धारण की। वास्तव में गया का परिवार सामन्त परिवार था। यह उत्तरकालीन साम्राजिक गुप्तों के अधीन था। गया में एक मिट्टी की मुहर पाई गई है जिसपर पाली में लिखा है 'मोखरिनाम्'। यह मौर्यकालीन ब्राह्मी अक्षरों में है। राजपूताना के अन्तर्गत बड्वा में एक दूसरा मौखरिवंश रहता था जिसके उत्कीर्णलेख पाए गए हैं। कर्णाटक में एक मौखरिवंश था इसका उल्लेख है। लेकिन इन वंशों का आपस में क्या संबन्ध था इसका कोई साक्ष्य नहीं है। हरिवर्मन् के वंश के पूर्व इनमें से किसी मौखरिवंश ने स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता नहीं भोग की।

मौखरिवंश तथा उत्तरकालीन गुप्त वंश—बुध गुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य का तीव्रगति से विखण्डन आरम्भ हुआ। तोरमाण और मिहिरकुल के आक्रमणों से और भी अधिक अव्यवस्था फैली और सामन्त अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। इसीकाल में बलभी के मैत्रक और मध्यभारत के परिव्राजक महाराजे सार्वभौमिक रूप से शासन करने लगे यद्यपि नाम के लिए वे साम्राजिक गुप्तवंश की अधीश्वरता मानते थे। इसी काल में हरिवर्मन् के परिवार ने और कृष्णगुप्त के परिवार ने महत्व प्राप्त किया। प्रतीत होता है कि जब नरसिंहगुप्त के शासनकाल में हूण गुप्त साम्राज्य के अन्दर घुस आए, तब कृष्णगुप्त या उसके उत्तराधिकारी ने हूणों के विरुद्ध युद्धकर विशिष्टता प्राप्त की। इसी समय के लगभग पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र शासकों के एक नए वंश का प्रादुर्भाव हुआ। प्रकटादिति सारनाथ के आस-पास के

प्रदेश का स्वामी बन गया। पश्चिम की ओर ऊपरी गंगा के मैदान में मौखरिवंश ने शक्ति प्राप्ति की, और मालवा पर औलिकर वंश का प्रभुत्व हुआ। इस समय साम्राजिक गुप्तवंश की सत्ता मगध और गौड प्रदेश तक सीमित हो गई।

साम्राजिक गुप्त सम्राटों पर संकट पर संकट आते रहे। अतः इन निर्बल शासकों को अधिकाधिक कृष्णगुप्त के परिवार पर निर्भर रहना पड़ा जिसने हूण आक्रमण के संकटमयकाल में गुप्त साम्राज्य की सहायता की। गुप्त सम्राटों की निर्भरता बढ़ती गई और गुप्त साम्राट और साम्रज्य के नामपर कृष्णगुप्त का परिवार अपनी शक्ति की वृद्धि करता गया, और अल्पकाल में मगध और उत्तरी बंगाल में वास्तविक सत्ता का प्रयोग करने लगा।

अफसड उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि कृष्णगुप्त और उसके उत्तराधिकारी गुप्त साम्राज्य के या तो सामन्त या प्रान्तीय राज्पाल या उच्च राजकीय पदाधिकारी थे। प्रतीत होता है कि हिमालय पर्वतीय प्रदेश के विरुद्ध यशोधर्मन् के अभियान के पश्चात् गुप्त सम्राट के नाम पर गुप्त अधीश्वरता स्थापित करने के लिए जीवितगुप्त ने चढ़ाई की। यशोधर्मन् के अभियान के फलस्वरूप गुप्त सम्राट निर्बल पड़ गए, और हरिवर्मन् के उत्तराधिकारी भी साम्राजिक अधीश्वरता प्राप्त करने में लगे। गुप्त सम्राट का अन्तिम ज्ञात तिथि ५४३-४४ ई० है। प्रतीत होता है इस तिथि के बाद ईशानवर्मन् ने अपने को महाराजाधिराज घोषित किया। उत्तरकालीन गुप्तवंश का कुमारगुप्त भी साम्राजिक उपाधियाँ धारण करने को उत्सुक था। अतः मौखरि वंश और उत्तरकालीन गुप्त वंश जो अब तक मित्र थे एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हो गए। कुमारगुप्त ने मौखरि ईशानवर्मन् को पराजित किया, और वह मगध और गौड का वास्तविक तथा वैध अधीश्वर बन गया। इस समय से कुमारगुप्त तथा उनके वंशज पूर्ण स्वतंत्रता भोग करते रहे। इस वंश के दो शत्रु थे—पश्चिम में मौखरि वंश और कामरूप में वर्मन् वंश। ईशानवर्मन् की पराजय के बाद शर्ववर्मन् ने मगध पर कई आक्रमण किए, और युद्ध क्षेत्र में दामोदर गुप्त की मृत्यु हुई। महासेनगुप्त ने इस संकट की गम्भीरता को समझ कर थानेश्वर के पुष्यभूति वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया जो कन्नौज के मौखरि साम्राज्य के पश्चिमी सीमान्त पर थे। मौखरियों के संकट से इस तरह सुचित्त होकर महासेनगुप्त ने कामरूप के राजा सुस्थित वर्मन् को पराजित किया। किन्तु इस विजय के शीघ्र ही बाद मौखरि शर्ववर्मन् ने मगध के कम से कम कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। प्रतीत होता है कि शर्ववर्मन् ने महासेन गुप्त को पराजित किया। चालुक्यवंश के कीर्त्तिवर्मन् ने सम्भवतः महासेन गुप्त को परास्त किया। सब तरफ से संकट से घिर जाने पर महासेन गुप्त के हाथ से मगध

निकल गया, तब महासेन गुप्त मालवा चला गया जो गुप्त साम्राज्य का एक प्रान्त था और जिसके उत्तराधिकारी उत्तरकालीन गुप्त थे।

यशोधर्मन् के बाद मालवा पर किसका राज्य हुआ ज्ञात नहीं है। सम्भव है उत्तरकालीन गुप्तवंश ने उसपर अपनी अधीश्वरता स्थापित की हो। उनका साम्राजिक गुप्तवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके नाम के अन्त में गुप्त शब्द जुड़ा रहने से सम्भवतः उनको सहायता मिली हो किन्तु महासेनगुप्त अधिक समय तक मालवा में राज्य न कर सका। कलचुरि राजा ने उसको परास्त किया। हो सकता है कि महासेन कलचुरियों से युद्ध करता हुआ मारा गया हो। महासेन गुप्त के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त ने थानेश्वर के प्रभाकरवर्धन के यहाँ आकर शरण ली जो उनका फूफा था। कुमारगुप्त और माधवगुप्त को बाण ने मालवपति के पुत्र कहा है, क्योंकि उस समय महासेनगुप्त मालव का राजा था न कि मगध का जो उसके हाथ से निकल कर मौखरियों के हाथ में चला गया था। महासेन गुप्त के पुत्र माधवगुप्त को जो हर्ष का मित्र था हर्ष ने मगध के सिंहासन पर बैठाया, क्योंकि मगध माधवगुप्त के परिवार का पैतृक निवास स्थान था। यदि मालवा माधवगुप्त का पैतृक वासस्थान न होता तो अपने मित्र माधवगुप्त को वहाँ का सिंहासन देना हर्ष के लिए अधिक उचित होता क्योंकि वह उसका घनिष्ठ मित्र था और मालवा पूर्णरूपेण उसके अधिकार में था, और 'माधवगुप्त उसके साहचर्य का सदा इच्छुक था।' इसके अतिरिक्त प्राचीन विधि लेखकों की सम्मति तथा राजाओं की प्रथा के भी अनुसार ऐसा करना उचित होता यदि मालवा उनका पैतृक स्थान होता।

इसमें संदेह नहीं कि मगध उनका पैतृक स्थान था। कृष्णगुप्त से लेकर कुमारगुप्त के समय तक उत्तरकालीन गुप्त राजे नाम मात्र के लिए गुप्त सम्राट के सामन्त या राजकीय पदाधिकारी थे। किन्तु कुमारगुप्त के समय से उत्तरकालीन गुप्तवंश स्वतंत्र हो गया, और मगध और बंगाल के कुछ भागों पर साम्राजिक सत्ता का भोग करने लगा।

अध्याय | ४

उत्तरकालीन गुप्तवंश का इतिहास

१. कृष्णगुप्त (ल० ४९०--ल० ५०५ ई०)—इस वंश के सम्बन्ध में दो तिथियाँ ज्ञात हैं (१) गुप्तवंश के चौथे राजा कुमारगुप्त के समकालीन मौखरि वंश के चौथे राजा ईशानवर्मन् के हराहा उत्कीर्ण लेख की, जो ५५४ ई० है। दूसरी तिथि इस वंश के सातवें राजा माधवगुप्त समकालीन हर्षवर्धन की है जिसने ६०६ ई० ६४६ ई० तक राज्य किया। हर एक शासक का माध्यमान शासन काल २० वर्ष मान लेने से कृष्णगुप्त का शासन काल पाचवीं शती के अन्त और छठवीं शती ईस्वी के आरम्भ में आता है।

उपर्युक्त गणना के अनुसार कृष्णगुप्त का शासन काल ल० ५९०-५०५ ई० है। इस समय गुप्त साम्राज्य संकट में था वल्लभी में सेनापति भटार्क प्रायः स्वतंत्र हो गया था। इस समय साम्राजिक गुप्तवंश का प्रभाव ह्रास पर था और अवर वंश महत्व प्राप्त कर रहे थे। इसी समय हरिवर्मन् ने जो मौखरि वंश का संस्थापक था, और कृष्णगुप्त ने जो उत्तरकालीन गुप्त वंश का संस्थापक था प्रमुखता प्राप्त की। प्रतीत होना है कि उन दोनों ने आपस में मैत्री भाव रखना लाभदायक समझा प्रतीत होता है इसी दृष्टि से हरिवर्मन् के पुत्र आदित्यवर्मन् ने श्री हर्षगुप्त की बहन हर्षगुप्ता से विवाह किया।

२. श्री हर्षगुप्त (ल० ५०५-ल० ५२५ ई०)—अफसड उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि उसने भयानक संघर्षों में सदा पराक्रमपूर्ण विजय का प्रदर्शन किया है। स्पष्ट है कि उसने हूणों के विरुद्ध कई भयानक संघर्ष किए।

३. जीवितगुप्त प्रथम (ल० ५२९-ल० ५४५ ई०)—अफसड उत्कीर्ण लेख में उसको 'क्षितीश चूड़ामणि' कहा है जो प्रत्यक्षतः 'नृप' या 'सामन्त चूडामणि' से अधिक अर्थ-बोधक है। इस समय मालव राजा यशोधर्मन् ने हिमालय से महेन्द्रगिरि तक और लौहित्य से पश्चिमी समुद्र तक के सम्पूर्ण उत्तर भारत के प्रदेश को पददलित किया। प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त तृतीय उसके विरुद्ध युद्ध करते हुए मारा गया। दामोदरपुर पट्ट और विष्णुगुप्त की नालंदा मुहर से स्पष्ट है कि कुमार गुप्त की मृत्यु के बाद विष्णुगुप्त मगध और उत्तरी बंगाल के सिंहासन पर बैठा। यशोधर्मन् का पतन किस प्रकार और कब हुआ ज्ञात नहीं है। उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि ५३२-३३ ई० है। गुप्त सम्राट के अधीन एक गुप्त राजकुमार ५४३ ई० में पुण्डवर्धन पर राज्य कर रहा था। प्रतीत होता है कि गुप्त सम्राट की अधीश्वरता स्थापित करने के लिए जीवित गुप्त ने हिमालय प्रदेश पर और दक्षिण पश्चिय बंगाल में विजय अभियान किया। यह युद्ध गोपचन्द्र या धर्मादित्य के विरुद्ध किया गया था। इस युद्ध के बाद जीवित गुप्त ने गौड़ प्रदेश पर अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया। इसीलिए आर्य-मंजु-श्री-मूल-कल्प ने उत्तरकालीन गुप्तों को गौडाधिपति कहा है।

जीवितगुप्त प्रथम ने निश्चय ही अपने वंश की प्रतिष्ठा की अति बृद्धि की। अफसड उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि जीवितगुप्त प्रथम ने कोशवर्धन पर्वत से वायु पुत्र हनुमान की तरह छलांग मारी, और अपने अलौकिक कार्यों से संसार को चकित किया।

४. कुमारगुप्त (५४०-५६०ई०)—जीवितगुप्त प्रथम का पुत्र और उत्तराधिकारी कुमारगुप्त ५४० ई० में सिंहासन पर बैठा। जैन अनुश्रुति के अनुसार गुप्त साम्राज्य का अन्त ५५१ ई० में हुआ। विष्णुगुप्त चन्द्रादित्य इस वंश का अन्तिम सम्राट था और प्रतीत होता है कि उसके शासन का अन्त बलात् हुआ तथा किसी दूसरे वंश ने उसका स्थान ग्रहण किया कन्नौज के मौखरियों की शक्ति बहुत बढ़ रही थी। उन्होंने आन्ध्र देश के राजा पर विजय प्राप्त की, शूलिकों को युद्ध में हराया और समुद्र तट के प्रदेश में रहने वाले गौडों की आक्रमणशील प्रवृत्ति को रोका। मौखरि राजा ईशानवर्मन् ने कुमारगुप्त की वस्तुतः अपने अधीश्वर गुप्त सम्राट विष्णुगुप्त सहायतार्थ इस गौड-युद्ध में भाग लिया। ईशानवर्मन् गुप्त सम्राट का तथा कुमारगुप्त का सम्बन्धी था। इस युद्ध मे गौड़ों की हार हुई। यह घटना हराहा उत्कीर्ण लेख की तिथि ५५४ ई० के पूर्व हुई।

किन्तु इस विजय के बाद कुमारगुप्त और ईशानवर्मन् में संघर्ष हुआ। कारण स्पष्ट है। ईशानवर्मन् ने आन्ध्रों, शूलिकों, और गौडों पर विजय प्राप्त की। अतः उसमें साम्राज्कि उच्चकांक्षाओं का उदय होना स्वाभाविक था। उसने 'महाराजा-

धिराज की साम्राजिक उपाधि धारण की जो अब तक उसके अधीश्वर गुप्त सम्राट धारण करते थे। हो सकता है कि अपने मामा विष्णुगुप्त की मृत्यु के बाद ईशानवर्मन् ने साम्राजिक गुप्त वंश के उत्तराधिकारी होने का प्रयास किया हो। दूसरी ओर कुमारगुप्त अपने को गुप्त साम्राज्य के अवशिष्ट भाग का उत्तराधिकारी मानता था। उसके पूर्वज कई पीढ़ियों से गुप्त साम्राज्य को अपने कस में कर रहे थे और वे सामाजिक प्रतिष्ठा और उपाधि प्राप्त करने को उत्सुक थे। गुप्त सम्राट उनकी शक्ति पर निर्भर था और वे अब वैध रूप सामाजिक शक्ति ग्रहण करना चाहते थे। अब तक मौखरि और उत्तरकालीन गुप्त वंश एक दूसरे के सहायक और मित्र थे किन्तु अब वे एक दूसरे के शत्रु हो गए। उनके बीच जो युद्ध हुआ उसमें कुमारगुप्त की विजय हुई जिसने मन्दार पर्वत की तरह ईशानवर्मन् की यशस्वी सेनारूपी क्षीर सागर को मथा और लक्ष्मी प्राप्त की। मौखरि उत्कीर्ण लेखों में इस युद्ध की चर्चा नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि यह विजय पूर्ण विजय थी। यह विजय ५६० ई० के लगभग हुई होगी क्योंकि हराहा उत्कीर्णलेख (५५४ ई०) में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

प्रतीत होया है कि गौड़ विजय के बाद कुमारगुप्त को ईशानवर्मन् की सामाजिक महत्वाकांक्षा का पता चल गया जिसके फलस्वरूप कुछ मुठभेड़ हुई जिसमें प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त ने स्वयं सम्राट विष्णुगुप्त को घसीटा। हो सकता है कि इस मुठभेड़ में विष्णुगुप्त की मृत्यु हुई हो और इसके बाद ईशानवर्मन् ने महाराजाधिराज की सामाजिक उपाधि धारण की हो। ईशानवर्मन् पर विजय प्राप्त करने के बाद कुमारगुप्त ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया और सामाजिक और सार्वभौमिक पद ग्रहण किया और गुप्त साम्राज्य की परम्पराओं को ग्रहण किया और अवशिष्ट प्रदेशों पर अधिकार किया तथा प्रयाग तक अपना राज्य विस्तार किया। आर्यमंजूश्री मूलकल्प के अनुसार उसकी मृत्यु हैजे से हुई किन्तु अफसड उत्कीर्णलेख में लिखा है कि वह प्रयाग गया और प्रतिष्ठापूर्वक अपने को पुष्पों से अलंकृत कर सूखे उपलों की आग में बैठ गया मानों वह केवल जल में नहा रहा हो।

५. दामोदर गुप्त—कुमारगुप्त का पुत्र दामोदरगुप्त उसकी मृत्यु के बाद हिंसासन पर बैठा। आदित्यसेन के अफसड उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि मन्दार की तरह दामोदरगुप्त ने अपने शत्रुओं का बध किया। मौखरियों के बलवान् हाथियों की प्रयाण करती हुई पंक्ति को, जिसने (कुचलकर मार डालने के लिए) युद्ध में हूणों की सेनाओं को ऊपर उछाल दिया था, भंग करने के बाद वह अचेत हो गया, और देव-नारियों में चुनाव करते हुए और कहते हुए कि हमारी है उनके हाथों की कमलिनियों के सुखद स्पर्श से वह सचेत हुआ। राजा के रूप में उसने धर्मात्मा

ब्राह्मणों की एक सौ कन्याओं का विवाह किया जो अलंकारों और यौवन से युक्त थीं और दहेज में अग्रहार-दान दिए। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि दामोदर गुप्त ने सूर्यवर्मन् से युद्ध किया जो मौखरि राजा शर्ववर्मन् का कनिष्ठ भ्राता था और जिसके हाथ में इस युद्ध का नेतृत्व दिया गया था। डॉ० बी० पी० सिनहा तथा अन्य अनेक विद्वानों का विचार है कि दामोदर गुप्त ने मौखरि शर्ववर्मन् से युद्ध किया, क्योंकि सीरपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में सूर्यवर्मन् के संबन्ध मे कहा गया है कि सूर्यवर्मन् वर्मनों के निष्कलंक वंश में उत्पन्न हुआ जो मगध पर अपने आधिपत्य के कारण महान् है। इस लेख में वर्मनवंश की महानता पर बल दिया गया है जो मगध का अधीश्वर था। शिला लेख के आधार पर राय चौधरी, मजुमदार, अरवमूथन तथा डॉ० सिन्हा आदि विद्वानों का विश्वास है कि इस युद्ध में दामोदर गुप्त विजयी हुआ यद्यपि विजय फलको भोगने के लिए वह जीवित न रहा यह युद्ध संभवतः ५६२-६३ में हुआ। उसका पुत्र महासेन गुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा और कामरूप के राजा सुस्थितवर्मन पर विजय प्राप्त की।

६. **महासेन गुप्त**—दामोदरगुप्त के बाद उसका पुत्र महासेन गुप्त सिंहासन पर बैठा। हो सकता है कि युद्धभूमि में ही उसने अपनी पिता की मृत्यु के बाद उसने वहाँ का भार ग्रहण कर लिया हो उसने अपनी बहन महासेनगुप्ता का विवाह थानेश्वर के आदित्यवर्धन के साथ किया। यह वैवाहिक सम्बन्ध वर्धनवंश और उत्तरकालीन गुप्त वंश दोनों के ही हित में था, क्योंकि कन्नौज के मौखरि राज्य की सीमा एक ओर थानेश्वर के राज्य की सीमा को और दूसरी ओर मगध के गुप्त वंश के राज्य की सीमा को स्पर्श करती थी। इसके अतिरिक्त मौखरि मगध राज्य पर कई बार आक्रमण भी कर चुके थे। सशक्त मौखरि राज्य से थानेश्वर के राज्य को भी भय था। यह समझ कर कि मौखरि कई बार परास्त किए जा चुके हैं, और थानेश्वर राज्य के साथ उसका गठबन्धन मौखरियों की आक्रामक नीति में रोड़ा है, महासेनगुप्त ने कामरूप के वर्मनों की उदीयमान शक्ति के विरुद्ध विजय-यात्रा की और उसको असाधारण रूप से हराया। यह पराजय इतनी पूर्ण थी कि ५० वर्ष बाद महासेन गुप्त के पौत्र आदित्य सेन के अफसड उत्कीर्ण लेख में इसकी गूंज सुनाई पड़ती है। इस विजय अभियान से प्रमाणित होता है कि संपूर्ण उत्तर बङ्गाल उत्तर कालीन गुप्तवंश की अधीनता में था।

इस विजय के बाद महासेनगुप्त की विपत्ति के दिन आए। मौखरि राजा शर्ववर्मन् ने मगध राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। शर्ववर्मन् के पुत्र अवन्तिवर्मन् और उसके पौत्र 'सुव ···' या 'सुच ···' की मुहरें नालन्दा में पाई

गई हैं। इससे यह स्पष्ट है कि महासेन गुप्त के मगध राज्य का अधिक भाग उसके वंशागत शत्रु मौखरियों के हाथ में चला गया। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मौखरियों के सम्बन्ध में महासेन की धारणा गलत सिद्ध हुई। मौखरि मगध को विजय करने के प्रयास में लगे रहे और अन्ततः सफल हुए। महासेनगुप्त का एक तीसरा शत्रु चालुक्य कीर्त्तिवर्मन् के रूप में उत्पन्न हुआ जिसने, जैसाकि उसके भ्राता मङ्गलेश के महाकूट स्तम्भ उत्कीर्ण लेख में लिखा है अंग, वंग और मगध के राजाओं पर विजय प्राप्त की। प्रतीत होता है कि कीर्त्तिवर्मन् ने ५६७ ई० तक राज्य किया। अतः उसने महासेनगुप्त पर विजय प्राप्त की होगी। सम्भव है कि महासेन की विपत्ति को देखकर गौडों ने उस पर आक्रमण किया हो जो राज्य विस्तार के लिए उत्सुक थे। इस तरह विभिन्न शक्तिशाली शत्रुओं से घिर जाने पर महासेनगुप्त अपने पैतृक देश मगध को छोड़कर मालवा जाने का विवश हुआ। सम्भवतः ५८२ ई० के लगभग उसने मालवा को प्रस्थान किया होगा क्योंकि ५६२ ई० में उसने राज्य सिंहासन ग्रहण किया और उसको मौखरियों, कामरूप के राजा, चालुक्यों और सम्भवतः गौडों से युद्ध करने में बीस वर्ष लगे होंगे।

७. मालवा पर महासेन गुप्त का आधिपत्य—डॉ० त्रिपाठी, डी० सी० सरकार, ला, राय चौधरी आदि विद्वानों ने कामसूत्र की टीका और भागवत पुराण के आधार पर मालवा से पूर्वी मालवा का अर्थ लिया है। राजशेखर ने भी मालवा और अवन्ति में भेद किया है किन्तु राजशेखर तथा कामसूत्र की टीका दोनों बहुत बाद के हैं। बाण महासेनगुप्त का समकालीन था और ह्वेनसांग भी महासेन गुप्त की मृत्यु के लगभग ३५ वर्ष के बाद भारत में आया। इन दोनों के साक्ष्य पर डॉ० सिन्हा ने प्रमाणित किया है कि मालव के अन्तर्गत न केवल पूर्वी मालवा था बल्कि संम्पूर्ण मध्य मालवा और वर्तमान पश्चिमी मालवा का अधिक भाग भी था और इसकी राजधानी उज्जैन थी। बाण के अनुसार मालव का विस्तार पश्चिम में चम्बल नदी से लेकर पूरब में एरण तक, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत से लेकर उत्तर में चम्बल नदी के उत्तरी मोड़ तक था। कादम्बरी में बाण ने मालव के अन्तर्गत सिप्रा नदी पर स्थित उज्जैन की मालवि मालव नारियों की चर्चा की है और हर्ष चरित में बाण ने राजवर्धन् द्वारा मालव राजा से छीने हुए लूट के माल में मालव नारियों (मालवि) का उल्लेख किया है इससे स्पष्ट है कि बाण के मालव में उज्जैन भी सम्मिलित था। पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल उत्कीर्ण लेख में लाटों, मालवों और गुर्जरों को सामन्त कहा है। स्पष्ट है कि लाट (दक्षिणी गुजरात) और गुर्जर प्रदेश (पश्चिमी राजपूताना के बीच के मालव का नाम आया है जो अवश्य ही उपर्युक्त दोनों प्रदेशों से सटा रहा होगा। निश्चय है कि यह मालवा केवल विदिशा के आस-पास का पूर्वी

मालवा नहीं था। बाण ने हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन् का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह हूणमृग के लिए सिंह, सिन्धुप्रदेश के राजाओं के लिए तीव्र ज्वर······लाटों की स्वेच्छाचारिता को लूटने वाला और मालव के गौरवरूपी लता के लिए कुठार था। बाण ने मालव का उल्लेख लाट, गुर्जर और सिन्ध प्रदेश के साथ किया है। इससे स्पष्ट है कि मालव के अन्तर्गत केवल पूर्वी मालव (भिलसा के आसपास का प्रदेश) नहीं बल्कि इसमें सम्पूर्ण मध्य मालवा, और पश्चिमी मालवा, और उत्तरी मालवा का अधिक भाग भी था।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि उज्जैन के उत्तर-पूरब में चि-कि-तो है जिसका तादात्म्य जझोति या बुन्देलखंड से किया गया है। उसने उज्जैन और जझोति के बीच में किसी प्रदेश का नाम नहीं लिया है अतः स्पष्ट है कि न तो बाण को, और न ह्वेनसांग को पूर्वी मालवा नामक कोई प्रदेश ज्ञात है अतः स्पष्ट है कि जब उत्तरकालीन गुप्त राजा महासेनगुप्त मगध से मालवा आया तो निश्चय ही यह प्रदेश वह मालवा था जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

कुमारगुप्त और बन्धुवर्मन् के मन्डसोर उत्कीर्णलेख तिथ्यंकित ४७२ ई० से प्रकट है कि मालवा के पश्चिमी भाग में उस समय भी गुप्त राज्य था। बाद में हूणों ने इसपर अधिकार किया कुछ समय बाद मन्डसोर में यशोधर्मन् का प्रादुर्भाव हुआ जिसने हूणों को मध्य और उत्तरीभारत से, और संपूर्ण गुप्त साम्राज्य से खदेड़ दिया। पूरब में लौहित्य नदी तक और उत्तर में हिमालय तक उसने विजय-यात्रा की। किन्तु ५३२-३३ ई० के बाद उसका नाम सुनने में नहीं आया। गुप्त साम्राज्य की अधीश्वरता का भ्रम ५३३ ई० के बाद भी बुन्देलखंड में बना रहा और हो सकता है कि उत्तरकालीन गुप्तवंश ने गुप्त साम्राज्य के इस अविशिष्ट भाग पर अपना आधिपत्य जमाया हो। मैत्रक यद्यपि पूर्ण रूपेण स्वतंत्र थे फिर भी गुप्त सम्राट की अधीश्वरता मानते थे। इस तरह हम देखते हैं कि महासेनगुप्त के मालवा आने में और वहाँ राज्य स्थापित करने में कोई राजनीतिक या भौगोलिक अड़चन न थी। परम्परानुसार मालवा गुप्त प्रदेश था और उज्जैनगुप्त नगरी और गुप्त साम्राज्य की अधीश्वरता की जनश्रुति तो थी ही। मालवा और उसकी राजधानी उज्जैन पर महासेनगुप्त ने ल०५८२ ई० से ५९५ ई० तक राज्य किया।

उसके बाद कलचुरि राजा शंकरगण ने ५९५ ई० में मालव राज्य महासेन गुप्त को हराया। महासेनगुप्त की शक्ति को चकनाचूर करने के बाद उसने गुप्त साम्राजिक उपाधियाँ धारण कीं। उसका पुत्र बुद्धराज चालुक्य राजा मङ्गलेश द्वारा ६०२-३ ई० के पूर्व किसी समय पराजित किया गया। पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल

उत्कीर्ण लेख में भी इसकी चर्चा है। प्रतीत होता है कि इस विजय के पश्चात् उज्जैन पर चालुक्यों का अधिकार हो गया। बाण ने लिखा है कि प्रभाकरवर्धन् ने लाटों की उच्छृङ्खलता को लूटा। प्रतीत होता है कि प्रभाकरवर्धन् ने कलचुरियों के विरुद्ध चालुक्यों का साथ दिया क्योंकि वह अपने ममेरे भाइयों को मालवा के सिंहासन पर बैठना चाहता था।

प्रतीत होता है कि कलचुरी राजा बुद्धराज के हाथ से मालवा के निकल जाने पर अवसर पाकर देवगुप्त ने इसपर अधिकार कर लिया और अपने को मालव का राजा घोषित किया। महासेनगुप्त से देवगुप्त का क्या संबन्ध था ज्ञात नहीं है। बहुत संभव है कि वह गुप्त राजवंश का कोई सदस्य था। देवगुप्त के सिंहासनासीन हो जाने से महासेनगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त को सिंहासनासीन होने का अवसर हाथ से निकल गया। अतः प्रभाकरवर्धन ने मालव राजा देवगुप्त के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। किन्तु वह उसको हटाने में असफल रहा। वह केवल कुमारगुप्त और माधव-गुप्त को संकट से निकालकर सुरक्षित थानेश्वर ले आया। यह घटना ल० ६०३ ई० की मानी जा सकती है। उस समय राजवर्धन १५ या १६ वर्ष का था और कुमारगुप्त १८ वर्ष का। कुमारगुप्त और माधवगुप्त राजवर्धन और हर्षवर्धन के सखा नियुक्त किए गए।

८. महासेनगुप्त का अन्त—इस तरह उत्तरकालीन गुप्तवंश के इतिहास का प्रथम अध्याय ल० ५९५ ई० में समाप्त हुआ। इसके बाद देवगुप्त ने कुछ वर्षों तक राज्य किया किन्तु वह अपहर्ता माना गया और राजवंश की सूची में उसका नाम नहीं रखा गया। उत्तरकालीन गुप्तवंश ने साम्राजिक गुप्तवंश की सांस्कृतिक और राजनीतिक परम्पराओं को उत्तराधिकार में प्राप्त किया। हूण आक्रमणों और यशो-धर्मन् की दिग्विजय के फलस्वरूप शनैः शनैः इस वंश ने शक्ति संचय किया और कुछ समय बाद सर्वेसर्वा हो गया। उनके नाम के अन्त में गुप्त शब्द लगा रहने से जनता के मस्तिष्क पर गुप्त साम्राज्य का भ्रम बना रहा। किन्तु अभाग्यवश जब वे अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर थे शक्तिशाली शत्रुओं ने उनको चारों ओर से घेर लिया, भाग कर उनको मालवा में शरण लेनी पड़ी किन्तु वहाँ भी विपत्ति ने उनका साथ न छोड़ा और मालवा का राज्य भी उनके हाथ से निकल गया। हर्ष के शासन के अन्तिम वर्षों में महासेनगुप्त का पुत्र माधवगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा। उसका पुत्र आदित्यसेन महाप्रतापी राजा हुआ। उसने अपने राज्य का पर्याप्त विस्तार किया।

अध्याय | ५

हर्ष

१. हर्ष के इतिहास के मुख्य स्रोत—हर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में संस्कृति साहित्य के विख्यात रचनाकार बाण के हर्षचरित से, चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा के वर्णनों से तथा स्वयं हर्ष के उत्कीर्ण लेखों और मुहरों से चालुक्य राजा पुलकेसिन् कामरूप के राजा भास्कर वर्मन् आदित्य सेन जीवित गुप्त, सर्ववर्मन् आदि राजाओं के उत्कीर्ण लेखों से पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त में कुछ विवरण यहाँ दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त आर्य-मंजुश्री-मूल-कल्प, म-त्वन-लिन, चीनी दूत मंडल के अभिलेखों तथा अन्य चीनी वृत्तों, और हर्ष तथा उसके समकालीन राजाओं की मुद्राओं से भी उस समय के सम्बन्ध में कुछ जानकारी होती है।

हर्ष चरित—हर्षचरित संस्कृत के इने-गिने जीवन-चरितों में से है। इसका लेखक बाण एक उच्चकोटि का संस्कृत गद्य लेखक तथा हर्ष का राजकवि था और उसको हर्ष के जीवन और शासन के संबन्ध में व्यक्तिगत तथा घनिष्ट जानकारी थी। यद्यपि बाण ने कवि-कल्पना और अलंकृत एवं अतिशयोक्ति भाषा का कहीं-कहीं प्रयोग किया है किन्तु तथ्य क्या है यह सरलता से मालुम हो जाता है। यह एक मूल्यवान ऐतिहासिक ग्रन्थ है और इसके तथ्यों की अन्य स्रोतों से आश्चर्यजनक रूप से पुष्टि हुई है बाण ने शशाङ्क द्वारा राजवर्धन् के बध के संबन्ध में जो विवरण दिया है, उसकी पुष्टि शिलालेख तथा ह्वेनसांग के वर्णन से होती है। इतिहास लेखक के रूप में बाण का विवरण चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से अधिक विश्वसनीय है। ह्वेनसांग ने हर्ष के राजा रोहण के संबन्ध में भण्डि का उल्लेख किया है, किन्तु

जब हर्ष थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा उस समय भण्डि राजधानी से दूर मालवा में शत्रु दमन करने में लगा था। इस संबन्ध में बाण ने वृद्ध सेनापति सिंहनाद का नामोल्लेख किया है जो ठीक है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि हर्षराज्य सिंहासन ग्रहण करने के संबन्ध में अनिच्छुक था। किन्तु बाण ने इस प्रकार की हिच्किचाहट की चर्चा नहीं की है सी०वी० वैद्य ने लिखा है कि इस विषय में भी बाण ठीक है। क्योंकि हर्ष की अनिच्छा थानेश्वर के सिंहासन पर बैठने के संबन्ध में नहीं बल्कि सिंहासन पर बैठने के संवन्ध में थी। चीनी यात्री का कथन भ्रामक है वह थानेश्वर के सिंहासन और कन्नौज के सिंहासन में भेद नहीं कर सका। कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् ने एक शिलालेख में भाष्करवर्मन के १२ पूर्वजों के नाम दिए हुए हैं जो कामरूप के राजा थे। इनमें से अन्तिम ५ राजाओं के नामों का उल्लेख बाण ने भी किया है जो शिलालेख की सूची से बिलकुल मिलता है। बाण के कथन की विश्वस-नियता का यह भी एक प्रबल प्रमाण है। बाण ने मनितार के समीप अजिरवती नदी पर स्थित राजशिविर (स्कन्धावार) का आँखों देखा वर्णन किया है। उसने अनेक प्रकार के सामन्तों का भी वर्णन किया है जिससे सामन्त प्रथा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। बाण ने मौखरि राजाओं की सूची में ग्रहवर्मन् के नाम का उल्लेख किया है जिसका नाम किसी उत्कीर्णलेख में नहीं पाया जाता। किसी उत्कीर्णलेख में यह नहीं लिखा है कि कन्नौज के मौखरि राजा अवन्तिवर्मन् के पुत्र ग्रहवर्मन् की किस प्रकार मृत्यु हुई। किन्तु बाण ने लिखा है कि गुप्त नामक किसी मालव नरेश ने ग्रहवर्मन् की हत्या की। बाण के वर्णन से ज्ञात होता है कि ग्रहवर्मन् अवन्तिवर्मन् का पुत्र था और उसका संबन्ध मालव नरेश से शत्रुतापूर्ण था। मधुबन उत्कीर्णलेख सूचित करता है कि राजवर्धन ने देवगुप्त नामक राजा को हराया। प्रत्यक्षतः यही ग्रहवर्मन् का शत्रु था। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाण और उत्कीर्णलेख एक दूसरे के पूरक हैं। बाण सूचित करता है कि प्रभाकरवर्धन् मालव के गौरवरूपी लता के लिए कुठार था और हूण मृग के लिए सिंह। बाण के वर्णन से उन राज्यों का पता चलता है जो प्रभा-करवर्धन और हर्ष के समय में थे तथा उनका इन राजाओं से क्या संबन्ध था। बाण ने यह नहीं लिखा है कि पड़ोस के राज्यों को हर्ष ने अपने राज्य में मिलाया था या नहीं। ह्वेनसांग ने इसके संबन्ध में विस्तार से लिखा है। हर्ष चरित्र में स्कन्धावार गजशाला, अश्वशाला, विभिन्न देशों के जनपद-जन, साधु महीपाल, देशान्तर्गत दूत मण्डल, देवगृह, गृहोद्यान, धवलगृह, आदि का विस्तृत वर्णन किया है जो अन्य कहीं उपलब्ध नहीं है। हर्षचरित्र में सैनिक प्रयाण का विशद वर्णन है जिससे सैनिकों के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसने जंगली गांवों में रहने वाले किसानों और उनके घर और उनके जीवन का और दिवाकर मित्र जैसे ज्ञान-साधकों और

उनके आश्रमों का सूक्ष्म चित्र खींचा है। बाण के वर्णन समकालीन जीवन पर आधारित हैं। उसके वर्णन में वसुबन्धु और दिङ्नाग का भी उल्लेख है। उस समय के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों,उनके नामों की व्याख्या, उनके दार्शनिक विचार की विविध प्रणालियों आदि पर भी बाण ने प्रकाश डाला है। सैनिक प्रयाण से जनता को क्या कष्ट होता है बाण भट्ट इसको भी लिखना नहीं भूला। सैनिक प्रयाण से नगर और ग्राम दोनों स्थानों की जनता को जो कष्ट होता है बाण ने उसका सच्चा चित्र खींचा है : हाथियों ने रास्ते में पड़े घरों को पैरों से रौंद डाला, लोग विवश होकर जान लेकर हस्ति-सेवकों पर ढ़ेले फेंकते हुए भागे। पकड़ न पा सकने के कारण हस्ति-सेवकों ने पास खड़े लोगों को साक्षी बनाकर संतोष किया। उस धकमधक्के में छोटी बस्तियाँ तितर-बितर हो गईं और उनमें रहने वाली छोटी गृहस्थियाँ जान लेकर भागीं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बाण ने साधारण जनता के जीवन का, शिविर के व्यस्त और कठोर जीवन का, राजसभा और राजप्रासाद के उच्च जीवन की विलासिता और प्रथाओं का, राजधानी की चहल-पहल का, एकान्त आश्रम के त्यागमय और तपस्वी जीवन का, जनता की विभिन्न श्रेणियों के रीति-रिवाजों, ढंगों और स्वभावों का, शिक्षा और विद्या के रूपों और स्थितियों का, धर्म और संस्कृति का विशद वर्णन किया है। इतिहास का यह मूल्यवान्, महत्वपूर्ण और रोचक भाग है। इस तरह हर्षचरित में उस समय के सामाजिक इतिहास की प्रचुर सामग्री है।

ह्वेनसांग—वेंसेन्ट स्मिथ ने लिखा है कि 'यद्यपि ह्वेनसांग के ग्रन्थ का प्रधान ऐतिहासिक मूल्य इस बात में है कि उसने राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं का वर्णन किया है किन्तु बहुत सी प्राचीन जनश्रुतियों का उल्लेख करके उसने हमारी कृतज्ञता के ऋण को और भी बढ़ा दिया है। यदि उसने सावधानी के साथ इनकी रक्षा न की होती तो ये जनश्रुतियाँ लुप्त हो गई होतीं।'

ह्वेनसांग चीन का निवासी था। उसका जन्म ६०० ई० में कन्फ्यूसियन परिवार में हुआ था जो बौद्ध धर्म के विरुद्ध था। अपनी बाल्यावस्था में ही उसका झुकाव बुद्ध के शान्तिमय धर्म की ओर हो गया। अपने देश के अनेक मठों में विद्वान चीनी भिक्षुओं के चरणों में बैठकर उसने बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। बुद्ध के चलाए हुए धर्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने, बुद्ध के चरण-चिन्हों से पवित्र हुए स्थानों को देखने, भारतीय विद्वानों से अपनी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक शंकाओं का समाधान कराने, बौद्ध धर्म ग्रन्थों को उनकी मूलभाषाओं में प्राप्त करने के

लिए वह भारत आया। चीन से भारत आने में उसे लगभग एक साल लगा। ६३१ई० से ६३३ ई० तक कश्मीर में रहकर उसने सूत्रों और शास्त्रों का अध्ययन किया। उसने भगवान बुद्ध की पुण्यस्मृतियों से परिपूर्ण श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वाराणसी वैशाली आदि नगरों को देखा। उसने गया में बोधवृक्ष का दर्शन किया और६३७ ई० में वह नालंदा विश्वविद्यालय गया। नालंदा के संघ की ओर से उसका राजसी स्वागत किया गया और एक सम्मानित अतिथि के रूप में वह वहाँ ठहराया गया। योगशास्त्र पर नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र के व्याख्यानों को वह बड़े मनोयोग से सुनता था और वहाँ रहकर उसने हेतुविद्या, शब्दविद्या, वसुबन्धु के कोष और पाणिनि के व्याकरण का अध्ययन किया। बौद्ध दर्शन के अनेक गूढ़ विषयों पर उसने अपनी शंकाओं का निवारण किया। वह अपने साथ भारत से ६७५ अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों को चीन ले गया और वहाँ पहुँचकर (६४५ ई०) उनके अनुवाद में लग गया। उसकी प्रार्थना पर चीनी सम्राट ने उसकी सहायता के लिए अनेक विद्वानों को नियुक्त किया।

चीनी सम्राट की आज्ञा से उसने अपना भ्रमण वृत्तांत लिखा जो ६४६ ई० समाप्त हुआ। ६४८ ई० में उसमें कुछ और बातें जोड़ी गईं।

ह्वेनसांग का भ्रमण-वृत्तांत तीन रूपों में मिलता है। पहला उसी का लिखा हुआ है और सि-यु के नाम से प्रसिद्ध है। सातवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास तथा भूगोल का अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य है। उसने १३८ देशों का हाल लिखा है जिनमें से १०० देशों में वह स्वयं गया था। उसने उन देशों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, तथा वहाँ के लोगों के चरित्र के संबन्ध में विस्तार पूर्वक लिखा है।

दूसरा ग्रंथ ह्वेनसांग की यात्रा का सारांश है जिसको तऔ-सि-यन नामक उसके शिष्य एवं सहायक कार्य कर्त्ता ने तैयार किया था। इस पुस्तक का नाम है शे-किअ-फंग-चे है। तीसरी पुस्तक ह्वेनसांग की 'जीवनी' है इसका भी लेखक उसका उपर्युक्त शिष्य एवं मित्र था। यह ग्रन्थ यात्रा विवरण की कमी को पूरा करता है।

उसने ७५ ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। 'भारतीय संस्कृति के इतिहास में ह्वेनसांग का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। जिन हस्तलिखित मूल ग्रंथों का उसने अनुवाद किया वे मूल रूप में अब अप्राप्य हैं, किन्तु चीनी भाषा में उनके अनुवाद अब भी सुरक्षित हैं।'

उसने बौद्धधर्म तथा उसके अनुयायियों, और ब्राह्मण धर्म तथा उसके रीति-रिवाजों के संबन्ध में पक्षपात तथा पूर्वाग्रह पूर्ण बातें लिखी हैं। उसने बौद्ध धर्म, उसके पवित्र स्थलों, मूर्तियों आदि के संबन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें लिखी हैं। वह महायान बौद्ध धर्म का पक्षपाती और हीनयान बौद्धधर्म का विरोधी था।

उसने अपनी यात्रा में पड़ने वाले प्रदेशों, नगरों आदि का विशद् वर्णन किया है। उसके ग्रन्थ से उस समय के भारत की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। चीन यात्री ह्वेनसांग ने हर्षकालीन भारत का आँखों देखा वर्णन किया है जिसके लिए प्राचीन भारत का इतिहास बहुत ऋणी है। उसके वर्णनों से भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति और हर्ष की शासन प्रणाली पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ह्वेनसांग उत्कीर्ण लेखों और हर्षचरित के विवरणों का पूरक है। ह्वेनसाँग ने राजवर्धन की हत्या के सम्बन्ध में बाण के वर्णन तथा उत्कीर्ण लेख के विवरण की पुष्टि की है और यह सूचित किया है कि राजवर्धन का हंता, बोधि वृक्ष का उन्मूलक, बौद्ध धर्म का द्वेषी, पूर्वी भारत के अन्तर्गत कर्णसुवर्ण का दुष्ट राजा शशाङ्क था। ह्वेनसांग ने यह भी सूचना दी है कि राजवर्धन की हत्या के बाद वाणि के परामर्श पर कन्नौज के राजनीतिज्ञों ने कन्नौज के सिंहासन पर बैठने के लिए हर्ष वर्द्धन को आमंत्रित किया।

ह्वेनसाँग ने हर्ष और पुलकेशिन् द्वितीय के युद्ध का सविस्तर वर्णन किया है जिसकी पुष्टि एहोलउत्कीर्ण लेख (६३४ ई०), श्रयाश्रय शीलादित्य के नवसारी पट्टों तथा अन्य उत्कीर्ण लेखों से होती है। बाण के विवरण से यह प्रतीत नहीं होता कि हर्ष ने जिन प्रदेशों को विजय किया था उनको उसने अपने राज्य में सम्मिलित किया या नहीं। इसकी पूर्ति ह्वेनसाँग के वर्णन से होती है जिसने उन राज्यों की वास्तविक स्थिति का परिचय दिया है। इसके साथ ही उसने भारत के अन्य राज्यों का भी उल्लेख किया है। उसने हर्ष के सामरिक अभियानों की भी चर्चा की है। उसने लिखा है कि कन्नौज में जो धर्मसभा हुई थी उसमें पंच भारत के १८ देशों के राजा सम्मिलित हुए थे और वे राजा प्रयाग के छठवें कुम्भ के अवसर पर हर्ष के साथ कन्नौज से प्रयाग आए थे। कन्नौज की धर्मसभा का विशद् और सविस्तर वर्णन ह्वेनसाँग ने प्रस्तुत किया है। ह्वेनसांग नें हर्ष के व्यस्त राजकीय जीवन का भी विवरण दिया है। उसने यह भी लिखा है कि प्रशासनिक देख भाल करने के लिए हर्ष वर्ष के ८ महीने संपूर्ण राज्य की यात्रा करता था। हर्ष के व्यस्त जीवन का एक चित्र बाण ने भी प्रस्तुत किया है जब हर्षवर्धन अजिरवती नदी के किनारे मणितार के समीप राजशिबिर में ठहरा हुआ था। ह्वेनसाँग ने यह भी संकेत किया है कि

राजकीय निर्णय में मंत्रियों का भी प्रभाव रहता था। इसकी पुष्टि बाण के विवरण से भी होती है। उसने यह लिखा है कि अपने मंत्रियों की गलती से राजवर्धन शशांक से मिलने के लिए गया। ह्वेनसाँग तथा बाण दोनों ने ही हर्ष के राज्य में बलात् अपहरण किए जाने की घटना का संकेत किया है किन्तु ह्वेनसाँग ने स्पष्ट लिखा है कि भारतीय उतावले और चंचलवृत्ति के किन्तु शुद्ध नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले होते हैं। वे कपट का व्यवहार नहीं करते। ह्वेनसाँग महायान बौद्ध सम्प्रदाय का अनुयायी भी था। किन्तु उसने तत्कालीन अन्य बौद्ध सम्प्रदायों और विचारधाराओं तथा विभिन्न ब्राह्मण धर्म सम्प्रदायों और संस्कृतियों का भी विवरण दिया है। उसने लिखा है कि बौद्ध धर्म के हर एक केन्द्र में जहाँ-जहाँ वह गया उसने देखा कि महायान और हीनयान भिक्षु तथा ब्राह्मण धर्म के अनुयायी भी एक ही साथ रह रहे हैं।

वाटर्स ने जिसने ह्वेनसाँग के यात्रा विवरण का अनुवाद अंग्रेजी में किया है, चेतावनी दी है 'ह्वेनसाँग अच्छा निरीक्षक, सावधान अन्वेषक, संतोषपूर्ण वृत्तांत लेखक नहीं था। अतः उसने बहुत सी बातें अनकही छोड़ दी हैं जिनको यदि वह लिपिबद्ध करता तो अच्छा होता।'

उत्कीर्ण लेख—उत्कीर्ण लेख बाण और ह्वेनसांग के विवरणों के पूरक हैं उनसे बाण और ह्वेनसाँग के तथ्यों की पुष्टि भी होती है। बाण और ह्वेनसांग ने राज्यवर्धन के हन्ता का नाम नहीं लिखा है किन्तु हर्ष के उत्कीर्ण लेख में हन्ता का नाम देवगुप्त लिखा हुआ है। इनसे ह्वेनसाँग और बाण के विवरण की पुष्टि भी होती है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हर्ष और पुलकेशिन् द्वितीय के युद्ध का उल्लेख किया है जिसकी पुष्टि पुलकेशिन् के एहोल उत्कीर्ण लेख से तथा अन्य अनेक उत्कीर्ण लेखों से हुई है। दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेखों में हर्ष को 'उत्तरापथनाथ' कहा है। उत्कीर्ण लेखों से हर्षवर्धन के पूर्वजों की तथा अफसद, देववरनार्क उत्कीर्ण लेखों से उत्तरकालीन गुप्तवंश तथा मौखरिवंश की वंशावलियाँ ज्ञात हुई हैं। थानेश्वर के वर्धन वंश, मालवा के गुप्तवंश, और कन्नौज के मौखरि वंश के बीच के सम्बन्धों पर अफसद, साहपुर, मन्दार पहाड़ी, देववरनार्क, अशीरगढ़, बराबर और नागार्जुनी पहाड़ी गुफाओं के उत्कीर्ण लेखों तथा हर्षवर्धन की सोनपत ताम्र मुहर से पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस कार्य में मौखरि राजाओं की कुछ मुद्राओं से भी कुछ संकेत और सूचना मिली है। मौखरि राजाओं के राजनीतिक आधिपत्य की वृद्धि उनकी मुद्राओं में प्रतिबिम्बित है। ईशानवर्मन् की मुद्राओं पर जो तिथि दी हुई है उसकी पुष्टि हराहा लेख से हुई है। गौड के राजा समाचारदेव के अस्तित्व की

पुष्टि उनकी दो मुद्राओं से हुई है। शशांक की मुद्राओं और उसकी मुहरों से शशांक की राजनीतिक पद की तथा उसके शैवधर्मावलम्बी होने की सूचना मिलती है। हर्ष की मुद्राओं से हर्ष की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। उसके पिता प्रभाकरवर्धन की मुद्रा पर 'अप्रतापशल' प्रतापशील और हर्ष की मुद्रा पर 'विजितावनिर-अवनिपति श्री शीलादित्य दिवम् जयति' लिखा है। इन नामों की पुष्टि क्रमशः बाण और ह्वेनसांग के विवरण से हुई है। हर्ष की एक मुद्रा पर उसका नाम हर्षदेव उत्कीर्ण है। यह नाम हर्षचरित और नौसारी दानपत्र और अफसद प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में दिया हुआ है। हर्षवर्धन की नालन्दा मुहर में हर्ष का विरुद '(पर) माहेश्वर महेश्वरीव सार्व (भौमः) (परमभट्टारक) महाराजाधिराज श्री हर्षः' तथा उसके पूर्वजों के नाम दिए हुए थे जो अब विलीन हो गए हैं केवल राजवर्धन का नाम दृष्टिगोचर होता है। निधानपुर ताम्रपट्ट से सूचना मिलती है कि हर्ष और भास्करवर्मन् में मैत्री-गठन था। आर्य-मंजुश्री-मूल-कल्प से ज्ञात होता है कि हर्ष ने शशांक पर विजय प्राप्त की थी म-त्वन-लीन से ज्ञात होता है कि ६१८-२७ ई० के बीच भारत में गम्भीर उपद्रव हुए, और 'राजाशीलादित्य ने एक बड़ी सेना खड़ी की और दुर्धर्ष शौर्य पूर्वक युद्ध किया। चीनी इतिवृत्तों तथा चीनी दूतमंडल के अभिलेखों से हर्ष की मृत्यु के बाद के उत्तर भारत की स्थिति का पता चलता है कि यहाँ उस समय बड़ी गड़बड़ी और अव्यवस्था फैली। इसकी चर्चा आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में है। शशांक की मृत्यु के बाद गौड़ देश के विखंडन और अव्यवस्था का सजीव चित्र आर्यमंजुश्रीमूलकल्प ने खींचा है।

हर्षवर्धन के बंसखेरा और मधुबन उत्कीर्ण लेख हर्ष को प्रशासनिक यात्राओं और उसके प्रशासन का विवरण, पदाधिकारियों के नाम तथा उसके प्रदेशों के प्रशासनिक विभागों के नाम आदि की सूचना देते हैं।

(२) हर्ष के उत्कर्ष के पूर्व

विभिन्न दिशाओं से उत्तरी भारत पर अनेक आक्रमण हुए जिससे इस देश की राजनीतिक स्थिति में महान परिवर्तन हुआ। पूर्वी भारत में शशाङ्क के अधीन एक नई शक्ति का उदय हुआ। रोहतासगढ़ के पर्वतीय दुर्ग की चट्टान में खुदे हुए मुहर ठप्पा के लेख 'श्री—महासामन्त शशाङ्क देवस्य' का यह आशय है कि शशाङ्क ने सामन्त के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। वह गौड़ाधिपति जयनाग का सामन्त था।

गंजम ताम्रपट्ट (६१९ ई०) में लिखा है कि शैलोद्भव वंश के महासामन्त सैन्यभीत माधववर्मन ने जिसका संबंध मद्रास अहाते के कोंगोद-मण्डल से है महाराजाधिराज श्री शशाङ्क की अधीश्वरता स्वीकार की। तीन और पट्ट भी प्रकाश में आए हैं जिनसे शशाङ्क के शासन पर नया प्रकाश पड़ता है।

दूबि उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि सुप्रतिष्ठितवर्मन् और भाष्करवर्मन् उत्तरकालीन गुप्त नरेश महासेनगुप्त द्वारा पराजित किए गए। उनको गौड नरेश के एक आक्रमण का सामना करना पड़ा, और 'दुर्धर्ष प्रतिरोध करने के बाद भी दोनों भ्राता शत्रुओं के शस्त्रों के आघात से पूर्णतया अभिभूत हुए और जब उसके फलस्वरूप दोनों अचेत हो गए तब गौड सेना के भयंकर हाथियों से घेरे जाकर शत्रुओं द्वारा वे पकड़े गए'। इस वर्णन से यह आशय निकलता है कि गौड सेना उनको बन्दी बनाकर ले गई और कुछ समय बाद गौड सम्राट ने उन्हें सामन्त रूप में कामरूप के सिंहासन पर पुनः सुशोभित किया।

यह आक्रामक शशाङ्क था और इसी कारण भाष्करवर्मन् ने ६०६ ई० में हर्ष के साथ एक मैत्री गठबन्धन किया जब वह गौण सम्राट के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था।

मिदिनापुर में शशाङ्क के दो ताम्रपट्ट मिले हैं जिनकी तिथियों के सम्बन्ध में विद्वान अनिश्चित हैं। इन दोनों पट्टों में शशाङ्क के संबंध में कहा गया है कि 'श्री-शशाङ्क महीं-पति चतुर्-ज्जलधिमेखलां' (जब श्री शशांक पृथ्वी की रक्षा कर रहे हैं जिसकी मेखला चार समुद्र हैं)। इन ताम्रपट्टों से प्रतीत होता है कि शशांक के आधिपत्य का विस्तार उत्कल देश तक था। गंजम लेख से प्रमाणित होता है कि शशांक की सत्ता दक्षिण में गंजम तक थी। दूबि पट्ट सूचित करते हैं कि कम से कम कुछ समय तक कामरूप राज्य उसके अधीन करद प्रदेश था।

सि-यु-कि ने शशांक के सम्बन्ध में लिखा है कि वह धर्मनिष्ठ शैव तथा बौद्ध-द्वेषी था और उसका आधिपत्य बिहार पर भी था। डॉ० आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि शशांक के राज्य के अन्तर्गत उत्तरी और पश्चिमी बंगाल था।

डॉ० आर० सी० मजुमदार के विचार से शशांक बौद्ध-द्वेषी नहीं था। ह्वेनसांग तथा अन्य बौद्ध लेखक जहाँ तक शशांक का या बौद्ध धर्म पर आघात का सम्बन्ध है किसी तरह भी पक्षपातहीन या पूर्वधारणारहित नहीं माने जा सकते।

विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप शशांक ने पूर्वी भारत में, और थानेश्वर वंश ने पश्चिम में प्रमुखता प्राप्त की। बाण ने हर्षचरित में हर्ष के वंश के संस्थापक

पुष्यभूति का वर्णन करने के बाद प्रभाकरवर्धन से कथा का आरम्भ किया है और उसके पूर्वजों का बिलकुल उल्लेख नहीं किया है जिससे प्रतीत होता है कि अपने वंश का वही सर्वप्रथम वास्तविक महत्वपूर्ण राजा था। अपनी भूमिका के अठारहवें श्लोक में बाण भट्ट ने सूचित किया है कि उसने इस ग्रन्थ को अपनी स्मरण शक्ति से लिखा है। अतः यह शुद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। कीथ ने लिखा है कि 'ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का न्यूनतम मूल्य है यद्यपि वास्तविक लेखों के अभाव में यह कुछ तो है'। उसने लिखा है कि 'भव्य वर्णनात्मक और आलंकारिक शैली के कारण वास्तविक इतिहास के तुच्छ सूत्र के लिए किंचित ही स्थान बचता है'। अतः इससे तथ्य ग्रहण करने में हमें सावधानी बर्तनी चाहिए।

प्रभाकरवर्धन के सम्बन्ध में बाणभट्ट ने लिखा है कि उसने 'परम भट्टारक' 'महाराजाधिराज' की उपाधियाँ धारण की। उसने लिखा है कि प्रभाकर वर्धन 'हूण रूपी हरिण के लिए सिंह, सिन्धु-राज के लिए ज्वर, गुर्जर की निन्द्रा को भंग करने वाला और गन्धार के राजा रूपी सुगन्धिगज के लिए कूटहस्तिज्वर, लाटों की पटुता का अपहारक, और मालव की लता रूपी लक्ष्मी के लिए कुठार था'। यह संकेत करता है कि प्रभाकरवर्धन की इन राज्यों से शत्रुता थी, और उस समय पश्चिम और उत्तर-पश्चिम भारत में उपर्युक्त शक्तियाँ थीं। वात्सायन के कामसूत्र के टीकाकार ने लिखा है कि 'सैन्धवानामिति, सिन्धुनामा नदस्तस्य पश्चिमेन सिन्धुदेशस्तत्र भवानाम्' इस उद्धरण से स्पष्ट है कि सिन्धु नदी के उस पार मुलतान के पश्चिम में दो राज्य थे—गन्धार जहाँ इफ्थेलिटों या श्वेतहूणों का राज्य था, और सिन्धुदेश जिस पर कुषाण राज्य करते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि गन्धार से लेकर कापिश तक के प्रदेश पर एक क्षत्रिय राजा का राज्य था। स्पष्ट है कि ६२९ ई० में जब चीन यात्री वहाँ गया उस समय सिन्धु नदी के उत्तर-पश्चिमी ओर केवल एक राज्य था। उसने यह भी स्पष्ट लिखा है कि 'गन्धार का राजवंश समाप्त हो गया था और यह प्रदेश कापिश के अधीन था। इन प्रदेशों पर कुषाणों का राज्य था'।

इस समय थानेश्वर का राजवंश महत्व प्राप्त कर रहा था। मौखरियों की शक्ति ह्रास पर थी। विदेशी आक्रमणों और शशांक के उत्कर्ष के कारण उनके साम्राज्य का पूर्वी भाग उनके हाथ से निकल गया था। अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए थानेश्वर की उदीयमान् शक्ति से सम्बन्ध जोड़ते। अतः अवन्तिवर्मन् के ज्येष्ठपुत्र ग्रहवर्मन् ने एक दूत को थानेश्वर भेज कर प्रभाकरवर्धन की एक मात्र कन्या राजकुमारी राज्यश्री से

विवाह करने की अपनी अभिलाषा प्रकट की और अन्ततः यह विवाह थानेश्वर में सम्पन्न हुआ।

मगध में उत्तरकालीन गुप्तों का राज्य समाप्त हो चुका था। महासेनगुप्त मगध से चले आए और मालवा में आकर राज्य स्थापित किया किन्तु कलचुरि राजा शंकरगण ने ५९५ ई० में उससे राज्य छीन लिया। वात्सायन कामसूत्र की जयमंगल टीका सूचित करती है कि 'मालव' का अर्थ पूर्वी मालवा और 'अपर मालव' का अर्थ उज्जैनी है किन्तु डॉ० सिन्हा ने प्रमाणित किया है कि मालवा से अर्थ पूरे मालवा का है जिसमें उज्जैनी नगर भी था। मालवा में राज्य स्थापित करने के थोड़े समय ही पश्चात् महासेन गुप्त की मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे माधवगुप्त और कुमारगुप्त। हर्ष के उत्कीर्ण लेखों से प्रकट है कि प्रभाकरवर्धन की माता का नाम महासेनगुप्ता था जो स्पष्टतः महासेनगुप्त की बहन थी। चालुक्य राजा मंगलेश ने ६०२-३ ई० में कलचुरि राजा बुद्धराज को परास्त किया। उज्जैन उसके हाथ से निकल गया और गुप्तवंशज किसी देवगुप्त ने मालवा पर अधिकार कर लिया। न्यायपूर्ण उत्तराधिकारियों को थानेश्वर में शरण लेनी पड़ी। प्रभाकरवर्धन ने अपने ममेरे भाईयों का पक्ष लेकर अपहर्ता को पीड़ित करना आरम्भ किया। उसने गौडाधिपति शशांक से सन्धि कर ली और प्रभाकरवर्धन के मरते ही उसके दामाद ग्रहवर्मन् को मारडाला और थानेश्वर पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

हर्ष के मधुबन लौर बंसखेरा उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि दुष्ट देवगुप्त को राजवर्धन ने दण्ड दिया। हर्ष के उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि 'राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्री देवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहार विमुखास्सर्वे समं संयताः उत्खाय द्विषतो' देवगुप्त तथा अन्य राजाओं को जो दुष्ट घोड़ों के सदृश थे और जो चाबुक के प्रहार से अपना मुख फेर लेने के लिए बाध्य किए गए एक साथ जीतकर अपने शत्रुओं का मूलोच्छेदन किया।

(२) **राज्यवर्धन का वध**—बाण ने केवल मालवपति के पराजय की बात लिखी है। किन्तु बंसखेरा और मधुबन उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि राजवर्धन ने श्री देवगुप्त तथा अन्य राजाओं को परास्त किया अर्थात उनके संघ को हराया। अप्रत्यक्षरूप से हर्षचरित से भी पता चलता है कि राजवर्धन के विरुद्ध एक संघ बनाया गया था। सेनापति सिंहनाद ने हर्ष को परामर्श दिया कि केवल गौड राजा की बात न सोचिए बल्कि ऐसा कीजिए कि कोई दूसरा भी उसके उदाहरण का अनुगमन न करे 'किं गौडाधिपाधमेनैकेन तथा कुरु यथा नान्योपि कश्चिदाचरत्येवं भूयः'। हर्ष ने शपथ ली कि वह पृथ्वी को गौडों से मुक्त कर देगा और उन सब

अवज्ञापूर्ण राजाओं के पैरों की बेड़ियों से पृथ्वी को प्रतिध्वनित करेगा। हो सकता है कि बाण ने मात्र मालवपति का नाम इसलिए लिया कि इस संघ का नेतृत्व मालवपति के हाथ में था। हर्षचरित में जिस मालवपति का उल्लेख किया गया है वह प्रत्यक्षतः देवगुप्त था, जिसका नामोल्लेख हर्ष के ताम्रपट्टों में है। मालवपति की सेना खेल-खेल में परास्त की गई। किन्तु 'प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः' राज्यवर्धन ने प्रतिज्ञा-पालन के वश शत्रु-गृह में प्राण त्याग किया। हर्षचरित के टीकाकार ने लिखा है कि गौडपति शशांक ने राज्यवर्धन को अपनी कन्या को देने का वचन देकर निमंत्रित किया और जब वह भोजन कर रहा था उसको विश्वासघातपूर्वक मरवा डाला। इससे यह स्पष्ट है कि शशांक का कार्य अत्यंत बर्बरतापूर्ण था। डॉ० मजुमदार लिखते हैं कि बाणभट्ट और ह्वेनसांग दोनों ही हर्ष के पक्षपाती थे और हर्षचरित का टीकाकार शंकर चौदहवीं शती ईसवी का है। अतः इन सबों के कथनों को पूर्णतया ऐतिहासिक मानना आवश्यक नहीं है। दूसरी बात यह है कि इनके विवरणों में बहुत भिन्नता है। इसके अतिरिक्त सि-यू-कि के एक कथन में विश्वासघात की चर्चा बिल्कुल नहीं है।

हर्ष के ताम्रपट्टों से स्पष्ट है कि इस युद्ध में राज्यवर्धन की विजय हुई। सेनापति भण्डि ने हर्ष को सूचित किया कि उसकी हत्या के बाद 'गुप्तनाम्ना च गृहिते कुशस्थले'—गुप्तनामक व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया, देवी राज्यश्री बन्धन से छूट कर सपरिवार विन्ध्याटवी में प्रतिष्ठ हो गई। राज्यश्री के अनुचरों ने हर्ष से कहा कि गौड उत्पात के समय 'गुप्तनाम्ना कुलपुत्रेण' गुप्तनामक कुलपुत्र द्वारा अपने बन्धन से कान्यकुब्ज से राज्यश्री बाहर की गई।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि शशांक ने यह सोचकर कि वह अपने राज्य से बहुत दूर चला आया है, सामरिक दृष्टि से लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा। राज्यवर्धन की मृत्यु के तुरन्त बाद कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् ने हर्ष से अब एक मैत्रीगठन किया। अतः स्पष्ट है कि भाष्करवर्मन् शशांक का विद्वेषी था और शशांक का भाष्करवर्मन् से शंकित होना स्वाभाविक था। हो सकता है कि इस कारण अपने राज्य को लौट जाने में शशांक ने शीघ्रता की हो।

प्रतीत होता है कि जब शशांक ने देखा कि थानेश्वर का वृद्ध राजा प्रभाकरवर्धन मृत्यु शैया पर पड़ा है और राज्यवर्धम हूणों पर आक्रमण करने के लिए राज्य से बाहर गया है तब उसने मालवपति तथा कुछ अन्य धृष्ट राजाओं के साथ कन्नौज पर आक्रमण करने की योजना बनाई। ग्रहवर्मन् पराजित किया गया और मार डाला गया। उसकी राज्ञी राज्यश्री कारागार में डाल दी गई और शत्रुओं ने थानेश्वर

पर आक्रमण करने का विचार किया। इधर प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का समाचार पाकर राज्यवर्धन थानेश्वर लौट आया और वहाँ उसको उपर्युक्त समाचार मिला। राज्यवर्धन ने कन्नौज के आगे मालवा या थानेश्वर के रास्ते में उन पर आक्रमण किया। उनकी पराजय हुई और उनका नेता मालवा का राजा मारा गया। प्रतीत होता है शशांक को कन्नौज पहुँचने में कुछ देर हुई। उसने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इसके बाद राज्यवर्धन कन्नौज पहुँचा। शशांक ने खुले युद्ध में राज्यवर्धन को परास्त करने के बदले विश्वासघात द्वारा अपने भवन में उसका वध किया। यह एक जघन्य राजनीतिक अपराध था।

बाण ने लिखा है कि गौड राजा के मिथ्या शिष्टाचारों से राज्यवर्धन ने उसका विश्वास कर लिया 'तस्माच्च हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौडाधिपतेन मिथ्या-पचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रं एकाकिनं विस्रब्धं स्वभवने व्यापादितमश्रौषीत्' और अकेला और निःशस्त्र वह शत्रु के शिविर में गया और मारडाला गया ('प्राणा-नुज्झित वानराति भवने सत्यानुरोधेन यः')। ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि कर्ण-सुवर्ण के दुष्ट राजा ने विश्वासघात कर राज्यवर्धन को मार डाला। हर्ष के बंसखेरा और मधुबन ताम्रपट्टों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

शशांक अपनी राजधानी से बहुत दूर था और प्रतीत होता है कि उसको कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् से भय था। अतः उसने राज्यवर्धन के पास सन्धि करने के झूठे प्रस्ताव भेजे। हर्षचरित के टीकाकार शंकर ने, जिसका समय चौदहवीं शती ईसवी है, लिखा है कि शशांक ने एक दूत द्वारा अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भेजकर राज्यवर्धन को प्रलोभित किया और उसके कथन को सत्य मानकर राज्यवर्धन शत्रु-शिविर में गया और अपने अनुचरों के साथ मारा गया (शशांकेन विश्वासार्थं दूतमुखेन कन्याप्रदानमुक्त्वा प्रलोभितो राज्यवर्द्धनः स्वगेहे सानुचरो ... छद्मना व्यापादितः)।

राज्यवर्धन का वध करने के बाद शशांक ने क्या किया, इसके संबन्ध में बाण तथा ह्वेनसांग मौन हैं। हो सकता है कि हर्ष के सेनापति भण्डि के प्रस्थान की सूचना पाकर जिसको हर्ष ने शशांक पर आक्रमण करने के लिए भेजा था, वह गौड राज्य को लौट गया हो। उसके सामने अपने राज्य की सुरक्षा का भी प्रश्न था; क्योंकि कामरूप का राजा भाष्करवर्मन उसका विद्वेषी था। वह कुशल राज-नीतिज्ञ और उच्चाकांक्षी अवश्य था; किन्तु निमंत्रित व्यक्ति की अपने ही घर में हत्या कर डालने का जघन्य अपराध किसी भी देश अथवा काल के नैतिक सिद्धान्तों के विपरीत है, विशेष रूप से अपने देश में यह अपराध कायरता और चरित्रहीनता

का सूचक है। इसी कारण शोक और क्रोध से अभिभूत होकर हर्ष ने उसके प्रति ये शब्द कहे—'गौडाधिपाधम', 'अनार्य', स्वपाक से भी अधिक हीन, जिस पाप का नाम मात्र लेने से मेरी जिह्वा पापमल से लिप्त हो जाती है 'स्वपाकोऽपि क इयमाचरेत्, नामापि च गृह्णतोऽस्य पापकारिणः पापमलेन लिप्यत इव मे जिह्वा')। हर्ष के प्रधान सेनापति सिंहनाद ने शशांक को 'दुष्ट गौड भुजङ्ग' कहा है। उसने कहा है कि ऐसे कातर हृदय वाले राजा के यहाँ लक्ष्मी दो दिन भी नहीं ठहर सकती ('कातरस्य तु शशिन इव हरिणहृदयस्य पाण्डुर पृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः')।

(३) हर्ष का प्रारम्भिक जीवन और सिंहासनारोहण

पुष्यभूति राज्यवंश का संस्थापक थानेश्वर प्रदेश का पुष्यभूति नामक एक राजा था, जिसके वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध और शक्तिशाली सम्राट श्री हर्ष था। 'आर्यमञ्जुश्रीमूल कल्प' तथा सि-यु-कि के अनुसार यह वंश वैश्य जाति का था। कनिंघम का मत है कि चीनी यात्री का कथन ठीक नहीं है। किन्तु ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत का चीनी भाषा से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने वाले वाटर्स का कथन है कि ह्वेनसांग के कथन का कुछ आधार अवश्य रहा होगा। ह्वेनसांग ने भारत के विभिन्न राजाओं की जाति का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि वल्लभी का राजा ध्रुवभट्ट क्षत्रिय था, सिन्ध का राजा शूद्र था, उज्जैन का राजा ब्राह्मण और पारियात्र का राजा वैश्य था।

हर्ष का पिता 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' श्री प्रभाकरवर्धन था। इन विरुदों से प्रकट होता है कि वह महान् और स्वतन्त्र राजा था और उसकी धाक पड़ोसी राजाओं पर थी। जैसा कि हर्षचरित में लिखा है कि वह प्रतापशील नाम से विख्यात था 'प्रतापशील इति प्रथितापरनामा'।

हर्ष का जन्म अनुमानतः ५९०-९१ ई० के लगभग हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ तब उसके पिता प्रभाकरवर्धन ने अपने ममेरे भाई भांडि को तथा बाद को दो अन्य ममेरे भाइयों—कुमार गुप्त और माधव गुप्त को—राज्यवर्धन तथा हर्ष का साथी नियुक्त किया। ये तीनों भाई महासेनगुप्त के पुत्र थे जो उस समय मालवा का राजा था और प्रभाकरवर्धन के अधीन था। राज्यवर्धन तथा हर्ष को पूर्ण सैनिक शिक्षा दी गई और 'दिन प्रति दिन शस्त्राभ्यास के चिह्नों से उनके हाथ श्याम हो गए'। हर्ष की छोटी बहन राज्यश्री थी जो उससे दो वर्ष छोटी थी। वह निपुण और योग्य थी। जिस समय चीनी यात्री ह्वेनसांग हर्ष के समक्ष बौद्धधर्म की व्याख्या कर रहा

था, उस समय राज्यश्री हर्ष के पीछे बैठी हुई उसे श्रवण कर रही थी। उसका विवाह मौखरि राजा ग्रहवर्मन के साथ हुआ जो कन्नौज का राजा था।

राजनीतिक दृष्टि से यह विवाह महत्वपूर्ण था। मौखरियों की शक्ति ह्रास पर थी। उनके साम्राज्य का पूर्वी भाग उनके साथ से निकल चुका था। थानेश्वर का राज्य उदीयमान् था। थानेश्वर साम्राट् प्रभाकरवर्धन की माता पूर्वी मालवा के राजा महासेनगुप्त की बहिन थी। अत: वह महासेनगुप्त का निकट सम्बन्धी था। मालव राज्य पर एक अपहर्ता ने अधिकार कर लिया। अत: प्रभाकरवर्धन ने अपने सम्बन्धी का पक्ष लेकर उसको पीड़ित करना आरम्भ किया। इस अपहर्ता ने गौड के राजा शशांक से गठबंधन किया और वृद्ध प्रभाकरवर्धन के मरते ही उसने प्रभाकर-वर्धन के दामाद ग्रहवर्मन् की राजधानी कन्नौज पर आक्रमण किया और ग्रहवर्मन् को मार डाला और राज्यश्री को कारागार में डाल दिया। इस गुट का नेता 'दुरात्मा मालवराज' था। बाण ने लिखा है कि उस समय राज्यवर्धन, हर्ष और ग्रहवर्मन् तीनों की अवस्था कम थी। प्रतीत होता है कि ६०६ ई० में हर्ष की अवस्था १६ वर्ष के लगभग थी।

हर्ष विपत्तियों से घिरा हुआ था। शत्रु प्रबल थे और उनके हाथ में शक्ति थी। ऐसी दशा में मंत्रियों के मन में संकल्प-विकल्प के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक था। किन्तु हर्ष इस छोटी अवस्था में भी अपने साहस तथा अन्य अनेक राजकीय गुणों का परिचय दे चुके थे। राज्यवर्धन संन्यास ग्रहण करने और राज्य सिंहासन पर न बैठने का निश्चय कर चुका था। ग्रहवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् राज्यश्री को कन्नौज के साम्राज्य के सिंहासन पर बैठना उचित था। किन्तु राज्यश्री शासन की चिन्ताओं से मुक्त और प्रलोभनों की ओर से उदासीन थी। बाण ने लिखा है कि उसने भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रकट की; किन्तु हर्ष के अनुरोध से और बौद्ध मुनि दिवाकरमित्र के उपदेश से वह भिक्षुणी नहीं हुई।

हर्ष कन्नौज के सिंहासन पर बैठना नहीं चाहते; क्योंकि इस पर उसकी बहन राज्यश्री का अधिकार था जो शासन के प्रलोभन से निर्लिप्त थी। बाण ने लिखा है कि राज्यलक्ष्मी ने हर्ष का आलिङ्गन किया, उसको अपनी भुजाओं में ग्रहण किया और उसके सब अवयवों के राज्य चिह्नों को पकड़कर, उसके न चाहते हुए भी उसको बलपूर्वक सिंहासन पर बैठाया। ह्वेनसांग ने लिखा है कि हर्ष ने इस प्रश्न को अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के सामने उपस्थित किया। तब देववाणी हुई कि राज्य को स्वीकार करो और बौद्धधर्म को सर्वनाश के गढ़े से बाहर निकालो जिसमें कर्ण सुवर्ण के राजा शशांक ने उसे डाल दिया है। आप न तो सिंहासन

पर बैठे और न महाराज की उपाधि धारण की। हर्ष ने कन्नौज की राजगद्दी को स्वीकार किया; किन्तु अपने को कन्नौज का महाराज नहीं घोषित किया। चीनी ग्रन्थ 'शे-किअ-फङ्ग-चे' ने लिखा है कि हर्ष अपनी विधवा बहन के साथ मिलकर शासन करता था। वह राज्य-प्रतिनिधि था और राज्यश्री के नाम पर कन्नौज पर शासन करता था। किन्तु उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया, क्योंकि थानेश्वर की अपेक्षा इसकी स्थिति अधिक केन्द्रीय थी।

(४) उत्तरी भारत में हर्ष के अभियान

हर्ष ने सर्वप्रथम, गौडाधिपति शशांक के विरुद्ध अभियान किया, जिसने उसके भाई की विश्वासघातपूर्वक हत्या की थी। बाण ने युद्ध की तैयारियों का वर्णन किया है; किन्तु उसके बाद वह मौन है। ह्वेनसांग के यात्रा वर्णन में भी इसकी कोई चर्चा नहीं है। 'शे-किअ-फङ्ग-चे' नामक चीनी ग्रन्थ सूचित करता है कि हर्ष ने कामरूप के भाष्करवर्मन के साथ विधर्मी राजा शशांक को, उसकी सेना और उसके अनुयायियों को पददलित किया। स्पष्ट है कि हर्ष और भाष्करवर्मन् ने मिल कर शशांक पर आक्रमण किया और उसकी पराजय हुई। आर्यमञ्जुश्री मूलकल्प ने हर्ष और शशांक के बीच जो युद्ध हुआ उसका उल्लेख किया है और लिखा है कि शशांक परास्त किया किया गया और उसको अपने प्रदेश को छोड़ कर बाहर जाने की मनाही की गई। मलेच्छों के देश में; अर्थात् पूर्वी प्रदेश में स्वागत द्वारा हर्ष का सम्मान किया गया। उसके बाद वह कन्नौज लौट आया।

गंजम उत्कीर्ण लेख (६१९ ई०) से ज्ञात होता है कि उस समय सत्ता शशांक के हाथ में थी। अतः निश्चय है कि इस तिथि के बाद उसकी पराजय हुई। चीनी यात्री ह्वेनसांग ६३७ ई० में पूर्वी प्रदेश में गया था। उसने लिखा है कि शशांक की मृत्यु हो चुकी थी। मिदनापुर उत्कीर्ण लेख, जिसकी तिथि ६२९ ई० है, संकेत करता है कि शशांक जीवित था; किन्तु महाराजाधिराज का विरुद धारण नहीं कर रहा था। प्रतीत होता है कि ६१९ और ६२४ ई० के बीच में किसी समय हर्ष और भाष्करवर्मन् ने मिलकर शशांक को पराजित किया और उसको अधीन होने को विवश किया। प्रत्यक्षतः वह कुछ वर्ष और जीवित रहा और ६३७ ई० के कुछ पूर्व उसकी मृत्यु हुई।

म-त्वन-लिन ने लिखा है कि ६४१ ई० में हर्ष ने 'मगदाधिपति' का विरुद्ध धारण किया। ह्वेनसांग बंगाल के विभिन्न प्रदेशों के प्रशासन के सम्बन्ध में मौन है। डॉ० त्रिपाठी का विचार है कि शशांक की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण बंगाल हर्ष के शासन में हो गया। अन्य विद्वानों का भी यही मत है और वे लिखते हैं कि पूर्वी

बंगाल में हर्ष-सम्वत् के उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं। अतः वह प्रदेश अवश्य ही उसके शासन में रहा होगा। हर्ष का कोई वंशज नहीं था। उसकी मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अतः हर्ष-संवत् के उत्कीर्ण लेख प्रमाणित करते हैं कि पूर्वी बंगाल अवश्य ही कन्नौज सम्राट् के अधीन था।

डॉ० सुधाकर चट्टोपाध्याय लिखते हैं कि उपर्युक्त उत्कीर्ण लेखों के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं कि वे लेख हर्ष-संवत् के हैं। निधानपुर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि शशांक की राजधानी कर्णसुवर्ण कामरूप राजा भास्करवर्मन् के अधिकार में चली गई थी। प्रतीत होता है कि गंगा के पूरब की ओर का भाग भास्करवर्मन् के अधीन था, और गंगा के पश्चिम का भाग हर्ष के आधिपत्य में।

सि-यु-कि के अनुसार हर्ष की समस्त विजयें ६१८ ई० और ६२४ ई० के बीच हुईं। हर्षचरित में बाणभट्ट के सबसे छोटे भाई श्यामल ने हर्ष के सम्बन्ध में सुनी हुई कुछ अलौकिक बातों का वर्णन किया है। उसका प्रत्येक वाक्य हर्ष की किसी विजय विशेष की ओर संकेत करता है। उसने लिखा है कि (१) हर्ष ने सिन्धु के राजा को पराजित कर उसकी लक्ष्मी अपनी कर लिया है। (२) हर्ष ने हिमाच्छादित दुर्गम पर्वतीय प्रदेश से कर ग्रहण किया। पहले कथन का अर्थ है कि हर्ष ने सिन्धु के राजा को हराया और बुहलर के अनुसार दूसरे कथन का अर्थ है कि हर्ष ने नेपाल विजय किया। किन्तु लेवी के अनुसार हर्ष ने पर्वतीय और दुर्गम प्रदेशों से जहाँ तुखार (तुर्क) रहते थे अर्थात् भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश से कर ग्रहण किया। बाण ने इन पदों में सुनी हुई अलौकिक बातों का वर्णन किया है। अतः इसका वर्णन असंदिग्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त इसकी पुष्टि के लिए तथ्य उपलब्ध नहीं हैं।

(५) हर्ष-पुलकेशिन् युद्ध

दक्षिण का चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय हर्ष का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था। ऐहोल उत्कीर्ण लेख (६६४ ई०) में पुलकेशिन् ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि उसने हर्ष पर विजय प्राप्त की। यह युद्ध सम्भवतः नर्मदा नदी के समीप किसी स्थान पर हुआ था। इस घटना के बाद भी मुठभेड़ होती रही थी। ह्वेनसांग की सि-यु-कि सूचित करती है कि ह्वेनसांग ६४१ ई० में महाराष्ट्र में था। उसने लिखा है कि हर्ष ने पूरब से पश्चिम तक के राष्ट्रों को जीत लिया है। किन्तु महाराष्ट्र देश की जनता ने उसको समर्पण नहीं किया है। उसने पंच-भारत १. सारस्वत (पंजाब) २. कान्यकुब्ज ३. गौड, ४. मिथिला, ५. उत्कल (उड़ीसा) से सेनाएँ इकट्ठी कीं, कुशल सेनापतियों को बुलाया, और स्वयं सेना का नेतृत्व किया। फिर भी वह अब तक

महाराष्ट्र देश की सेनाओं को विजय नहीं कर सका। प्रतीत होता है, हर्ष का कोंगोडा अभियान हर्ष की योजना का एक भाग था। ऐहोल उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि पुलकेशिन् ने कलिङ्ग और कोशल को विजय किया हर्ष ने कोगोंडा को विजय किया जो चालुक्य साम्राज्य के अंतर्गत था। ६३०-३४ ई० में हर्ष ने इसको जीता और इस तरह उसने अपनी पराजय का बदला लिया।

डॉ० आर० सी० मजुमदार का विचार है कि हर्ष ने वलभी के ध्रुवभट्ट द्वितीय से जो युद्ध किया उसी के कारण हर्ष और पुलकेशिन् द्वितीय के बीच युद्ध हुआ। कहा जाता है कि हर्ष के विरुद्ध लाटों, मालवों और गुर्जरों का एक गठबंधन बनाया गया था, जिसका नेता पुलकेशिन् था। और जब हर्ष ने वलभी के राजा ध्रुवभट्ट पर आक्रमण किया तो उसे चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय से भी युद्ध करना पड़ा। ऐहोल उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि लाट, मालव, और गुर्जर पुलकेशिन् के आधिपत्य को स्वीकार करते थे। कीलहार्न ने लिखा है कि पुलकेशिन् द्वितीय के प्रभाव और शक्ति के कारण उपर्युक्त राज्य स्वेच्छा से उसके अधीन हुए या उसकी रक्षा में आए।

ऐहोल उत्कीर्ण लेख में लाट और मालव का नामोल्लेख अलग-अलग किया गया है। किन्तु मालव पर लाट राजा का अधिकार था और गुर्जर लाट राजा के अधीन थे। प्रतीत होता है हर्ष और वलभी नरेश ध्रुवभट्ट द्वितीय के बीच में जो युद्ध हुआ वह ६३४ ई० के बाद हुआ। अतः ६३०-३४ ई० के युद्ध से वलभी का कोई सम्बन्ध नहीं था। हो सकता है कि इस तिथि के बाद वलभी के राजा ने चालुक्यों के साथ कोई षड्यन्त्र किया हो और उसके फलस्वरूप हर्ष ने उन पर आक्रमण करने को सोचा हो। अंततः उन दोनों में सन्धि हुई और हर्ष ने वलभी राजा के साथ अपनी कन्या ब्याही। जयभट्ट तृतीय का नवसारी दानपत्र (७०६ ई०) सूचित करता है कि जब ध्रुवभट्ट या ध्रुवसेन द्वितीय हर्षदेव से पराजित हुआ, तब भड़ोच के गुर्जर राजा दद्द द्वितीय उपनाम प्रशांतराग ने उसकी रक्षा की।

ह्वेनसांग की 'जीवनी' सूचित करती है कि बुद्ध का एक दाँत कश्मीर के बौद्धों के पास था। स्वयं हर्ष कश्मीर की सीमा पर गया और दाँत को देखने और उसकी पूजा करने की प्रार्थना की। बौद्धों ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार की। तब कश्मीर का राजा स्वयं आया और कन्नौज के सम्राट् को दाँत अर्पण किया। उसको देखकर हर्ष पूर्णरूपेण श्रद्धान्वित हुआ और पूजा करने के लिए उसको बलात् ले आया।

(६) हर्ष के साम्राज्य का विस्तार

हर्ष का साम्राज्य हिमालय, पश्चिमी पंजाब, राजपूताना, मध्यभारत और बंगाल से घिरा हुआ था। म-त्वन-लिन के कथनानुसार हर्ष ने ६४१ ई० में 'मगधाधिप' का विरुद धारण किया। बंसखेरा पट्ट और मधुबन ताम्रपट्ट ने अहिच्छत्र और श्रावस्ती भुक्तियों में किए गए भूमिदानों को सूचित करते हैं। ह्वेनसांग ने प्रयाग में हर्ष के दान उत्सवों का जो वर्णन किया है उससे प्रतीत होता है कि प्रयाग उसके साम्राज्य के अंतर्गत था। सरस्वती नदी की घाटी और थानेश्वर जनपद उसका पैतृक राज्य था। अतः इसमें संदेह नहीं कि उसके राज्य का विस्तार कम से कम पश्चिमी पंजाब से बङ्गाल तक था। संभवतः पश्चिमी बङ्गाल का एक भाग उसके राज्य में सम्मिलित था। ह्वेनसांग का यात्रा वर्णन सूचित करता है कि हर्ष ने कजंगल (वर्तमान राजमहल) में अपनी राज्यसभा की और उसकी 'जीवनी' से स्पष्ट है कि हर्ष का आधिपत्य उड़ीसा पर भी था। हर्ष ने कोंगोडा अभियान के समय ६४३ ई० में उड़ीसा को विजय किया।

हर्ष के राज्य के भीतर कई सामन्त राज्य थे। उनमें से कुछ ये हैं:

(१) **कुडरकोट उत्कीर्ण** लेख से प्रकट होता है कि हर्ष ने हरिदत्त नामक किसी व्यक्ति को इटावा जनपद उत्तर प्रदेश में सामन्त बनाया।

(२) **अफसद उत्कीर्ण** लेख से प्रतीत होता है कि हर्ष ने उत्तर कालीन गुप्तवंश के राजा महासेन गुप्त के पुत्र माधवगुप्त को एक सामन्त राजा के रूप में मगध के सिंहासन पर बैठाया। चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से प्रतीत होता है कि शशांक की मृत्यु के बाद मगध का प्रभार माधवगुप्त को सौंपा गया। हर्ष ने कजंगल (वर्तमान राजमहल) प्रदेश में अपना शिविर खड़ा किया। इससे प्रतीत होता है कि वह उसके साम्राज्य के अंतर्गत था।

(३) **अलबेरूनी** ने लिखा है कि मथुरा और कन्नौज प्रदेश में हर्ष संवत् चलता था। इससे प्रकट होता है कि इस प्रदेश पर हर्ष का आधिपत्य था।

(४) **मतिपुर**—यहाँ का शासक हर्ष के अधीन था। ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णन में लिखा है कि वह शूद्र था, बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं करता था, और देवों को पूजता था।

(५) **जभोति राज्य**—इसकी राजधानी खजुराहो थी। ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णन में लिखा है कि यहाँ का राजा ब्राह्मण था, बौद्ध धर्म में दृढ़ विश्वास करता था। दूसरे देशों के बहुसंख्यक विद्वान वहाँ एकत्र होते थे। खजुराहो में एक उत्कीर्ण

लेख पाया गया है जिसपर हर्ष संवत् अंकित है। प्रतीत होता है कि वहाँ का राजा हर्ष के अधीन था।

हर्ष चरित में वर्णन है कि सिंहनाद ने हर्ष को परामर्श दिया कि जो राजे दुष्ट मालवपति का अनुकरण कर धृष्ट हो गए हैं उनको ऐसा पाठ पढ़ाइए कि वे फिर कभी भी इस पथ पर चलने का साहस न करें। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि हर्ष ने उन राजाओं को उखाड़ फेंका जो उसकी अधीनता स्वीकार करने को तैयार न थे। हर्ष ने सम्भवतः उन राजाओं के स्थान पर मथुरा, मतिपुर, जेजकभुक्ति आदि में अपने राजे नियुक्त किए।

कुछ विद्वानों ने उन उत्कीर्ण लेखों के प्राप्तिस्थान के आधार पर हर्ष के साम्राज्य के विस्तार का निश्चय किया है जो हर्ष-संवत् में तिथ्यांकित हैं। सामान्यतः विद्वान् सहमत हैं कि निम्नलिखित उत्कीर्ण लेख हर्ष-संवत् में तिथ्यांकित हैं:

(१) हर्ष के बंसखेरा (शाहजहाँपुर जनपद उत्तर प्रदेश) और मधुबन (आजमगढ़ जनपद उत्तर प्रदेश) पट्ट जिनपर क्रमशः २२ और २५ तिथि अंकित है।

(२) आदित्यसेन देव का शाहपुर (पटना जनपद, बिहार) मूर्ति का उत्कीर्ण लेख, जिसपर ६६ तिथि अंकित है।

(३) किसी व्याघ्र का पंजाब उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित १८४।

(४) खजुराहो (छतरपुर राज्य, बुन्देलखंड) मूर्ति का उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित २१८।

(५) वे अहर उत्कीर्ण लेख (बुलन्दशहर जनपद, उत्तर प्रदेश) जिनपर २५८ से लेकर २९८ तक की तिथियाँ अंकित हैं।

(६) महाभट्टारक भोजदेव के समय का पेहेवा (कर्नाल जनपद, पंजाब) उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित २६७।

(७) पंजम उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित ५६३ या ५६२।

(८) शान्तिकरदेव के समय का धौली (पुरी जनपद, उड़ीसा) गुफा उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित (२) ९३।

उपर्युक्त उत्कीर्ण लेखों के आधार पर उसके साम्राज्य में पूर्वी पंजाब, संपूर्ण उत्तर प्रदेश और बिहार और मध्य प्रदेश और उड़ीसा के भाग सम्मिलित थे। अप्रत्यक्ष साक्ष्य से स्पष्ट है कि कम से कम पश्चिमी बंगाल का एक भाग उसके साम्राज्य के अंतर्गत था।

भगवानलाल इन्द्रजी और बुहलर ने माना है कि हर्ष-संवत् नेपाल में चलता था। अतः उस पर भी हर्ष का आधिपत्य था। फ्लीट ने भी इस मान्यता को स्वीकार किया है। प्राचीन नेपाल राज्य में गन्डक और कोसी नदियों की घाटियाँ सम्मिलित थीं। नेपाल के इतिहास के मुख्य स्रोत ये हैं: (१) वंशावली, (२) उत्कीर्ण लेख और मुद्रायें, (३) चीनी और तिब्बतियों द्वारा लिखे गये विवरण।

वंशावली काल्पनिक है। इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि वंशावली में हर्ष के समकालीन नेपाली राजा अंशुवर्मन् की तिथि ई० पू० १०१ दी हुई है अर्थात् उसकी तिथि मोटेतौर से ७०० वर्ष पूर्व दी गई है। इस वंशावली में पौराणिक राजाओं के नाम भी सम्मिलित किए गए हैं। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह इतिवृत्त पूर्णतया व्यर्थ है।

नेपाल के इतिहास के अध्ययन के लिए नेपाल के प्रस्तर उत्कीर्ण लेख अति महत्त्वपूर्ण हैं। ये उत्कीर्ण लेख दो समूहों में बाँटे जा सकते हैं—(१) छोटे अंकवाले लेख; (२) बड़े अंक वाले लेख। पहली श्रेणी के लेख अंशुवर्मन् के शासन काल से आरम्भ होते हैं। अतः छोटे अंकों की तिथियों के संवत् का आरम्भ अवश्य ही छठवीं शती के उत्तरार्द्ध से या सातवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध से है। इन्द्रजी, बुहलर और फ्लीट का मत है कि छोटा अंक हर्ष-संवत् का अंक है जिसका आरम्भ ६०६ ई० में हुआ था। डॉ० बसक आदि ने भी इस मत को माना है।

लेवी ने अकाट्य रूप से प्रमाणित किया है कि हर्ष का आधिपत्य नेपाल पर कभी नहीं था, और अंशुवर्मन् के समय में नेपाल शक्तिशाली तिब्बती राजा स्रांग-साँग-गम्पो का सामन्त राजा था जिसके साथ नेपाल राजा ने विवशतः अपनी पुत्री व्याही। लेवी ने निर्णय किया है कि छोटे अंक वाला संवत संभवतः तिब्बती राजा लुन-संग-सो-लुन-सांग के शासन काल ५९५ ई० से आरम्भ हुआ।

जब चीनी यात्री ह्वेनसांग उत्तर भारत में आया तब अंशुवर्मन् जीवित नहीं था। इस तथ्य से भी यह प्रमाणित होता है कि यह संवत् हर्ष-संवत नहीं है; किन्तु अंशुवर्मन का एक लेख तिथ्यांकित ४५ मिला है। यदि यह तिथि हर्ष-संवत मानी जाय तो यह तिथि ६०६ + ४५ = ६५१ ई० होती है। किन्तु यह विदित है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग ने ६४३ ई० में भारत से प्रस्थान किया।

बड़े अंक का आरम्भ किस समय हुआ इसके संबंध में इन्द्रजी, फ्लीट और डॉ० बसक में मतभेद है। लेवी ने यह दिखाया है कि इन अंकों का आरम्भ ११० ई० से हुआ; क्योंकि ४४९ संवत् के किसिपिडी उत्कीर्ण लेख में जो ज्योतिष संबंधी सामग्री दी हुई है उसका सामंजस्य पूर्ण रूप से ४८२ शक संवत् से है।

अंशुवर्मन पहले राजा शिवदेव प्रथम का सामन्त था और तिब्बती राजा स्रांग-सांग के आक्रमण के बाद उसका उत्कर्ष हुआ। संभवतः नेपाल तिब्बत के आधिपत्य में चला गया। अंशुवर्मन की कुछ मुद्राएँ मिली हैं जिन पर अंशुवर्मन् की महाराजाधिराज की उपाधि खुदी हुई है जिससे प्रकट होता कि अंशुवर्मन् व्यवहारतः स्वतन्त्र था और नाम के लिए तिब्बत के अधीन था। उसके उत्कीर्ण लेख कठमण्डू, पाटन, देवपाटन, और बागमती में पाए गए हैं, जिससे प्रतीत होता है कि अंशुवर्मन का आधिपत्य नेपाल उपत्यका के बिलकुल मध्य में था। संभवतः उसकी मृत्यु ६४३ ई० के कुछ पूर्व हुई; क्योंकि उसके उत्तराधिकारी का तिथ्यांकित ६४३ ई० का एक उत्कीर्ण लेख उपलब्ध है। ह्वेनसांग ने उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह किंचित समय पूर्व राजा था।

अपने उत्कीर्ण लेखों में अंशुवर्मन् के उत्तराधिकारी विष्णुगुप्त ने श्री धन-देव के आधिपत्य को स्वीकार किया है जो प्रत्यक्षतः लिच्छवि वंश का था तथा शिवदेव प्रथम का उत्तराधिकारी था। इस तथ्य से लेवी ने यह आशय निकाला है कि विष्णुगुप्त के समय में अव्यवस्था हुई और लिच्छवि वंश ने पुनः शक्ति प्राप्त की। उसी के समय में नेपाल ने तथा तिब्बत ने चीनी दूत वंग ह्वेनसे को हर्ष के सिंहासन के अपहर्ता अर्जुन या अरुणाश्व के विरुद्ध सहायता दी। यह घटना ६४७ और ६५० ई० के बीच किसी समय हुई। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नेपाल हर्ष के साम्राज्य का अंग कभी नहीं था।

कुछ विद्वान डॉ० एन० राय के विचार से सहमत नहीं हैं कि कामरूप हर्ष के साम्राज्य के अंतर्गत था और भाष्करवर्मन उसका सामन्त था। डॉ० राय के कथन का आधार सि-यु-कि है, जिसमें लिखा है कि 'यहाँ का शासक जाति का ब्राह्मण तथा नारायणदेव का वंशज था। उसका नाम भाष्करवर्मन और अपर नाम कुमार था।' 'कुमार' शब्द से अर्थ लगाया गया है कि वह अधीन था। यह तर्क मान्य नहीं हैं; क्योंकि यदि यह अर्थ लगाया जाय तो गुप्त वंश का विख्यात राजा कुमारगुप्त भी अधीन राजा माना जायगा। निधानपुर ताम्रपट्ट भाष्करवर्मन् की नालंदा मोहर, और हर्षचरित प्राचीन असम के वर्मन राजाओं की निम्नलिखित वंशावली प्रस्तुत करते हैं :—

(अ) चौथी शती ईसवी—(१) पुष्यवर्मन (२) समुद्रवर्मन (३) बलवर्मन।

(आ) पाँचवी शती ईसवी—(४) कल्याणवर्मन, (५) गणपति (वर्मन); (६) महेन्द्रवर्मन; (७) नारायण वर्मन।

(इ) छठवीं शती ईसवी (२३४ या २४४ गु० सं)—(८) महाभूति वर्मन

उपनाम भूति वर्मन, (६) चन्द्रमुख (वर्मन), (१०) स्थितवर्मन, (११) सुस्थितवर्मन, पनाम मृगांक

सातवीं शती ईसवी—(१२) सुप्रतिष्ठित वर्मन, (१३) भाष्करवर्मन, उपनाम कुमार।

यद्यपि भाष्करवर्मन के वंश का अस्तित्व चौथी शती ईसवी से था; किन्तु छठवीं शती ईसवी के पूर्व इसने कोई निर्णायक कार्य नहीं किया। प्रतीत होता है कि महाभूतिवर्मन ने पुण्ड्रवर्मन प्रदेश में साम्राजिक गुप्तों के शासन का अंत किया। भट्टसली की धारणा है कि उसने ५२० ई० से ५६० ई० तक राज्य किया। बद्‌गंग उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने अश्वमेध यज्ञ किया। निधानपुर उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि उसने न केवल संपूर्ण कामरूप पर अधिकार किया; बल्कि उसके अधीन एक सामन्त मण्डल था। नालन्दा मोहर में स्थितवर्मन् द्वारा किए गए दो अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। हर्षचरित में लिखा है कि सुस्थितवर्मन् अपर नाम श्री-मृगांक महाराजाधिराज था। उत्तर कालीन गुप्त राजा महासेन गुप्त ने सुस्थित-वर्मन् को हराया। निधानपुर उत्कीर्ण लेख में भी इसका अप्रत्यक्ष रूप से संकेत है।

सुस्थितवर्मन् के दो पुत्र थे—सुप्रतिष्ठितवर्मन् और भाष्करवर्मन्। भाष्करवर्मन् हर्ष का समकालीन और मित्र था। दूबि ताम्रपट्टों से प्रकट है कि उसने सचमुच कुछ वर्ष राज्य किया। सम्भवतः दोनों भाइयों ने शशांक के विरुद्ध युद्ध किया और गौड सम्राट ने उनको अपने अधीन कर लिया। भाष्करवर्मन् कब सिंहासन पर बैठा, यह नहीं कहा जा सकता; किन्तु यह निश्चय है कि वह ६०६ ई० में सिंहासन पर था, जब हर्ष ने शशांक के विरुद्ध प्रयाण किया। सम्भवतः वह ६५० ई० के लगभग तक जीवित था। भाष्करवर्मन के शासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य ज्ञात हैं :

(१) उसने ६०६ ई० में हर्ष से मैत्रीगठन किया।

(२) हर्ष और भाष्करवर्मन् ने मिलकर गौड राजा शशांक को हराया।

(३) उसने कर्ण सुवर्ण से अपना विख्यात निधानपुर दानपत्र निःसृत किया।

(४) उसने ह्वेनसांग के साथ हर्ष की धार्मिक परिषद् में भाग लिया जो कन्नौज में हुई थी।

(५) हर्ष की मृत्यु के बाद ६४७ ई० के लगभग जब भारत पर चीन-तिब्बती आक्रमण हुआ तो भाष्करवर्मन् ने आक्रामकों को सहायता दी।

प्रतीत होता है कि निधानपुर पट्ट शशांक की पराजय के बाद निःसृत किया गया था। इस विजय के फलस्वरूप भाष्करवर्मन् को गंगा नदी के पूरब की ओर का प्रदेश मिला। सि-यु-कि में लिखा है कि ६४३ ई० के लगभग हर्ष से मिलने के लिए भाष्करवर्मन् जहाजों और हाथियों की एक बड़ी सेना के साथ गङ्गा के किनारे किनारे कजंगल (वर्तमान राजमहल) गया। प्रतीत होता है कि गंगा नदी इन दोनों सम्राटों के राज्यों की सामान्य सीमा थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शशांक की मृत्यु के बाद भाष्करवर्मन् ने गङ्गा नदी के पूरब के प्रदेश पर अधिकार किया।

ह्वेनसांग की 'जीवनी' से प्रतीत होता है कि जब हर्ष कोंगोद युद्ध-यात्रा से लौट रहा था तब उसने कजंगल में अपना डेरा डाला था। इस स्थान से हर्ष, भाष्करवर्मन् और ह्वेनसांग कान्यकुब्ज गए। वहाँ धार्मिक परिषद् में उपस्थित हुए। इस परिषद् में ह्वेनसांग ने महायान सिद्धान्त की प्रशंसा की, और हीनयान सिद्धान्त की त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया।

चीन-तिब्बती आक्रमण के समय भाष्करवर्मन् ने विदेशियों को तीस हजार साँड़ और घोड़े और संपूर्ण सेना के लिए खाद्य सामग्री, धनुष आदि भेजकर किसी तरह अपनी रक्षा की। उसने चीनी सेनापति को कुछ दुर्लभ वस्तुएं, अपने राज्य का एक मानचित्र, और लौ-सन की अनेक मूर्तियाँ भी प्रदान कीं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इसी गड़बड़ी के समय उसने बङ्गाल पर अधिकार किया और कर्ण-सुवर्ण में अपना शिविर खड़ा किया और वहाँ से विख्यात निधानपुर दानपत्र निःसृत किया।

लेवी ने भाष्करवर्मन् के सम्बन्ध में अग्रलिखित रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है: 'ह्वेनसांग के आगमन के समय भाष्करवर्मन् भगवान् नारायण का वंशज था और ब्राह्मण जाति का था। उसकी उपाधि कुमार थी। उसके वंश में यह राज्य एक हजार पीढ़ियों से चला आ रहा था। उसके समकालीन बाण ने (हर्षचरित अध्याय ७) प्रायः इन सब विवरणों की पुष्टि की है। राजा भाष्करवर्मन् का निधानपुर उत्कीर्ण लेख इस वंशावली को राजा भगदत्त तक पीछे ले गया है जो पाण्डवों का शत्रु था। किन्तु जब उसको भारतीयों के अतिरिक्त दूसरों से काम पड़ा तो उसने अपनी एक दूसरी उत्पत्ति का गर्व किया। चीन के तांगवंश के दूत ने उससे भेंट की तो उसने उसे बताया कि यह राजवंश चार हजार वर्ष से राज्य भोग रहा है। पहला राजा एक पवित्र आत्मा थी जो चीन से आकाश मार्ग द्वारा आई। चीन के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाने के लिए उसने दूत से लाओ-त्सेयु का एक चित्र और ताओ-तो-किंग का एक संस्कृत अनुवाद भेजने के लिए कहा। सम्राट् ने इस इच्छा की पूर्ति के लिए

धर्माचार्य ह्वेनसांग को आज्ञा दी कि वह ताओ धर्म के आचार्यों के साथ इसका अनुवाद तैयार करे।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यह प्रदेश कभी भी हर्ष के अधीन नहीं था। डॉ० एन० राय का यह कथन भ्रामक है कि वलभी, जालंधर, कश्मीर, और सिन्धु उसके राज्य के अन्तर्गत थे।

वलभी के मैत्रक वंश का संस्थापक सेनापति भटारक था। इस वंश के तृतीय राजा द्रोण सिंह प्रथम का राज्याभिषेक गुप्त अधीश्वर के समक्ष हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसका भाई ध्रुवसेन प्रथम था जिसके उत्कीर्ण लेख ५२५ से ५४५ ई० तक के मिले हैं। यद्यपि उस समय साम्राजिक गुप्त वंश आर्यावर्त्त के एक दूर कोने में सीमित हो गया था फिर भी उसने उनकी अधीश्वरता स्वीकार की और अपने को 'महासामन्त महाराज' लिखा। उसके उत्तराधिकारी धरपट्ट, गुहसेन, धरसेन द्वितीय हुए। इन मैत्रक राजाओं के इतिहास में कोई रोचक तथ्य नहीं है।

धरसेन द्वितीय के दो पुत्र थे—शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य और खरग्रह प्रथम। प्रतीत होता है इस समय मैत्रक राज्य के विस्तार में कुछ वृद्धि हुई। ह्वेनसांग के यात्रा-विवरणों से प्रतीत होता है कि शिलादित्य प्रथम मालवा में राज्य करता था, जिसके अधीन कच्छ, आनन्दपुर और सूरत थे। शेष राज्य खरग्रह प्रथम के अधीन था और उसकी राजधानी वलभी थी। कुछ सीमा तक इस वर्णन की पुष्टि शिलादित्य सप्तम के अलिनपट्ट से होती है।

पश्चिमी मालवा छठवीं शती ईसवी के अन्तिम भाग में कलचुरियों के अधीन था और यह प्रतीत होता है कि ५८९ ई० के लगभग धरसेन द्वितीय के शासन की समाप्ति पर मैत्रक और कलचुरियों में प्रतिद्वंद्विता आरम्भ हुई। सर्सवनी पट्टों से प्रतीत होता है कि कलचुरि राजा बुद्धराज का स्वत्व भरुकच्छ विषय तक था। इस तरह कुछ समय के लिए मैत्रक वंश का महत्त्व कम हुआ। किन्तु पुनः उन्होंने शीघ्र ही शक्ति प्राप्त कर ली, क्योंकि विर्धी दान पट्ट (तिथ्यांकित ६१६–१७ ई०) प्रकट करता है कि उज्जैनी उनके शासनाधीन था। इस सम्बन्ध में कनिष्ठ भ्राता खरग्रह प्रथम ने अगुवाई की थी। प्रतीत होता है इस कारण दोनों भाइयों में शक्ति के लिए प्रतिद्वंद्विता हुई। अलिन पट्टों में लिखा है कि 'खरग्रह प्रथम (जो अपने ज्येष्ठ भ्राता के पैरों पर ध्यान करता था) राज्य की लक्ष्मी······जिसके लिए उसका ज्येष्ठ भ्राता लालायित था उपेन्द्र के ज्येष्ठ भ्राता (इन्द्र देव) की तरह सादर उसके प्रति व्यवहार किया'। इस पर टिप्पणी करते हुए फ्लीट ने लिखा है कि इन्द्र का छोटा भाई उपेन्द्र विष्णु है। प्रतीत होता है कि इसमें उस झगड़े की ओर संकेत है जो

इन्द्र के नन्दन वन के कल्पतरु वृक्ष के सम्बन्ध में (कृष्णावतार में) विष्णु और इन्द्र के बीच हुआ था और जिसमें विष्णु विजयी हुए और इन्द्र ने उनकी पूजा की।... इस सादृश्यता से प्रतीत होता है कि अपने वंश के नेतृत्व के सम्बन्ध में दोनों भाइयों—शिलादित्य प्रथम और खरग्रह प्रथम—में कुछ विवाद था और अंततः शिलादित्य प्रथम ने अपने कनिष्ठ भ्राता का नेतृत्व स्वीकार किया।

जो कुछ भी हो ६१६ ई० के विर्धी पट्टों से प्रकट है कि खरग्रह प्रथम के राज्य का विस्तार वलभी से उज्जैनी तक था। ह्वेनसांग के समय में भी वलभी इस राज्य की राजधानी थी। इसका वर्णन करते हुए 'सि-यु-कि' ने लिखा है कि 'यहाँ का शासक क्षत्रिय,कुलोत्पन्न, भूतपूर्व मालवपति शिलादित्य का भतीजा और कान्य-कुब्ज में शासन करने वाले शिलादित्य का दामाद था। उसका नाम ध्रुवभट (ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य जिसको ह्वेनसांग ने ध्रुवभट लिखा है) था। वह अविवेकी तथा संकीर्ण विचार का था। किन्तु बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठावान् था।'

नवसारी दानपत्र (तिथ्यांकित ७०६ ई०) में उल्लेख है कि किस तरह भड़ोच के दद्द द्वितीय ने वलभीपति की रक्षा की जब वह 'परमेश्वर—श्री हर्षदेव द्वारा अभिभूत किया गया।' हर्ष और ध्रुवभट में सन्धि हुई और ध्रुवभट ने हर्ष की पुत्री से विवाह किया, और कन्नौज की धर्मपरिषद् में भी उपस्थित हुआ। ह्वेनसांग की 'जीवनी' में उसकी उपाधि 'दक्षिण भारत का राजा' दी हुई है। इससे स्पष्ट है कि वलभी हर्ष के अधीन नहीं था।

उपर्युक्त विवरण से यह भी प्रतीत होता है कि भड़ोच का राजा भी, जिसने वलभी शासक को शरण दी थी, हर्ष से स्वतन्त्र था। कैरा और संखेड दानपत्रों से प्रकट है कि एक गुर्जरवंश मन्डोर के प्रधान गुर्जर वंश के अधीन था। इन उत्कीर्ण लेखों में निम्नलिखित वंशावली दी हुई है :

गुर्जर राजा सामन्त दद्द प्रथम जिसने नागाओं का उच्छेदन किया; उसका पुत्र जयभट प्रथम वितराग था, और उसका पौत्र था दद्द द्वितीय प्रशांतराग।

डॉ० आर० सी० मजुमदार की धारणा है कि इस वंश के संस्थापक दद्द प्रथम का तादात्म्य मंडोर वंश के संस्थापक हरिचन्द्र के पुत्र दद्द से है। इन दानपत्रों में जिन ग्रामों का नामोल्लेख है उनके तादात्म्य से प्रतीत होता है कि इस अधीन गुर्जर राज्य का विस्तार किम नदी के उत्तर तट से लेकर माही के दक्षिण तट तक था। इससे प्रकट होता है कि गुर्जर प्रदेश समुद्रतट के पड़ोस तक था, देश के अन्दर इसका विस्तार असंदिग्ध रूप से घाटों तक था। शांतिल्ल का संखेड दानपत्र सूचित

करता है कि कलचुरि राजा शंकर गरा का एक सामन्त निरिकुल्लक दमोई के आस-पास के प्रदेश पर राज्य करता था। बुद्धराज के सर्संवनी पट्टों से प्रमाणित है कि कैरा और भड़ोच जनपद उसके स्वत्व में थे। कलचुरियों की अंतिम ज्ञात तिथि ६०९-१० ई० है और इनकी पूर्वतम ज्ञात तिथि ६२९ ई० है। उस समय दद्द द्वितीय सिंहासन पर था। अतः यह माना गया है कि 'कलचुरियों के बाद इन प्रदेशों पर अवश्य ही गुर्जरों का राज्य हुआ होगा। मैत्रक राजा खरग्रह प्रथम का उत्कीर्ण लेख (तिथ्यांकित ६१६ ई०) प्रकट करता है कि कलचुरि वंश सेनापति भटारक के वंशजों द्वारा तमाच्छादित किया गया। अतः हो सकता है दद्द द्वितीय मैत्रकों के अधीन एक सामन्त राजा रहा हो। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि दद्द प्रथम या जयभट प्रथम ने इस प्रदेश पर राज्य किया। दद्द प्रथम को नागाओं के, न कि कलचुरियों के उच्छेदन करने का श्रेय दिया गया है। यह अनुमान किया गया है कि दद्द द्वितीय का राज्य भृगुकच्छ था जिसका नामोल्लेख ह्वेनसांग ने किया है।

घटियाला उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि इस समय हरिश्चन्द्र के वंशज गुर्जरों की प्रधान शाखा का गढ़ मन्डोर था। 'सि-यु-कि' सूचित करती है कि ह्वेनसांग वलभी से लगभग ३०० मील उत्तर गया और गुर्जर प्रदेश पहुँचा। वलभी से ठीक मन्डोर के गुर्जर राज्य की यह दूरी है। यह सूचित करती है कि यहाँ का राजा जन्मना क्षत्रिय, युवा, अपने ज्ञान और शौर्य के लिए विख्यात, बौद्ध धर्म के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् और असाधारण गुणों से युक्त तथा बौद्ध धर्म का संरक्षक था। चीनी यात्री ने जिस शासक को देखा था वह सम्भवतः इस वंश का पांचवाँ राजा तात था, क्योंकि जोधपुर उत्कीर्ण लेख के श्लोक १४-१५ सूचित करते हैं कि 'यह समझकर कि जीवन बिजली की तरह अस्थायी है उसने सिंहासन अपने कनिष्ठ भ्राता को दे दिया और सद्धर्म का पालन करने के लिए एक आश्रम में रहने लगा'। ह्वेनसांग के इन शब्दों से इसकी पुष्टि होती है कि गुर्जर राजा बौद्ध धर्म के प्रति अत्यंत निष्ठावान् था।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि वलभी या गुर्जर वंश हर्ष के अधीन नहीं था। प्रतीत होता है कि जालंधर भी उसके अधीन नहीं था। ह्वेनसांग ने इस राज्य का विस्तार पूरब से पश्चिम तक १६७ मील और उत्तर से दक्षिण तक १३३ मील बतलाया है। इसके आधार पर कनिंघम ने लिखा है कि जालंधर राज्य में उत्तर में चम्ब, पूरब में मण्डि और सुखेत और दक्षिण पूरब में शतुद्र अवश्य ही सम्मिलित रहा होगा। ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में लिखा है कि यहाँ का राजा बौद्ध धर्म में विश्वास करता था और उसकी बौद्ध धर्म के प्रति परमनिष्ठा देखकर हर्ष ने संपूर्ण भारत के बौद्ध धर्म संबंधी मामलों का नियंत्रण उसके हाथ में सौंपा। इस कार्य को

उसने बिना भेदभाव और व्यक्तिगत भावना के पूरा किया। डॉ० आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि इस कहानी का अधिक ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। इससे केवल इतना ही तात्पर्य निकलता है कि वह भिक्षु हो गया था, और अपने भ्रमण में वह जहाँ जहाँ गया वहाँ के राजाओं ने उसका सम्मान किया।

उत्कीर्ण लेखों से यह ज्ञात होता है कि इसकी राजधानी ब्रह्मपुर थी और इसके राजाओं की वंशावली इस प्रकार थी : (१) सूर्यवंश का आदित्य वर्मन् (२) बलवर्मन् (३) दिवाकरवर्मन् (४) मेरुवर्मन् (लगभग ७०० ई०)। मेरुवर्मन् इस वंश का प्रथम राजा था, जिसके काल में इस वंश ने प्रमुखता प्राप्त की। प्रतीत होता है कि कांगरा जनपद के शासक जालंधर राज्य के अधीन थे। प्रतीत होता है कि यह राज्य सातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में पर्याप्त महत्वपूर्ण था। ह्वेनसांग की 'जीवनी' में लिखा है कि इस देश का राजा उत्तर भारत का सम्राट था। यह कथन उसके स्वतंत्र पद का अकाट्य प्रमाण है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि हर्ष समस्त उत्तरी भारत का सम्राट् नहीं था। दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि हर्ष 'सकलोत्तरापथनाथ' था। इस पद को इसके शाब्दिक अर्थ में न ग्रहण करना चाहिए। ऐसे पद बहुधा अनिश्चितता तथा शिथिलता से व्यवहार किए जाते हैं। हर्ष के शासन काल में चीनी सम्राट् ने कई दूत मण्डल भेजे। एक दूत मण्डल ६४१ ई० में आया था और दूसरा ६४३ ई० में। वांग-ह्वेन-से के नेतृत्व में एक अन्य दूतमण्डल ६४७ ई० में भारत आया। उस समय तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी और देश में विप्लव और अव्यवस्था फैली हुई थी।

(७) हर्ष की मृत्यु के बाद चीनी आक्रमण

हर्ष की मृत्यु के बाद जो ६४६-६४७ ई० में हुई, उत्तरी भारत में गड़बड़ी और अव्यवस्था फैली। एक अपहर्ता ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया, सामन्त प्रदेश स्वतंत्र हो गए, और विदेशी आक्रमण का संकट उपस्थित हुआ। उत्तरी भारत की एकता भंग हो गई, और प्रत्येक छोटी या बड़ी सत्ता, प्रतिद्वंद्विता में फँसी जिससे देश निर्बल हुआ और विदेशियों को भारत में आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिला। तिब्बत और नेपाल की संयुक्त सेना भारत में घुस आई। कामरूप के भाष्करवर्मन् ने बंगाल विजय किया। अर्जुन या अरुणाश्व ने 'अधीश्वर सत्ता' का अपहरण किया। माधवगुप्त स्वतंत्र राजा बन बैठा और अपने को 'चक्रवर्तिन्' या सार्वभौमिक राजा घोषित किया। उसके पुत्र आदित्यसेन के अफसड उत्कीर्ण लेख में उसकी प्रशंसा की गई है कि उसने युद्ध में अपने शत्रुओं को मारा। हो सकता है कि माधवगुप्त ने हर्ष के साथ युद्धों में भाग लिया

हो और उन अन्य अनेक सामन्तों की तरह जो अपने अधीश्वरों के साथ युद्धों में गए थे कुछ विजयों का श्रेय अपने को दिया हो। यह भी हो सकता है कि स्वतंत्र शासक बनने के पूर्व उसको विरोधियों का सामना करना पड़ा हो, या हो सकता है कि उसने अपहर्ता अर्जुन का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया हो, जिसके संबंध में लिखा गया है कि उसने 'पड़ोस के राजाओं को अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।' यह भी हो सकता है कि माधवगुप्त कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् से, और तिब्बत से संघर्ष हुआ हो। भाष्करवर्मन् ने हर्ष के गौड़ साम्राज्य को हस्तगत किया था, और माधवगुप्त ने अपने को मगध का स्वतंत्र राजा घोषित किया था। प्रत्यक्षतः यह प्रतीत होता है कि तिब्बत से उसका युद्ध हुआ था।

म-त्वन-लिन के वर्णन से प्रतीत होता है कि ६४६ ई० में चीनी सम्राट् ने वंग-ह्वेन-से को दूत-कार्य पर मगध के सम्राट् के पास भेजा। किन्तु जब यह दूत-मण्डल मगध पहुँचा हर्ष मर चुका था और देश में अराजकता फैली हुई थी। अर्जुन या अरुणाश्व नामक एक मंत्री ने सार्वभौमिक सत्ता का अपहरण कर लिया था। उसने अपने प्रदेश में दूत-मण्डल के प्रवेश को रोकने के लिए एक टुकड़ी भेजी। उस समय इस दूत-मंडल में केवल कुछ दर्जन अश्वारोही थे। उन्होंने संघर्ष किया, किन्तु असफल रहे और बन्दी बनाए गए। केवल इस दूत-मण्डल का नेता वंग-ह्वेन-से बच कर तिब्बत पहुँचा। उसने पड़ोस के राज्यों से शस्त्र उठाने को कहा और बारह सौ तिब्बती सशस्त्र सैनिकों, सात हजार नेपाली अश्वारोहियों और कामरूप के राजा से खाद्य सामग्रियों और शस्त्रों आदि की सहायता लेकर उसने अनुक्रमपूर्वक तीन दिनों तक युद्ध किया और अर्जुन को परास्त किया, उसकी राजधानी छपरा या चम्पारन को लूटा, और अर्जुन को बन्दी बनाकर चीन ले गया। उसने तीन हजार व्यक्तियों का शिरश्छेदन किया। इसके अतिरिक्त दस हजार व्यक्ति डुबाए गए। उसके सेनापति जिन ने भी एक हजार आदमियों को पकड़ा और उनका शिरश्छेदन किया। राज्ञी ने राजा को छुड़ाने के लिए उनका रास्ता रोका। उसने राज्ञी और राजकुमार को युद्ध में परास्त किया और उनको बन्दी बनाया, बारह हजार नर और नारियों को तथा बीस हजार पशुओं को पकड़ा, और ५८० छोटे और बड़े नगरों का दमन किया। चीनी और तिब्बती स्रोतों से स्पष्ट है कि ६४३ ई० के लगभग नेपाल तिब्बत के अधीन था।

भारतीय स्रोत इस आक्रमण के संबंध में बिलकुल मौन हैं और चीनी या तिब्बती स्रोतों से यह स्पष्ट नहीं है कि तिब्बती सेना ने सचमुच मगध पर आक्रमण किया था या वह केवल अर्जुन को दण्ड देकर लौट गई थी। चीनी-इतिवृत्त घटनाओं का

अपने पक्ष में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में अभ्यस्त हैं। हर्ष ने एक दूत-मण्डल चीन भेजा था जिसका अर्थ चीनी सम्राट् ने यह लगाया कि हर्ष ने चीनी सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर ली है। म-त्वन-लिन ने लिखा है कि हर्ष ने चीनी सम्राट् के भेजे हुए साम्राजिक आदेश को घुटना टेक कर ग्रहण किया, और उसको अपने शिर पर रखा। अतः चीनी दूत की इस विजय की कथा को सावधानीपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

हो सकता है कि उत्तर बिहार के किसी तुच्छ शासक पर कोई छोटी-मोटी विजय हुई हो जिसका अत्यन्त अतिरंजित और अनुपातहीन वर्णन चीनियों ने किया हो।

इसमें संदेह नहीं कि हर्ष ने एक दूतमण्डल चीन भेजा था और उसके बदले में चीन ने वंग-ह्वेन-से के नेतृत्व में एक दूत मण्डल भेजा। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उपर्युक्त घटना घटी। तिब्बती राजा स्रांग-त्सांग गमपो के विजयों के संबंध में जो तिब्बती स्रोत उपलब्ध है उसमें उपर्युक्त आक्रमण की कोई चर्चा नहीं है। इसी तरह नेपाली लेख भी इस घटना पर कोई प्रकाश नहीं डालते।

उपर्युक्त चीनी विवरण से अतिशयोक्तिपूर्ण सामग्री निकाल देने के बाद जो कथा बचती है उससे यह तात्पर्य निकलता है कि हर्ष की मृत्यु के बाद उसके एक मंत्री ने अपने को तीरभुक्ति (वर्तमान तिरहुत) का राजा घोषित किया। उसकी शक्ति का गढ़ उत्तरी मगध था। तिब्बती सेना ने इसी प्रदेश को विजय किया होगा और इस विजय को उन्होंने मध्यभारत की विजय के रूप में लिखा। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे अपहर्ता का संबन्ध कन्नौज से मालूम पड़े। वांग-ह्वेन-त्से की घटना के आधार पर यह माना गया है कि तिब्बती आधिपत्य का विस्तार भारत पर भी हुआ जो ७०२ ई० तक बना रहा। यह कहा जाता है कि उसने असम और नेपाल को विजय किया, और उसकी अधीश्वरता आधे जम्बू द्वीप पर थी। इसमें संदेह नहीं कि नेपाल इस समय तिब्बत का सामन्त राज्य था और दो सौ वर्ष तक ऐसा ही बना रहा। तिब्बती ग्रन्थों में भारतीय विजयों का कोई उल्लेख नहीं है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि स्रांग-त्सांग-गमपो के मंत्री ने 'हिन्दुस्तान से कुछ कूटनीतिक संबन्ध' स्थापित किए जैसा कि लेवी कृत 'ले नेपाल' से स्पष्ट है। लेवी का विचार है कि उसके राज्य का विस्तार 'मध्यभारत' (मगध) तक था। लेवी ने लिखा है कि ७०२ ई० में नेपाल और मध्यभारत ने तिब्बत के विरुद्ध विद्रोह किया। नेपाल का दमन किया गया और 'मध्यभारत' (मगध) लूटमारों से न बचा।

इस समय जो तथ्य उपलब्ध हैं उनसे यह प्रतीत नहीं होता कि हर्ष की मृत्यु के बाद तिब्बतियों ने भारत के किसी भाग पर अधिकार किया।

(८) चीनी साक्ष्यों पर विचार-विमर्श

ह्वेनसांग ने यात्रा करते समय जो कुछ देखा या सुना उनको लिपिबद्ध किया है। इन टीपों के आधार पर उसके कुछ शिष्यों और मित्रों ने सि-यु-कि' की रचना की है और इन्हीं टीपों के आधार पर ह्वेनसांग के मित्र और प्रशंसक हुइ लि ने उसकी 'जीवनी' लिखी है। यह सर्व-विदित है कि 'जीवनी' और 'सि-यु-कि' एक दूसरे के पूरक हैं।

ह्वेनसांग का कथन है कि हर्ष ने ६ वर्ष युद्ध किए और उसके पश्चात् शांति से ३० वर्ष राज्य किया। ह्वेनसांग ने ६४३ ई० में भारत छोड़ा और जब तक वह जीवित था वह भारत से पत्र व्यवहार करता रहा। उसकी मृत्यु ६६४ ई० में हुई।

'जीवनी' में लिखा है कि हर्ष की मृत्यु ६५४ ई० में हुई (अर्थात् उसकी वास्तविक मृत्यु के ७ वर्ष बाद)। इस तिथि के अनुसार हर्ष का शान्तिपूर्ण काल ६५४ ई० – ३० = ६२४ ई० है; इसके पूर्व हर्ष ने ६ वर्ष युद्ध करने में बिताए अर्थात् उसके युद्ध का समय ६१८ से ६२४ ई० है।

चीनी इतिहास लेखक म-त्वन-लिन ने भी हर्ष की विजयों की केवल एक अवधि की चर्चा की है। उसने लिखा है कि 'जिस समय खो-अट-सु (६१८-२७ ई०) चीन में राज्य कर रहा था उसी काल में भारत में गम्भीर उपद्रव उठ खड़े हुए। शिलादित्य (हर्ष) ने एक बड़ी सेना तैयार की और दुर्दमनीय पराक्रम से युद्ध किया। सैनिकों ने न अपने कवच उतारे और न हाथियों की साज-सज्जाएं उतारी गई। उसने भारत के चारों भाग के राजाओं को दण्ड दिया और उन सबों ने उत्तर की ओर अपने मुखों को करके उसकी अधीश्वरता स्वीकार की।'

इस तरह 'सि-यु-कि' के कथन की म-त्वन-लिन के साक्ष्य से पुष्टि होती है। हर्ष की मृत्यु लगभग ६४७ ई० में हुई। ह्वेनसांग के शिष्यों ने हर्ष के मृत्यु की तिथि ७ वर्ष और आगे बढ़ा कर लिखी है। प्रत्यक्षतः यह गलत है। अतः 'सि-यु-कि' में ३० वर्ष का जो शान्ति काल माना गया है वह २३ वर्ष मानना चाहिए।

हर्ष-सवत् ६०६ ई० से आरम्भ होता है जब वह थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा। 'सि-यु-कि' ने लिखा है कि कन्नौज का शासक होने के बाद हर्ष ने अपनी विजयें आरम्भ कीं। इसका प्रमाण नहीं मिलता कि ६०६ ई० में कन्नौज उसके हाथ में आ गया था। बाण-कृत 'हर्ष चरित' से स्पष्ट है कि बानि या वानि के परामर्श पर कन्नौज के कूटनीतिज्ञों ने हर्षवर्धन को अपना सम्राट् बनाने के लिए

आमंत्रित किया। हर्ष आगा-पीछा करता था और अन्त में उसने अवलोकितेश्वर से परामर्श लिया जिन्होंने उसको राज्य का शासन करने को कहा। किन्तु यह भी कहा कि वह सिंहासन पर न बैठे और महाराज की उपाधि धारण न करे। अतः वह कन्नौज का राजा बना और 'राजपुत्र' और 'शिलादित्य' की उपाधियां धारण कीं।

शे-किअ-फंग-चे सूचित करती है कि यह नगर (कान्यकुब्ज) पंच भारत के राजा की राजधानी है……वह वैश्य जाति का है। वह राजा बनना चाहता था। अतः उसने गंगा के तट पर अवलोकितेश्वर की मूर्ति से प्रार्थना की। बोधिसत्व ने उत्तर दिया, 'पूर्व जन्म में तुम आर्यनक भिक्षु थे। कर्णसुवर्ण के राजा शशांक ने बुद्ध के नियम को नष्ट कर दिया है और जब तुम पांचों दिशाओं के राजा होगे तब तुम इसकी समृद्धि करोगे और दयामय होगे। न तो सिंहासन पर बैठो और न अपने को राजा कहो……अपनी विधवा कनिष्ठ बहिन की सहायता से उसने राज्य का प्रशासन चलाया।

चीनी लेखकों के कथनों से प्रतीत होता है कि आरम्भ में कन्नौज में हर्ष की स्थिति सरल नहीं थी। ग्रहवर्मन् की मृत्यु के बाद वहाँ घोर गड़बड़ी हुई। किसी गुप्त ने जो अच्छे कुल का '(कुलपुत्र)' था इस पर अधिकार किया और राज्यश्री को कारागार से मुक्त किया। हर्षचरित में लिखा है कि ग्रहवर्मन् के सब सम्बन्धी कन्नौज से भाग गए। किन्तु नालंदा से प्राप्त एक मोहर प्रकट करती है कि अवन्ति वर्मन् का श्री सुव……नामक एक दूसरा पुत्र था। ग्रहवर्मन् की मृत्यु के बाद वह कन्नौज के सिंहासन का न्याय-पूर्ण अध्यर्थी था। प्रत्यक्षतः हर्ष ने उसके दावें की उपेक्षा की। इस अवैध कार्य को छिपाने के लिए चीनी लेखकों ने प्रत्यक्षतः अवलोकितेश्वर की कहानी गढ़ी है जिससे कि प्रतीत हो कि हर्ष को कन्नौज का शासन अपने हाथ में लेने की दैवी आज्ञा मिली थी। से-किअ-फंग-चे ने स्पष्ट लिखा है कि राजा बनने की इच्छा से हर्ष ने अवलोकितेश्वर की प्रार्थना की।

अतः स्पष्ट है कि कन्नौज में ग्रहवर्मन् के कनिष्ठ भ्राता के न्याय-पूर्ण अधिकार की उपेक्षा कर हर्ष ने सत्ता ग्रहण की। सम्भव है कि पदच्युत युवराज के अधिकार के पक्ष में कुछ दल थे और इससे हर्ष का पथ कंटकाकीर्ण था। जो भी हो जब हर्ष ने सत्ता ग्रहण की उस समय राज्य में अस्त-व्यस्तता थी। अतः यह अनुमान करना कि शक्ति ग्रहण करने के तुरन्त बाद हर्ष दिग्विजय यात्रा पर निकल पड़ा ठीक नहीं प्रतीत होता। इस सम्बन्ध में 'सि-यु-कि' के साक्ष्य को शिथिलतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

'सि-यु-कि' के अनुसार हर्ष ने ३० (?२३) वर्ष तक बिना हथियार उठाए शान्ति से राज्य किया। चीनी यात्री का आशय है कि ६ वर्ष के युद्ध काल के बाद उसका शासन शान्तिपूर्ण था। ६१८-२४ ई० अवधि में उसको अपनी सीमा पर कुछ झपटें करनी पड़ी थीं किन्तु कोई बड़े युद्ध नहीं करने पड़े। हर्ष और पुलकेशिन् का युद्ध लगभग ६३०-३४ ई० में समाप्त नहीं हुआ। यह युद्ध सहनशीलता की परीक्षा के रूप में था, संभवतः कोई बड़ी मुठभेड़ नहीं हुई और इस युद्ध की अवधि में हर्ष ने कोंगोडा विजय की।

(६) हर्ष का मूल्यांकन

जिस समय हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई थी उस समय उसकी आयु १६ वर्ष की थी। उस समय उसका ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन हूणों को पददलित करने के लिए राजधानी थानेश्वर से बाहर गया हुआ था और मालव के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था और संभवतः थानेश्वर की ओर प्रयाण कर रहा था। गौडाधिपति शशांक, जो एक शक्तिशाली राजा था, देवगुप्त की सहायता करने के लिए अपने राज्य से चल चुका था। ऐसे संकट काल में राज्यवर्धन ने हूणों को और उसके बाद देवगुप्त को पराजित किया; किन्तु शशांक ने सन्धि प्रस्ताव कर और उसके प्रति सम्मान दिखाकर उसको अपने शिविर में आमन्त्रित किया और छल से उसकी हत्या कर दी। हर्ष का बहनोई ग्रहवर्मन् जो कन्नौज का राजा था पहिले ही मार डाला गया था और उसकी बहन राज्यश्री कारागार में डाल दी गई थी। ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में उसने अपनी संपूर्ण शक्ति, साधन तथा अवधानता शत्रु दमन करने में लगा दी। उसने अपने सेनापति भण्डि को शशांक का दमन करने के लिए भेजा और अपनी बहन राज्यश्री को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़ा।

सार्वभौमिक राज्य-स्थापन—उसने देखा कि देश की राजनीतिक अव्यवस्था के कारण अनावश्यक छोटे-छोटे राज्य हैं जो उपद्रव खड़ा करते हैं। अतः उसने एक सार्वभौमिक राज्य स्थापित करने का निश्चय किया, और दिग्विजय करने के लिए उसने ५ हजार हाथियों, २० हजार अश्वारोहियों और ५० हजार पदातियों की एक बड़ी सेना खड़ी की। उसने पड़ोस के राज्यों को अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया और जिन राज्यों ने उसकी अधीश्वरता अस्वीकार की उस पर उसने आक्रमण किया। अन्ततः उसने पंच भारत स्वराष्ट्र, कान्यकुब्ज, गौड, मिथिला, और उड़ीसा को अपने अधीन किया। महाराष्ट्र को छोड़ कर दूर के देश भी उसकी अधीश्वरता मानते थे। उसके साम्राज्य का विस्तार न केवल बल और विजय से हुआ बल्कि समझौते और मित्रता से भी। कामरूप के राजा ने स्वेच्छा से

अपनी राजनिष्ठा उसको अर्पित की और हर्ष ने, जैसा कि बाण ने लिखा है, उसको 'अभिषिक्त' किया। जालंधर के राजा उदितो को हर्ष ने समस्त भारत में बौद्धधर्म से संबंधित विषयों का नियंत्रण सौंपा। हर्ष ने चीनी यात्री ह्वेनसांग को सुरक्षापूर्वक ले जाने का भार उस पर डाला। हर्ष की प्रार्थना पर दूरवर्ती देश का राजा कुछ दूर तक चीनी यात्री की रक्षा में गया। स्पष्ट है कि हर्ष की ख्याति और प्रभाव समस्त उत्तरी भारत पर तथा चीन की सीमाओं तक भी फैला हुआ था। दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेखों में भी हर्ष को 'संपूर्ण उत्तरापथ का स्वामी' कहा है।

प्रभाव—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर्ष का प्रभाव अपने देश तथा विदेश में भी था। हर्ष और चीनी सम्राट् एक दूसरे के देश में दूत-मण्डल भेजे थे। उसके प्रभाव का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि उसके जीवन काल में उत्तरी भारत में तथा नेपाल में भी हर्ष-संवत् प्रचलित था। कीलहार्न ने ऐसे १८ उत्कीर्ण लेखों का उल्लेख किया है जिनमें हर्ष-संवत् का प्रयोग किया गया है। हर्ष संवत् के ११ उत्कीर्ण लेख नेपाल में, १ मगध में, दूसरा पंजाब में और शेष कन्नौज के निकट स्थानों में पाए गए हैं।

शान्ति—अधीश्वरता प्राप्त करने के बाद हर्ष ने तीस वर्ष से अधिक काल तक निर्विघ्न शान्तिपूर्ण राज्य किया। इस काल में उसने शान्ति विजय लाभ की जो युद्ध विषयों से कम मूल्यवान नहीं थी। इस काल में धर्म और संस्कृति का प्रचार हुआ। ह्वेनसांग के महायान सिद्धान्तों के प्रचार करने के निमित्त हर्ष ने कन्नौज में एक धर्म सभा आमंत्रित की जिसमें विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के विद्वानों ने चीनीयात्री के सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करने के लिए भाग लिया। चीनीयात्री ने लिखा है कि ६० हजार हाथी और १ लाख अश्वारोही उसकी सेना में थे। और इतनी विशाल सेना के बल पर उसने 'एक भी शस्त्र उठाए बिना ३० वर्ष तक शान्ति से राज्य किया।'

विदेशों से सम्बन्ध—हर्ष ने ६४१ ई० में एक ब्राह्मण दूत को चीनी राज-दरबार में भेजा जो एक चीनी दूतमण्डल के साथ ६४३ ई० में भारत लौटा। यह दूतमण्डल ६४५ ई० में चीन लौट गया और उसके बाद वांग-ह्वेन-त्से के नेतृत्व में चीन से एक दूसरा दूतमण्डल भारत आया। कपिस के राजा का हर्ष के प्रति सौहार्द-पूर्ण सम्बन्ध था। उसने हर्ष की प्रार्थना पर ह्वेनसांग को कुछ दूर तक पहुँचाने के लिए गया। हर्ष ने चीन और भारत के रास्ते में पड़ने वाले समस्त देशों के राजाओं को पत्र लिखा था कि वे ह्वेनसांग को चीन की सीमा तक पहुँचाने के लिए वाहन

प्रदान करें। हर्ष की मृत्यु के थोड़े ही समय पश्चात् इ-त्सिंग (६७१ ई०) भारत आया था। उसके विवरण से ज्ञात होता है कि समुद्र से यात्रा करने के लिए जहाज आदि की सुविधाएँ थीं। व्यापार और संस्कृति प्रचार के लिए चीन, जावा, सुमात्रा आदि तथा पूरब की ओर फारस आदि देशों से आवागमन था। इ-त्सिंग ने श्रीभोज (सुमात्रा द्वीप) में संस्कृत और पाली का अध्ययन किया। उसकी राजधानी में उसने एक हजार भिक्षुओं को उन सब विषयों का अध्ययन करते देखा जो भारत के मध्य देश में पढ़ाए जाते थे। हर्ष के समय में दूतों, व्यापारियों, धर्म प्रचारकों और यात्रियों का भारत और चीन के बीच पर्याप्त आवागमन था। जावा के इतिवृत्तों में लिखा है कि ६०३ ई० के लगभग भारत के पश्चिमी तट से ५ हजार भारतीय जावा आए जिनमें कृषक, शिल्पी, योद्धा, चिकित्सक तथा लेखक थे। इसके पश्चात् दो हजार प्रवासी और आए। जावा बोरो के बंदर और परम्बनम के विशाल मन्दिर भारतीय शिल्पकारों की देन हैं।

शासन—उसके शासन में शान्ति और व्यवस्था थी। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि उसके शासन काल में कन्नौज में धर्म परिषद तथा हर पाँचवें वर्ष प्रयाग मोक्ष परिषद हुई। इससे प्रतीत होता है कि उसके समय में कोई राज-नीतिक उपद्रव नहीं थे। उसके शासन की सफलता का अधिकांश श्रेय स्वयं राजा को था जो इतने विशाल साम्राज्य के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए सक्षम था। उसको अपने राज्य की घनिष्ठ जानकारी थी। वह अपने राज्य के विभिन्न और दूरवर्ती भागों की निरन्तर प्राशासनिक यात्राएँ करता रहता था जिससे कि उसको जनता की दशा का आँखों देखा ज्ञान हो सके। चीनीयात्री ने लिखा है कि जिन किसी नगरों के जनता के व्यवहार में अनियमितता होती थी, तो वह वहाँ पहुँच जाता था। वह राज्य कर्मचारियों को भी प्रशासनिक यात्राएं करना आवश्यक समझता था। बंसखेरा दानपत्र तथा मधुवन दानपत्र सूचित करते हैं कि ये दानपत्र यात्रा के समय क्रमशः 'वर्धमाणकोटि' और 'कपित्थिका' नामक स्थानों से निःसृत किए गए थे। ह्वेनसांग की हर्ष से प्रथम भेंट बंगाल के कजुंघिर नामक स्थान के शिविर में हुई थी। इस समय वह पूर्वी भारत की यात्रा कर रहा था। बाण ने हर्ष से बाण की भेंट अजिरवती नदी पर स्थित मणितार स्थान पर निर्मित किए हुए शिविर में हुई थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि वह एक स्थान पर अधिक दिन तक नहीं ठहरता था और उसके अस्थायी शिविर घास, पेड़ की डालियों और लताओं से बनाए जाते थे। वर्षाऋतु के तीन महीने वह यात्रा नहीं करता था। राजकीय पदाधिकारियों में वह सर्वाधिक परिश्रमी था। वह प्रशासनिक विषयों की

देखरेख में अपना बहुत-सा समय लगाता था जिसके सम्बन्ध में बाण ने विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। उसके समय में जनता से बेगार नहीं ली जाती थी और सैनिकों को नगद वेतन दिया जाता था।

जनकल्याण—ह्वेनसांग ने लिखा है कि 'हर्ष ने भारतवर्ष भर में नगरों और ग्रामों के समस्त राजपथों पर पुण्यशालाएं बनवाई जिनमें भोजन और जल का प्रबन्ध था। उनमें यात्रियों और आसपास के निर्धन व्यक्तियों को उदारतापूर्वक औषध वितरण करने के लिए औषध सहित चिकित्सक नियुक्त किए गए थे। इस विषय में हर्ष ने अशोक को भी मात कर दिया जिसने यात्रियों के लिए विश्रामालय बनवाए थे; किन्तु उनमें निःशुल्क भोजन और औषध तथा चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं था। वह एक हजार बौद्ध भिक्षुओं को और ५०० ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराता था। प्रत्येक पाँचवें वर्ष वह प्रयाग में मोक्षपरिषद् समारोह करता था जिसमें युद्ध-सामान को छोड़कर वह प्रत्येक वस्तु का दान कर देता था। इससे लगभग समस्त श्रेणियों और सम्प्रदायों के लगभग ५ लाख व्यक्ति लाभ उठाते थे। दानशीलता और उदारता में इसकी समता का कोई उदाहरण इतिहास में नहीं है। उसने गंगा के तटों पर सौ-सौ फीट ऊँचे हजारों स्तूप तथा बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों पर मठ बनवाए। उसने पूजागृहों को सामग्री प्रदान की और मठों के सामान्य विशाल कक्षों को उदारतापूर्वक अलंकृत किया। हर्ष ने नालंदा विश्वविद्यालय को लगभग १०० फीट ऊँचा एक विहार अर्पित किया जो पीतल या कांसे का बना हुआ था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि 'देश के राजा ने इस विश्वविद्यालय के अग्रहार दान के लिए सौ गाँवों को कर-मुक्त कर दिया है। इस विश्वविद्यालय के छात्रों को शिक्षा, भोजन, निवास स्थान, वस्त्र, ओढ़ना-बिछौना तथा औषध निःशुल्क प्रदान की जाती थी। अग्रहार दान रूप में जो गाँव इस विश्वविद्यालय को अर्पण किए जाते थे उसी से यहाँ का खर्च चलता था। हर्ष के समय में विद्या का एक अन्य केन्द्र मुनि दिवाकरमित्र का आश्रम था जो घोर विन्ध्य अरण्य में स्थित था। सत्य को प्राप्त करना ही इस विद्यालय का परम मनोरथ था।

धार्मिक उदारता—प्रयाग मोक्ष परिषद् समारोह के अवसर पर हर्ष पंच भारत के सब श्रमणों और ब्राह्मणों तथा निर्धनों, अनाथों और अपंगुओं को खाने के लिए आमंत्रित करता था और सब वर्णों, श्रेणियों, सम्प्रदायों और जातियों के व्यक्तियों को उदाहरणपूर्वक दान देता था। इस समारोह में वह बौद्ध प्रतिमा के साथ सूर्य और शिव की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करता था। हर्ष के उत्कीर्ण लेख

सूचित करते हैं कि उसने धर्मनिष्ठ ऋग्वेदिन् और सामवेदिन् ब्राह्मणों को गाँव दान दिए।

ह्वेनसांग ने भारत के समस्त मुख्य नगरों में प्रचुर मात्रा में विष्णु, शिव और सूर्य के मन्दिर देखे। कान्यकुब्ज में इस तीनों देवताओं के मन्दिर थे जो ब्राह्मण धर्म एवं बौद्ध धर्म का केन्द्र था। हर्ष ने अपनी 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' नामक नाटिकाओं के नांदी श्लोकों में ब्राह्मण धर्म के शिव, गणेश, गौरी, कृष्ण, लक्ष्मी आदि का नामोल्लेख किया है। 'नागानन्द' नामक नाटिका में उसने बुद्धजिन के साथ गौरी और गरुड़ को प्रमुख स्थान दिया है।

विद्यासंरक्षक—चीनी यात्री इ-त्सिंग ने लिखा है कि राजा शीलादित्य साहित्य का अत्यन्त प्रेमी था। उसकी राजसभा में अनेक श्रेष्ठ कवि थे। समस्या पूर्ति के लिए वह कवियों को आमंत्रित करता था। वह स्वयं एक कुशल कवि था। उसने अनेक शास्त्रों और कलाओं का अध्ययन किया था। बंसखेरा पट्ट उत्कीर्ण लेख में उसका हस्ताक्षर बड़े सुन्दर और अलंकृत अक्षरों में है। उसकी राजसभा में 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' का ग्रन्थकार बाण, हरिदत्त, बाण का पुत्र भूषण भट्ट और मयूर थे। हर्ष के समय में नालन्दा विश्वविद्यालय और दिवाकरमित्र का आश्रम ज्ञान-प्रसार के लिए प्रसिद्ध थे। नालन्दा के "शास्त्रार्थ विद्यालयों में" केवल उच्च श्रेणी के विद्वान प्रवेश किए जाते थे, किन्तु प्रवेश पाने के पूर्व उनको समस्याओं के उत्तर देने पड़ते थे। हर्ष के समय इस तरह चुने हुए विद्यार्थियों की संख्या १०,००० थी। उस समय वहाँ १,५१० अध्यापक थे। वहाँ प्रतिदिन विभिन्न विषयों पर सब मिलाकर १०० भिन्न व्याख्यान दिए जाते थे। नालन्दा के अध्यापक और विद्यार्थी विभिन्न सम्प्रदायों और विचार-धाराओं के थे जो आपस में उत्साहपूर्वक वाद-विवाद और विचार-विमर्श करते थे। एक ही समय में वहां अलग-अलग विद्वान अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे जो एक दूसरे के विपरीत भी होते थे। उस समय वहाँ धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र और शीलभद्र तथा अन्य प्रकांड विद्वान थे। इसी प्रकार मुनि दिवाकरमित्र के आश्रम में विपरीत सिद्धान्तों और आचारों, प्रायः समस्त सम्प्रदायों और विचार-धाराओं के विद्यार्थी सत्य के अन्वेषण में लगे थे, और अध्ययन, विचार-विमर्श, शंका-समाधान और शास्त्रार्थ में व्यस्त रहा करते थे। हर सम्भव दृष्टिकोण से सत्य की खोज की जाती थी।

हर्ष के युग में भर्तृहरि, वामन, धर्मकीर्ति, बाण भट्ट, भारवि, माघ, सुबन्धु आदि-आदि विख्यात विद्वान् थे। हर्ष स्वयं भी एक महान् कवि और साहित्यकार

था। 'गीत गोविन्दम्' के रचनाकार जयदेय ने उसका नाम भास और कालिदास के साथ लिया है। वह राज्य की भूमि के कर का चौथाई भाग विद्वानों को पुरस्कार देने में व्यय करता था। बाण ने उसकी कवित्व शक्ति और साहित्यिकता की अत्यन्त प्रशंसा की है। उदयसुन्दरी कथा के रचनाकार सोड्ढल ने हर्ष को भूपाल और कवीन्द्र कहा है, और उसका नाम विक्रमादित्य, मुंज और भोज के साथ रखा है। उसने लिखा है कि हर्ष के 'निज संसदि' में हर्ष का हर्ष गोर्हर्ष में था। मधुसूदन ने उसको 'कविजनमूर्धन्य' कहा है।

बंसखेरा और मधूबन पट्ट के उत्कीर्ण लेख प्रत्यक्षतः उसकी ही रचनाएं हैं। बंसखेरा लेख पर हर्ष ने अपना हस्ताक्षर किया है, 'स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्री हर्षस्य'। इनमें से पद्य संख्या ५–६ शादूर्लविक्रीडिता छन्द में उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन की कपटपूर्वक हत्या का निजी भावनाओं से ओतप्रोत वर्णन किया है। वसन्ततिलक छन्द में लिखे हुए श्लोक संख्या १३ में हर्ष ने भाग्यलक्ष्मी को बिजली या पानी के बुलबुले की तरह अस्थिर कहा है, और अन्त में लिखा है कि मनसा, वाचा और कर्मणा प्राणियों का हित करना चाहिए।

अध्याय | ६

उत्तरकालीन गुप्तवंश का पुनःस्थापन (ल० ६४७-७२५ ई०)

(१) मगध पर हर्ष का आधिपत्य—शशांक की मृत्यु के शीघ्र ही बाद पूर्णवर्मन् मगध के सिंहासन पर बैठा। हो सकता है कि पूर्णवर्मन् पर हर्ष की छत्रछाया रही हो। इतना निश्चित है कि पूर्णवर्मन् की मृत्यु के बाद मगध हर्ष के आधिपत्य में आ गया। ६४१ ई० में हर्ष ने जो दूत-मण्डल चीन भेजा उसके कागजों में हर्ष को मगधपति कहा गया है। हर्ष की एक मुहर जो पकाई हुई मिट्टी की है नालन्दा में पाई गई है। आदित्यसेन के शाहपुर उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि मगध में हर्ष संवत् प्रचलित था। ह्वेनसांग के वर्णन से भी स्पष्ट है कि हर्ष मगध का राजा था और यह प्रदेश कम से कम ६३९ ई० के पूर्व उसके हाथ में आया।

(२) तिब्बती आक्रमण—यह अत्यन्त संभाव्य है कि मगध पर अपना आधिपत्य हो जाने के शीघ्र ही बाद हर्ष ने महासेनगुप्त के पुत्र माधवगुप्त को मगध के सिंहासन पर बैठाया। अफसड उत्कीर्णलेख सूचित करता है कि माधवगुप्त हर्ष के साहचर्य का इच्छुक था। वह हर्ष का राजनिष्ठ और सच्चा सामन्त था। हर्ष न केवल मगध का स्वामी था बल्कि उसका आधिपत्य उत्तरी और पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और गंजाम पर भी था। हर्ष की मृत्यु ६४६-४७ ई० में हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और उत्तर भारत की एकता नष्ट हुई। चीनी इतिवृत्तों से स्पष्ट है कि उस समय देश में अव्यवस्था और अराजकता फैली। उसके एक मंत्री अर्जुन ने सार्वभौमिक सत्ता ग्रहण की और एक चीनी दूत

मण्डल पर आक्रमण किया। तिब्बत और नेपाल की सेनाओं की सहायता लेकर इस चीनी दूत-मण्डल ने अर्जुन को परास्त कर बन्दी बनाया। कामरूप के राजा भास्कर वर्मन् ने भी सहायता दी। हो सकता है कि तिरहुत या उत्तरी बिहार पर तिब्बतियों ने कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया हो। हर्ष की मृत्यु से भास्करवर्मन् को लाभ हुआ। उसने हर्ष के बंगाल साम्राज्य को और शशांक के प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया, जैसा कि निधानपुर ताम्रपट्टों से स्पष्ट है। शशांक की मृत्यु के बाद बंगाल का उसका साम्राज्य हर्ष के हाथ में चला गया था और हर्ष की मृत्यु के बाद भास्करवर्मन् ने मध्य बंगाल और संभवतः उत्तरी बंगाल (पुण्ड्रवर्धन) पर अधिकार किया। उसने विजयी तिब्बती सेना को आदमी और सामान की सहायता दी थी अतः उसका राज्य उत्तर में हिमालय से और पश्चिम में तिरहुत से अवश्य सटा रहा होगा, जो तिब्बतियों के अधीन थे।

उत्तरकालीन गुप्त वंश ने इस संकटकाल में वास्तविक शक्ति ग्रहण की और धीरे-धीरे उत्तरी भारत के अधिक भाग को पुनः संयुक्त किया।

(३) **मगध राज्य**—मौखरियों और कलचुरियों से पराजित होने के बाद महासेनगुप्त के पुत्रों—कुमारगुप्त और माधवगुप्त ने थानेश्वर के अपने फुफेरे भाई प्रभाकरवर्धन के यहाँ शरण ली। कुमारगुप्त राजवर्धन की सेवा में रखा गया और माधवगुप्त हर्ष की। कुमारगुप्त राजवर्धन के साथ हूणों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए गया था। वह युद्ध से लौट कर थानेश्वर आया था। इसके बाद कुमारगुप्त का नाम सुनाई नहीं पड़ा। हो सकता है कि राजवर्धन के बाद के किसी अभियान में उसकी मृत्यु हुई हो। अफसड के उत्कीर्णलेख में स्पष्ट रूप से लिखा है कि महासेनगुप्त के बाद माधवगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा।

(४) **माधवगुप्त**—चीनी अभिलेखों में लिखा है कि ६४१ ई० में हर्ष मगध का राजा था। हो सकता है कि इस तिथि के पूर्व हर्ष ने मगध का प्रभार माधवगुप्त को सौंप दिया हो या ६४१ ई० के बाद औपचारिक रूप से उसको मगध के सिंहासन पर अभिषिक्त किया हो। इतना निश्चय है कि वह हर्ष की मृत्यु तक उसके अधीन रहा। शिलालेख के इस कथन से इसकी पुष्टि होती है कि माधवगुप्त हर्ष के साहचर्य का इच्छुक था।

हर्ष की मृत्यु के बाद देश में अराजकता और घोर अशान्ति फैली। उत्तरी भारत की एकता भंग हुई। छोटी और बड़ी हर एक सत्ता में प्रतिस्पर्द्धा जागृत हुई, जिससे देश निर्बल हुआ और विदेशियों को आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिला। अर्जुन या अरुणाश्व ने सार्वभौमिक सत्ता का अपहरण किया। कामरूप के भास्कर

वर्मन् ने बंगाल को विजय किया। नेपाल की सहायता से तिब्बत की सेना भारत में घुस आई। इस उथल-पुथल की स्थिति में स्पष्ट है कि माधवगुप्त ने अवश्य ही अपना सामन्ती जुआँ उठा फेंका और अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित किया। उसके पुत्र आदित्यसेन के अफसड उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि माधवगुप्त की हथेली में 'चक्र' बना हुआ था। इस कवित्वपूर्ण शब्द का आशय है कि वह चक्रवर्ती अर्थात् सार्वभौमिक राजा था। इस लेख में यह भी लिखा है कि उसने युद्ध में अपने शत्रुओं का वध किया। इससे सकेत होता है कि वह हर्ष के साथ युद्धों और विजय-यात्राओं में गया। बाण ने लिखा है कि जब हर्ष सिंहासन पर बैठता था तब वह उसके साथ रहता था। हर्ष के साथ वह राज्यश्री को ढूंढ़ने के लिए विन्ध्याटवी में गया। यह भी हो सकता है कि अपने को स्वतन्त्र घोषित करने के पूर्व उसका विरोध हुआ हो। हो सकता है कि उसने अपहर्ता अर्जुन का सफलतापूर्वक सामना किया हो जिसने 'पड़ोस के राजाओं को अधीनता स्वीकार करने को विवश किया'।

हो सकता है कि उसको तिब्बतियों से भी संघर्ष करना पड़ा हो। म-त्वन-लिन सूचित करता है कि चीनी सम्राट ने ६४६ ई० में मगध राज्य को एक दूत मण्डल भेजा जिस पर अर्जुन या अरुणाश्व नामक एक अपहर्ता ने आक्रमण किया। नेपाल और कामरूप के राजा की सहायता लेकर तिब्बती सेना ने अर्जुन की राजधानी छपरा या चम्पारन पर आक्रमण किया। अर्जुन को पकड़ कर वह सेना उसको चीन ले गई। तिब्बत के राजा स्रान-बत्सन-सगम्पो ने ६४३ ई० के लगभग नेपाल को अपने अधीन कर लिया था। उसने अपने साम्राज्य के आंचलिक प्रदेशों के सब राज्यों को अपने नेतृत्व में संगठित किया। तिब्बत के इतिवृत्तों में लिखा है कि मध्यदेश या मगध तिब्बत के अधीन था। चीनी और तिब्बती स्रोतों से यह स्पष्ट नहीं है कि तिब्बती सेना ने सचमुच मगध पर आक्रमण किया या अर्जुन को, जो संभवतः उत्तर बिहार में था, दण्ड देकर लौट गई। हो सकता है कि तिब्बती और नेपाली सेना ने उत्तर बिहार के किसी छोटे-मोटे शासक पर विजय प्राप्त की हो और तिब्बती और चीनी स्रोतों ने बढ़ा-चढ़ाकर लिखा हो, क्योंकि चीनी इतिवृत्त घटनाओं को अपने पक्ष में अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में चित्रित करते हैं। हर्ष द्वारा भेजे गए दूतमण्डल का चीनी अभिलेखों ने यह अर्थ लगाया कि हर्ष ने चीनी सम्राट् की अधीश्वरता स्वीकार की है।

प्रतीत होता है कि हर्ष की मृत्यु के बाद देश में जो उथल-पुथल हुई उसका लाभ उठाकर अर्जुन ने, जो संभवतः तीरभुक्ति (उत्तर बिहार) का कोई पदाधिकारी था, अपनी सार्वभौमिकता घोषित की और पड़ोस के प्रदेशों को अधीनता स्वीकार करने को विवश किया।

माधवगुप्त ने अवश्य ही अर्जुन के दावों का सफलतापूर्वक विरोध किया होगा। हो सकता है कि इस कारण भी अर्जुन ने चीनी दूत-मण्डल पर आक्रमण किया हो जो मगध को जा रहा था और उस समय मगध के सिंहासन पर माधव गुप्त था। अर्जुन जानता था कि मगध में इस दूत-मण्डल के जाने से मगध की प्रतिष्ठा देश और विदेश में बढ़ेगी। अतः उसने दूत-मण्डल पर आक्रमण किया जिससे कि वह मगध पहुँच ही न सके। अर्जुन के इस आक्रमण से स्रान-बत्सन-सगम्पो की तिब्बती सेना ने अर्जुन के राज्य तीरभुक्ति (उत्तर बिहार) पर आक्रमण किया, उसकी राजधानी तथा उसके राज्य के अन्य नगरों को लूटा और हजारों व्यक्तियों की हत्याएँ कीं। सम्भवतः उन्होंने तीरभुक्ति को तिब्बती साम्राज्य में मिला लिया, ६४३ ई० से नेपाल तिब्बतियों के अधीन था ही। भाष्करवर्मन् ने शान्ति और मैत्री रखने की दृष्टि से विजयी सेना के सहायतार्थ आदमी और सामान भेजे।

माधवगुप्त ने बुद्धिमत्तापूर्वक इन घटनाओं से अपने को विरक्त रखा क्योंकि वह अपने राज्य को दृढ़ीभूत करने को उत्सुक था। उसके दोनों ओर प्रबल शत्रु थे—पूरब की ओर कामरूप और उत्तर में तिब्बती साम्राज्य।

(५) आदित्यसेन (ल० ६५० ई०—ल० ६७५)—आदित्यसेन माधव गुप्त का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। अफसड उत्कीर्ण लेख में उसको 'क्षितीश चूड़ामणि' और 'लोकपाल' कहा है। इससे प्रतीत होता है कि वह शक्तिशाली राजा था। मण्डसोर पहाड़ी के चट्टान उत्कीर्ण लेखों में जो आदित्यसेन के समय के हैं उसको तथा उसकी राज्ञी को पूर्ण साम्राजिक उपाधियाँ दी गई हैं 'परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री-आदित्यसेन-देव' और उसकी राज्ञी को 'परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी कोण देवी'। अफसड और शाहपुर (६७२—७३ ई०) उत्कीर्ण लेखों में उसके नाम के साथ केवल 'श्री' उपाधि लगाई गई है। इससे कुछ विद्वानों ने यह आशय लिया है कि वह पहले कामरूप के राजा का सामन्त था; किन्तु कामरूप के इतिहास से यह ज्ञात है कि भाष्करवर्मन् की मृत्यु के बाद इस वंश का पतन हुआ और इसके स्थान पर शालस्तम्भ नामक एक बर्बर ने राज्य स्थापित किया। अतः स्पष्ट है कि आदित्यसेन कामरूप के राजाओं के अधीन नहीं था। यह नहीं माना जा सकता कि मगध पर तिब्बतियों का अधिकार था और आदित्यसेन उनके अधीन था।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद मगध माधवगुप्त के अधीन स्वतन्त्र हो गया और आदित्यसेन के समय भी वह स्वतन्त्र था। प्रतीत होता है कि ६७२—७३ ई० तक आदित्यसेन स्वतन्त्र किन्तु मात्र स्थानीय राजा था। अतः उसने केवल 'श्री' उपाधि

धारण कर रखी थी। बाद को जब उसका प्रभाव-क्षेत्र बढ़ा तब उसने साम्राजिक और सार्वभौमिक उपाधियाँ धारण कीं।

हर्ष की मृत्यु के बाद विघटनात्मक शक्तियाँ पूर्णरूपेण काम कर रही थीं और भारत के उत्तर में तिब्बत में एक शक्तिशाली साम्राजिक शक्ति स्थापित थी जिसने चीन को भयभीत कर रखा था और नेपाल को अपने अधीन कर लिया था। उत्तर बिहार पर आक्रमण किया था। तिब्बती सेना मगध पहुँची हो या न पहुँची हो; किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस नई शक्ति के उदय होने से मगध को अवश्य ही भय हुआ होगा। मगध की पूर्वी सीमा पर कामरूप का शक्तिशाली राजा भास्करवर्मन् अपनी शक्ति बढ़ा रहा था, और उत्तरी, मध्य तथा पश्चिमी बंगाल का अधिक भाग उसके अधीन था। ऐसी स्थिति में माधवगुप्त और उसके पुत्र आदित्यसेन ने साम्राजिक होड़ से दूर रहना श्रेयष्कर समझा। वे महान् शक्तियों के राजनीतिक अखाड़े में कूदना नहीं चाहते थे। वे मगध राज्य की शक्ति को दृढ़ करने में लगे थे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि म्लेच्छ शासक शालस्तम्भ ने भास्करवर्मन् के वंश को उखाड़ फेंका है, और तिब्बत का चीन से बैर-भाव है और वह पतितावस्था में है तो आदित्यसेन ने अपने को उत्तरी भारत की सार्वभौमिक शक्ति घोषित किया। इस समय उत्तर भारत की प्रमुख शक्ति बनने का स्वर्ण अवसर भी था और आदित्यसेन अपने महान् पूर्वजों के साम्राजिक दाय का वैध उत्तराधिकारी था और तभी उसने ६७२–७३ ई० के बाद परम भट्टारक महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण कीं।

आदित्यसेन शक्तिशाली राजा था। वह विस्तृत राज्य पर शासन कर रहा था। उसके उत्कीर्ण लेख अफसड (गया जनपद), शाहपुर, और मन्दारगिरि (भागलपुर जनपद) में पाए गए हैं। स्पष्ट है कि मगध और अंग (दक्षिण बिहार) उसके अधिकार में था। जयदेव के एक उत्कीर्ण लेख में जो नेपाल में पाया गया है आदित्यसेन को 'महतः' और 'मगधाधिप' कहा है। साम्राजिक और सार्वभौमिक उपाधियाँ धारण करने के पूर्व आदित्यसेन ने अवश्य ही विजय यात्राएं की होंगी और विजित प्रदेशों को अपने राज्य में सम्मिलित किया होगा। आदित्यसेन महान् राजा था और उसके कार्यों की स्मृति जनता में बहुत दिनों तक बनी रही। उसने अनेक अश्वमेध किए। वैद्यनाथ धाम मंदिर के उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि आदित्यसेन ने समुद्र के तटों तक राज्य किया। बहुत सम्भव है कि मध्य और दक्षिण-पश्चिम बंगाल समुद्र तट सहित उसके राज्य के अंग थे। हजारीबाग जनपद के अन्तर्गत दुधपनी से प्राप्त उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि उसके राज्य की दक्षिणी सीमा छोटा नागपुर पहाड़ियों तक थी। उसके राज्य में अवश्य ही उत्तर

प्रदेश का अधिक भाग सम्मिलित था; क्योंकि जीवितगुप्त द्वितीय के देवबरनार्क उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि उसके राज्य में गोमतीकोट्टक नामक किला (जो गोमती के किनारे किसी स्थान पर बसा हुआ था। शाहजहाँपुर जनपद में गोमती का उद्गम है और यह लखनऊ और जौनपुर होती हुई बनारस के आगे गंगा से मिलती है।) और शाहबाद जनपद था। उस समय उत्तर भारत की ऐसी स्थिति थी कि हो सकता है कि आदित्यसेन ने उत्तर प्रदेश में अपने राज्य का विस्तार किया हो। वैद्यनाथ धाम मंदिर के उत्कीर्ण लेख के शब्दों से कि आदित्यसेन ने समुद्र के तटों की ओर के प्रदेश को विजय किया था। स्पष्ट है कि दक्षिणी राढ उसके राज्य के अन्तर्गत था। आर्य मंजुश्रीमूलकल्प तथा अफसड और वैद्यनाथ धाम उत्कीर्ण लेखों के साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि कम से कम मध्य बंगाल और समुद्र तक दक्षिण पश्चिम बंगाल उसके राज्य के अन्तर्गत था।

(६) **उत्तरकालीन गुप्तों का उत्कर्ष**—हर्ष की मृत्यु के बाद आदित्यसेन प्रथम राजा था जिसने मगध के केन्द्र से एक अखिल उत्तरी साम्राज्य स्थापित किया। उसके राज्य का विस्तार उत्तर में गंगा से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर की पहाड़ियों तक, पश्चिम में गोमती नदी के तट से लेकर पूरब में बंगाल की खाड़ी तक था। राजा जयदेव का नेपाल उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि आदित्यसेन ने 'पराक्रमी मौखरि वंश' के भोगवर्मन् से अपनी कन्या का विवाह किया, जो अपने वंश का 'चूड़ामणि' था और जिसने 'अपने वैभव से समस्त विद्वेषी राजाओं को लज्जित किया था।'

सम्भव है कि वह पूर्णवर्मन् का वंशज हो और मौखरियों की पैतृक राजधानी कन्नौज का वह स्वामी बन गया हो। सम्भव है कि वह आदित्यसेन का सामन्त था और मौखरियों को अपनी ओर मिलाने के लिए आदित्यसेन ने अपनी पुत्री का विवाह भोगवर्मन् से किया हो, क्योंकि हर्ष की मृत्यु के शीघ्र हो बाद उत्तर भारत में अव्यवस्था फैली, नेपाल तिब्बती साम्राज्यवाद का ग्रास हुआ, अर्जुन तीर-भुक्ति का शासक बना और माधवगुप्त मगध का। प्रतीत होता है इसी समय भोगवर्मन् ने कन्नौज का सिंहासन हस्तगत किया।

(७) **धार्मिक सहिष्णुता**—आदित्यसेन धर्म-सहिष्णु था। देवबरनाक उत्कीर्ण लेख में उसको 'परम भागवत' कहा गया है। उसने भगवान् नृहरि की प्रतिमा स्थापित की, उसने अश्वमेध तथा अन्य यज्ञ किए। वह ब्राह्मण धर्म को मानने वाला तथा विष्णु का भक्त था। उसकी राज्ञी कोण देवी ने मन्दार पर्वत पर एक सरोवर का निर्माण कराया। शालपक्ष आदित्यसेन का 'बलाधिकृत' था। उसने

नालंदा के अग्रहार में एक सूर्य प्रतिमा प्रतिष्ठित की। वह ब्राह्मण धर्म को मानता था और बौद्ध धर्म का भी संरक्षक था। चीनी यात्री हुईलन सूचित करता है कि आदित्यसेन ने दक्षिण के भिक्षुओं के लिए एक मंदिर का निर्माण किया। आर्य मंजुश्रीमूलकल्प में लिखा है कि उसने ७ या ८ मठों का निर्माण किया और ८१ वर्ष तक जीवित रहा। सम्भवतः उसने ६७५ ई० तक राज्य किया।

(८) **देवगुप्त** (ल० ६७५ ई०-ल० ६९५ ई०)—आदित्यसेन के बाद उसका पुत्र देवगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने भी 'परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधियां धारण कीं। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार विनयादित्य ने ६९४ और ६९६ ई० के बीच में किसी समय उत्तर भारत के किसी सार्वभौमिक सम्राट् से युद्ध किया और उसको हराया। उसने उस सम्राट् का पालिध्वज, ढक्का (नगाड़ा) तथा अन्य राज्य चिह्नों को छीना। उसके पुत्र विजयादित्य ने और अधिक उत्तर तक विजय अभियान किया और पुनः पालिध्वज, ढक्का (नगाड़ा), गंगा और यमुना के चिह्न तथा अन्य राजकीय चिह्न और सम्पत्ति प्राप्त की। यह सार्वभौमिक सम्राट देवगुप्त के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता क्योंकि उस समय उत्तर भारत में इस प्रकार का कोई अन्य सम्राट् नहीं था। आदित्यसेन ने इलाहाबाद के पश्चिम में एक मंदिर बनवाया था। स्पष्ट है कि उसके उत्तराधिकारी देवगुप्त का राज्य दोआब में था। इसीलिए अभिलेख में लिखा है कि विनयादित्य ने उसका पराभव कर गंगा और यमुना नदियों के साम्राजिक चिह्नों को प्राप्त किया। देवगुप्त 'परममाहेश्वर' था और इत्सिंग के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसका राज्य गौड पर था। स्पष्ट है कि उसने आदित्य-सेन से पाए हुए राज्य को सुरक्षित रखा। उसने लगभग ६९५ ई० तक राज्य किया।

(९) **विष्णुगुप्त**—देवगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विष्णुगुप्त था। मगराँव से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख से निश्चित रूप से प्रमाणित है कि मगध के राजा विष्णुगुप्त का राज्य शाहाबाद जनपद के दक्षिण पश्चिमी छोर तक था। प्रतीत होता है कि उसने अपने पिता और पितामह की तरह मगध के विस्तृत साम्राज्य पर प्रतिष्ठापूर्वक राज्य किया। प्रतीत होता है उसने लगभग ६९५ से ७१५ ई० तक राज्य किया।

(१०) **जीवितगुप्त**—विष्णुगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवितगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उसने गोमतीकोट्टक किले से एक दानपत्र निःसृत किया जिससे प्रमाणित होता है कि उत्तर प्रदेश में बनारस के पश्चिम में बहुत दूर तक उसका राज्य फैला हुआ था। इस लेख (देवबरनार्क) में गोमतीकोट्टक के समीप के

शिविर का जो वर्णन दिया हुआ है उससे संकेत होता है कि जीवितगुप्त किसी शत्रु के विरुद्ध सामरिक अभियान पर था जो कन्नौज का यशोवर्मन् हो सकता है।

(११) यशोवर्मन् से युद्ध—जीवित गुप्त द्वितीय अपने वंश का अन्तिम शासक था। प्रतीत होता है कि वह यशोवर्मन् से युद्ध करता हुआ मारा गया। यशोवर्मन् के राजकवि वाक्पतिराज ने गौडवहो नामक प्राकृत काव्य में यशोवर्मन् के दिग्विजय की कथा का वर्णन किया है। उसमें लिखा है कि जीवितगुप्त के सामन्त राजाओं ने यशोवर्मन् से युद्ध किया किन्तु वे पराजित हुए। यह युद्ध संभवतः गोमती-कोट्टक के समीप हुआ। यशोवर्मन् ने मगध के राजा का पीछा किया। सामन्तों ने जीवितगुप्त का साथ छोड़ दिया। जीवितगुप्त ने पुनः अपने सैन्यदल को संगठित किया। यशोवर्मन् के हाथ उसकी गहरी पराजय हुई। यशोवर्मन् ने उसका पीछा किया और अन्ततः उसको मार डाला। यह घटना संभवतः मगध या गौड में हुई।

(१२) युद्ध की तिथि और जीवितगुप्त की मृत्यु—अब प्रश्न यह है कि यशोवर्मन् और जीवितगुप्त से कब युद्ध हुआ। राजतरंगिणी सूचित करती है कि कश्मीर का ललितादित्य और कन्नौज का यशोवर्मन् समकालीन थे। उसमें लिखा है कि ललितादित्य का अधिकार उत्तर भारत तथा भारत के बाहर के प्रदेशों पर भी था। उसने अनेक पूर्वी राजाओं से कर वसूल किया। उसका राज्य अन्तर्वेदि पर था। कन्नौज के यशोवर्मन् पर उसने रक्तरहित विजय प्राप्त की; परन्तु बाद को दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। यशोवर्मन् राज्य सिंहासन से च्युत किया गया और बाद को ललितादित्य के अधीन होकर वह राज कवि की तरह उसका यशोगान गाता था। ललितादित्य ने दक्खिन के राजा तथा गौड राजा को परास्त किया। राजतरंगिणी के अनुसार ललितादित्य ६९५ ई० में सिंहासन पर बैठा। कनिंघम ने चीनी स्रोतों के आधार पर ध्यान आकर्षित किया है कि कश्मीर का तिथिक्रम ३१ वर्ष पीछे है। कनिंघम के इस मत को विद्वानों ने सामान्य रूप से स्वीकार किया है। अतः ललितादित्य का राज्यारोहण ७२४ ई० में हुआ। गौडवहो के श्लोक ८२९ में सूर्य ग्रहण पड़ने की चर्चा है जो १४ अगस्त ७३३ ई० में पड़ा था। श्लोक ८३२ में लिखा है कि यशोवर्मन् के नेत्र का कोना फड़का क्योंकि उसकी स्थिति कुछ समय के लिए डांवाडोल हो गई थी। जकोबी ने इसका अर्थ लगाया है कि उसकी स्थिति के डावांडोल होने का अर्थ यह है कि ललितादित्य ने यशोवर्मन् के राज्य पर आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप उसकी पराजय हुई। चीनी स्रोतों में लिखा है कि मध्य देश के एक राजा ने ७३१ ई० में एक दूतमण्डल चीन भेजा। इस राजा का तादात्म्य यशोवर्मन्

से किया गया है। प्रतीत होता है कि अपनी दिग्विजय से लौटने के बाद यशोवर्मन् ने ७३१ ई० में एक दूतमण्डल चीन भेजा। ललितादित्य द्वारा यशोवर्मन् की पराजय ७३३ में हुई। ललितादित्य ने एक दूतमण्डल ७३६ ई० में चीन भेजा जिसमें ललितादित्य ने यशोवर्मन् को अपना मित्र राजा माना है। इस तिथि के बाद ललितादित्य ने यशोवर्मन् को पूर्णरूप से पददलित किया और संपूर्ण उत्तर भारत और गौड पर आक्रमण किया। अतः यह स्पष्ट है कि यशोवर्मन् ने ७३१ ई० के पूर्व जीवितगुप्त द्वितीय को पराजित एवं उसका वध किया। दिग्विजय में अवश्य ही कई वर्ष लगे होंगे और गौडवहो काव्य में लिखा है कि मगध के राजा ने उसका कई बार विरोध किया। अतः हो सकता है कि जीवितगुप्त की मृत्यु तथा पराजय लगभग ७२५ ई० में हुई हो।

(१३) **ललितादित्य द्वारा यशोवर्मन् की पराजय**—जीवितगुप्त की मृत्यु से मगध साम्राज्य का अन्त हुआ। उत्तर कालीन गुप्तवंश के विलीन होने के बाद गंगा के मैदान में पुनः अव्यवस्था और गड़बड़ी फैली। यशोवर्मन् का उत्कर्ष जितनी तीव्र-गति से हुआ था उतनी ही तीव्र गति से उसका पतन हुआ। वह निश्चय ही एक महान् विजेता था किन्तु अपने नव विजित् प्रदेशों का वह संघटन नहीं कर सका और उससे अधिक शक्तिशाली कश्मीर के समकालीन राजा ललितादित्य ने उसको पराजित किया और अन्तर्वेदि से होते हुए बङ्गाल के समुद्र तट तक वह घुसता चला गया और गौड के राजा को परास्त किया। बाद को राजा कश्मीर गया और वहाँ विश्वासघात-पूर्वक मार डाला गया। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् के आक्रमण के बाद गौड के सिंहासन पर हर्षदेव बैठा जो गौड, ओड्र, कलिङ्ग, कोसल तथा अन्य प्रदेशों का राजा था और नेपाल के राजा जयदेव का श्वसुर था। प्रतीत होता है हर्षदेव ललितादित्य द्वारा परास्त किया गया और उसकी मृत्यु कश्मीर में हुई।

(१४) **यशोवर्मन् के आक्रमण के परिणाम**—जीवितगुप्त की मृत्यु और गोपाल के उदय होने के बीच की ३० वर्ष की अवधि विदेशी आक्रमणों और उसके फलस्वरूप उत्पन्न घोर गड़बड़ी का काल है। कश्मीरी इतिवृत्तों तथा बाद के साहित्य में 'पंच गौडों' का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि आर्यमञ्जुश्री-मूलकल्प में उल्लिखित गौड तंत्र का राजनीतिक विघटन हुआ। उत्तर कालीन गुप्त वंश के लोप हो जाने के बाद अनेक प्रतिद्वंद्वी सत्ताएं और नए राजवंश सामने आए जिसके कारण जनता की विपत्ति और भी बढ़ी जो अव्यवस्था और अराजकता के पहले से ही त्रस्त थे। यशोवर्मन् के आक्रमणों के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य का अंत हुआ था; किन्तु उत्तर-कालीन गुप्तवंश के कुमारगुप्त ने मगध की स्थिति को संभाल लिया था और वहाँ अधिक

अराजकता और गड़बड़ी नहीं फैली थी। यशोवर्मन् की विजय मगध और गौड के लिए अपमान-जनक थी; किन्तु यशोवर्मन् की पराजय गौड और मगध के लिए एक बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। इसके फलस्वरूप गंगा का मैदान आन्तरिक अव्यवस्था और विदेशी आक्रमणों का ग्रास हुआ और गोपाल के उदय के पूर्व तक बंगाल और बिहार में मत्स्यन्याय का बोलबाला हुआ जिसमें अधिक बली अपने से कम बली को निगल जाता था। ऐसी ही स्थिति में जनता के महत्वपूर्ण समुदायों के नेताओं ने गोपाल को अपना राजा चुना और पाल वंश के राज्य का आरम्भ हुआ।

अध्याय | ७

यशोवर्मन्

(१) **स्रोत**—इस शासक के संबंध में कल्हण कृत राजतरंगिणी, प्रभावक-चरित, प्रबंधकोष, वप्पाभट्ट सूरिचरित, और गौडवहो ग्रन्थों में कुछ सामग्री मिलती है।[1] डॉ० कीथ ने लिखा है कि गौडवहो की वर्णन-योजना अति विशाल थी; किन्तु इसमें जितना कम से कम इतिहास हो सकता है उतना ही है। यशोवर्मन् के नाम का उल्लेख नालंदा उत्कीर्णलेख तथा घोसावाँ उत्कीर्णलेख में है। चीनी स्रोतों में लिखा है कि मध्यदेश के एक राजा ने ७३१ ई० में एक दूत-मण्डल चीन भेजा। इस राजा का तादात्म्य यशोवर्मन् से किया गया है।

(२) **वंश**—गौडवहो के लेखक वाक्पति ने लिखा है कि यशोवर्मन् चन्द्रवंश का मणि था। कनिंघम का विचार है कि वह मौखरि वंश का था जिनका राज्य हर्ष के पूर्व कन्नौज पर था। हो सकता है कि हर्ष के राज्य के अपहर्ता के दमन के बाद इस वंश का कोई व्यक्ति कन्नौज का राजा हुआ हो और उसी से यह राज्य यशोवर्मन् के हाथ आया हो। एक नेपाली उत्कीर्ण लेख में मौखरि वंश के किसी भोगवर्मन् का उल्लेख है जो यशस्वी वर्मन् परिवार का शिरोमणि था और मगध के आदित्यसेन और नेपाल के शिवदेव द्वितीय का समकालीन था। किन्तु इस उत्कीर्ण लेख से यह स्पष्ट नहीं होता कि वह कन्नौज का शासक था। वप्पाभट्ट सूरिचरित ने वर्णन किया है कि यशोवर्मन् चन्द्रगुप्त मौर्य का वंशज था। तेरहवीं या चौदहवीं शती ईसवी में रचित यही बात प्रभावक चरित में भी दुहराई गई है। किन्तु इस कथन की पुष्टि में कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। नालंदा प्रस्तर उत्कीर्णलेख में इसका कोई संकेत नहीं है। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् का संबंध किसी विख्यात वंश से नहीं है।

(३) **समय**—स्मिथ का विचार है कि यशोवर्मन् ने ल० ७२८-ल० ७४५ ई० तक राज्य किया। गौडवहो के सम्पादक शंकर पाण्डुरंग पंडित ने लिखा है कि यशोवर्मन् का शासन काल अवश्य ही सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में या आठवीं शती ईसवी के प्रथम चरण में होगा।

यशोवर्मन् का समकालीन कश्मीर का राजा ललितादित्य था। शंकर पाण्डुरंग पंडित ने कल्हण की राजतरंगिणी के आधार पर गणना करके लिखा है कि ललितादित्य का शासनकाल ६९३ और ७३० ई० के बीच में निश्चित किया जा सकता है किन्तु चीनी तिथि-क्रम को देखने से ये तिथियाँ ठीक नहीं प्रतीत होतीं। चीनी इतिवृत्तों में लिखा है कि कश्मीर के राजा चन्द्रापीड ने ७१३ ई० में एक दूत चीन भेजा; किन्तु कल्हण के तिथि-क्रम के अनुसार चन्द्रापीड ६८९ ई० में मर चुका था। अतः स्पष्ट है कि कल्हण की तिथि चीनी तिथि से ३१ वर्ष पीछे है। कनिंघम ने चीनी तिथि-क्रम को अधिक ठीक माना है और उसके मत को विद्वानों ने सामान्यरूप से स्वीकार किया है। अतः इस आधार पर कश्मीर के राजा ललितादित्य की तिथि ७२४ और ७६० ई० के बीच में होगी। यशोवर्मन् उसका समकालीन था। अतः उसकी भी तिथि अवश्य ही इसी काल में होगी।

चीनी इतिवृत्त के अनुसार 'मध्यभारत के राजा' ने ७३१ ई० में अपने मंत्री को चीन भेजा। इस राजा का तादात्म्य कनौज के यशोवर्मन् से किया गया है। प्रतीत होता है कि सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय पश्चात् यशोवर्मन् ने अपने मंत्री को चीन भेजा होगा। इस आधार पर यह माना जा सकता है ७२५ ई० के लगभग वह सिंहासन पर बैठा। यशोवर्मन् ने ७२५ ई० के लगभग तक राज्य किया। इसकी पुष्टि जैन लेखकों के कथन से होती प्रतीत होती है। अधिकांश जैन लेखकों ने लिखा है कि वह ७४३ ई० में राज्य कर रहा था। प्रबंधकोष का ग्रन्थकार राजशेखर सूचित करता है कि वप्पाभटि नामक एक जैन संत ने यशोवर्मन् के पुत्र तथा उत्तराधिकारी आमराज को ७५० ई० में जैन धर्म में दीक्षित किया। आमराज ने अपने राज्यारोहण के बाद ७५४ ई० में वप्पाभट्ट को सूरिपद पर प्रतिष्ठित किया। उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि यशोवर्मन् की मृत्यु अवश्य ही ७५० और ७५४ ई० के बीच में हुई होगी। अतः यह माना जा सकता है कि यशोवर्मन् ने ७२५—७५२ ई० तक राज्य किया और इस अवधि का उसके समकालीन कश्मीर के राजा ललितादित्य के शासन काल से साम्य है।

(४) **विजय यात्राएँ**—गौडवहो के लेखक वाक्पति ने यशोवर्मन् की विजय यात्राओं का अलंकारिक किन्तु पूर्ण वर्णन किया है; किन्तु उसने प्रायः चार

श्लोकों में ही गौड राजा के वध का वृतांत समाप्त कर दिया है। उसने मगधपति के पराजय का उल्लेख किया है। उसके वर्णन का आधार तथ्यपूर्ण हो सकता है। उसने लिखा है कि यशोवर्मन् अपनी विजय यात्रा में विन्ध्यवासिनी देवी को अपनी श्रद्धा अर्पित करने के लिए गया। उसने लिखा है कि इस देवी को मनुष्य बलि अर्पित की जाती थी। कवि ने इस विजय के यात्रा-क्रम का विवरण नहीं लिखा है। उसने लिखा है कि यशोवर्मन् के शत्रु 'मगधनाथ' ने पहले उसकी तलवार धार से बचने का प्रयत्न किया किन्तु कुछ समय पश्चात् साहस बटोर कर लड़ने को प्रस्तुत हुआ। घमासान युद्ध हुआ जिसमें मगधनाथ की पराजय और मृत्यु हुई। संभवतः यह मगधनाथ जीवितगुप्त द्वितीय था। 'गौडवहो' शीर्षक से प्रतीत होता है कि इस राजा का आधिपत्य बंगाल के कुछ भाग संभवतः पश्चिमी प्रदेश पर था। वाक्पति ने लिखा है कि उसने वंग (पूर्वी बंगाल) के राजा को पराजित किया जिसके पास युद्ध-गणों की एक शक्तिशाली सेना थी। डॉ० आर० जी० बसक ने अनुमान किया है कि यह राजा खड्ग वंश का राजराज भट्ट रहा होगा। कवि ने लिखा है कि इसके बाद यशोवर्मन् ने मलय पर्वत (दक्षिणी सह्याद्रि) को पार कर दक्खिन के किसी राजा को अधीन किया और उसकी सेना समुद्र तट तक पहुँची। प्रतीत होता है कि इस तरह वर्णन कर कवि ने रूढ़िगत 'आसमुद्र पृथ्वी विजय' को पूरा किया। इसके बाद यशोवर्मन् ने पारसिकों को हराया (जिनका नाम चालुक्य विन्यादित्य के विजय यात्रा में कावेरों और चोलों के नाम के साथ आया है।) इसके बाद यशोवर्मन् ने नर्मदा पार कर मरुदेश में प्रवेश किया और वहाँ से श्रीकंठ (थानेश्वर) आया। प्रतीत होता है कि उसने हिमालय प्रदेश के कुछ जातियों को अपने अधीन किया। इस तरह से पृथ्वी विजय कर वह अपनी राजधानी लौटा। वहाँ उसने उन नरेशों को लौट जाने की आज्ञा दी जो उसके साथ राजधानी तक आए थे।

(५) विजय यात्रा की आलोचना—डॉ० स्मिथ ने लिखा है कि वाक्पति यशोवर्मन् का समकालीन था और उसके साक्ष्य की सारभूत सत्यता में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। वह एक शक्तिशाली राजा था और एक समृद्धिशाली केन्द्रीय स्थान में राज्य कर रहा था। इस कथन में सन्देह करने की कोई बात नहीं है कि उसकी सेना ने पूरब में बंगाल में प्रवेश किया, और वह दक्षिण में नर्मदा तक और उत्तर की ओर हिमालय की तलहटी तक गई। प्राचीन भारत में इस प्रकार की विजय यात्राएँ सामान्य थीं और हर एक क्षत्रिय राजा सफल युद्ध तथा अश्वमेध यज्ञ करना अपना परम धर्म मानता था।

डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी का विचार है कि कवि ने यशोवर्मन् की दिग्विजय का एक संभाव्य घटना के रूप में वर्णन किया है, यह वास्तविक तथ्य न था। हाँ

सकता है कि उसने पौराणिक रघु की विजयों के आदर्श पर यशोवर्मन् के पराक्रमों का वर्णन किया हो। इस कथा में सन्देह की बात यह है कि इसमें किसी पराजित राजा के नाम का उल्लेख नहीं है। यह ग्रन्थ तुच्छ चाटुकारी और निरर्थक अतिशयोक्तियों से भरा है। संभाव्यतः कविता का मुख्य विषय—गौडों और मगध के राजा का वध—एक ऐतिहासिक तथ्य था। हर्ष तथा मौखरियों के समय में इस प्रदेश पर कन्नौज का आधिपत्य था। अतः यशोवर्मन् के समान उच्चाकांक्षी सम्राट् के लिए इस प्रदेश पर पुनः आधिपत्य स्थापित करना स्वाभाविक था। और उसकी सफल विजय यात्रा के उपलक्ष में कवि ने उसको विश्वविजेता के रूप में चित्रित किया हो तो आश्चर्य नहीं है। संभाव्यतः इस विजय के उपलक्ष में 'मगध और गौडपति' यशोवर्मन् ने अपने नाम पर यशोवर्मपुर नामक नगर की स्थापना की जिसका तादात्म्य कीलहार्न ने वर्तमान घोस्रवा से किया है। इस नगर का महत्व पाल शासन काल में भी था, क्योंकि महाबोधि के हीरक सिंहासन का दर्शन करने के बाद वीरदेव ने यशोवर्मपुर के विहार की यात्रा की थी, और वहाँ देवपाल के संरक्षण में दीर्घकाल तक वह ठहरा था।

(६) **जीवितगुप्त से युद्ध**—यशोवर्मन् के क्षणिक उत्कर्ष का वर्णन उसके राजकवि वाक्पतिराज ने गौडवहो नामक एक प्राकृत काव्यग्रन्थ में किया है। कल्हण की राजतरंगिणी ने भी कन्नौज के राजा यशोवर्मन् पर कुछ प्रकाश डाला है। गौडवहो काव्य के शीर्षक से यह आशय निकलता है कि इसमें यशोवर्मन् द्वारा गौडाधिपति के वध किए जाने का वर्णन है। किन्तु सत्यता यह है कि इसमें यशोवर्मन् की दिग्विजय की सविस्तार और अलंकृत कथा कही गई है और गौडाधिपति के वध का उल्लेख लगभग केवल चार द्विपदी श्लोकों में किया गया है। इस काव्य में यशोवर्मन् द्वारा मगध के राजा के पराभव का उल्लेख है। कवि ने वर्णन किया है कि विजयी यशोवर्मन् सोननदी की घाटी में आया और विन्ध्यश्रेणियों की ओर प्रस्थान किया। कवि ने किंचित अस्पष्ट श्लोक में लिखा है कि इस विन्ध्य पर्वतीय प्रदेश से मगधनाथ यशोवर्मन् के भय से भयभीत होकर भागा। उसके उन्मत्त हाथियों के झरते हुए दान से युद्ध क्षेत्र अन्धकारमय हो गया मानो उसने मन्त्रों से रात्रि-अन्धकार उत्पन्न कर दिया हो। इसके बाद कवि ने वर्षा ऋतु का वर्णन किया और तत्पश्चात् लिखा कि मगध के राजा के सामन्त और कुलीन उसके साथ भागे किन्तु अपने व्यवहार से लज्जित होकर यशोवर्मन् से युद्ध करने के लिए तुरन्त लौटे। भयानक युद्ध हुआ, जिसमें मगध के मित्र-राजाओं के रक्त से युद्धभूमि लाल हो गई। मगध का राजा भागा और यशोवर्मन् ने उसका पीछा किया और उसको मार डाला। इसके बाद उसने समुद्र तट की ओर प्रस्थान किया जो पेड़ों से आच्छादित था और

ईलायची के पौधों से सुगन्धिपूर्ण था। वह ताड़ वृक्षों के विस्तृत खेतों में घूमा। इस वर्णन के बाद कवि ने लिखा है कि यशोवर्मन् ने वंग के राजा को पराजित किया। आगे चलकर कवि ने लिखा है कि यशोवर्मन् कन्नौज को लौट आया और मगधनाथ के राजप्रासाद की महिलाएँ खुली राजसभा में उसके ऊपर चवँर डुलाती थीं। स्पष्ट है कि यशोवर्मन् ने मगधनाथ को पराजित किया और मार डाला। उसके राजप्रासाद की महिलाओं को सेविका बनाया।

ध्यान देने की बात है कि यशोवर्मन् पहले सोनघाटी में आया और विन्ध्य पर्वत श्रेणियों से होता हुआ मिर्जापुर जनपद के विन्ध्यवासिनी मंदिर में दर्शन करने गया। इसी विन्ध्य पर्वत श्रेणी के प्रदेश से मगधनाथ जो निश्चय ही जीवितगुप्त द्वितीय था उसके सामने से भागा। देवबरनार्क उत्कीर्ण लेख में संकेत है कि जीवितगुप्त ने गोमती कोट्टक में अपनी सेना एकत्र की थी। हो सकता है कि उसको कुछ विजय प्राप्त हुई हो जिसको उसने अपने उत्कीर्ण लेख में बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। यशोवर्मन् ने वेग से उसका पीछा किया और सोनघाटी में पहुँचा। जीवितगुप्त उत्तर-पूर्वी विन्ध्य प्रदेश की ओर लौट पड़ा और विन्ध्यवासिनी मंदिर में दर्शन करने गया। गौडवहो के अनुसार विन्ध्य प्रदेश में अवश्य ही कैमूरपर्वत सम्मिलित था जो विन्ध्यपर्वतश्रेणी का अन्तिम उत्तर पूर्वी भाग है और शाहाबाद जनपद के दक्षिण पश्चिम में है। जीवित-गुप्त के मण्डलिकों ने उसका साथ छोड़ दिया, वह भागा। उसने सैन्यदलों को पुनः संगठित किया और आक्रमण का प्रतिष्ठापूर्वक सामना करने का आह्वान किया। किन्तु सब व्यर्थ था। यशोवर्मन् ने असाधारण रूप से उसको पराजित किया, उसका पीछा किया और अन्त में उसको मार डाला। यह घटना संभवतः मगध या गौड में हुई।

(७) **मगधनाथ और गौडाधिपति का तादात्म्य**—इस कविता से प्रतीत होता है कि मगध के राजा और गौड के राजा एक ही व्यक्ति थे। कविता सूचित करती है कि विद्वानों ने वाक्पति से यह सुनने की इच्छा प्रकट की कि किस तरह यशोवर्मन् ने मगधनाथ का वध किया। गौडवहो के टीकाकार हरिपाल ने लिखा है कि मगधनाथ गौडाधिपति भी था। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यशोवर्मन् की दिग्विजय के वर्णन में गौड प्रदेश का नाम अलग मे नहीं आया है। मगधनाथ की पराजय तथा वध करने के बाद यशोवर्मन् ईलायची पौधों से सुरभित वृक्षों से ढके हुए समुद्रतट पर गया। उसके बाद यशोवर्मन् ने वंग (पूर्वी बंगाल) को पददलित किया। बंग विजय करने के पूर्व वह जिस समुद्र तट पर गया था वह बंगाल का दक्षिण-पश्चिमी तट था जिसमें ताम्रलिप्ति नगरी थी। गौड और मगध एक ही राजा के अधीन था

इसलिए यशोवर्मन् की दिग्विजय में गौड का अलग से उल्लेख नहीं है। आदित्यसेन ने अपने राज्य का विस्तार समुद्र तट अर्थात् बंगाल की खाड़ी तक किया था और इस भाग पर जीवितगुप्त द्वितीय का भी राज्य बना रहा। संपूर्ण काव्य में केवल एक ही श्लोक (श्लोक ११९४) है जिसमें गौड राजा के वध का उल्लेख है और वह भी अत्यंत प्रासंगिक ढंग से। यह भी अर्थपूर्ण है कि विद्वानों की मण्डली ने वाक्पति यशोवर्मन् द्वारा मगधनाथ के वध की कथा कहने की प्रार्थना की। (श्लोक ८४४) तदुपरांत कवि ने अपने संरक्षक के गुणों का वर्णन किया और अपने श्रोताओं से प्रार्थना की कि वे 'यशोवर्मन् की भुजाओं के गौरवपूर्ण शौर्य को सुनें जो पूर्वी राजा का वध करने के कारण विख्यात है।' इसके उपरांत कवि ने कहा कि 'गौडवहो की रचना हो चुकी और वह कथा कह चुका।' कवि से मगध के राजा के वध की कथा करने के लिए कहा गया। उसके उत्तर में कवि वाक्पतिराज ने पूर्वी राजा के वध का तथा कविता के मूलपाठ का गौडवहो के रूप में उल्लेख किया। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि मगध के राजा का उल्लेख पूर्वी देश और गौड के राजा के रूप में किया गया है।

इस तरह स्पष्ट है कि यशोवर्मन् ने जीवितगुप्त द्वितीय को परास्त किया और उसका वध किया। वह मगध और गौड दोनों का राजा था। चीनी और तिब्बती अभिलेख सूचित करते हैं कि ल० ७०३ ई० में नेपाल और तिब्बती साम्राज्य का भारतीय प्रदेश ने विद्रोह किया। हो सकता है कि तीरभुक्ति को जो ६४८ ई० से संभवतः तिब्बती साम्राज्य का एक अंग था विष्णुगुप्त या जीवितगुप्त द्वितीय ने मगध साम्राज्य में मिला लिया हो। यशोवर्मन् ने गुप्तवंश और उसके विस्तृत साम्राज्य को समाप्त किया। यशोवर्मन् ने मगध को पददलित किया इसकी पुष्टि यशोवर्मन् के नालंदा उत्कीर्ण लेख से होती है। इस लेख में लिखा है कि यशस्वी यशोवर्मदेव ने समस्त राजाओं के सिरों पर अपने चरणों को रखकर उन्नति किया है। यशोवर्मन् का संबंध मगध से था। यशोवर्मन् के नाम का उल्लेख नालंदा उत्कीर्ण लेख में और घोसरावां उत्कीर्णलेख में है। इन दोनों लेखों से प्रमाणित है कि यशोवर्मन का सम्बन्ध मगध से था। उसने यशोवर्मपुर नामक नगरी की भी स्थापना की थी।

(८) कश्मीर से युद्ध—कश्मीर का राजा ललितादित्य मुक्तापीड उच्चाकांक्षी राजा था। अतः यशोवर्मन् की उदीयमान शक्ति से उसका संघर्ष होना अनिवार्य था। कल्हण ने लिखा है कि ललितादित्य द्वारा आक्रमण किए जाने पर कान्यकुब्ज के विचारशील राजा ने पहले देदीप्यमान ललितादित्य को अपनी पीठ दिखाई; किन्तु बाद को उसकी अधीनता स्वीकार की। अतः यशोवर्मन् और ललितादित्य के

बीच में एक सन्धि-पत्र लिखा गया, किन्तु कश्मीर के सान्धिविग्रहिक मित्रशर्मन् ने इस आधार पर इसको प्रमाणित करना अस्वीकार किया कि उसके विजयी सम्राट् का नाम पराजित कन्नौज के राजा के नाम के बाद लिखा गया है। अतः सन्धिभंग की गई और संग्राम पुनः प्रारम्भ किए गए।

(९) **परिणाम**—इन संग्रामों का फल यशोवर्मन् के लिए विनाशकारी था। कल्हण ने लिखा है कि यमुना के तट से कालिका के तट तक कान्यकुब्ज प्रदेश ललितादित्य के पूर्ण आधिपत्य में था जिसने यशोवर्मन् को समूल उखाड़ फेंका, और कान्यकुब्ज प्रदेश को उसके ग्रामों समेत आदित्य मन्दिर को अर्पित किया जिसको उसने ललितपुर नगर में प्रतिष्ठित किया था। स्पष्ट है कि कन्नौज कश्मीर के साम्राज्य में सम्मिलित किया गया। कल्हण ने लिखा है कि यशोवर्मन् जिसकी सेवा में वाक्पतिराज, श्री भवभूति, तथा अन्य कवि थे, अपनी पराजय के बाद स्वयं ललितादित्य के गुणों का प्रशंसक हो गया। इसके संकेत होता है कि यशोवर्मन् की पराजय के बाद कन्नौज के निवासियों के दुर्धर्ष अवरोध के कारण दीर्घ अवधि तक संघर्ष चलता रहा, और अन्त में ललितादित्य ने अपने विपक्षी को एक स्वाधीन राजा के रूप में सिंहासन पर बने रहने दिया। इसकी पुष्टि औ-कांग के 'यात्रा-विवरणों' से होती है जिसमें लिखा है कि ललितादित्य मुक्तापीड ने मध्यभारत के शासक यशोवर्मन् से मिलकर तिब्बत से जाने वाले 'पांच दर्रों' के रास्तों को रोका। राजतरंगिणी सूचित करती है कि इस युद्ध के बाद ललितादित्य ने पूरब की ओर गौड तथा अन्य प्रदेशों की विजय यात्रा की। ललितादित्य की मुद्राओं का एक ढेर बाँदा के समीप पाया गया है जिससे प्रतीत होता है कि उसकी विजयी सेना ने वहाँ आवास किया था।

(१०) **पराजय की तिथि**—डॉ० स्टीन का विचार है कि यह पराजय ७३६ ई० के बहुत बाद हुई होगी। स्मिथ ने निश्चित रूप से इस पराजय की तिथि ७४५ मानी है। 'गौडवहो' ने कुछ अपशकुनपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, उदाहरणार्थ, जब उसके राजकीय पद के क्षणिक कंपन के फलस्वरूप यशोवर्मन् के नेत्र के कोर में संकोच हुआ। प्रो० जेकोबी ने इसका तात्पर्य लगाया है कि ललितादित्य के आक्रमण के फलस्वरूप यशोवर्मन् की पराजय मृत्यु या सिंहासनच्युति में रूपांतरित नहीं हुई। अन्य अपशकुनों के साथ कवि ने सूर्य-ग्रहण की भी चर्चा की है जो प्रो० जेकोबी की गणना के अनुसार कन्नौज में १४ अगस्त ७३७ ई० को पड़ा था। अतः निश्चित है कि कन्नौज पर यह आक्रमण उसी तिथि को हुआ था।

(११) **यशोवर्मदेव का नालंदा प्रस्तर उत्कीर्णलेख**—नालंदा में एक प्रस्तर उत्कीर्ण लेख मिला है जिसपर तिथि या वंशावली अंकित नहीं है। राजा

बालादित्य द्वारा निर्माण किए हुए एक मंदिर को दान देने के निमित्त यह लेख लिखा गया था। इसमें अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में यशोवर्मन् की प्रशंसा की गई है कि उसने अपनी तलवार के बल पर समस्त राजाओं के शिरों पर अपने चरण को रखकर उत्कर्ष किया। डॉ० हीरानंद शास्त्री ने इस यशोवर्मन् का तादात्म्य मंडसोर के उत्कीर्ण लेख में आए हुए यशोधर्मन् से किया है। उनके तर्क में बल नहीं है; क्योंकि उस लेख के शब्दों से यह अर्थ नहीं निकलता कि बालादित्य उस समय जीवित था और राज्य कर रहा था। इसके अतिरिक्त लिपि विज्ञान के विचार मे यह लेख यशोधर्मन् के काल के बहुत बाद का है। अतः स्पष्ट है कि यह लेख कन्नौज के यशोवर्मन् के शासन काल का है जिसने, जैसा कि 'गौडवहो' में लिखा है, मगध को अपने अधीन कर लिया था।

(१२) **मूल्यांकन**—यशोवर्मन् स्वयं एक कवि तथा कवियों का संरक्षक था। वाक्पतिराज और यशस्वी भवभूति उसकी राज सभा को सुशोभित करते थे। कहा जाता है कि यशोवर्मन् ने रामाभ्युदय नामक एक नाटक लिखा था। वल्लभ देव द्वारा संकलित 'सुभाषितावली' में उसकी कुछ कविताएँ संग्रहीत हैं। भवभूति के तीन संस्कृत नाटक—मालतीमाधव, महावीरचरित, और उत्तर रामचरित—सुविख्यात हैं। हरतेल नामक विद्वान ने लिखा है कि प्रतीत होता है कि 'रामाभ्युदय' नामक नाटक यशोवर्मन् के कुलदेवता कालप्रियनाथ के मंदिर में यात्री दर्शकों के समक्ष खेले जाने के लिए लिखा गया था।

(१३) **यशोवर्मन् के उत्तराधिकारी**—जैन ग्रन्थों (१. बप्पाभट्ट चरित, २. प्रबंध कोष) से प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् का पुत्र आम की राजसभा गोपगिरि (ग्वालियर) में थी। किन्तु प्रभावकचरित ने लिखा है कि वह न केवल गोपगिरि पर बल्कि कन्नौज पर भी राज्य करता था। वह जैन धर्म के प्रति अति श्रद्धावान् था और बप्पाभट्ट उसका धर्म गुरु था। उसने स्तम्भतीर्थ, गिरनार, पाटन आदि तीर्थ स्थानों की यात्राएं की थीं। उसका पुत्र दुष्चरित्र दुन्दुक अपने पुत्र भोज द्वारा मार डाला गया। प्रतीत होता है कि इन चारों का शासन काल मिलाकर १५ से २० वर्ष रहा होगा।

(२) आयुध वंश

(१) **वज्रायुध**—नाटककार राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी में वज्रायुध का नाम आया है जो पांचाल का राजा था और जिसकी राजधानी कन्नौज थी। जैन हरिवंश सूचित करता है कि इन्द्रायुध नामक कोई राजा ७८३–८४ ई० में कन्नौज में राज्य कर रहा था। स्पष्ट है कि वज्रायुध का शासन काल अवश्य ही

६८३–८४ ई० के पूर्व था। कल्हण ने लिखा है कि कश्मीर का राजा जयपीड विनयादित्य (७७९–८१० ई०) ने कन्नौज के राजा को युद्ध में हरा कर राजकीय सत्ता का चिह्न उसका सिंहासन ले आया। यदि यह मान लिया जाय कि सिंहासन पर बैठने के शीघ्र ही बाद जयपीड ने कन्नौज पर आक्रमण किया तो उसका युद्ध वज्रायुध से हुआ होगा जिसको उसने हराया और सिंहासनच्युत किया, और यदि यह युद्ध जयपीड के शासन के उत्तर काल में हुआ तो कन्नौज का पराजित राजा अवश्य ही इन्द्रायुध था।

(२) **इन्द्रायुध**—प्रतीत होता है कि वज्रायुध के बाद इन्द्रायुध सिंहासन पर बैठा। जैनहरिवंश में लिखा है कि वह 'उत्तर का राजा' के रूप में प्रसिद्ध था और वह ७८३ या ७८४ ई० में राज्य कर रहा था। उत्तर के राज्यों में कन्नौज राज्य की अब भी ख्याति थी। डा० अल्तेकर ने लिखा है कि कन्नौज उत्तरी भारत का प्रमुख नगर था और इन्द्रायुध वहाँ राज्य कर रहा था; किन्तु वह मात्र पदवीधारी सम्राट् था। उस समय बंगाल का पालवंश और उज्जैन का गुर्जर प्रतिहार वंश उत्कर्ष पर थे। कन्नौज को विजय कर और उसके नाममात्र के सम्राट् को अपना पिट्ठू बना कर वे उत्तरी भारत पर अपनी प्रमुखता स्थापित करना चाहते थे। सर्व-प्रथम गुर्जर प्रतिहार राजा वत्सराज ने कन्नौज पर धावा कर इसे अपने अधिकार में किया; किन्तु इन्द्रायुध को अपने संरक्षण में एक कठपुतली सम्राट् के रूप में बने रहने दिया। वत्सराज की सफलता से उसके प्रतिद्वंद्वी गौड़ाधिपति धर्मपाल की इर्ष्या उत्तेजित हुई और वत्सराज की सत्ता को चुनौती देने के लिए वह दोआब पर चढ़ आया; किन्तु वत्सराज ने उसे पराजित किया। धर्मपाल ने दोआब पर दूसरी बार आक्रमण करने के लिए अपनी सैन्य शक्ति को पुनः सुसज्जित किया और जब वह दोआब की ओर प्रयाण कर रहा था और प्रतिहार राजा वत्सराज उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ रहा था, उसी समय ध्रुव ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करने के लिए बड़ी दक्षता से योजना बनाई। उसने नर्मदा के तट पर एक प्रबल सेना एकत्र की और नर्मदा को पार कर बिना अधिक विरोध के मालवा पर अधिकार कर लिया, क्योंकि उस समय वत्सराज की मुख्य सेना दोआब में थी। उसके बाद उसने दोआब की ओर प्रयाण किया। उधर वत्सराज भी इस नए संकट का सामना करने के लिए दोआब से चला। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ झाँसी के समीप किसी स्थान पर हुई। राष्ट्रकूट ध्रुव ने वत्सराज की सेना का ऐसा दलन किया कि उसको भाग कर मरुस्थल में शरण लेनी पड़ी। इस विजय के बाद ध्रुव ने धर्मपाल से लोहा लेने का निश्चय किया जिसकी सेनाएं दोआब के अंचल पर मडरा रही थीं। इस बार भी राष्ट्रकूट सम्राट् की विजय हुई, और धर्मपाल को अपने साम्राजिक धवल-छत्र को छोड़कर

मैदान से भागना पड़ा। इसके बाद ध्रुव कुछ सप्ताह गंगा और यमुना के तट पर ठहरा, और अपने आवास की स्मृति में राष्ट्रकूट झण्डे में गंगा और यमुना नदियों को अंकित किया। इन विजयों के पश्चात् ध्रुव ने आगे बढ़ कर कन्नौज पर अधिकार नहीं किया, क्योंकि वह अपने केन्द्र स्थान से दूर था और उसे अपने राज्य में उत्तराधिकार के झगड़े को निबटाना था।

(३) **चक्रायुध**—नारायण पाल के भागलपुर ताम्रपट्ट से प्रतीत होता है कि धर्मपाल ने इन्द्रायुध या इन्द्रराज तथा अन्य शत्रुओं को हराकर कन्नौज का आधिपत्य प्राप्त किया, और तत्पश्चात् वहाँ का राज्य चक्रायुध को प्रदान किया जो संभाव्यतः पराजित राजा का भाई या पुत्र था। मुंगेर ताम्रपट्ट से प्रमाणित होता है कि कन्नौज विजय करने के बाद धर्मपाल ने उत्तरी भारत के पर्वतीय प्रदेशों पर भी अधिकार किया। धर्मपाल के खलीमपुर ताम्रपट्ट में वर्णन है कि धर्मपाल ने भोज और मत्स्य (उत्तर-पूर्वी राजपूताना), मद्र कुरु, यदु (मध्य पंजाब) अवन्ति, गन्धार और कीर के राजाओं की उपस्थिति में चक्रायुध को कान्यकुब्ज की गद्दी पर बैठाया। और इस तरह धर्मपाल ने उत्तरी भारत की अधीश्वरता औपचारिक रूप से ग्रहण की।

गुजराती कवि सोड्ढल ने 'उदय सुन्दरी कथा' नामक चम्पू-काव्य में धर्मपाल को उत्तरापथ-स्वामिन् लिखा है। किन्तु धर्मपाल यह अधीश्वरता अधिक काल तक नहीं भोग सका, क्योंकि प्रतिहार नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर आक्रमण किया और उसकी अधीश्वरता को समाप्त कर दिया।

खण्ड २

गुर्जर प्रतिहार वंश

अध्याय | १

गुर्जरों का निवास-स्थान

हूण आक्रामकों के उत्तरी पंजाब में चले जाने के बाद राजपूताना तथा आस-पास के प्रदेशों में अनेक राजपूत जातियों—प्रतिहारों, चाहमानों, गुहिलोतों, परमारों, चौलुक्यों आदि—का प्रादुर्भाव हुआ जिनकी सत्ता धीरे-धीरे उत्तरी भारत में छा गई। इसके पूर्व उनका नाम नहीं सुना गया था। अतः कुछ विद्वानों की धारणा है कि वे हूणों के साथ या उसके कुछ समय बाद मध्य एशिया से आए और भारत में बस गए। किन्तु डॉ० बैजनाथ पुरी, डॉ० डी० सी० गांगुली, डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वानों की धारणा है कि ये भारत के ही निवासी थे। डॉ० पुरी ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर सिद्ध किया है कि ये विदेशी नहीं थे बल्कि ये अर्बुदाचल पर और उसके आस-पास रहते थे और वहीं से ये उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में गए।

श्री जेकशन ने गुर्जर शब्द का 'खजर' से तादात्म्य किया है किन्तु यह धारणा समान अंत्य अक्षर के क्षीण साक्ष्य पर आधारित है। इसके अतिरिक्त गुर्जर का अंत्य अक्षर जर है न कि ज़र। इस आधार पर भी इनको विदेशी कहा जाता है कि हूणों के आगमन के कुछ ही समय पश्चात् छठवीं शती ईसवी में एक राजनीतिक शक्ति के रूप में इनका अकस्मात् प्रदुर्भाव हुआ और ये धीरे-धीरे पंजाब से दक्षिण पूर्व की ओर फैले। डॉ० मजुमदार ने लिखा है कि ये तर्क न तो बहुत प्रबल हैं, और न निर्णायक ही। गुर्जरों का पंजाब से आगमन स्वयमेव यह सिद्ध नहीं करता कि ये विदेशी थे। इसके अतिरिक्त डॉ० पुरी ने नृवंशविज्ञान तथा भाषाविज्ञान के आधार पर सिद्ध किया है कि गुर्जरों का मूल निवास राजपूताना में था और यहीं से ये विभिन्न कालों में भारत के विभिन्न भागों में फैले और उनकी गुजुरी बोली और राजस्थान की मेवाती बोली में घना संबंध है। इसके अतिरिक्त प्राचीन साहित्य और

अभिलेखों में गुर्जरों और हूणों का नाम एक साथ नहीं आया है। अतः यह नहीं प्रमाणित होता है कि गुर्जर किसी रूप में हूणों से संबंधित थे।

महाभारत के भीष्मपर्व में हूणों का तथा अन्य अनेक अवर जनजातियों का नाम आया है किन्तु उनमें गुर्जरों का नाम नहीं है। इसके उत्तर में श्री जेकशन का यह कथन कि हूण आक्रामकों में गुर्जरों का स्थान गौण था, ठीक नहीं प्रतीत होता। क्या कारण है कि एक गौण जाति के होते हुए भी गुर्जरों ने अनेक राज्य स्थापित किए और महाभारत में अन्य अवर जातियों के साथ गुर्जरों का नाम क्यों नहीं सम्मिलित किया गया ? ह्वेनसांग (६२९–६४४ ई०) ने एक गुर्जर राज्य का उल्लेख किया है जो पश्चिमी भारत का एक सर्वाधिक विशाल राज्य था और जिसका राजा था और जिसकी राजधानी भिनमाल थी। किन्तु उसने हूणों या उनके किसी राज्य का उल्लेख नहीं किया है। इससे प्रतीत होता है कि गुर्जरों का हूणों से कोई साहचर्य नहीं था। बाण ने अपने 'हर्षचरित' में हूणों और गुर्जरों में भेद माना है।

ह्वेनसांग ने गुर्जर शासक को क्षत्रिय कहा है किन्तु ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि ग्यारहवीं शती ईसवी के पूर्व हूण भारतीय समाज में सम्मिलित किए गए। महेन्द्रपाल के ८९९ ई० के 'उन' उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि चालुक्य महासामन्त बलवर्मन् ने 'भुवन को हूण-वंश से हीन किया।' यद्यपि बलवर्मन् कन्नौज के गुर्जर राजा का महासामन्त था जो हूणों का कथित मित्र था। इससे स्पष्ट संकेत होता है कि उस समय भी हूण बर्बर जाति के माने जाते थे और उनके प्रति राजनीतिक विद्वेषता और सामाजिक विद्रूपता थी।

यदि यह कहा जाय कि गुर्जर छठवीं शती ईसवी के कुछ पूर्व आए थे तो यह ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि उस समय तक उनके कई राज्य यहाँ स्थापित हो चुके थे। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे प्रतीत हो कि ये पंजाब की उर्वरा भूमि छोड़कर राजपूताना के अनुपजाऊ मरुभूमि में क्यों आकर बसे और क्यों इतनी सुगमता से ये हिन्दू समाज में सम्मिलित किए गए और उच्च वर्ण में रखे गए ? गुर्जर ब्राह्मण और गुर्जर क्षत्रिय के उल्लेख मिलते हैं। यदि ये विदेशी होते तो ऐसा होना बिलकुल असंभव था। यवन ब्राह्मण या हूण ब्राह्मण का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। डॉ० पुरी ने लिखा है कि भारत के विभिन्न भागों से प्रायः आधे दर्जन अभिलेख मिले हैं जिनमें गुर्जर ब्राह्मण के 'कृष्ण-त्रेयकुल' (गोत्र) का उल्लेख है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख पाँचवीं शती में है। यह अत्यंत असंभाव्य है कि यह गोत्र उनको हिन्दू समाज में सम्मिलित करने के लिए बनाया गया हो। गुर्जर-ब्राह्मण वंश के अधिक प्राचीन उल्लेख से यह बात प्रमाणित होती है कि गुर्जर विदेशी नहीं थे। तमिल कविता 'मणिमेखलइ' में गुर्जर का उल्लेख है जिसकी रचना छठी शती ईसवी में हुई थी।

हूणों के आगमन के पाँच सौ वर्ष बाद भी उनके अत्याचारों की स्मृति बनी रही और दीर्घकाल तक उनकी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति अमहत्वपूर्ण रही किन्तु गुर्जरों के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात न थी। मन्दोर और कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार वंश दोनों ही अपनी उत्पत्ति 'तीव्र-दण्ड सौमित्रि' 'राम भद्रस्य स्व भ्रात्रा' लक्ष्मण से मानते हैं। ऐसा कहीं उल्लेख नहीं है कि उन्होंने मूलनिवासियों को हटाया हो या उनको कोई असुविधा पहुँचायी हो।

अन्य अनेक भारतीय जन जातियों की तरह गुर्जर अर्बुदाचल के आस-पास रह रहे थे और वे तभी प्रसिद्ध हुए जब उन्होंने हूणों के प्रत्यागमन के बाद अपने अनेक राज्य स्थापित किए। प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में उनका नाम नहीं आया है। इस आधार पर यह संदेह नहीं किया जा सकता है कि ये यहाँ के निवासी नहीं हैं, क्योंकि राजपूताना में ऐसे अनेक छोटे राज्य थे जिनके सम्बन्ध में जानकारी भारत में ब्रिटिश राज्य होने पर ही हुई। खरपरिक और शनकानीक प्रभृति पर्वतीय जन-जातियों को कौन जानता यदि समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ उत्कीर्ण लेख प्राप्त न होता।

गुर्जर का अर्थ—डॉ० मजुमदार ने लिखा है कि गुर्जर शब्द से प्रथमतः गुर्जर जाति का बोध होता है और गुर्जर देश, गुर्जरत्रा भूमि गुर्जराष्ट्र आदि भौगोलिक नाम उनके नामों पर पड़े हैं। इसमें विभिन्न वर्णों के लोग थे और यह शब्द एक जन जाति या समूह का बोधक है, जिसमें विभिन्न जातियाँ थीं। उदाहरणार्थ, प्रतिहार हरिचन्द्र ब्राह्मण था जिसके पुत्र रज्जिल ने मंडोर वंश की नींव रखी। उज्जैन और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट क्षत्रिय था। किन्तु दोनों के मूल पुरुष एक ही थे। ओझा, हैल्डर और शर्मा का यह विचार है कि विभिन्न वंशों या वर्णों के लोग प्रतिहार कहे जाते थे क्योंकि उनके पूर्वज द्वारपाल (प्रतिहार) का धंधा करते थे। प्राचीन साहित्य में गुर्जर नाम किसी प्रदेश के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया है और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की यह धारणा भ्रामक है कि यह शब्द देशवाचक है। गुर्जरत्रा नाम इसलिए पड़ा कि वहाँ गुर्जरों की बस्ती थी। प्रतीत होता है कि गुर्जर बस्तियाँ मध्य और पूर्वी राजपूताना में थीं। बाद को जिनदत्तसूरि ने गणधरसारशतक गुजरट्टा का प्रयोग गुजरात के अर्थ में किया है जिसकी राजधानी अणहिल्यवाड़ (अणहिल्लपाटक) थी और जिसका शासक दुर्लभराज था। प्राचीन काल में गुर्जराष्ट्र, गुर्जरदेश, गुर्जरनृप, गुर्जर-मण्डल आदि शब्दों का प्रयोग उस समय के उत्कीर्णलेखों में पाया जाता है, जिसमें चौलुक्य भीमदेव, कुमारपाल आदि गुर्जर और गुर्जर पति कहे गए हैं। उस समय अनेक गुर्जर बस्तियाँ थीं और गुर्जरों के कई शासक-वंश थे। प्रतीत होता है कि उनका मूल वंश एक ही था और

वे एक ही मूल स्थान आबू पर्वत के आस-पास के प्रदेश से आए थे। बाणकृत हर्ष-चरित में राजाधिराज प्रभाकरवर्धन को 'गुर्जर प्रजागरो' (गुर्जरों को जागते रखने वाला) कहा है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि गुर्जर राज्य पश्चिमी भारत का द्वितीय बड़ा राज्य है। प्रत्यक्षतः उस समय इसमें राजपूताना सम्मिलित था और ह्वेनसांग के अनुसार उसकी परिधि ८३३ मील थी। चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय के एहोल उत्कीर्णलेख (६३४ ई०) में गुर्जरों का नाम आया है जो अवश्य ही भड़ौच के थे। इन साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि उस समय गुर्जरों के दो राज्य थे, एक राजपूताना में, और दूसरा भड़ौच में।

गोविन्द तृतीय के रधनपुर ताम्रपट्टों (८०८ ई०) में और कृष्ण तृतीय के देवली ताम्रपट्ट और कर्हदपट्ट में गुर्जर शब्द गुर्जर नरेश के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। राष्ट्रकूट कर्क के बरोदा ताम्रपट्ट (८१२ ई०) में गुर्जरेश्वर पति और गुर्जरेश्वर शब्द आए हैं। अनेक अभिलेखों में कन्नौज के प्रतिहार नरेश का उल्लेख गुर्जर शब्द से किया गया है और उसके देश को गुर्जर देश कहा है। अमोघवर्ष के संजन ताम्रपट्ट (८७१ ई०) में लिखा है कि जब विजयी सम्राट् राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग ने उज्जैनी में हिरण्यगर्भ-महादान उत्सव मनाया तो गुर्जर देश आदि के राजाओं ने प्रतिहारी का कार्य किया (हिरण्यगर्भं राजन्यैरुज्जयन्यां यदासितम्। प्रतिहारी कृतं येन गुर्जरेशादि राजकम्।')

राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के देवली और कर्हदपट्टों में लिखा है कि 'दक्षिण प्रदेशों के समस्त दुर्गों के विजय किए जाने की सूचना पाकर गुर्जर के हृदय से कालंजर और चित्रकूट की आशा जाती रही' (दक्षिणदिग्दुर्ग विजयं आकर्ण्य, गलिता गुर्जर-हृदयात् कालंजर-चित्रकूट-आशा) अमोघवर्ष प्रथम (८६६ ई०) के समय के एक अभिलेख में लिखा है कि प्रभूतवर्ष गोविन्द तृतीय ने केरल, मालव, और सौत के लोगों के साथ गुर्जरों को भी बन्दी किया जो चित्रकूट (चितौर राजपूताना) नामक गढ़ में रहते थे। जैन-हरिवंश (७८३-८४ ई०) में लिखा है कि प्रतिहारवंश का वर्षराज अवन्ति का राजा था। इससे स्पष्ट है कि कन्नौज प्रस्थान करने के पूर्व प्रतिहारों की राजधानी उज्जैनी थी।

अरब निवासी सुलैमान (८५१ ई०) ने लिखा है कि जुर्ज के राजा के पास विपुलधन, कुशल अश्वारोही और बहुसंख्यक ऊंट थे। स्पष्टतः जुर्ज शब्द कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राज्य के लिए प्रयोग किया गया है।

गुर्जर-प्रतिहार

राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के देवली और कर्हदपट्टों में लिखा है कि गुर्जरों ने राष्ट्रकूट राजा की वक्र दृष्टि के कारण कालंजर और चित्रकूट पाने की आशा त्याग

दी। यहाँ गुर्जर शब्द कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार राजाओं के लिए आया है; क्योंकि मात्र वे राष्ट्रकूटों के विरुद्ध खड़े हो सकते थे। इसी तरह बरोदापट्ट में गुर्जरेश्वर शब्द कन्नौज के नागभट्ट द्वितीय के लिए आया है। 'पंच-भारत' के लेखक ने प्रतिहार राजा महीपाल को गुर्जर राजा लिखा है।

गुर्जर-प्रतिहारों के कम से कम दो परिवारों का नाम उस समय के इतिहास में आया है—एक हरिचन्द्र का वंश जो मंडोर और मेदान्तक (मेरटा) में राज्य करता था। यह एक छोटा राज्य था और संभाव्यतः कन्नौज वंश का मण्डलिक राज्य था। दूसरा वंश उज्जैन और कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों का था जिनका राज्य भोज और महेन्द्रपाल के समय अपने चरमोत्कर्ष पर था। गुर्जर साहसी और परिश्रमी थे। उनकी एक शाखा उत्तर-पश्चिम भारत के हजारा पहाड़ियों, पेशावर के उत्तर स्वात नदी और कश्मीर की पहाड़ियों तक पहुँच गई थी और उनकी दूसरी शाखा दक्षिण-पश्चिम में भड़ोच और काठियावाड तक फैल गई। १८८१ और १८९१ की जनगणना के अनुसार उनकी संख्या गुजरात (पंजाब), हजारा, होशियारपुर, कश्मीर, जम्बू, लुधियाना, रावलपिण्डी, कर्नाल, और गुरगाँव में; और उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, मेरठ और बुलन्दशहर में और इसी प्रकार मालवा, धोलपुर, इन्दौर, जयपुर, होशंगाबाद, कोटा और कच्छ में अधिक है। फर्रुखाबाद जनपद में जिसके अन्तर्गत कन्नौज है १८९१ में ८३ हिन्दू गूजर और २८ मुसलमान गूजर थे। स्पष्ट है कि कन्नौज में उनकी बस्ती न थी। वे पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम जनपदों में पाए गए थे किन्तु पूर्वी जनपदों में नहीं। इससे प्रतीत होता है कि पश्चिम की ओर से उन पर कोई ऐसा विदेशी दबाव नहीं पड़ा कि वे पूरब की ओर प्रस्थान करें। वस्तुतः उनका प्रस्थान अर्बुदाचल से पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम, और उत्तर और उत्तर-पश्चिम की ओर था।

ग्रियर्सन के अनुसार मरी, जम्बू, चित्राल, हजारा, स्वात नदी के आस-पास और कश्मीर की पहाड़ियों में रहने वाले गूर्जरों की अपनी एक अलग बोली है जो गुजुरी के नाम से विख्यात है। यह बोली राजस्थान की मेवाती बोली से बहुत मिलती-जुलती है। यद्यपि इसमें पुश्तो-कश्मीरी बोली के शब्द मिल गए हैं किन्तु इसकी व्याकरण और मेवात की व्याकरण प्रायः एक सी है। मेवारी की व्याकरण से इसका घनिष्ठ साम्य है। पूर्वी राज्यस्थानी से निकली हुई यह एक ठोस बोली है जो स्वात में हिमालय की छोटी पहाड़ियों से लेकर चम्बा, गढ़वाल, कुमायूँ से होते हुए पश्चिमी नेपाल तक फैली हुई है। पूर्वी राजस्थानी और विशेषरूप से मेवाती से मिलती-जुलती यह बोली पूर्वी राजपूताना से सैकड़ों मील दूर के प्रदेशों में बोली जाती है, यद्यपि वहाँ की भाषाएं भिन्न हैं। बात यह है कि गुर्जर पश्चिम से नहीं

आए बल्कि पूरब से पश्चिम की ओर आए। यदि वे पश्चिम की ओर से आए होते तो पंजाब की उर्वरा भूमि को छोड़कर वे राजपूताना के मरु प्रदेश की ओर क्यों आते। वे पंजाब ही में बस गए होते। इसके अतिरिक्त इन दोनों बोलियों में इतना साम्य न होता, क्योंकि ये बोलियाँ एक दूसरे से एक हजार मील की दूरी पर हैं। एक हजार वर्ष से अधिक समय बीत जाने पर भी एक हजार मील दूरी पर गुजुरी स्वात में और हजारा जनपदों में अपने शुद्ध रूप में वर्तमान है।

सर हेनरी इल्लियट ने नृवंश विज्ञान के आधार पर लिखा है कि गुर्जर सीथियन, जीटो, युयेची, खिजर आदि से बिलकुल नहीं मिलते बल्कि इनका तादात्म्य जाटों और राजपूतों से है। श्री मैक फरलेन ने रक्त परीक्षा के आधार पर लिखा है कि उत्तरी भारत की सैनिक जातियाँ राजपूत, जाट-गूजर जातियों के रक्त में इतना साम्य है कि इनमें अन्तर नहीं किया जा सकता है। अतः यह अनुमान करना बिलकुल ठीक है कि गुर्जरों का मूल निवास-स्थान राजपूताना था और यहीं से निकल कर वे विभिन्न समयों में विभिन्न ओर गए।

अध्याय | २

हरिचन्द्र के वंश का इतिहास

उस समय के उत्कीर्ण लेखों में दो अलग प्रतिहार परिवारों के नाम आए हैं, एक हरिचन्द्र (लगभग ६०० ई०) का वंश था और दूसरा नागभट (लगभग ७३० ई०) का। प्रतीत होता है कि आगे चलकर हरिचन्द्र का वंश नागभट के वंश का मण्डलिक हो गया।

बाउक के जोधपुर उत्कीर्ण लेख (८३७ ई०) के अनुसार हरिचन्द्र के वंश की उत्पत्ति रामभद्र के भ्राता लक्ष्मण से हुई जिन्होंने प्रतिहारी का कर्त्तव्य-पालन किया।

स्वभ्रात्रा रामभद्रस्य प्रातिहार्यं कृतं यतः।
श्री प्रतिहारवंशोयं अतस् चोन्नतिं आप्नुयात्॥

हरिचन्द्र जाति का ब्राह्मण और प्रतिहारवंश का गुरु था। उसका पहला विवाह एक ब्राह्मण की कन्या से हुआ, और दूसरा विवाह क्षत्रिया भद्रा से। ब्राह्मण पत्नी की संतान प्रतिहार ब्राह्मण कहलाई और राज्ञी भद्रा के चार पुत्र थे जो 'मधुपायी' अर्थात् क्षत्री के कहलाए।* इन चारों ने मिलकर मांडव्यपुर (मंडोर) गढ़ को जीतकर प्रतिरक्षात्मक दीवाल खड़ी की। इस वंश के चौथे शासक नागभट ने मंडोर से अपनी राजधानी हटा कर मेदान्तक (मेरटा) में स्थापित की।

---

*याज्ञवल्क स्मृति, आचाराध्याय, श्लोक ६१ पर आचार्य विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका में लिखा है कि क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र क्षत्रिय माना जाना चाहिए, ब्राह्मण नहीं। ('यत्तु ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव भवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादितः शूद्र एव भवतीति शंखस्मरणम्'।)

इस वंश के चौदहवें शासक कक्कुक के घटियाला उत्कीर्ण लेख (८६१ ई०) के अनुसार कक्कुक (८६१ ई०) के समय में इस वंश के पराक्रम की ख्याति स्त्रवणि, वल्ल, माड, आर्यावर्त, गुर्ज्जरट्टा, लाट और पर्वत में फैली। इस राज्य का विस्तार जोधपुर से चालीस मील उत्तर-पश्चिम,और साठ मील उत्तर-पूरब था। अतः ह्वेनसांग ने जिस गुर्जर राज्य की चर्चा की है और जिसकी परिधि ८३३ मील थी वह यह राज्य नहीं था। बल्कि वसंतगढ़ उत्कीर्ण लेख (६२५ ई०) का वर्मलाट वंश था जिसका राज्य बड़ा था, और जिसको ह्वेनसांग ने क्षत्रिय लिखा है।

इस वंश के चौथे शासक नागभट ने अपने राज्य की सीमा को बढ़ाया और संभवतः सामरिक या प्रशासनिक कारण से अपनी राजधानी मेरटा से हटा कर मेदान्तक में स्थापित किया। नागभट के एक वंशज शिलुक ने स्त्रवणि के शासक का पक्ष ग्रहण कर वल्लमण्डल के भट्टिक देवराज को परास्त किया जिसके फलस्वरूप शान्ति स्थापित हुई और एक स्थायी सीमा बनाई गई। स्त्रवणि के शासक ने उसको क्षत्र चिह्न दिया। शिलुक ने एक सरोवर खुदवाया, एक नगर की स्थापना की और त्रेत्रा नामक तीर्थ स्थान में सिद्धेश्वर महादेव का एक ऊँचा मंदिर बनवाया। आगे चलकर इस वंश के कक्क नामक शासक ने मुद्गगिरि (मुंगेर) में गौड़ों के विरुद्ध लड़ कर ख्याति प्राप्त की। संभवतः उसने इस युद्ध में नागभट के एक मित्र राज्य के रूप में भाग लिया था। उसके पुत्र बाउक के विरुद्ध कुछ राज्यों ने एक संघ बनाया और उसके मित्र राजा नंदवल्ला को मार डाला। बाउक के कनिष्ठ भ्राता और संबंधियों ने भी उसका साथ छोड़ दिया और बाउक भुवाकूप में जा छिपा। बाद को बाउक ने अपने शत्रु मयूर राजा और उसके संबंधियों का वध किया जैसा कि उसकी प्रशस्ति (८३७ ई०) में लिखा है। अंततः बाउक विजयी हुआ।

इस वंश के अंतिम शासक कक्कुक ने पड़ोस के प्रदेशों स्त्रवणि, वल्ल, माड, आर्य, गुर्ज्जरट्टा, लाट, और पर्वत में कीर्ति प्राप्त की। संभवतः अपने अधीश्वर की पश्चिमी भारत की रणयात्रा में उसने यह ख्याति प्राप्त की, क्योंकि कन्नौज के प्रतिहार वंश का राज्य गुर्जरत्रा पर था और उसका आधिपत्य काठियावाड़ तक स्वीकार किया जाता था। कक्कुक के किसी उत्तराधिकारियों का उल्लेख नहीं मिलता। अतः हो सकता है कि यह वंश समाप्त हो गया हो और विशाल गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य में समा गया हो।

राज्य-विस्तार—कन्नौज के गुर्ज्जर-प्रतिहारों का राज्य काठियावाड़ तक फैला था और यह अनुमान करने का कोई कारण नहीं है कि बीच के राज्य कन्नौज के मण्डलिकों में सम्मिलित नहीं थे। जोधपुर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि कक्क ने गौड़ों के विरुद्ध मुद्गगिरि में युद्ध कर ख्याति प्राप्त की। नागभट्ट द्वितीय और वंग

राजा के बीच जो संघर्ष हुआ, उसका उल्लेख भोज के सगरतल (ग्वालियर) उत्कीर्ण लेख में है जिसमें नागभट ने वंगपति को परास्त किया। यह अत्यंत असंभाव्य है कि कक्क ने वंगपति के विरुद्ध बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अकेले युद्ध किया हो। संभाव्यतः वह नागभट के साथ इस युद्ध में गया था। बुचकला उत्कीर्ण लेख (८१५ ई०) से स्पष्ट है कि नागभट द्वितीय (लगभग ८०८-८३३ ई०) के राज्य में बुचकला सम्मिलित था जो मेरता के और आगे है।

भड़ौच के गुर्जर नृप वंश—प्रतीत होता है कि भड़ौच के गुर्जर वंश पहले कलचुरियों (५९२ ई०) या कलचुरियों के मण्डलिक थे और बाद को बदामी (लगभग ६०० ई०) के चालुक्यों के। उनका राज्य किम और माही नदियों के बीच में था। इसमें मध्य गुजरात का सम्पूर्ण और दक्षिण गुजरात का उत्तरी भाग सम्मिलित था। उनके विरुद 'सामन्त', 'महा सामन्त' और 'समधिगता पंचमहाशब्द' थे अर्थात् जिन्होंने पाँच महाशब्द प्राप्त कर लिया है अर्थात् उनकी विशिष्टता के चिह्न स्वरूप उनके सम्मान में शृंग, तम्मत, शंख, भेरी, और जयघंटा बजाए जाते थे। नवसारी दानपत्र (७३८ ई०) से पता चलता है कि ताजिकों या अरबों ने इस गुर्जर राज्य को नष्ट किया लेकिन जब वे नवसारिका पहुँचे तो चालुक्य सम्राट् ने उनको परास्त कर अपना राज्य किम नदी तक, या माही नदी तक भी, बढ़ा लिया।

अध्याय | ३

उज्जैन और कन्नौज का गुर्जर-प्रतिहार वंश

मध्यभारत और दक्षिण-पश्चिम भारत में नागभट प्रथम ने अरब आक्रमणों की गति को रोक कर ख्याति प्राप्त की। भोज की ग्वालियर-प्रशस्ति ने नागभट प्रथम की प्रशंसा की है कि उसने म्लेच्छों को खदेड़ा। इस्लाम की सेनाओं को परास्त कर और लुटेरों को अन्ततः पीछे खदेड़ कर नागभट प्रथम ने उन छोटे राज्यों का एकीकरण किया जिनको अरब आक्रमणों ने पददलित किया था। उसने अपने राज्य को उज्जैन से अरब सागर तक बढ़ाया।

भोज (लगभग ८३६-८९० ई०) के सगरतल (ग्वालियर) प्रशस्ति के अनुसार इस वंश की उत्पत्ति लक्ष्मण से हुई जिन्होंने इन्द्र के घमंड को चूर किया और जो युद्ध में मेघनाद के लिए तीव्र दण्ड स्वरूप थे। यह वंश शुद्ध क्षत्रिय रक्त का था। नागभट प्रथम का भ्रातृ-पौत्र वत्सराज विशिष्टतम क्षत्रियों में अग्रणी था। उसके पुत्र नागभट द्वितीय ने क्षात्र-धर्म विधि से अनेक धार्मिक कृत्य किए। महेन्द्रपाल (लगभग ८८९-९१० ई०) और उसके पुत्र महीपाल प्रथम के राजकवि राजशेखर ने अपने, संरक्षकों को क्रमशः 'राजकुल तिलक' और 'रघुवंश मुकुटमणि' लिखा है।

इस वंश की राजधानी उज्जैनी थी। जैन हरिवंश (७८३ ई०) ने नागभट प्रथम के पौत्र वत्सराज को अवन्ति-भूभृत लिखा है। अमोघवर्ष के संजन ताम्रपट्ट उत्कीर्ण लेख (८७१ ई०) के अनुसार उज्जैनी में हिरण्यगर्भ महादान उत्सव के समय गुर्जरपति ने प्रतिहारी का कार्य किया। एल्लौरा दशावतार गुफा उत्कीर्ण लेख के अनुसार उस समय राष्ट्रकूट सम्राट् दन्तिदुर्ग अवन्ति में गुर्जर शासक के राज-प्रासाद में ठहरा था।

नागभट (लगभग ७३०-७६० ई०)—उज्जैन और कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का संस्थापक नागभट था। इसका दूसरा नाम नागावलोक था। उसने लगभग ७३० से ७६० ई० तक राज्य किया। भोज के सगरतल (ग्वालियर) प्रशस्ति में नागभट की इन शब्दों में प्रशंसा की गई है :

येनासौ सुकृतप्रमाथिबलवन् म्लेच्छाधिपाक्षौहिनीः
क्षुन्दानस्सफुरदुग्र-वेतिरुचिरैर्दोर्भिर्नु चतुर्भिर्बभौ।

'सुकृत का नाश करने वाली म्लेच्छ राजा की शक्तिशाली अरब सेना को पददलित कर जाज्वल्यमान उग्र शस्त्रों से चतुर्भुज होकर वह चमका।' इस्लाम की युयुत्सु सेनाओं पर विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप नागभट की बहुत कीर्ति हुई। उस संकटकाल में एक राष्ट्र-वीर के रूप में उसकी प्रशंसा की गई। वह जनता के लिए नारायण रूप था। उसकी और उसके वंश की महत्ता स्थापित हुई। उसने छोटे राज्यों का एकीकरण कर भड़ौच तक अपने राज्य की सीमा बढ़ाई। अरब इतिहास लेखक बिलादूरि ने लिखा है कि उज्जैन के विरुद्ध अभियान किए गए। लेकिन अरबों ने जिन प्रदेशों को जीता था उसकी सूची में उज्जैन का नाम नहीं है। इस तरह अरब इतिहास लेखक ने मौन स्वीकृति की है कि वे उज्जैन को विजय न कर सके।

प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु ७६० ई० के कुछ ही समय बाद हुई। अपने पीछे उसने एक स्थायी राज्य और कीर्ति छोड़ा। उसके मरने पर उसके भतीजे कक्कुक (काकुत्स्थ) और देवराज (देवशक्ति) क्रमशः गद्दी पर बैठे। उन्होंने ७६० ई० और ७८० ई० के बीच राज्य किया। देवराज ने संभवतः दक्षिण-पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। किंतु मलखेड के (मान्यखेट) राष्ट्रकूट वंश के संस्थापक दन्तिदुर्ग ने अवन्ति को विजय किया और हिरण्यगर्भ महादान के अवसर पर गुर्जरेश आदि राजाओं को प्रतिहारी बनाया। प्रतिहार साम्राज्य की प्रतिष्ठा को क्षति तो अवश्य ही पहुँची किन्तु प्रत्यक्षतः यह क्षति अस्थायी थी जैसा कि सगरतल (ग्वालियर) उत्कीर्ण लेख से और जैन ग्रन्थ 'हरिवंश' के उस वर्णन से प्रतीत होता है जो उसने वत्सराज के सम्बन्ध में लिखा है।

वत्सराज (लगभग ७८०-८०८ ई०)—देवराज का पुत्र वत्सराज अपने पिता की मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठा। उसने अनेक युद्ध किए और अपने राज्य को दृढ़ किया। उसने मदोत्कट हाथियों के दुर्लंध्य प्राकार को तोड़कर भण्डिवंश को जीता और उनके प्रदेश को अपने राज्य में मिलाया। उसने बंगाल पर भी विजय प्राप्त की। जैन ग्रन्थ हरिवंश (७८३ ई०) के अनुसार वह अपने समय के भारत के चार

महत्वपूर्ण राजाओं में से था। वह शिवभक्त था। उसके शासन काल में ओसिया (जोधपुर) में एक जैन मन्दिर का निर्माण हुआ।

बंगाल पर विजय

वत्सराज अपने राज्य को बढ़ा कर और कन्नौज को विजय कर उत्तरी भारत में सर्वेसर्वा होना चाहता था। उधर बंगाल में धर्मपाल ने एक सुसंगठित गौड़ राज्य उत्तराधिकार में पाया था और वह भी पश्चिम की ओर अपने राज्य की सीमा बढ़ाने पर तुला हुआ था। अतः प्रधानता के लिए दोनों में युद्ध होना अनिवार्य था। कन्नौज दोनों का लक्ष्य था; क्योंकि यह दोआब के मध्य में था जो न केवल उपजाऊ और समृद्धिशाली था बल्कि मुख्य व्यापार पथ इधर से ही होकर देश के विभिन्न भागों को और विदेशों को जाते। अत: उत्तर और दक्षिण की शक्तिशाली सत्ताएं इस उपजाऊ प्रदेश पर नियंत्रण रखने की सदा होड़ करती थीं। इसके अतिरिक्त कन्नौज एक साम्राजिक नगर माना जाता था और मध्य स्थान में होने के कारण इसकी स्थिति का भी महत्व था। अतः उन दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में धर्मपाल की हार हुई और प्रतिहार नरेश ने सरलतापूर्वक गौड़ राज्य पर अधिकार किया। उसने न केवल दो धवल छत्रों का बल्कि उसके यश का भी अपहरण किया।

हेलास्वीकृत-गौडराज्य-कमला-मत्तं प्रवेश्याचिराद
दुर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव (ब) लैर = यो वत्सराजं व (ब) लै [:]।
गौडीयं शरदिन्दु-पाद-धवलं च्छ (छ) त्रद्वयं केवल [--]
तस्मान्नआहृत तद् यशोऽपि ककुभां प्रान्ते स्थितं तत्क्षणात् ॥

इस युद्ध में वत्सराज के मण्डलिक चाहमान दुर्लभराज ने गंगा और समुद्र के संगम पर अपनी तलवार को डुबोकर और गौड भूमि का आस्वादन कराकर उसको पवित्र किया।

डॉ० आर० सी० मजुमदार की धारणा है कि यह युद्ध गौड राज्य से दूर दोआब में किसी स्थान पर हुआ। पृथ्वीराज विजय के एक श्लोक के आधार पर यह कहना कि प्रतिहार सेना ने गौड देश में प्रवेश किया था उचित नहीं है। यह ग्रन्थ समकालीन नहीं है और घटना के लगभग चार सौ वर्ष बाद लिखा गया था। उन्होंने यह भी लिखा है कि राधनपुर पट्टों में वत्सराज की गौड-विजय-यात्रा का जो उल्लेख है उसका साक्षिक मूल्य कम है क्योंकि वत्सराज ने कोई विस्तृत प्रादेशिक विजय नहीं की थीं। किन्तु डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि राधनपुर पट्टों और पृथ्वीराज विजय को एक साथ पढ़ने से स्पष्ट है कि वत्सराज गौड तक गया था और जब तक इसके विपरीत कोई साक्ष्य न मिल जाय तब तक इसको असत्य ठहराने का कोई कारण नहीं है। सगरतल (ग्वालियर) उत्कीर्ण लेख

से स्पष्ट है कि उसकी प्रादेशिक विजयें विस्तृत थीं और उसने बलपूर्वक साम्राज्य की स्थापना की थी। वत्सराज के हाथों में मालवा, राजस्थान, और संभाव्यतः उ० प्र० के विशाल साधन थे मध्य देश विजय कर लेने के बाद कोई ऐसी राजनीतिक या भौतिक अवरोध नहीं था जो उसको गौड जाने में व्याधा डाले। डॉ० पुरी ने लिखा है कि वत्सराज ने बंगाल में संभवतः दूर तक प्रवेश कर धर्मपाल को हराया और अंग और मगध के राजाओं को स्वतंत्रता प्रदान की जो राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय के आक्रमण के समय तक स्वतंत्र थे। डॉ० शर्मा ने लिखा है कि यह युद्ध अवश्य ही ७६३ ई० के पूर्व हुआ होगा। डॉ० सिन्हा के अनुसार यह युद्ध ७८५-७८६ में हुआ।

वत्सराज की विजय गौड राज्य के लिए बहुत ही चिंताजनक हुई होती यदि राष्ट्रकूट ध्रुव दक्षिण से आकर वत्सराज को बुरी तरह न हराते। राष्ट्रकूट भी उत्तरी भारत का नेतृत्व प्राप्त करने के इच्छुक थे। अतः ध्रुव के नेतृत्व में उन्होंने वत्सराज पर आक्रमण कर उसको हरा दिया और उसकी मुट्ठी से विजय छीन ली।

राष्ट्रकूटों और पालों के साथ उसके सम्बन्ध—राष्ट्रकूट ध्रुव ने वत्सराज को पथविहीन मरु प्रदेश में खदेड़ दिया और उसी क्षण दोनों गौड धवल छत्रों और उसकी कीर्ति को भी छीन लिया इसके उपरांत ध्रुव दोआब तक गया और गौड नरेश को हराया। ये घटनाएं ७८३ ई० और ७६४ ई० के बीच किसी समय साथ ही साथ हुईं। डॉ० सिन्हा के विचार से वत्सराज पर ध्रुव की यह विजय संभवतः ७८६ ई० में हुई। गोविन्द तृतीय ७६४ ई० में सिंहासन पर बैठा किन्तु उत्तराधिकार अशान्तपूर्ण था। अतः वत्सराज और धर्मपाल प्रमुख स्थान प्राप्त करने के लिए पुनः होड़ करने लगे। दोनों ने ही अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। किन्तु अंत में राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने उन पर आक्रमण किया और एक ही झटके में उनको हरा दिया। गोविन्द तृतीय के राधनपुर ताम्र पट्ट (८०८ ई०) में लिखा है कि यह पराजय इतनी भयंकर थी कि गुर्जर नरेश स्वप्न में भी फिर दिखाई न पड़ा। यह गुर्जर नरेश संभवतः वत्सराज था। उसके प्रदेश से होता हुआ राष्ट्रकूट सम्राट् दोआब तक पहुँचा और धर्मपाल को परास्त किया। गुर्जर, पाल, और राष्ट्रकूट सम्राटों के इस त्रिदलीय युद्ध में राष्ट्रकूट की अस्थायी विजय हुई। क्योंकि यह संघर्ष उनके उत्तराधिकारियों के समय भी चलता रहा।

नागभट द्वितीय (लगभग ८०८–८३३ ई०)—वत्सराज का पुत्र नागभट द्वितीय ८०८ ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। उस समय गुर्जर वैभव की श्री हत थी। संभवतः राज्य छोटा था और राष्ट्रकूटों के हाथ हुई पराजय-क्रम की स्मृतियां ताजी थीं। ऐसे समय में गुर्जर सूर्य रूपी नागभट द्वितीय का उदय हुआ। अपने मण्डलिकों के साथ उसने अनेक युद्ध किए और जीते।

नागभट की विजएँ—सगरतल (ग्वालियर) प्रशस्ति में नागभट की विजयों का तिथि-क्रमानुसार वर्णन है। आन्ध्र, सिन्धु, विदर्भ और कलिङ्ग के भूपों ने अग्नि में पतङ्ग के समान अपने को समर्पण किया। प्रतीत होता है कि इन प्रदेशों के राजा दक्षिण से राष्ट्रकूट संकट का और उत्तर और पूरब से पाल आधिपत्य का सामना करने के लिए संगठित हो गए। ये असंतुष्ट राजा अपने राज्य को प्राप्त करने के लिए या असंतुष्ट कारणों को दूर करने के लिए गुर्जर नरेश से मिल गए। नागभट ने सचमुच उनके राज्य पर विजय नहीं प्राप्त की थी। धर्मपाल और चक्रायुध को हराने और उनको अपने अधीन कर लेने के बाद गोविन्द तृतीय ने मालव, कोसल, वेङ्गि, दहल और ओद्रक प्रदेशों पर अपने मण्डलिकों को नियुक्त किया किन्तु नागभट और चन्द्रगुप्त का अपने राज्यों पर वैसा ही अधिकार बना रहा। स्पष्ट है कि इसी कारण पराजित शासकों ने बिना प्रतिबन्ध के गुर्जर प्रतिहार सम्राट् की सहायता की याचना की। यह घटना संभाव्यतः ८०६-८१०ई० में हुई।

राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय बृद्ध हो चला था और द्रविड संघ के विरुद्ध दक्षिणी अभियान में फंसा हुआ था। अतः नागभट को अपनी विजय योजना को पूर्ण करने और उत्तरी भारत में सर्वप्रधान सम्राट् होने का अवसर मिला। नागभट ने धर्मपाल और चक्रायुध को हरा कर कन्नौज को विजय किया और इसके बाद मुद्‌गगिरि (मुंगेर) में पालों को हराया। इस युद्ध में जोधपुर वंश के उसके मण्डलिक कक्क ने यश प्राप्त किया। संभवतः गुर्जर नरेश और गौड नरेश के बीच में कुछ समझौता हुआ जिसके अनुसार नागभट कन्नौज में सर्वप्रमुख सम्राट् माना गया। गुर्जर नरेश के आक्रमण से मालव राज्य की रक्षा करने के लिए राष्ट्रकूट शासक ने कर्कराज की शक्ति को द्वार-सांकल बनाया।

सगर तल प्रशस्ति में लिखा है कि नागभट ने आनर्त्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, और मत्स्य के राजाओं के गिरि दुर्गों पर हठात अधिकार किया। उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि नागभट की विजय में निम्नलिखित प्रदेश सम्मिलित थे : दक्षिण और पूरब में मथुरा और इलाहाबाद जनपदों को लेकर और नेपाल से सटे हुए उत्तर प्रदेश के उत्तर पूरब के कुछ भाग को लेकर संपूर्ण उत्तर प्रदेश, मालवा, गुजरात के भाग, और पश्चिमी भारत का कुछ भाग, जो अरबों के अधिकार में था। उसने तुरुष्क किलों पर बलात अधिकार किया और जनता ने उसको परम-पुरुष, आदि पुरुष का अवतार माना।

पालों के और राष्ट्रकूटों के साथ उसके सम्बन्ध—वत्सराज के पराजित और अदृश्य हो जाने के बाद नागभट लगभग ८०८ ई० में सिंहासन पर बैठा। धर्म-

पाल और चक्रायुध की तरह उसने अपने को समर्पण नहीं किया बल्कि युद्ध किया जिसके फलस्वरूप संभाव्यतः उसने राष्ट्रकूट सम्राट् की प्रधानता स्वीकार की। किन्तु इसके बाद शीघ्र ही नागभट को स्वर्ण अवसर मिला। राष्ट्रकूट सम्राट् दक्षिण के युद्धों में फंसा था और गुर्जरपति ने अन्य राजाओं का विश्वास प्राप्त कर एक संगठन बनाया। उसने ८१२ ई० के पूर्व चक्रायुध और धर्मपाल को हराया। कर्कराज के बरोदापट्ट (८१२ ई०) में इसका उल्लेख है। बंगाल अभियान में नागभट के साथ उसके मण्डलिक कक्क जोधपुर से, बाहुकधवल काठियावाड़ से, और संभवतः गुहिल वंशीय शंकरगण थे। गोविन्द तृतीय दक्षिण में बुरी तरह फंसा हुआ था और ८१४ ई० में उसकी मृत्यु हुई। गौड और वंग के पाल शासक ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उत्तर भारत में उसकी प्रमुखता छिन गई और उसको अपने राज्य की रक्षा की चिन्ता थी। डॉ० पुरी ने लिखा है कि 'उसने अपने स्वार्थ की वलिवेदी पर चक्रायुध का वलिदान किया इस तरह इस त्रिदलीय संघर्ष में नागभट विजयी निकला।'

रामभद्र

रामभद्र ने कुछ ही वर्ष राज्य किया। वह लगभग ८३३ ई० में कन्नौज की गद्दी पर बैठा और ८३६ ई० के पूर्व किसी समय उसकी मृत्यु हुई। वह चरित्रहीन राजा था और प्रतीत होता है इसी कारण उसे अपने जीवन और सिंहासन से हाथ धोना पड़ा। उसकी अकर्मण्यता और उदासीनता के कारण क्रूर सैनिक अधिकारियों ने उसके राज्य में अशान्ति फैलायी। उसके साम्राज्य में दरार पड़ने लगी और उसका विद्वेषी पाल शासक देवपाल ने उत्तर की ओर अपनी राज्य सीमा बढ़ा ली और एक बार पुनः प्रमुखता प्राप्त की। प्रतीत होता है कालंजर मंडल के तथा गुर्ज्जरत्रा भूमि के मंडलिक स्वतंत्र हो गए। गुर्ज्जरत्रा भूमि (राजपूताना) के नौ मण्डलों ने एक संघ बना लिया उसके राज्य काल में न्याय पदाधिकारी 'व्यवहारिनो' ने काम में शिथिलता की। वंग और गौड देश के पाल शासक ने गुर्जर नरेश रामभद्र को पछाड़ा और उसके गर्व को चूर किया।

चंद्रप्रभासूरि कृत बप्पाभट्टि-चरित में लिखा है कि उसके पुत्र भोज ने उसकी हत्या कर सिंहासन ग्रहण किया।

अध्याय | ४

भोज और महेन्द्रपाल

भोजदेव—रामभद्र के पुत्र महाराज श्री भोजदेव इतिहास में प्रभास, आदि वराह और मिहिर नामों से विख्यात हैं जो उनके विरुद के रूप में प्रयोग किए गए हैं।

जिस समय भोजदेव कन्नौज की गद्दी पर बैठ उस समय प्रतिकूलताओं और पराजयों के कारण प्रतिहार वंश की प्रतिष्ठा बहुत कम थी। उसने उन मण्डलिकों का दमन किया जो स्वतंत्र हो गए थे। गुहिलों और चेदियों आदि शक्तियों से उसने मैत्री की, और वह बंगाल के पालों से उस समय तक युद्ध करता रहा जब तक कि उसने पश्चिमी बंगाल की सीमा तक अपना अधिकार न जमा लिया।

उत्तर और उत्तर-पश्चिम में अभियान—गद्दी पर बैटते ही भोज ने उन मण्डलिकों को पददलित किया जिन्होंने उसके पिता के शासन काल में प्रतिहार राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। कान्यकुब्ज भुक्ति के अन्तर्गत कालंजर मण्डल के उदुम्बर-विषय के मण्डलिक को तथा गुर्जरत्रा भूमि (राजस्थान) के मण्डलिकों का उसने दमन किया। बाउक के जोधपुर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि बाउक ने नंदवल्ला को मार डाला, मयूर का वध किया, और नौ मण्डलों के संघ का दमन किया। संभाव्यतः उसने मण्डलिक रूप में अपने अधीश्वर भोज के अधीन ऐसा किया था।

उत्तर की ओर के उसके विजित प्रदेशों में उत्तर प्रदेश और बिहार के पूर्वी जनपद (जिसमें गोरखपुर और सारन जनपद भी थे) और उत्तर पश्चिम में पूर्वी

पंजाब के भाग सम्मिलित थे। कलचुरि वंशीय शंकरगण के पुत्र गुणाम्बोधि देव (गुणसागर प्रथम) ने भोज के उत्तरी और पूर्वी अभियानों में सहायता दी थी। बालादित्य के चात्सू उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि हर्षराज गुहिल ने जो महान् भोज का मण्डलिक था उसके साथ उत्तर में विजय-यात्रा में गया और 'उत्तर के समस्त राजाओं को जीत कर भोज को भक्तिपूर्वक अश्व प्रदान किए।' गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब का कर्नाल जनपद था और संभवतः पश्चिम का कुछ और प्रदेश सम्मिलित था। भोज के राज्य में टक्क भूमि भी थी जिस पर गुर्जर मण्डलिक अलखन राज्य कर रहा था। कल्हण कृत राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर युवराज शंकर वर्मन् ने टक्क भूमि को अलखन से छीन लिया और इस तरह इस भूमि पर से भोजदेव का आधिपत्य समाप्त हो गया। प्रतीत होता है कि यह घटना भोज के जीवन काल के अंतिम वर्षों में हुई जब वह वृद्ध और निर्बल हो गया था। किंतु कन्नौज शासक महेन्द्रपाल के (लगभग ८९०-९१० ई०) पेहेवा उत्कीर्ण लेख से प्रकट है कि पूर्वी पंजाब पर गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य का आधिपत्य बना रहा।

अरब सौदागर सुलेमान ने वर्णन किया है कि जुर्ज (गुर्जर) राजा अपने विपुल धन और बहु संख्यक अश्वों और ऊँटों के लिए विख्यात था। पेहेवा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि पृथुदक अश्व-व्यापार का मुख्य केंद्र था। प्राचीन गुर्जर देश राजपूताना अब भी ऊँटों के लिए विख्यात है। सुलेमान का वर्णन इस कथन की पुष्टि करता है कि भोज का साम्राज्य सिन्ध की सीमाओं तक, और संभवतः इसके कुछ भागों पर था।

पश्चिमी और मध्य भारत की विजय—महेन्द्रपाल के समय के ऊना (जूनागढ़राज्य) ताम्रपट्टों (८९९ ई०) से स्पष्ट है कि गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य में कच्छ और काठियावाड़ प्रदेश सम्मिलित थे। प्रतीत होता है भोज ने पश्चिमी मालवा के हूण मण्डल का दमन किया जिसमें उसके मण्डलिक काठियावाड़ के चालुक्य बल वर्मन् ने किसी विषध नामक शासक को पराजित कर और जज्जप तथा अन्य राजाओं का वध कर हूण जाति से पृथ्वी को मुक्त किया। महेन्द्रपाल द्वितीय (९४३-४८ ई०) के प्रतापगढ़ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'एक चाहमान नृपवंश जिसकी उत्पत्ति पृथ्वी की रक्षा के लिए की गई थी, श्री भोज देव के लिए उच्च सुख का कारण था। राजपूताना पर प्रतिहार आधिपत्य शान्तिपूर्ण था।

यह वंश प्रतापगढ़ के चौहानों का था जिसमें गोविन्द राज, दुर्लभराज और इन्द्रराज शासक हुए।

राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से भोज ने झांसी जनपद का महा सामन्त विष्णुराम को लुअच्छ गिरि अल्ला को गोपाद्री (ग्वालियर) का कोट्टपाल नियुक्त किया।

राष्ट्रकूटों के साथ उसके सम्बन्ध—भोज और राष्ट्रकूट शासकों, अमोघ वर्ष और कृष्ण द्वितीय, के सम्बन्धों की तीन अवस्थाएं मानी जा सकती हैं। पहिली अवस्था में किसी ओर से कार्यवाही नहीं की गई; दूसरी अवस्था में गुर्जर प्रतिहार शासक के विरुद्ध राष्ट्रकूटों के मण्डलिकों ने युद्ध किए, तीसरी अवस्था में किसी मध्यस्थ द्वारा दोनों शक्तियों में समझौता हुआ। पहिली अवस्था में अमोघवर्ष उत्तराधिकार के झगड़े और अनेकानेक विद्रोहों के दमन करने में फंसा था। अपने शत्रुओं का दमन करने, और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने में वह व्यस्त था। उसके मण्डलिकों, सचिवों और सम्बन्धियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया जिसको दबाने में वह अन्त म सफल हुआ। ऐसी अवस्था में वह उत्तर की ओर अभियान करने में असमर्थ था।

दूसरी अवस्था में उसके मण्डलिकों ने गुर्जरों से संघर्ष किए जो राष्ट्रकूट शाखा वंश के थे। भड़ौच के राष्ट्रकूट ध्रुव तृतीय का ८६७ ई० का एक दान पत्र सूचित करता है कि ध्रुव तृतीय ने गुर्जर की एक बलवती सेना को सरलतापूर्वक भगा दिया जिसके साथ उसके विमुख बांधव मिल गए थे। इसमें लिखा है कि मिहिर का मुख पराजय के तिमिर से ढक गया और वह अदृश्य हो गया, यद्यपि वह श्री से युक्त था, उच्च बांधवों के समूह से घिरा हुआ था, और अपने साहस के बल पर उसने संसार के सब प्रदेशों को विजय किया था। गुजरात शाखा के राष्ट्रकूट कृष्णराज के ८८८ ई० के दानपत्र में लिखा है कि किसी नृप ने सम्राट् वल्लभ (राष्ट्रकूट वंश के अमोघवर्ष) के समक्ष उज्जैनी में अपने शत्रुओं को पददलित किया। तिथ्यांकित ९१४ ई० के एक लेख में गुर्जरों के विरुद्ध किए गए भीषण युद्धों में राष्ट्रकूट सम्राटों के पराक्रमों की चर्चा है। किन्तु राष्ट्रकूटों के अभिलेखों के विपरीत भोज के समय का एक खण्डित उत्कीर्ण लेख है जो भावनगर के म्युजियम में है। उसमें लिखा है कि राष्ट्रकूट कृष्णराज शीघ्रतापूर्वक पीछे हट कर अपने देश चला गया। प्रतीत होता है कि इस युद्ध के परिणाम संदिग्ध रहे। प्रतीत होता है कि भोज ८६७ ई० के पूर्व किसी समय दक्षिण से पीछे हटा। किन्तु दक्षिण को विजय करने की उसकी अभिलाषा बनी रही। ईसवी ८७५ के ग्वालियर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि वह त्रैलोक्य विजय करने को इच्छुक है ('श्रीमद् आदिवराहेण त्रैलोक्य विजिगीषुना')। काठियावाड में भोज के मण्डलिक ने कृष्णराज को शीघ्रतापूर्वक पीछे हटने को बाध्य किया। किन्तु प्रतीत होता है बाद को उज्जैनी में गुर्जर राजा पराजित किया गया।

संभाव्यतः उस समय उत्तर पश्चिम में संकट था; क्योंकि कश्मीर के शंकरवर्मन् ने टक्क भूमि को छीन कर उत्तर-पश्चिम के प्रदेश में भोज का आधिपत्य समाप्त किया था। अपने अमैत्रीपूर्ण आचरण से शंकरवर्मन् ने इस्लाम आक्रामकों के विरुद्ध भारतीय आंचल की प्रतिरक्षा का कार्य और भी कठिन कर दिया।

पालों के प्रति उसके सम्बन्ध—बादल स्तम्भ उत्कीर्ण लेख (बिना तिथि का) में लिखा है कि गौड नरेश देवपाल ने गुर्जर-नाथ के दर्प को नष्ट किया ('खर्वीकृत-द्रविड-गुर्जर नाथदर्पम्,')। संभवतः यह घटना कन्नौज सम्राट् रामभद्र के समय घटी थी। भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में लिखा है कि देवपाल की कीर्ति का स्रोत लक्ष्मी भोज की पत्नी हुई। इस लेख से स्पष्ट है कि भोज ने देवपाल को पराजित किया। इस संघर्ष में भोज के साथ कलचुरि वंशीय गुणाम्बोधिदेव भी था जिसने गौड की लक्ष्मी को अपहृत किया। भोजदेव से उसको गोरखपुर के समीप कुछ भूमि मिली ('भोजदेवाप्त-भूमि')। यह युद्ध डॉ० पुरी के अनुसार ८४५ ई० के लगभग हुआ। इस युद्ध के उपरांत भोज ने पाल शासक को उसका राज्य दे दिया। डॉ० मजुमदार के विचार से देवपाल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ और संभवतः भोज ने पुनः गौडों पर आक्रमण किया। डॉ० पुरी ने लिखा है कि भोज ने दूसरा आक्रमण संभवतः विग्रहपाल के समय में किया। बालादित्य के चात्सू (जयपुर राज्य) उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि हर्षराज द्विज का पुत्र गुहिल भोज का मण्डलिक था। वह गौडों के विरुद्ध किए गए द्वितीय युद्ध में भोज के साथ था। इस युद्ध में गौडों की भयंकर हार हुई और बंगाल पर प्रतिहारों का आधिपत्य हो गया जो महेन्द्र पाल के समय में बना रहा; क्योंकि उसके कुछ अभिलेख वहाँ पाए गए हैं।

मूल्यांकन—८५१ ई० में अरब यात्री सुलेमान ने कन्नौज के महान् प्रतिहार शासक के सम्बन्ध में लिखा :

'इस राजा के पास विपुल सेनाएं हैं, इतने कुशल अश्वारोही तो किसी अन्य भारतीय राजा के पास नहीं हैं। अरबों के प्रति वह अमैत्रीपूर्ण है, फिर भी वह स्वीकार करता है कि अरबों का राजा महत्तम राजा है। भारत के राजाओं में मुसलमान धर्म का उससे बड़ा शत्रु कोई अन्य नहीं है। उसका प्रदेश अन्तरीप के रूप में है, उसके पास धन है, और बहुसंख्यक ऊंट और घोड़े। उसके राज्यों में चांदी (और स्वर्ण) धूलि द्वारा विनिमय किए जाते हैं, और कहा जाता है कि उसके प्रदेश में (इन धातुओं की) खानें हैं। भारत में डाकुओं से अधिक सुरक्षित कोई अन्य प्रदेश नहीं है।'

इससे प्रमाणित होता है कि इस साम्राज्य की राजनीतिक शक्ति दृढ़ और इसके साधन विपुल थे। बाह्य और आंतरिक संकटों से बचने के लिए इसके पास विशाल सेना थी। इसकी यह महान् विशिष्टता थी कि जनता को डाकुओं से कष्ट न था। भोज ने गुर्जर प्रतिहार वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा और प्रदेश को न केवल पुनः प्राप्त किया बल्कि अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा को बहुत ऊंचा उठाया। अपनी स्थिति को दृढ़ करने में उसको अनेकानेक संकटों का सामना करना पड़ा। उसने प्रतिहार वंश के उन मण्डलिकों का दमन किया जो स्वतन्त्र हो गए थे। उसने अपने वंश के पुराने शत्रुओं, पालों और राष्ट्रकूटों से अनेकानेक युद्ध किए और गुहिलों और चेदियों आदि अन्य शक्तियों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। पालों के विरुद्ध उसका युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा; किन्तु अन्त में वह पश्चिमी बंगाल पर अधिकार करने में सफल हुआ। राष्ट्रकूटों ने अपने मण्डलिकों को भोज के विरुद्ध उभाड़ा; किन्तु राष्ट्रकूट अपनी आंतरिक उलझनों में फँसे थे और उनके साधन भी कमजोर पड़ गए थे अतः वे उत्तर की ओर चढ़ाई न कर सके। पालों को पददलित करने के बाद भोज उत्तरी भारत का महत्तम शासक था और यही बात अरब यात्री सुलेमान ने भी स्वीकार की है।

उसके राज्य काल में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राज्य की सीमा का बृहद् विस्तार हुआ। मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि उसका राज्य उत्तर-पश्चिम में सतलज तक, उत्तर में हिमालय की तलहटी तक, पूरब में पाल साम्राज्य की पश्चिमी सीमाओं तक, दक्षिण और दक्षिण पूरब में बुन्देलखण्ड और वत्स प्रदेशों तक, और दक्षिण पश्चिम की ओर संभवतः नर्मदा के निचले बहाव तक और सौराष्ट्र तक फैला था और पश्चिम की ओर राजपूताना का अधिकांश भाग तथा कच्छ और काठियावाड उसके राज्य में सम्मिलित थे।

'प्रशासन की दृष्टि से उसने अपने राज्य के विभिन्न भागों में मण्डलिक नियुक्त किए जिनमें से गुणाम्बोधि देव, बाउक और कक्कुक, हर्षराज और बाहुक धवल उसके अभियानों में उसके साथ गए और विशाल साम्राज्य के निर्माण में उसके सहायक हुए। उसने अर्ध शती से भी अधिक समय तक राज्य किया और प्रतिकूल अवस्था में एक लड़खड़ाते हुए राज्य को दृढ़ किया। उसके मरने पर उसके पुत्र और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल को संगठित और दृढ़ीकृत साम्राज्य मिला। उसने अरबों को पराजित किया। उन्होंने इस महान् सम्राट के शासनकाल में पुनः आगे बढ़ने का साहस न किया। अरब झंझावात शांत हो गया और उनका प्रवाह उतार पर आ गया। ईसवी ८७१ के धोलपुर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि चर्मणवती (चम्बल) के म्लेच्छ शासक ने चाहमान चण्डमहासेन मण्डलिक की आज्ञा शिरोधार्य किया।

वास्तव में भोज और उसके उत्तराधिकारियों की दृढ़ केन्द्रीभूत सत्ता और प्रभुत्व के कारण ही दो सौ वर्ष तक भारत विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रहा ।'

उसने आदि वराह की सार्थक उपाधि धारण की; क्योंकि उसका विश्वास था कि भारतीय धन, धर्म और संस्कृति के शत्रुओं का दमन करने और उनके अत्याचारों से जनता की रक्षा करने की उसको दैवी आज्ञा मिली है। उत्तरी भारत में प्रतिहार वंश के राजाओं की प्रमुखता तब तक बनी रही जब तक वे मुसलमान आक्रामकों के विरुद्ध बाँध स्वरूप थे।

महेन्द्रपाल—(लगभग ८९०—ल० ९१० ई०)—भोज की मृत्यु ८८४ ई० के उसके पेहेवा प्रशस्ति के बाद और महेन्द्रपाल के ८९३ ई० के ऊनापट्ट के पूर्व किसी समय हुई। महाराज भोजदेव के ८४३ ई० के दौलतपुर उत्कीर्ण लेख में युवराज नागभट का नाम दूतक के रूप में आया है। ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे कि पता चल सके कि भोज की मृत्यु के समय वह जीवित था और उसने कुछ एक वर्ष तक राज्य किया। अतः डॉ० पुरी ने सुझाव दिया है भोज की मृत्यु ८९० ई० के लगभग हुई। भोज ने उत्तरी भारत में प्रतिहारों की सत्ता को सर्वप्रमुख बनाया। उसके साम्राज्य में उत्तर पश्चिम में कर्नाल जनपद सम्मिलित था। उत्तर में हिमालय की तलहटी तक उसका साम्राज्य फैला हुआ था, और पूरब की ओर यह पाल राज्य के बिहार और बंगाल की सीमाओं को छूता था। पश्चिम में सौराष्ट्र में उसकी सत्ता स्वीकार की जाती थी, और दक्षिण में मालवा की स्पर्श करतो थी जहाँ 'राष्ट्रकूटों के विरुद्ध आंचलिक युद्ध होते रहते थे।' वराह ताम्रपट्ट और देवगढ़ उत्कीर्ण लेख से प्रकट है कि बुन्देलखण्ड और मध्य भारत पर भी उसका आधिपत्य था।

पालवंश से उसके सम्बन्ध

महेन्द्रपाल ने उत्तराधिकार में विशाल साम्राज्य पाया था। महेन्द्रपाल ने इसको सुरक्षित रखा, सम्भाव्यतः उसने इसकी कुछ वृद्धि भी की। महेन्द्रपाल के अभिषेक के द्वितीय वर्ष का उत्कीर्ण लेख बिहार में पाया गया है जिससे प्रतीत होता है कि भोज के ही समय से मगध प्रतिहार राज्य में सम्मिलित था। उसके शासन काल के चतुर्थ वर्ष के दो उत्कीर्ण लेख पटना जनपद के बिहार शरीफ में और पाँचवें वर्ष का एक उत्कीर्ण लेख राजशाही जनपद के पाहरपुर नामक स्थान में पाया गया है जिससे स्पष्ट है कि मगध और उत्तरी बंगाल उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे।

उसके समय का एक उत्कीर्ण लेख इत्खोरी में पाया गया है जो बिहार के हजारीबाग जनपद में है। नालंदा में स्तूप क्षेत्र की खुदाई के स्थान में कई स्तूप निकले हैं उनमें से एक चैत्र पर लिखा है कि इसका निर्माण महेन्द्रपाल के शासनकाल में हुआ। महेन्द्रपाल के शासन के पाँचवें वर्ष का एक उत्कीर्ण लेख राजशाही जनपद के पाहरपुर स्थान में पाया गया है। स्पष्ट है कि दक्षिणी बिहार (जिसके अन्तर्गत छोटा नागपुर था) और उत्तरी बंगाल उसके राज्य में सम्मिलित थे। प्रतीत होता है इसी कारण बौद्ध इतिहास लेखक तारानाथ ने बंगाल के राजाओं की सूची में महेन्द्रपाल का नाम रखा है। प्रतिहार आधिपत्य के इस काल में पाल राज्य पश्चिमी बंगाल और गंगा के डेल्टा के उत्तरी भाग तक सीमित था। महेन्द्रपाल के ८९८—९९ ई० के डिघवा दुबौली (सारन जनपद, बिहार) से प्रमाणित होता है कि उत्तरी बिहार पर उसका आधिपत्य था। बाद को गौड नरेश नारायणपाल ने मगध को पुनः जीता। यह घटना अवश्य ही महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद हुई होगी जो गुर्जर प्रतिहार वंश का सबसे महान् सम्राट् था और जिसका शासन पश्चिम में सौराष्ट्र से पूरब में बंगाल तक, उत्तर में हिमालय से, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक था। पाल शासक निर्बल थे, उनमें दूरदर्शिता और कूट-नीतिज्ञता का अभाव था। उनमें व्यक्तिगत क्षमता न थी। उनके राज्य से असम और उड़ीसा स्वतन्त्र हो गए। महेन्द्रपाल एक सुसंगठित साम्राज्य का स्वामी था। आर्थिक लाभ से प्रेरित होकर उसने बिहार और बंगाल की उर्वरा भूमि और गंगा की तलहटी के व्यापार पथों पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से भारत के पूर्वतम भागों तक अपना साम्राज्य विस्तार करने के लिए उसने युद्ध अभियान किया।

चालुक्यों के साथ उसके संबन्ध—यह पहले लिखा जा चुका है कि चालुक्य बलवर्मन् काठियावाड़ में भोज का मण्डलिक था। उसका पुत्र अवनिवर्मन् द्वितीय योग महेन्द्रपाल का सामन्त था। उसने चापधरणीवराह को परास्त किया जिसका नाम ९१४ ई० के हड्डल (काठियावाड़) पट्टों में आया है। डॉ० पुरी ने लिखा है कि संभव है कि ये दोनों ही कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार शासकों के सामन्त रहे हों, क्योंकि हड्डल पट्टों में लिखा है कि धरणीवराह महीपाल देव का सामन्त था और वह पूर्वी काठियावाड के वर्धमान नगर (वर्तमान वधवन) में रहता था। अवनिवर्मन् का चालुक्य वंश कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश का सदा राजभक्त रहा। उसने रामभद्र के संकटमयकाल में भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखा। महेन्द्रपाल के शासनकाल में भी उसका सम्बन्ध राजनिष्ठापूर्ण रहा, जिसका उत्तर भारत में बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक पूर्ण आधिपत्य था।

कश्मीर के साथ उसके संबंध—राजतरंगिणी के आधार पर यह पहले लिखा जा चुका है कि पश्चिमी पंजाब में भोज का एक सामंत अलखान था, जिसको भोज ने टक्कीय वंश की टक्क भूमि दी थी। बाद को संभवतः भोज के शासन-काल के अंतिम वर्षों में या भोज की मृत्यु के बाद नागभट (यदि उसने शासन किया हो तो वह निर्बल और उदासीन शासक था) के शासन-काल में कश्मीर के राजा शंकर वर्मन ने अलखान से टक्क भूमि छीनकर टक्कीय वंश को लौटा दिया, क्योंकि अलखान की इतनी सामर्थ नहीं थी कि वह केवल अपनी शक्ति पर विरोध कर सकता। किंतु इससे गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य की कुछ अधिक क्षति नहीं हुई क्योंकि जैसा कि महेन्द्रपाल के पेहेवा (कर्नाल जनपद पंजाब) प्रशस्ति में लिखा है कि पूर्वी पंजाब उसके साम्राज्य का अंग बना रहा।

मध्य भारत की शक्तियों के साथ उसके संबंध—कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारवंश ने प्रतिरक्षा की दृष्टि से झाँसी की ओर एक सामन्त और ग्वालियर की ओर एक दूसरा सामंत नियुक्त किया और चारिडयरा को कोट्टपाल बनाया जो गुणराज का उपजीवी था।

मूल्यांकन—महेन्द्रपाल का शासन-काल अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण था। अरबों ने आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। उसने पालों की शक्ति को क्षीण किया और राष्ट्रकूट अपने आंतरिक झगड़े में फँसे थे। उसके समय में गुर्जर प्रतिहारों की प्रतिष्ठा अपनी चरम सीमा पर पहुँची। वह एक कुशल प्रशासक था। वह अपने वंश का सबसे महान् सम्राट् था। उसका साम्राज्य बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक और हिमालय से विंध्य पर्वत तक फैला हुआ था। पूरब में उत्तरी बंगाल और पश्चिम में सौराष्ट्र; और उत्तर-पश्चिम में पूर्वी पंजाब उसके साम्राज्य के अंग थे।

वह साहित्य का संरक्षक और कवियों का प्रिय था। महान् कवि और नाटककार राजशेखर उसका गुरु था। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी, बालभारत या प्रचण्ड पाण्डव, और काव्यमीमांसा नामक ग्रंथ रचे थे। उसके ग्रंथों से उस समय के उत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शैक्षिक अवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसकी काव्यमीमांसा में भौगोलिक तथ्य सविस्तार दिए हुए हैं। उसने अपने संरक्षक महेन्द्रपाल को 'रघुकुलतिलक' और 'महाराष्ट्रचूड़ामणि' लिखा है।

अध्याय | ५

उत्तर कालीन प्रतिहार वंश

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद भोजदेव और महेन्द्रपाल के सुगठित और दृढ़ीभूत विशाल साम्राज्य का विखण्डन आरंभ हुआ। उत्तराधिकार के झगड़े आंतरिक उपद्रव, विदेशी आक्रमण, निर्बल उत्तराधिकारी, कूटनीतिज्ञता और दूरदर्शिता का अभाव, और विपक्षियों की निरंतर वृद्धि इसके कारण थे। दसवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में महीपाल ने प्रतिहार राज्य को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया। किन्तु इस शती का उत्तरार्द्ध भाग प्रतिहार वंश के ह्रास का समय था जिसमें उनके विशाल साम्राज्य के विस्तार में पर्याप्त कमी हुई। उत्तरोत्तर मुसलमान आक्रमणों के कारण गुर्जर प्रतिहार सत्ता धराशायी हुई और उनका स्थान गाहडवाल वंश ने लिया।

भोज द्वितीय (लगभग ९१० ई०-९१४ ई०)—महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद प्रतिहार सिंहासन के लिए संभवत: भोज द्वितीय और महीपाल के बीच कुछ झगड़ा हुआ। चेदि नरेश कोक्कल्लदेव ने भोज द्वितीय का पक्ष ग्रहण किया और भोज द्वितीय गद्दी पर बैठा। बिल्हारी प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि कोक्कल्लदेव ने दो अभूतपूर्व स्तम्भ खड़े किए—दक्षिण में कृष्ण राज और उत्तर में भोजदेव। कर्ण के बनारस दानपत्र में लिखा है कि कोक्कल्लदेव ने भोज आदि राजाओं की रक्षा की। भोजदेव की मृत्यु ९१४ ई० में हुई। इसके बाद महीपाल गद्दी पर बैठा।

महीपाल (९१४—९३० ई०)—उत्तराधिकार के आंतरिक झगड़े से प्रतिहार साम्राज्य निर्बल पड़ गया। अत: महीपाल के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने प्रतिहार राज्य पर आक्रमण किया। राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ के ९३० ई० के केम्बे ताम्रपट्टों में लिखा है कि इन्द्र उत्तरी भारत के अपने अभियान में उज्जैन में ठहरा और महाकाल की पूजा की। उसके बाद 'उसके अश्वों ने अथाह यमुना को पार किया' और 'उसने विपक्षी नगर महोदय

(कन्नौज) को पूर्णतया ध्वस्त किया। इस पराजय के फलस्वरूप महीपाल के हाथों से सिंहासन निकल गया। विक्रमार्जुन विजय या पंपा भारत के रचयिता कन्नड़ कवि पंपा ने लिखा है कि 'इन्द्र के सामन्त नरसिंह ने विजयदेवी को गुर्जरराज के बाणों से अपहृत किया। महीपाल भागा और रास्ते में भोजन, निद्रा और विश्राम के लिए भी न ठहरा। नरसिंह ने गंगा के संगम (इलाहाबाद) तक उसका पीछा किया और अपने अश्वों को संगम में नहलाया।

महीपाल ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए अपने सामन्तों की सहायता ली। अपने शक्तिशाली सामन्त चन्देल नृप हर्षदेव की सहायता से उसने अपना सिंहासन पुनः प्राप्त किया। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है 'पुनर् येन क्षितिपालदेव-नृपतिः सिंहासन स्थापितः'। बालादित्य के चात्सू उत्कीर्ण लेख का कथन है कि गुहिल नरेश भट्ट ने अपने अधीश्वर (महीपाल) की आज्ञा से दक्षिण के नरेशों की सेनाओं को पराजित किया। डॉ० आर० सी० मजुमदार के अनुसार 'दक्षिण के नरेशों की सेनाएँ राष्ट्रकूटों की सेनाओं के अतिरिक्त और कोई नहीं थीं।

प्रतिहार वंश की इस आंतरिक कलह से चंदेल नरेश हर्ष तथा अन्य सामन्तों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला, विशेष रूप से राष्ट्रकूट आक्रमण के बाद। संभवतः महीपाल ने उसको कुछ प्रदेश दिए। हर्ष ने अपनी शक्ति को दृढ़ कर उत्तर भारत में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। चंदेल दावा करते थे कि महीपाल ने हर्ष की सहायता से पुनः सिंहासन प्राप्त किया। एक दूसरे वंश के शासक के शिलालेख में उसको चित्रकूट-भूपाल कहा है। अभी तक चंदेल गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन थे किन्तु अब वे नाम मात्र की अधीनता स्वीकार करते थे और अपने को मित्र शक्ति मानते थे। प्रतीत होता है कि अब वे इससे भी छुटकारा पाने को उत्सुक थे। यह प्रवृत्ति यशोवर्मन् और धंग के शासन-काल में स्पष्ट दिखाई देती है। धंग के १००२ के खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'अपने विपक्षियों का दमन कर हर्ष ने संपूर्ण पृथ्वी की रक्षा की'। खजुराहो से प्राप्त एक अन्य खण्डित उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि हर्ष ने 'भुज-विजितानेक-दृप्तरि-वृन्दः।

विजयें

'नीमत-मुरल-मौलिः पाकलो मेकलानां रण-कलित-कलिंगः केलि तत् केरल-इन्दोः।
आजनि जित कुलूतः कुन्तलानां कुठारः हठ-हृत-रमठ-श्रीः श्री महीपाल देवः' ॥

उपर्युक्त श्लोक में महीपाल के राजकवि राजशेखर ने अपने ग्रंथ 'प्रचण्ड-

पाण्डव' में अपने स्वामी की सामरिक विजयों का वर्णन किया है जिसका अर्थ है 'उस वंश में यशस्वी महीपाल देव उत्पन्न हुए जिन्होंने मुरलों के शिरों की शिखाओं के केश समूहों को झुका दिया है; जो मेकलों के पूजोत्पादन के कारण हैं; जिन्होंने युद्ध में कलिङ्गों को खदेड़ा है; जिन्होंने केरलों के चन्द्रमा (राजा) के मनोरंजन को भंग किया है; जिन्होंने कुलूतों को विजय किया है; जो कुन्तलों के लिए कुठार हैं; और जिन्होंने रमठों की श्री को बलात् छीन लिया है। मुरल, मेकल, केरल, कुन्तल, और कलिङ्ग दक्षिण के प्रदेश हैं। कुलूत का वर्तमान नाम कुलू है जो व्यास नदी की ऊपरी घाटी में काङ्गड़ा जनपद में है।

इस समय तक चेदि सम्राट कोक्कल्लदेव की मृत्यु हो चुकी थी, और राष्ट्रकूट शासक अपनी ही झंझटों में फँसा था, और पाल शासक निर्बल थे। अतः महीपाल को इन प्रदेशों को विजय करने में सुगमता हुई। मुसलमान इतिहास लेखक अलमसूदी ने भी प्रतिहार शासक की महानता स्वीकार की है और लिखा है कि उनके साम्राज्य में सिन्ध की पहाड़ी भूमि सम्मिलित थी जहाँ से मिहिरन नदी निकलती है।

क्षेमीश्वर कृत चण्डकौशिकम् नाटक की प्रशस्ति में महीपाल देव द्वारा कर्णाट पर विजय का उल्लेख है। संभवतः इस महीपाल और गुर्जर प्रतिहार महीपाल में तादात्म्य है। प्रतीत होता है कि महीपाल ने सिंहासन पुनः प्राप्त करने के बाद अपनी पूर्व पराजय का बदला लेने के लिए राष्ट्रकूटों पर चढ़ाई की और विजय प्राप्त की।

पालों से उसके संबंध---भोज द्वितीय और महीपाल के झगड़े का लाभ बंगाल के पालवंश ने भी उठाया। उन्होंने प्रतिहारों से बिहार का कुछ भाग पुनः प्राप्त किया जैसा कि नारायण पालदेव के उद्दण्डपुर (बिहार) प्रतिमा पर उत्कीर्ण किये हुये लेख से प्रतीत होता है। राज्यपालदेव के बड़गाँव (वर्तमान नालंदा-बिहार) उत्कीर्णलेख से भी इसकी पुष्टि होती है। 'प्रचण्ड पाण्डव' और 'चण्डकौशिकम्' नामक ग्रंथों में महीपाल द्वारा बिहार या गौड देश की विजय का कोई उल्लेख नहीं है।

महीपाल के सामन्त—काठियावाड़ का चापवंश, गोरखपुर का कलचुरि वंश, और जयपुर का गुहिलवंश महीपाल के सामन्त थे। ये सामन्त प्रतिहारों के प्रति कई पीढ़ियों से राजनिष्ठ थे और प्रतिहारों के युद्धों में सदा सम्राट के साथ रहते थे। ये वंश राज्य के आंचलिक प्रदेशों में सामन्त थे और सामरिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्व था। उन्होंने संभवतः भोज द्वितीय और महीपाल के उत्तराधिकार के झगड़े में भाग नहीं लिया और राजनिष्ठ बने रहे।

चाप वंश का महासामन्ताधिपति धरणी वराह राजाधिराज महीपाल देव का

अत्यन्त राजनिष्ठ सामन्त था। अवनि वर्मन् द्वितीय को महेन्द्रपाल ने सामन्त बनाया। भोजदेव ने गोरखपुर के कलचुरि गुणाम्बोधिदेव को कुछ भूमि दी थी, क्योंकि वह बंगाल युद्ध में भोज के साथ गया था और वहाँ वीरता दिखाई थी। उसका पुत्र भामनदेव महीपाल के प्रति राजनिष्ठ था और उसने धारा के परमारों के विरुद्ध युद्ध किया। संभवतः अपने अधीश्वर की ओर से क्योंकि कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि एक छोटा-सा राज्य सैकड़ों मील दूर जाकर अपने बलबूते पर युद्ध करे। चात्सू (जयपुर के २६ मील दक्षिण) का गुहिल वंश संभवतः महीपाल का सामन्त था। उसने उसके साथ दक्षिण भारत के विजय अभियान में भाग लिया। इन तीनों के अतिरिक्त शाकम्भरी का चाहमान वंश और जेजक भुक्ति चंदेलवंश महीपाल के सामन्त थे। विनायकपाल के समय में चाहमान वंशीय माधव महासामन्त, महादण्ड-नायक और तंत्रपाल था। चंदेलवंश ने महीपाल को पुनः सिंहासन प्राप्त करने में सहायता दी।

मूल्यांकन--चेदि शासक कोकल्लदेव के षड्यंत्र के फलस्वरूप महीपाल को राज-सिंहासन से वंचित होना पड़ा। उसने उसके स्थान पर भोज द्वितीय को सिंहासन पर बैठाया। इसी समय राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने भी कन्नौज पर धावा किया। महीपाल ने चंदेल नृपाल हर्ष की सहायता से सिंहासन पुनः प्राप्त किया। उस समय तक कोकल्ल-देव की संभवतः मृत्यु हो चुकी थी और इन्द्र तृतीय दक्षिण में फँसा था। महीपाल ने अपने राज्य का स्थिरीकरण और विस्तार करने में इस अवसर का उपयोग किया। उसने मुरल, केरल, कलिङ्ग और कुलूत आदि प्रदेशों को जीता। उसका राज्य बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक, और उत्तर में कुलू घाटी से दक्षिण में राष्ट्रकूटों के प्रदेश तक फैला था। उसके सामन्तों ने इतने विशाल प्रदेश के प्रशासन और प्रति-रक्षा में योग दिया जिनमें से कुछ उसके नए नियुक्त किये हुए थे। अरब इतिहास लेखक अलमसूदी ने लिखा है कि गुर्जर प्रतिहार शासक के पास चार प्रकार की सेनाएँ थीं और हर एक में सात लाख से नौ लाख तक आदमी थे। यह अतिशयोक्ति हो सकती है किन्तु यह निर्विवाद है कि उसके पास वृहद् सेनाएँ थीं, क्योंकि उसको पश्चिम के लुटेरों से, और दक्षिण के राष्ट्रकूटों से जो सिन्ध के मुसलमानों के मित्र थे अपने साम्राज्य की रक्षा करनी थी। और इन दोनों संघों का सामना करने के लिए उसने पर्याप्त सेनाएँ छोड़ रखी थीं। वह कुशल प्रशासक और पराक्रमी योद्धा था। 'प्रचण्ड पांडव' के ग्रन्थकार राजशेखर और 'चण्डकौशिकम्' के ग्रन्थकार क्षेमीश्वर उसकी राजसभा के कवि थे। स्पष्ट है कि वह विद्या का संरक्षक था। अपने राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उसने कोई बात उठा न रखी। और यह उसके व्यक्तित्व और प्रतिभा का कारण था कि उसके पुत्र और उत्तराधिकारी जो अशक्त और उत्तरा-धिकार के झगड़े में व्यस्त थे इस साम्राज्य पर अधिकार किए रहे।

विनायकपाल (९३०-९४३ ई०)—विनायकपाल भोज द्वितीय का सौतेला भाई था जिसका वह भक्त था (पादानु ध्यातः)। एक दानपत्र से ज्ञात है कि ९३१ ई० में वह सिंहासन पर था। महीपाल और विनायकपाल कन्नौज प्रतिहार वंश के दो भिन्न शासक हैं, क्योंकि उनकी तिथियाँ समान न ीं हैं। विनायकपाल भोज ने कम से कम ९३१ ई० से ९४३ ई० तक राज्य किया। हो सकता है कि वह दो एक वर्ष पूर्व ही सिंहासन पर बैठा हो। ९५४ ई० के खजुराहो उत्कीर्ण लेख में जिस विनायकपाल का नाम आया है वह चंदेल धंग का उपनाम था, प्रतिहार विनायकपाल से इसका सम्बन्ध नहीं है। विनायकपालदेव ने जल के लिए ९५ या ९६ करोड़ (मुद्राओं) से कोई निर्माण कार्य किया जिसकी चर्चा रखेट्रा (ग्वालियर) से प्राप्त प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में है। उसके समय में गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का विस्तार प्रत्यक्षतः बनारस से ग्वालियर तक था। इसमें उज्जैन भी सम्मिलित था जहाँ का महासामन्त और महादण्डनायक माधव था। श्री शर्मन् मण्डाग्निका (मण्डु) का बलाधिकृत था। कुछ समय तक मालवा पर कन्नौज के प्रतिहारों का पूर्ण आधिपत्य रहा।

महेन्द्रपाल द्वितीय (लगभग ९४३-९४८ ई०)—यह विनायकपालदेव का पुत्र था। इसके समय में भी प्रशासन यन्त्र पूर्ववत् चलता रहा। मालवा इसके पूर्ण अधिकार में था। गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के विस्तार में कमी नहीं हुई और कन्नौज का भी महत्व बना रहा।

देवपाल (लगभग ९४८ ई०)—क्षितिपाल का पुत्र देवपाल ९४८ ई० में सिंहासन पर था। इस समय उत्तराधिकार की कलह की वृद्धि हुई। अतः सामन्तों को स्वतन्त्र होने का अनुकूल अवसर मिला। चन्देल सामन्त यशोवर्मन् ने कालंजर गढ़ पर अधिकार किया। इसी समय हेरम्बपाल के पुत्र देवपाल से चन्देलों का संघर्ष हुआ जो गुर्जर-प्रतिहार का सामन्त था; और इसके फलस्वरूप यशोवर्मन् ने बैकुण्ठ की प्रतिमा देवपाल से प्राप्त की। यह सम्भवतः विजयोपहार था। प्रतीत होता है प्रतिहार सम्राट् देवपाल सामन्तों के इस संघर्ष के प्रति उदासीन था। ९५४ ई० के खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'वह (यशोवर्मन्) गुर्जरों के लिए झुलसाने वाली आग था'। ये शब्द कन्नौज के प्रतिहार के लिए नहीं प्रयुक्त किए गए हैं बल्कि हेरम्बपाल के पुत्र सामन्त देवपाल के लिए जिससे यशोवर्मन् ने बैकुण्ठ की प्रतिमा विजयस्वरूप पाई थी। डॉ० रोमा नियोगी का कथन गलत है कि यह देवपाल प्रतिहार राजा था।

विनायक पालदेव द्वितीय—चंदेल धंग के ९५४ ई० के खजुराहो उत्कीर्ण लेख संख्या २ में लिखा है 'विनायक पालदेव पालयति वसुधाम्'। डॉ० पुरी ने लिखा

है कि संभव है कि यह विनायकपालदेव महेन्द्रपालदेव का पुत्र था और अपने चाचा देवपाल देव के बाद ९५० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा। उन्होंने यह भी लिखा है कि इस काल में गुर्जर-प्रतिहारों के प्रति चंदेलों की राज्य-निष्ठा नाम मात्र को थी। डॉ० निमाई साधन बोस का विचार है कि यह विनायकपालदेव स्वयं धंग के अतिरिक्त और कोई न था। इसकी पुष्टि में उन्होंने इसी खजुराहो उत्कीर्ण लेख के श्लोक ४४ और ४५ की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिसमें लिखा है कि धंग 'पृथ्वी पर अपना न्याय राज्य दृढ़ता से स्थापित कर रहा है' और 'पृथ्वी पर शासन कर रहा है जिसको उसने अपनी दीर्घ और दृढ़ भुजाओं से सरलता से प्राप्त किया है और जिसका विस्तार कालंजर तक और भस्वत तक जो मालव नदी तमसा पर स्थित है, यहाँ से कालिन्दी नदी के तट तक, और चेदि प्रदेश के अंचलों तक, और गोपद्रि (ग्वालियर) तक है।

महीपाल द्वितीय—महाराजाधिराज महीपाल का नाम ९५५ ई० के बयाना (भरतपुर) उत्कीर्ण लेख में आया है। डॉ० पुरी का विचार है कि यह एक सामन्त राजा था। उन्होंने लिखा है कि यह विचार करना कठिन है कि दस वर्ष के अल्पकाल में तीन शासक हुए देवपाल, विनायकपाल द्वितीय, और महीपाल द्वितीय। और इनमें से कोई भी कन्नौज के प्रतिहार वंश का सामन्त हो सकता है।

विजयपाल (लगभग ९५९—लगभग ९९० ई०)—विजयपाल ९५९ ई० में सिंहासनारूढ़ था। राजोर (अलवर) और झूँसी (इलाहाबाद) के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि विजयपालदेव और उसके पुत्र राजपालदेव ने ६० वर्ष तक ९५९-१०१९ ई० तक राज्य किया। इन दोनों में ६० वर्ष को बराबर बाँटने पर विजय-पालदेव का शासन काल ९८९ ई० तक आता है। उसके समय में प्रतिहार-साम्राज्य का निरंतर ह्रास होता गया। गुजरात पहले ही चालुक्य मूलराज के अधिकार में चला गया था जिसने अनहिल्लवाड में एक राज्य स्थापित किया था और जिसमें गुजरात समेत सौराष्ट्र (काठियावाड़) सम्मिलित था। कन्नौज वंश के कई सामन्त-राज्य स्वतंत्र हो गए। चंदेल शासक धंग (लगभग ९५०—लगभग १००८ ई०) ने प्रतिहार वंश की निर्बलता का लाभ उठाया। मदनवर्मन् के मऊ प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के सम्राट् को पराजित कर उत्कृष्ट साम्राज्य प्राप्त किया। डॉ० नि० सा० बोस ने लिखा है कि निश्चय ही साम्राज्यवाद के रक्षण का भार प्रतिहारों से चन्देल धंग के कन्धों पर आ पड़ा था। कच्छपघात नरेश बज्रदमन ने प्रतिहार शासक को पराजित कर ग्वालियर पर अधिकार किया। वह संभाव्यतः धंग के अधीन था। ग्वालियरगढ़ का सामरिक महत्व था। इसके लिए विशेष रूप से भोज के समय में एक कोट्टपाल की नियुक्ति की गई थी।

सात वर्ष तक वह बंधन कष्ट भोगता रहा और धीरे-धीरे निर्जीव होकर मर गया। प्रतीत होता है कि विद्याधर की महत्वाकांक्षा राज्यपाल के विनाश का कारण थी।

राज्यपाल ने दो अवसरों पर ६८६ ई० में और १००८ ई० में जयपाल और आनन्दपाल की सहायता की थी जिस समय सुलतान महमूद ने उन पर आक्रमण किया था। फिरिश्ता ने लिखा है कि उस समय हिन्दुओं ने एक संघ बनाया, क्योंकि 'भारत से मुसलमानों को निकालना वे अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते थे।' निश्चय ही हिन्दू शासक मुसलमान आक्रामकों को बाहर खदेड़ना आवश्यक समझते थे किन्तु राजनीतिक प्रधानता की उनकी आपसी होड़ उनके रास्ते में सबसे बड़ी अड़चन थी और उन्होंने एक होकर और प्राणपण से अपने समान शत्रुओं को बाहर खदेड़ने का प्रयास नहीं किया।

सुलतान महमूद के सचिव उत्बी ने लिखा है कि जब राज्यपाल ने सुना कि सुलतान महमूद कन्नौज के समीप आ गया है तो वह शहर छोड़कर गंगा के उस पार भाग गया। सुलतान कन्नौज की ओर बढ़ा जिसमें अलग-अलग सात प्रतिरक्षणात्मक किले थे और १०,००० मंदिर। सुलतान ने सातों किलों पर अधिकार कर लिया। सुलतान ने अपने सैनिकों को लूटने की छूट दे दी। डॉ० नियोगी ने लिखा है कि धन, धर्म और संस्कृति का नाश किया गया। प्रतीत होता है कि कन्नौज को लूटने के बाद वह लौट गया, क्योंकि उत्बी ने इस आक्रमण के राजनीतिक परिणाम का उल्लेख नहीं किया है। यह घटना १०१८ ई० की है।

जिस समय महमूद गज़नी ने राज्यपाल पर आक्रमण किया, उस समय प्रतिहार वंश लड़खड़ा रहा था। उसके सामन्त जेजाकभुक्ति के चन्द्रात्रेय और त्रिपुरी के कलचुरि और शाकम्भरी के चाहमान एक-एक कर स्वतंत्र हो गए थे। स्थानीय राजे और सेनापति अपनी-अपनी शक्ति बढ़ाने में और प्रतिहार राज्य की उपेक्षा करने में लगे थे। उत्बी के वर्णन से स्पष्ट है कि केवल अन्तर्वेदि में महमूद गज़नी को पाँच महत्वपूर्ण शासकों से युद्ध करना पड़ा। उनके नाम ये हैं– १. बारन (बुलन्दशहर) का राय हरदत, २. असनी (फतेहपुर से १० मील उत्तर-पूरब, गंगाजी के तट पर) का चंडाल भोर, ३. शेरवा (सहारनपुर) गढ़ का चान्द राय, ४. महाबन (मथुरा) का शासक कुलचन्द्र, ५. बरू जैबाल (जाबालि)। व्यवहारतः ये स्वतन्त्र थे। प्रतीत होता है कि १०१८ ई० तक प्रतिहार राज्य का पर्याप्त विघटन हो चुका था।

त्रिलोचन पाल (लगभग १०१६ ई०—१०२७ ई०)—प्रतीत होता है कि कन्नौज और बारी के त्यागने और उनके लूटे जाने के बाद राज्यपाल के उत्तराधिकारी अपने राज्य के दक्षिणी भाग में चले गए और गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य अब उसी प्रदेश तक सीमित हो गया। महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन-काल में इस

साम्राज्य का विस्तार बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक था, यह दक्षिण के राष्ट्रकूटों के अनेक आक्रमणों के बाद भी बना रहा और उत्तर-पश्चिम में अरब धावों की गति को रोके रहा। उसकी मृत्यु की तिथि ज्ञात नहीं है किन्तु १०२७ ई० में वह राज्य कर रहा था।

यशःपाल—कड़ा (इलाहाबाद जनपद) से प्राप्त १०३६-३७ ई० का उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि महाराजाधिराज श्री यशःपाल देव ने कौशाम्बी मण्डल के पैलास गाँव के महन्त तथा अन्य राज अधिकारियों को आज्ञा दी कि विभिन्न कर और उपज का दशमांश माथुर विकट, उसके पुत्रों और पौत्रों को दिया जाय। त्रिलोचन-पाल से उसका क्या संबंध था, यह ज्ञात नहीं है किन्तु यह निश्चय है कि वह उसके बाद गद्दी पर बैठा। प्रतीत होता है कि वह मात्र इलाहाबाद जनपद का स्थानीय शासक था। उसने गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों की साम्राजिक अधीश्वरता की प्रतीक उपाधियाँ—परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर—भी नहीं धारण की। संभवतः वह प्रतिहार वंश का अन्तिम राजा था।

ग्यारहवीं शती ईस्वी के अंतिम दशक के लगभग चन्द्रदेव गाहड़वाल ने कन्नौज पर अधिकार किया। डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी ने संकेत किया है कि चन्द्रदेव के ठीक पहले गाधिपुर का राजा गोपाल कन्नौज का शासक था। श्री एन० बी० सन्याल ने सुझाव दिया है कि गाहडवालों के आने के पूर्व राष्ट्रकूटों ने थोड़े समय तक कन्नौज पर राज्य किया। डी० आर० भण्डारकर ने राष्ट्रकूट गोपाल से इस गोपाल का तादात्म्य स्वीकार किया है।

———

खण्ड ३

गाहडवाल वंश

अध्याय | १

गाहडवालों की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक इतिहास

(१) उत्पत्ति—गाहडवाल राजा चन्द्रदेव (लगभग १०८९—लगभग ११०३ ई०) के चन्द्रावती (बनारस जनपद) उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि यह वंश क्षत्रिय था (क्षत्रोऽयमत्र···भुवि नृपवंशः)। सारनाथ उत्कीर्ण लेख से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें लिखा है कि 'चन्द्रनाम नरेन्द्र प्रसिद्ध गाहडवाल क्षत्रवंश में पैदा हुआ था।' गाहडवालों का पूर्वज यशोविग्रह एक साधारण व्यक्ति था। उसने 'नृप' की उपाधि भी नहीं धारण की थी। समकालीन साहित्य में इस वंश का उल्लेख नहीं है। 'कृत्य-कल्पतरु' में नामक ग्रन्थ में भी इस वंश का नाम नहीं है, यद्यपि यह गाहडवाल राजा गोविन्दचन्द्र की आज्ञा से लिखा गया था और इसका लिखने वाला राजा चन्द्रदेव का सन्धि विग्रहिक लक्ष्मीधर था। श्रीहर्ष कवि ने अपने महाकाव्य 'नैषध चरितम्' में गाहडवाल वंश का नामोल्लेख नहीं किया है यद्यपि वह उसके सम्पर्क में था और गाहडवाल राजा जयचन्द्र की राजसभा का एक विख्यात कवि था।

(२) विभिन्न मत—चिन्तामणि विनायक वैद्य, रामकरण और विश्वेश्वरनाथ रेउ का विचार है कि यह वंश राष्ट्रकूट जाति की एक शाखा है। इसकी पुष्टि में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।

१. मांडा—बीजापुर (मिर्जापुर, उ० प्र०) के गाहडवाल राजा अपनी उत्पत्ति जयचन्द्र के भाई मानिकचन्द्र से बताते हैं और अपने को राठोड वंश का कहते हैं।

२. चन्दबरदायी ने लिखा है कि 'राठोड' और 'कामढज' पर्यायवाची शब्द हैं और ये दोनों जयचन्द्र की उपाधियाँ थीं।

३. कल्हणकृत राजतरंगिणी में लिखा है कि ३६ क्षत्रिय-राजवंश हैं। जय-सिंह कृत कुमारपाल चरित में ३६ क्षत्रिय-वंशों के नाम गिनाए गए हैं किन्तु उस सूची में गाहडवालों का नाम नहीं है।

४. राष्ट्रकूटों की तरह गाहडवाल भी अपने को सूर्यवंशी बतलाते हैं। अतः हो सकता है कि बदाऊँ उत्कीर्ण लेख के लखनपाल के पूर्वज चन्द्र राष्ट्रकूट, और चन्द्र

गाहड़वाल एक ही हों और अन्य राष्ट्रकूट उप-जातियों से अपनी भिन्नता दिखाने के लिए उन्होंने अपने नाम के साथ गहड़ या गाहड़ जोड़ दिया हो जो संभवतः दक्षिण भारत के किसी स्थान का नाम हो।

उपर्युक्त तर्कों के विरुद्ध डॉ० रोमा नियोगी ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं :—

१. प्रथम तर्क संदिग्ध है क्योंकि इसकी प्राचीन परम्परा नहीं मिलती।

२. जिस रूप में वर्तमान 'पृथ्वीराजरासो' मिलता है उसकी रचना सोलहवीं शती में की गई थी। अतः अधिक प्राचीन विवादग्रस्त तथ्यों के संबंध में इसकी प्रामाणिकता अधिक विश्वसनीय नहीं है जब तक कि अन्य विश्वासपूर्ण सामग्री से इसकी पुष्टि न हो जाय।

३. राजतरंगिणी ने ३६ क्षत्रिय कुलों के नाम नहीं गिनाए हैं, केवल इतना ही लिखा है कि क्षत्रियों के ३६ कुल हैं। कुमारपाल चरित में क्षत्रियों के छत्तीस राजकुलों में से केवल कुछ कुलों के नाम गिनाए गए हैं, सबके नहीं।

४. जिस श्लोक के आधार पर यह प्रमाणित किया जाता है कि स्वयं गाहड़-वाल अपने को सूर्यवंशी कहते हैं वह यह है : 'आसीद् असीतद्युति वंश-जातः क्षमापाल मालासु दिवं गतासु।' यह श्लोक ६२ गाहड़वाल उत्कीर्ण लेखों में आया है। उनमें से ३९ उत्कीर्ण लेखों में 'वंशजात' और 'क्षमापाल' के बीच में विसर्ग नहीं है। २६ उत्कीर्ण लेखों में विसर्ग वर्तमान है। बिना विसर्ग के इस श्लोक का अर्थ होगा कि एक सूर्यवंशी के विनष्ट होने के बाद गाहड़वाल शासक हुए। इसका अर्थ यह नहीं होगा कि स्वयं उनकी उत्पत्ति सूर्य से हुई है। अधिकांश उत्कीर्ण लेखों में यह श्लोक बिना विसर्ग के आया है। इसके अतिरिक्त महाराजपुत्र गोविन्द चन्द्र के दानपत्र स्पष्ट रूप से सूचित करते हैं कि सूर्य और चन्द्र वंशों के नाश होने के बाद गाहड़वालों ने सत्ता प्राप्त की ('प्रध्वस्ते सोम-सूर्य-उद्भव-विदित-महाक्षत्र-वंश-द्वयेऽस्मिन्'''उद्धर्तुं धर्ममार्गान् प्रथितमिह तथा क्षत्रवंशद्वयं च')। चन्द्रदेव के चन्द्रावती दानपत्रों में भी लिखा है कि देवपाल के वंशजों के विनाश के बाद क्षत्र वंश ने कान्यकुब्ज को प्राप्त किया। यह देवपाल प्रतिहार था। यदि यह साक्ष्य मान लिया जाय तो गाहड़वाल राष्ट्रकूट वंश के नहीं हो सकते।

टाड ने राजपूत वंशों की ६ विभिन्न सूचियाँ दी हैं। पहले में गाहड़वाल वंश का नामोल्लेख नहीं है। तीन सूचियाँ अपूर्ण हैं और उनमें गाहड़वाल का नाम नहीं है, इसलिए इनके आधार पर कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता। पाँचवीं और छठवीं सूचियों में 'गहरवाल' का नाम आया है। उनका नामोल्लेख 'अलग और

अकेले' वंश के रूप में किया गया है। प्राचीन ऐतिहासिक अनुश्रुतियों में और गाहड-वाल उत्कीर्ण लेखों में यह नहीं लिखा है कि गाहडवाल वंश राष्ट्रकूटों की एक शाखा थी। कुमारदेवी के सारनाथ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसका यशस्वी पति गोविन्द चन्द्र गाहडवाल था और उसकी माता राष्ट्रकूट थी। लेकिन उसमें यह संकेत नहीं है कि गाहडवाल वंश राष्ट्रकूट की एक शाखा है।

गाहडवाल का अर्थ—कानतित के राजा कहते हैं कि उनका गाहडवाल वंश 'ग्रहवार' उपाधि का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है 'पापग्रह का निवारण करने वाला'। यह उपाधि ययाति के पुत्र देवदास ने पापग्रह शनि पर विजय प्राप्त करने के बाद प्राप्त की थी। क्रूक ने संकेत किया है कि, हो सकता है, गाहडवाल शब्द की उत्पत्ति 'गह्वर' या 'गिरिगह्वर' से हुई हो जो कन्दराओं में रहने वाली एक पौराणिक जाति का नाम है। एक दूसरे लेखक के अनुसार गाहडवाल शब्द संभवत: एक उपाधि था जिसको इस वंश ने उसी अर्थ में धारण किया जिस अर्थ में इसने 'बलवन्' शब्द को अपनी विस्तारयुक्त विजयों के कारण उपाधि रूप में ग्रहण किया। डॉ० आर० सी० मजुमदार और सी० वी० वैद्य का विचार है कि गाहडवाल नाम किसी स्थान-नाम से निकाला है। डॉ० मजूमदार इसकी उत्पत्ति 'गवर्मद' नामक स्थान-नाम से मानते हैं जिसका नाम १०७६ ई० के एक कन्नड उत्कीर्ण लेख में आया है।

वाराणसी तथा आस-पास के स्थानों से नि:सृत किए गए ६२ गाहडवाल उत्कीर्ण लेखों में गाहडवाल शब्द नहीं आया है। केवल उन चार गाहडवाल उत्कीर्ण लेखों में इसका नाम आया है जो नव-विजित गाहडवाल प्रदेश 'पंचाल देश' से नि:सृत किए गए थे। प्रतीत होता है कि इस वंश ने अपना वंशीय नाम उत्कीर्ण लेखों में तब देना आवश्यक समझा जब उन्होंने अपने नव-विजित प्रदेश से दानपत्र नि:सृत किया, जहाँ वे अज्ञात थे। समकालीन साहित्य में गोविन्द चन्द्र और जयचन्द्र का नाम आया है किन्तु गाहडवाल का नाम किसी साहित्यिक पुस्तक में या दूसरे वंशों के किसी समकालीन उत्कीर्ण लेख में नहीं है।

जयपाल की हार होने के बाद विभिन्न दिशाओं के राजाओं ने विजेता को इतने हाथी उपहार में दिए कि कान्यकुब्ज में एक गजशाला स्थापित की गई और चाँदराय की देख-रेख में रखी गई। यह सुझाव दिया गया है कि अपने भाग्य निर्माण के लिए चन्द्रदेव मुसलमानों से मिल गया और महमूद ने उसको कन्नौज में गजशाला निरीक्षक नियुक्त किया। किन्तु मुसलमान सेना के प्रस्थान करने के बाद उसने बलात् कन्नौज पर अधिकार किया और उस प्रदेश का राजा बन बैठा। उसने गजनी के सुलतान को वार्षिक कर देने का वचन दिया और वह कन्नौज का शासक बनाया गया। चन्द्रदेव के उत्तराधिकारी नियमित रूप से वार्षिक कर चुकता नहीं करते थे

अतः बारहवीं शती ईस्वी में गाहड़वाल राज्य पर बारम्बार लूट-मार के धावे किए गए ।

दिवान में, हबीब-उस-सियर में या जमि-उत-तवारिख में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि इस युद्ध-अभियान के सम्बन्ध में कोई कर लादा गया । दूसरी बात यह है कि गाहड़वाल उत्कीर्ण लेखों में आया हुआ 'तुरुष्क दण्ड' कर का स्वरूप अभी तक स्पष्ट नहीं है । अतः यह नहीं माना जा सकता कि गजनी को कर देने के लिए यह कर उगाहा जाता था । तीसरी बात यह है कि मुसलमान या भारतीय इतिहासों में इसकी कहीं भी चर्चा नहीं है कि कर न देने के दण्ड-स्वरूप तुरुष्क आक्रमण किये जाते थे । दिवान ने केवल इतना ही लिखा है कि गजशाला-निरीक्षक के रूप में चाँदराय की नियुक्ति की गई । उसके बाद के जीवन, जैसे कन्नौज का शासक होने, के सम्बन्ध में वह बिलकुल मौन है । इससे प्रतीत होता है कि उसने इससे अधिक ऊँचा या अधिक महत्त्वपूर्ण पद नहीं प्राप्त किया । उसका तादात्म्य चन्द्रदेव गाहड़वाल से न करना चाहिए जिसका पिता 'नृप' अर्थात् सामन्त राजा था, और प्रत्यक्षतः जिसके वंश की वाराणसी अयोध्या प्रदेश में कुछ राजनीतिक साख थी ।

गाहडवालों का प्रारम्भिक इतिहास

गाहड़वाल वंश का प्रथम ज्ञात राजा यशोविग्रह था । चन्द्रदेव उसका पौत्र था । चन्द्रावती उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि यशोविग्रह के क्षात्रवंश ने राजा देवपाल के वंशजों के नष्ट हो जाने के बाद बलात् कान्यकुब्ज पर अधिकार किया । चन्द्रावती दानपत्रों का एक दूसरा उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि यशोविग्रह ने पृथ्वी पर अधिकार किया और उसको राजदण्ड की 'प्रणयिनी' बनाया । 'दण्ड' और 'प्रणय' शब्दों से तात्पर्य निकलता है कि उसने कुछ भूमि विजय की और किसी छोटे प्रदेश पर राज्य किया । उसके नाम के साथ कोई उपाधि नहीं है अतः प्रतीत होता है कि वह 'नृप' अथवा अधीन राजा था । संभवतः वह ग्यारहवीं शती ईस्वी के मध्य में था और हो सकता है कि वह कलचुरि विजेता लक्ष्मीकर्ण (लगभग १०४२-७० ई०) के अधीन रहा हो । यशोविग्रह का पुत्र महीचन्द्र था जिसकी प्रशंसा में गाहड़वाल उत्कीर्ण लेखों में कहा गया है कि उसका यश समुद्र के पार फैला और उस 'नृप' ने 'अरि-चक्र' को जीता । स्पष्ट है कि वह मण्डलिक राजा था और लक्ष्मीकर्ण के अधीन युद्धों में भाग लिया था । कलचुरि साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर संभवतः उसने एक छोटा राज्य स्थापित किया जो संभवतः लक्ष्मीकर्ण के उत्तराधिकारी यशःकर्ण के अधीन था, या यह अधिक संभाव्य है कि वह इस वंश की गोरखपुर शाखा के अधीन था । इस वंश का तृतीय राजा चन्द्रदेव था । उसने वाराणसी-अयोध्या प्रदेश

का शासन ग्रहण किया। उस समय की अनिश्चित और अव्यवस्थित स्थिति को देखकर उसने अपने को स्वतंत्र घोषित किया और इन्द्रस्थानीयक (वर्तमान दिल्ली प्रदेश) और काशी के बीच के प्रदेश पर अधिकार किया। यह घटना १०८९ ई० के पूर्व किसी समय हुई होगी, क्योंकि इसी वर्ष उसने वाराणसी जनपद के चन्द्रावती नामक स्थान से एक दानपत्र निःसृत किया। इस उत्कीर्ण लेख में चन्द्रदेव का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन है: 'परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर निज-भुजोपार्जित-श्री-कान्य-कुब्जाधिपत्य-श्री-चन्द्र-देव'।

अध्याय | २

गाहडवाल वंश का उत्कर्ष

चिन्तामणि विनायक वैद्य ने लिखा है कि १०००-१२०० ई० की अवधि में उत्तर भारत में सबसे विख्यात और शक्तिशाली राजपूत वंश कन्नौज का गाहडवाल वंश था। इस वंश के उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि महीयल के पुत्र चन्द्रदेव ने 'अपने बाहुबल से कान्यकुब्ज की अधीश्वरता प्राप्त की और प्रजा के उपद्रव को शान्त किया। उसने उद्दण्ड शत्रुओं के सैनिकों के तिमिर को विनष्ट किया' ('प्रध्वस्तोद्धतवैरिवीर-तिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः ॥ येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं श्रीमद्गाधि-पुराधि-राज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥')।

(१) चन्द्रदेव (लगभग १०८६–लगभग ११०३ ई०)—चन्द्रदेव महीचन्द्र (महीतल या महीयल) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। महीचन्द्र की उपाधि 'नृप' थी, जिससे स्पष्ट है कि वह सामन्त राजा था और उसका राज्य वाराणसी—अयोध्या प्रदेश पर था जिसको चन्द्रदेव ने उत्तराधिकार में पाया। अन्तर्वेदि की अशान्त और अनिश्चित राजनीतिक दशा का लाभ उठाकर चन्द्रदेव ने इन्द्रस्थानीयक (दिल्ली प्रदेश) से लेकर काशी तक के प्रदेश पर अधिकार किया और अपने को स्वतंत्र घोषित किया। यह घटना अवश्य ही १०८९ ई० के पूर्व हुई, क्योंकि १०८९ ई० के उसके उत्कीर्ण लेख में उसको 'परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर निजभुजोपार्जित श्री-कान्यकुब्ज आधिपत्य—श्री-चन्द्र-देव' कहा है।

अधिकांश गाहडवाल उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि 'उसने अपने प्रचुर प्रताप से प्रजा के संपूर्ण उपद्रव को शान्त किया।' बसही (इटावा, उ. प्र.) से प्राप्त मदनपाल और गोविन्दचन्द्र के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'भोज की मृत्यु और कर्ण के यश का नाश हो जाने के बाद जब पृथ्वी पीड़ित हुई तब चन्द्रदेव ने इसकी रक्षा की।' डॉ० गांगुली ने इस श्लोक के तथा उदयपुर प्रशस्ति के आधार पर लिखा है कि यह श्लोक संकेत करता है कि परमार भोज ने कन्नौज पर कुछ समय तक राज्य किया। उसके बाद यह प्रदेश कलचुरि कर्ण के आधिपत्य में गया, और उसकी मृत्यु

के बाद वहाँ उस समय तक अव्यवस्था और अराजकता फैली रही, जब तक कि गाहडवाल वंश के चन्द्रदेव ने आकर वहाँ अपनी सार्वभौमिकता नहीं स्थापित की। मुसलमान इतिहास लेखकों का साक्ष्य सूचित करता है कि इस उपद्रव का कारण बारम्बार तुरुष्कों का आक्रमण था। हबीब-उस-सियर ने लिखा है कि गजनी के सुलतान इब्राहीम ने भारत पर कई आक्रमण किए और विजयी होकर गजनी लौटा। तुरुष्क आक्रमण के फलस्वरूप प्रजा को जो विपत्ति सहनी पड़ी और देश में जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसका अवरोध करने के लिए अन्तर्वेदि और वाराणसी प्रदेश में कोई सक्षम और सबल राज्य न था। ऐसी स्थिति में जब चन्द्रदेव ने अन्तर्वेदि और वराणसी प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमाया और जनता के कष्टों को दूर किया तो वह, 'त्राता' माना गया।

चन्द्रदेव ने वाराणसी, कान्यकुब्ज, अयोध्या और इन्द्रस्थानीयक आदि तीर्थ स्थानों को मुसलमानों द्वारा अपवित्र किए जाने से बचाया। इन्द्रस्थानीयक का तादात्म्य वर्तमान् इन्द्रप्रत गाँव से किया जाता है जो पुरानी दिल्ली के समीप है। यदि यह तादात्म्य मान लिया जाय तो प्रतीत होता है कि दिल्ली का तोमर राजा गाहडवाल सम्राट् की अधीश्वरता स्वीकार करता था।

अधिकांश गाहडवाल उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि 'चन्द्रदेव ने शत्रु-मण्डल का दमन किया और उद्दण्ड सैनिकों द्वारा उत्पन्न किए गए अन्धकार को विध्वस्त किया।' चन्द्रदेव द्वारा निःसृत लेख सूचित करता है कि उसने नरपति, गजपति, गिरिपति, और त्रिशंकुपति को जीता। नरपति और गजपति कलचुरि राजाओं की उपाधियाँ हैं। इससे प्रतीत होता है कि चन्द्रदेव और कलचुरि राजा यशःकर्ण से संघर्ष हुआ जिसके फलस्वरूप चन्द्रदेव ने पूरे अन्तर्वेदि और वाराणसी को अपने अधिकार में किया जो दो दशक पूर्व यशःकर्ण के पिता लक्ष्मी कर्ण के हाथ में था। संभवतः चन्द्रदेव ने उसे उस युद्ध में हराया जो यमुना नदी के तट पर हुआ था और जिसका उल्लेख गोविन्दचन्द्र की राज्ञी कुमारदेवी के लेख में है।

संभवतः चन्द्रात्रेय वंश के सलक्षण सिंह ने अन्तर्वेदि पर आक्रमण किया किन्तु असफल रहा। चन्द्रदेव ने कान्यकुब्ज को विजय किया। यह उसकी बहुत बड़ी विजय और सफलता थी क्योंकि यह अन्तर्वेदि का हृदय था और इधर से ही होकर देश के विभिन्न भागों को तथा विदेशों को भी व्यापार-पथ जाते थे। इस नगर को विजय कर लेने से वह संपूर्ण 'चपल' पंचाल का स्वामी हो गया। इसीलिए हर एक गाहडवाल दानपत्र में इस विजय का दो बार उल्लेख हुआ है : एक बार प्रशस्ति में और दूसरी बार सम्राट् के विरुद के रूप में ('श्रीमद्-गाधिपुर-आधिराज्य', 'निजभुजोपार्जित कान्यकुब्जाधिपत्यम्')। 'चपल' शब्द से प्रतीत होता है कि इस पर चन्द्रदेव का

आधिपत्य दृढ़ नहीं था। इसी कारण से उसने अपनी राजधानी वाराणसी में रखी जहाँ से इस वंश के अधिकांश उत्कीर्ण लेख निःसृत किए गए। शत्रुओं को पराजित और राज्य को संघटित करने के बाद चन्द्रदेव ने संभवतः अपने शासन के उत्तरकाल में कान्यकुब्ज को अपनी राजधानी बनाया। इसके अतिरिक्त कान्यकुब्ज ध्वंसावस्था में था जैसा कि अल-बीरूनी के कथन से स्पष्ट है जो १०३० ई० में महमूद गजनी के साथ भारत आया था। वहाँ कोई दृढ़ और स्थायी प्रशासन नहीं था। तुर्कों ने लगभग १०७९-८० ई० में इस पर आक्रमण किया और इसको खुलकर लूटा। अतः इसका भूतपूर्व साम्राजिक वैभव नष्ट हो चुका था। संभवतः चन्द्रदेव ने इस ध्वस्त नगर का पुनः निर्माण किया जब वह पंचाल देश के संघटन में लगा था। इस कार्य में उसको सफलता मिली जैसा कि समकालीन सलमान के वर्णन से स्पष्ट है। उसने लिखा है कि यह नगर विधर्मियों का पूज्य स्थान था और भारत की धनराशि यहाँ एकत्र थी।

राज्य-विस्तार—प्रतीत होता है कि इसका राज्य दक्षिण की ओर यमुना नदी तक था; पश्चिम में कान्यकुब्ज तथा इसके आस-पास का प्रदेश पांचाल निश्चय ही इसके आधिपत्य में था; इन्द्रस्थानीयक या दिल्ली का तोमर नृप चन्द्रदेव की अधीनता में था। उत्तर में पंचाल, उत्तर-कोशल (वर्तमान अवध) और गोरखपुर प्रदेश उसके राज्य में था। पूरब में प्रतीत होता है वाराणसी से अधिक दूर तक उसका राज्य नहीं था। वाराणसी इसके राज्य की राजधानी थी।

चन्द्रदेव के दानपत्रों से प्रतीत होता है कि उसने एक महती सेना लेकर पूरब की ओर प्रयाण किया। किन्तु इसका उल्लेख नहीं है कि सेना ने क्या सफलताएँ प्राप्त कीं। हो सकता है कि पूरब में उसकी पराजय हुई हो। उस समय पूरब में रामपाल शासन कर रहा था, जिसने न केवल भ्रातृघातक संघर्ष पर विजय पाई थी बल्कि कैवर्त विद्रोह का दमन करने में भी सफलता पाई थी। इस सफलता का श्रेय बहुत कुछ उसके सामन्त—चक्र को था जिसमें पीठि-मगध का नृप भीमयशस् प्रमुख था। सन्ध्या-करनन्दी कृत 'रामचरित' की टीका में उसको 'कान्यकुब्ज-राज-बाजी-नीगण्ठन-भुजंगः' कहा है। यह विरुद स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि उसने कान्यकुब्ज राजा को हराया। बाद को एक दूसरा युद्ध हुआ जिसमें गोविन्द चन्द्र ने गौड़ सेना को परास्त किया। सन्ध्याकरनन्दी कृत 'रामचरित' में इस पराजय का उल्लेख नहीं है, क्योंकि यह प्रशंसात्मक ग्रन्थ है और इसमें उसने अपने संरक्षक रामपाल के पराजय का उल्लेख करना उचित नहीं समझा।

चन्द्रदेव महादानी राजा था। उसने कई बार 'तुला पुरुष-महादान' किया। उसने देव प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की और वेद-ध्वनि की रक्षा की जब वह समाप्त-

प्राय थी। संकट से पृथ्वी का उद्धार करने के लिए और धर्ममार्ग को प्रतिष्ठित करने के लिए ईश्वर ने उसको उत्पन्न किया ('उत्सन्न-प्राय वेद-ध्वनि जगद् अखिलं मन्यमान: स्वयंभू: कृत्वा देह-प्रहार प्रवणम्-इहि मन: शुद्ध-बुधि धरित्र्यामुद्धर्तुम् धर्म-मार्गान् प्रथितम्-इहि''''''')।

चन्द्रदेव का अन्तिम प्राप्त उत्कीर्ण लेख ११०० ई० का है, और उसके पुत्र मदनपाल का प्रथम ज्ञात उत्कीर्ण लेख ११०४ ई० का है। स्पष्ट है कि उसका शासन ११०० और ११०४ के बीच किसी समय समाप्त हुआ।

(२) **मदनपाल (लगभग ११०४-१११३ ई०)**—मदनपाल के शासन-काल के केवल ५ उत्कीर्ण लेख मिले हैं, जिनमें से ४ उसके पुत्र गोविन्द चन्द्र द्वारा पुरोहित जागुक, महत्तक बाल्हन और प्रतिहार गौतम की सम्मति से नि:सृत किए गए। इनमें शासक राजा का उल्लेख नहीं है। केवल एक उत्कीर्ण लेख ऐसा मिला है जो राजा द्वारा नि:सृत किया गया था और जिससे असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होता है कि राजा कभी-कभी प्रशासन कार्य करता था। किन्तु इसका समाधान नहीं हो सका है कि प्रनिराजाधिकारीमण्डल बनाने की क्या आवश्यकता पड़ी।

उत्कीर्ण लेखों से असंदिग्ध रूप से प्रमाणित है कि प्रशासन में महाराजपुत्र गोविन्द चन्द्र का प्रमुख भाग था और उन्होंने युद्धों में महान् विजयें प्राप्त की थीं जिनकी उसके पिता के शासन-काल में उत्कीर्ण किये हुए लेखों में बहुत प्रशंसा की गई है। उत्कीर्ण लेखों में मदनचन्द्र या मदनपाल के युद्ध-विजयों की रुढ़िगत शब्दों में प्रशंसा की गई है किन्तु किसी विजय विशेष का उल्लेख नहीं है।

प्रतीत होता है कि दिसम्बर, ११०४ और अक्टूबर, ११०५ के बीच में कान्य-कुब्ज उसके हाथ से निकल गया, क्योंकि ११०४ के बसही दानपत्र में लिखा है कि चन्द्रदेव ने कान्यकुब्ज को अपनी राजधानी बनाया जिससे प्रतीत होता है कि ११०४ ई० में मदनपाल के शासन में भी यह नगर उसकी राजधानी थी।

११०९ ई० का रहन दानपत्र सूचित करता है कि गोविन्दचन्द्र ने अपने असाधारण युद्ध द्वारा हम्मीर को अपना बैर छोड़ने को विवश किया। संभवत: वह क्षिप्रा-युद्ध करते थे। हम्मीर शब्द मुइज्ज-उद्दीन-मुहम्मद-इब्नसाम की मुद्राओं पर अंकित है। प्रतीत होता है गोविन्दचन्द्र ने गजनी और लाहौर के समकालीन यामीनी सुलतान, मसूद तृतीय इब्न इब्राहीम (लगभग १०९९-१११५ ई०) के किसी सेनापति को पराजित किया। तवक़ाते नासिरी ने लिखा है कि 'इस सुलतान के शासन-काल में 'हाजिब' तुधा-तिगीन ने गंगा को पार किया और धर्मयुद्ध करने के लिए इतनी दूर घुसा जितनी दूर सुलतान महमूद को छोड़कर और कोई सेना लेकर इसके पहले नहीं

गया था ।' समकालीन कवि सलमान ने अपने दीवान में लिखा है कि 'इस्लाम (धर्म) की सहायता से मसूद ने एक निर्भीक सेना खड़ी की और धर्मयुद्ध करने के लिए हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की···और हिन्द के राजा मल्ही को बन्दी किया। हिन्द की राजधानी कन्नौज थी जिसको विधर्मी अपना आकर्षण-केन्द्र मानते थे······विधर्मियों का यह प्रतिष्ठा-स्थान था। हिन्द की धन-राशि इसमें एकत्र थी, जिस तरह समस्त नदियाँ समुद्र में गिरती हैं। मल्ही के पास योद्धा, धन, गज, और शस्त्र थे। सोचो कि इसके अतिरिक्त उसके पास और क्या था।' विद्वानों ने मल्ही का तादात्म्य गाहड-वाल राजा मदन से किया है न कि किसी सामन्त मदनपाल से क्योंकि सलमान ने स्पष्ट संकेत किया है कि कन्नौज गाहड़वाल सम्राट की राजधानी थी न कि किसी तुच्छ गाहडवाल सामन्त की।

उपर्युक्त विवरणों से प्रतीत होता है कि सुलतान मसूद तृतीय की सेना हाजिब-तुघातिगीन के नेतृत्व में कान्यकुब्ज तक बढ़ गई। गाहडवाल राजा मदनपाल को पराजित किया और बन्दी बनाया और उसको छुटकारा पाने की रकम चुकता करने को विवश किया। किन्तु पराक्रमी महाराज पुत्र गोविन्दचन्द्र ११०५ ई० में शत्रुओं से संघर्ष करते रहे अपने 'विजय-कटक' (शिविर) से एक दानपत्र निःसृत किया।

राहन दानपत्र प्रमाणित करता है कि गाहडवालों की शक्ति शीघ्र ही लौटी और कम से कम ११०९ ई० तक में महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्र ने हम्मीर को शत्रुता छोड़ने को विवश किया। संभवत: यह मुसलमान सेना मदनपाल के छुटकारे के बाद कान्यकुब्ज में रखी गई थी। संभवत: उस समय तक गाहडवाल सत्ता साम्राजिक कान्यकुब्ज नगर पर पुनः स्थापित हो गई थी। महासन्धि विग्रहिक लक्ष्मीधर द्वारा रचित 'कृत्य-कल्पतरु' ने राजा गोविन्दचन्द्र की राज-प्रशस्ति में लिखा है कि 'उसने युद्ध में वीर हम्मीर का वध किया जो असमान युद्ध के शौर्य के लिए अधीर था। राहन दानपत्र और कृत्य-कल्पतरु के वर्णन में अन्तर है। राहन दानपत्र में लिखा है कि हम्मीर अपनी शत्रुता छोड़ने को विवश किया गया और कृत्य-कल्पतरु में लिखा है कि हम्मीर गोविन्द चन्द्र द्वारा मारा गया। कृत्य-कल्पतरु में लक्ष्मीधर का कथन उतना ही विश्वसनीय है जितना कि गाहडवाल राजकीय उत्कीर्ण लेखों का। स्पष्ट है कि राहन दानपत्र में उल्लिखित घटना और कृत्य-कल्पतरु की घटना अलग-अलग है, एक नहीं। यह विजय ११०९ के बाद हुई। प्रतीत होता है कि इसके पूर्व जो मुसलमान गाहडवाल युद्ध हुआ वह निर्णायक नहीं था, और मुसलमान सेनापति विरामसन्धि करने को विवश हुआ और गाहडवाल राजा मदनपाल को मुक्त किया जो सलमान के अनुसार बन्दी किया गया था। प्रतीत होता है कि कुछ वर्षों के बाद आक्रामकों ने मैत्री तोड़ दी और गाहडवाल राज्य पर पुनः आक्रमण किया;

और इस बार गाहड़वाल सेना विजयी हुई और विदेशी लुटेरों का नेता हम्मीर युद्ध में मारा गया। गजनी के यामीनी सुलतानों के क्षिप्राक्रमणों से तथा भारत में नियुक्त आम्मीरों के आक्रमणों से गोविन्द चन्द्र ने पुण्य भूमि वाराणसी और अपने संपूर्ण साम्राज्य की रक्षा में जो सावधानी, जागरूकता, रणकौशल और पराक्रम दिखलाया उसकी यथायोग्य प्रशंसा की गई। उसकी राज्ञी कुमार देवी के सारनाथ उत्कीर्ण लेख में उसकी प्रशंसा में कहा गया है कि वह दुष्ट तुरुष्कों से भुवन की रक्षा करने में दक्ष है।

चन्द्रात्रेय संल्लक्षण वर्मन् के उत्तराधिकारी जयवर्मन् और वीरवर्मन् अपेक्षाकृत निर्बल और अकुशल शासक थे। हैहय कलचुरि राजा यशःकर्ण की उच्चाकांक्षा चन्द्रदेव द्वारा यमुना नदी के तट पर कुचली जा चुकी थी। गाहड़वालों के साम्राज्य की केवल पूर्वी सीमा पर सशक्त पाल वंशीय रामपाल शासन कर रहा था। अपने राज्य के कैवर्त विद्रोह को दमन करने और प्रदेश को सुदृढ़ करने के बाद उसने उत्कल, कलिङ्ग, और कामरूप को विजय किया। उसने गाहड़वालों के विरुद्ध एक सेना भेजी किन्तु महाराज पुत्र गोविन्दचन्द्र इस गौड सेना को परास्त करने में सफल हुआ। राहन उत्कीर्ण लेख में उसके पराक्रम की प्रशंसा की गई है कि वह गौड-गजों के घटा कुम्भ को निर्भेद करने में भीम था। कृत्य कल्पतरु में लक्ष्मीधर ने भी गोविन्दचन्द्र के शौर्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिन हाथियों की गर्जन से पृथ्वीपति स्तंभित होते थे उन गौड हाथियों को गोविन्द ने क्रीडा मात्र से शंकित किया। गौड राजा रामपाल के जीवनी लेखक सन्ध्याकरनन्दी अपने राजा की इस पराजय के संबंध में पूर्णतया मौन हैं। संभवतः इस लड़ाई के फलस्वरूप रामपाल के मामा मथन की पौत्री कुमार देवी से महाराज गोविन्दचन्द्र का विवाह हुआ। किन्तु यह सन्धि अल्पकालिक थी क्योंकि गोविन्द चन्द्र के शासन-काल में कुछ काल के लिए गाहड़वालों का पाल साम्राज्य के पर्याप्त भाग पर अधिकार था।

उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि इन युद्ध विजयों के फलस्वरूप कोई प्रदेश उसके राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया और उसका राज्य उतना ही बना रहा जितना कि उसने अपने पिता चन्द्रदेव से उत्तराधिकार में पाया था। राहन उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि राणक लवराप्रवाह उसका मंडलिक था। मदन पाल की चाँदी और ताम्बे की मुद्राएँ पाई गई हैं।

———

अध्याय | ३

उत्कर्ष काल

(१) **गोविन्दचन्द्र**—गोविन्दचन्द्र संभवतः १११३ ई० के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ, क्योंकि उसका सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेख १११४ ई० का मिला है। वह न केवल अपने वंश का सर्वाधिक महान् और सफल राजा था बल्कि अपने समय का महत्तम सम्राट् था। उसके समय में उत्तरी भारत में गाहडवाल वंश सर्वप्रमुख था। उसने विस्तृत प्रदेश पर विजय प्राप्त की और विभिन्न राजाओं से कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। अपने पिता मदनपाल के शासन-काल में उसने अनेक सफल युद्ध किए थे। उस काल में जो उत्कीर्ण लेख निःसृत किए गए थे उनमें स्पष्ट रूप से प्रशंसा की गई है कि वह समस्त राज-प्रक्रियाओं से युक्त था।

(२) **युद्ध और विजित क्षेत्र**—गोविन्दचन्द्र के शासन-काल का सर्वप्रथम उत्कीर्णलेख १११४ ई० का है। इस लेख में गोविन्दचन्द्र की प्रशंसा की गई है कि उसने नवराज्यगज पर अधिकार किया। प्रतीत होता है कि यह प्रदेश घरवरा नदी के उसपार का उत्तर-समुद्र या सौम्य-सिन्धु था जिस पर कीर्तिपाल राज्य कर रहा था। गोविन्दचन्द्र का एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यांकित ११२४ ई० सूचित करता है कि उसका अधिकार मोनेर पर था जो वर्तमान पटना, बिहार में है। एक दूसरा उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसने मुद्गगिरि (वर्तमान मुंगेर) से एक दान किया। इससे प्रमाणित होता है कि वह नगर उसके अधिकार में था। यह क्षेत्र पहले पाल राजा रामपाल के हाथ में था। उसकी प्रशंसा में रामचरित (जिसमें उसकी जीवनी वर्णन की गई है) में लिखा है कि 'धृत-मध्यदेश-तनिमा।' डॉ० आर० सी० मजुमदार ने इसका अर्थ लगाया है कि उसने मध्यदेश अर्थात् गाहडवाल राज्य की बढ़ती हुई शक्ति का अवरोध किया।

प्रतीत होता है कि गाहडवाल राजा गोविन्दचन्द्र के हाथ से ११४५ और ११४७ ई० के बीच में पटना जनपद निकल गया, क्योंकि पालवंश के मदनपाल के ११४५ और ११५६ ई० के उत्कीर्ण लेखों से प्रमाणित है कि वह पटना और मुंगेर

पर राज्य कर रहा था। प्रतीत होता है कि इन प्रदेशों पर पालवंश का आधिपत्य अधिक दृढ़ था। हो सकता है कि अपने शासन काल के अन्तिम वर्षों में मदनपाल द्वारा गोविन्दचन्द्र की पराजय हुई हो। संभाव्यतः गोविन्दचन्द्र की मृत्यु के बाद प्रायः संपूर्ण बिहार कुछ समय के लिए पालवंश के हाथ में चला गया।

अपने शासन-काल के आरंभिक वर्षों में गोविन्दचन्द्र ने त्रिपुरी के हैहय कलचुरियों पर आक्रमण किया और कलचुरि राज्य का कुछ प्रदेश अपने राज्य में सम्मिलित किया और इस विजय की स्मृति में गोविन्दचन्द्र ने कलचुरि उपाधि 'अश्वपति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपति' धारण किया। यह उपाधि ११२० ई० के पूर्व के उत्कीर्ण लेखों में नहीं है। उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों के ११२० ई० के बाद के उत्कीर्ण लेखों में यह प्रतिष्ठा सूचक उपाधि दुहराई गई है। प्रतीत होता है कि गोविन्द चन्द्र ने कलचुरियों से यमुना और सोन नदियों के बीच का प्रदेश छीना। हो सकता है कि पराजित कलचुरि राजा गय-कर्ण हो।

जयचन्द्र के रम्भामञ्जरी नाटक में लिखा है कि जिस दिन गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण या पूर्वी मालवा विजय किया उसी दिन उसको एक पौत्र हुआ जिसका नाम इस विजय की स्मृति में जयचन्द्र रखा गया। दशार्ण प्रदेश परमार वंश के आधिपत्य में था। समकालीन उत्कीर्ण लेखों और इतिवृत्तों से प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् का शासन ह्रास पर था। चालुक्य राजा जयसिंह ने मालवा का प्रचुर भाग विजय किया और परमार राजा को काली-सिन्धु नदी की घाटी में चला जाना पड़ा। डॉ० नियोगी ने लिखा है कि इस समय परमार वंश की स्थिति अत्यंत भेद्य थी और उस पर गाहडवालों द्वारा आक्रमण किए जाने की पूर्ण संभावना थी। यशोवर्मन के शासन के बाद इस प्रदेश पर एक परमार महाकुमार वंश का शासन था जो प्रत्यक्षतः मुख्य परमार वंश के राजा की अधीनता स्वीकार करता था।

प्रतीत होता है कि पश्चिम की ओर गोविन्दचन्द्र ने प्रतिरक्षात्मक नीति अपनाई। जब गोविन्दचन्द्र युवराज था तब उसने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया था और संभवतः गजनी के यमीनी सुलतान द्वारा भेजे गए मुसलमान सेनापतियों से कई बार युद्ध किया था। गोविन्दचन्द्र के समय में यमीनी वंश उत्तराधिकार के झगड़ों के कारण बहुत निर्बल हो गया था। फिर भी महमूद तथा मसूद तृतीय के आक्रमणों की स्मृतियाँ भुलाई नहीं गई थीं और यह उचित ही था कि गोविन्द चन्द्र पश्चिम की ओर से जागरूक था। उसकी एक राज्ञी कुमारदेवी का उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि दुष्ट तुरुष्क सैनिकों से वाराणसी की रक्षा करने के लिए गोविन्दचन्द्र उत्पन्न हुआ था क्योंकि वही एक पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ था। मुसलमान इतिहास लेखकों ने लिखा है कि बहराम शाह (लगभग १११८-५२ ई०) ने भारत के विरुद्ध

कई सैनिक अभियान किये। किन्तु किसी मुसलमान इतिहास लेखक ने इन अभियानों का विवरण नहीं दिया है। गजनी सुलतानों के जो आमीर भारत में नियुक्त थे वे भी यदा-कदा आक्रमण करते रहते थे किन्तु उनकी मुख्य शक्ति गजनी से अपने को स्वतंत्र करने में लगी थी।

डॉ० नियोगी ने लिखा है कि गोविन्दचन्द्र के तीन मण्डलिक राजवंश थे—दिल्ली का तोमर वंश, बदायूँ का राष्ट्रकूट वंश, और कान्यकुब्ज में गाधिपुर-अधिपति गोपाल का राजवंश। इन मण्डलिकों द्वारा गोविन्दचन्द्र का पश्चिमी अंचल सुरक्षित था। हो सकता है कि इन मण्डलिकों के क्षेत्रों पर कुछ मुसलमान आक्रमण हुए हों और कुछ आक्रमणों को गोविन्दचन्द्र ने पीछे खदेड़ा हो। उस समय वाराणसी तक किसी मुसलमान सेना के प्रवेश करने की संभावना नहीं थी। कुमारदेवी के उत्कीर्ण लेख में वाराणसी का नाम इसलिए आया है कि वाराणसी न केवल गोविन्दचन्द्र की सत्ता का केन्द्र था बल्कि धर्म, संस्कृति, और विद्या का भी केन्द्र था।

(३) राज्य विस्तार – चालीस वर्ष पर्यन्त के गोविन्दचन्द्र के अनेक उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं। इनके अतिरिक्त राज्ञी कुमार देवी का स्तम्भ उत्कीर्ण लेख और उसके दो मण्डलिकों के दो उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं। इन उत्कीर्ण लेखों के प्राप्ति-स्थान तथा उनमें आए हुए स्थान-नामों के आधार पर गोविन्दचन्द्र के राज्य के विस्तार का निश्चय करने का प्रयत्न किया गया है।

उत्तर में उसका एक लेख महेत में पाया गया है जो उत्तर प्रदेश के गोण्डा जनपद में है। उत्तर-पूर्व में पाली, गगहा, लार आदि में जो लेख पाए गए हैं उससे यह निश्चय है कि उसका राज्य घरघरा और छोटी गंडक नदियों के आगे तक था। उसका एक लेख मोनेर में पाया गया है जो बिहार के पटना जनपद में है। उसका एक लेख तिथ्यांकित ११४६ ई० का मुद्गगिरि (वर्तमान मुंगेर) आवास से निःसृत किया गया था। पाल उत्कीर्ण लेखों से प्रतीत होता है कि अपने शासन के उत्तरार्द्ध में गोविन्दचन्द्र को इस क्षेत्र से पीछे हटना पड़ा। यह पहले लिखा जा चुका है कि यमुना मदनपाल के समय में गाहड़वाल के राज्य की सीमा थी। गोविन्दचन्द्र ने कलचुरि राजाओं की उपाधि 'अश्वपति-नरपति-गजपति-राजत्रयाधिपति' धारण की और ११२० ई० में कुछ गाँवों का दान किया जिनको इस तिथि के पूर्व कलचुरि राजा यशःकर्ण अपने राजगुरु को दान कर चुका था। गोविन्दचन्द्र ने इन गाँवों को एक दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया। इससे संकेत होता है कि कलचुरि राज्य का कुछ भाग जो संभाव्यतः यमुना के दक्षिण में था गोविन्दचन्द्र द्वारा अपने राज्य में सम्मिलित किया गया। मध्य भारत के नागोद राज्य में एक उत्कीर्ण लेख मिला है

जिसके आधार पर कहा जाता है कि संभाव्यतः गोविन्दचन्द्र ने यमुना और सोन नदियों के बीच के प्रदेश पर शासन करने के लिए एक मण्डलिक बैठाया।

नयचन्द्र कृत रम्भामंजरी नाटक में गोविन्दचन्द्र द्वारा दशार्ण या पूर्वी मालवा के विजय किये जाने का उल्लेख है। किन्तु इसकी पुष्टि किसी अन्य साहित्यिक ग्रन्थ या उत्कीर्ण लेखों से नहीं हुई है। अतः यह अत्यंत संभाव्य है कि यमुना गोविन्दचन्द्र के राज्य की दक्षिण-पश्चिम सीमा थी।

दिल्ली में तोमर वंश राज्य कर रहा था जो गोविन्दचन्द्र का माण्डलिक था। दिल्ली पर कई बार यमीनी आक्रमण हुए और लूट-मार करने के बाद वे लुटेरे वापस चले गये और तोमर वंश वहाँ राज्य करता रहा।

उत्कीर्ण लेखों के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि कुछ समय तक गोविन्द-चन्द्र का राज्य मुद्गगिरि से लेकर इन्द्रस्थानीयक तक फैला हुआ था। उत्तर में उसकी सेना संभाव्यतः हिमालय तक गई; और दक्षिण में उसकी सेना ने यमुना के पार कलचुरि राज्य में प्रवेश किया।

(४) **राजनयिक सम्बन्ध**—गोविन्दचन्द्र बुद्धिमान शासक था। उसने विवेकपूर्ण राजनयिक सम्बंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ की और अपने राज्य का विस्तार किया। उसने रामपाल के मामा मथनदेव की पौत्री कुमारदेवी से विवाह किया जिससे पाल-गाहड़वाल झगड़े कुछ समय तक रुके रहे। इससे गोविन्दचन्द्र को कीर्त्तिपाल से उत्तर-समुद्र और कलचुरि राजा से उसके राज्य का कुछ भाग छीनने का अवसर मिला। तुम्माण कलचुरि शाखा का जाज्जलदेव प्रथम (लगभग १११४ ई०) त्रिपुरी के कलचुरि राजा का सामन्त था किन्तु गाहड़वाल चन्द्रदेव, परमार लक्ष्मीवर्मन्, चन्द्रात्रेय सल्लक्षण और चालुक्य विक्रमादित्य राजाओं के संघ द्वारा सुविख्यात लक्ष्मी कर्ण की पराजय हुई और कलचुरि राज्य निर्बल हो गया। इसका लाभ उठाकर जाज्जलदेव प्रथम स्वतंत्र हो गया और अपने शक्तिशाली पड़ोसी राजा गोविन्दचन्द्र के साथ मैत्री गठन किया। हो सकता है कि जाज्जलदेव ने कलचुरि प्रदेश के एक भाग पर अधिकार करने में गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की सहायता की हो।

गोविन्दचन्द्र का समकालीन चन्द्रात्रेय राजा मदनवर्मन् था (लगभग ११२९—६३ ई०) उसके वंश के तथा दूसरे वंशों के उत्कीर्ण लेखों से प्रमाणित है कि इसने मालव, चेदि और अणहिल्लपाटक के राजाओं से सफलतापूर्वक संघर्ष किये। उसका मउ उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि काशी का गाहड़वाल राजा उसके प्रति मैत्रीभाव रखता था। रम्भामंजरी नाटक में गोविन्दचन्द्र द्वारा दशार्ण विजय किये जाने की

चर्चा है। चन्द्रात्रेय राज्य, गाहड़वाल राज्य और दशार्ण के बीच में था। अतः यह संभाव्य है कि चन्द्रात्रेय राजा ने गोविन्दचन्द्र द्वारा मालवा विजय किए जाने में सहायता की हो।

कुलोत्तुङ्ग प्रथम का एक उत्कीर्ण लेख गंगैकोण्ड चोलपुरम् में है। यह मदनपाल के या गोविन्दचन्द्र के समय का है। इसमें कुलोत्तुङ्ग प्रथम के उत्कीर्ण लेख के नीचे यशोविग्रह से लेकर चन्द्रदेव तक की गाहड़वाल वंशावली उत्कीर्ण है। प्रतीत होता है कि गाहड़वाल वंश का कोई राजकुमार चोल राजधानी गया था और संभवतः उसने इस उत्कीर्ण लेख को लिखा था। डॉ० यच० सी० रे ने लिखा है कि उत्तर की ओर राज्य विस्तार की चोलों की नीति से कलचुरियों से मनमुटाव हुआ और संभाव्यतः चोल सम्राट् और गाहड़वाल सम्राट् के सौहार्द बंधन का यही कारण था, क्योंकि दोनों का ही कलचुरियों से विद्वेष था। चोल देश के एक भिक्षु तथा उत्कल के एक भिक्षु की प्रार्थना पर गोविन्दचन्द्र ने कुछ दान किए। इससे भी प्रतीत होता है कि गोविन्दचन्द्र का चोल तथा उत्कल दोनों ही देशों से मैत्रीभाव था।

मेरुतुङ्ग की प्रबंध चिन्तामणि में लिखा है कि चालुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज ने जयचन्द्र (गोविन्दचन्द्र जो सिद्धराज का समकालीन था) की राजसभा में एक दूत भेजा। प्रतीत होता है कि अणहिल्लपाटक और काशी के बीच में कुछ राजनयिक संबंध सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल के शासन-काल में भी बना रहा, क्योंकि कुमारपाल चरित नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कुमारपाल ने पशुओं के प्रति हिंसा रोकने के लिए अपने मंत्रियों को काशी के सम्राट् के पास भेजा।

इस काल में कश्मीर और काशी में सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। इसका साक्ष्य राज तरंगिणी में मिलता है। उसमें लिखा है कि कश्मीरी राजा जयसिंह ने गोविन्द चन्द्र को अपनी मित्रता से गौरवान्वित किया। कश्मीर के राजा जयसिंह का महासन्धिविग्रहिक मंख ने अपने श्रीकण्ठचरित में लिखा है कि कश्मीरी मंत्री अलंकार की आज्ञा से कश्मीरी विद्वानों और राजकीय अधिकारियों की जो सभा हुई थी उसमें गोविन्दचन्द्र ने सुहल को भेजा था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गोविन्दचन्द्र ने अपने कुछ समकालीन महान् शासकों से मैत्री संबंध स्थापित किया। अन्य समकालीन वंशों की साहित्यिक रचनाओं तथा उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उसने पड़ोस के समस्त महत्त्वपूर्ण राजाओं से मैत्री स्थापित की। डॉ० नियोगी ने लिखा है कि गोविन्दचन्द्र की सफलता का कुछ श्रेय उसके योग्य मंत्रियों और राजकीय अधिकारियों को भी है। गोविन्दचन्द्र की आज्ञा से महासन्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर ने कृत्य कल्पतरु नामक एक ग्रंथ की रचना की

जिसमें उसने स्पष्ट लिखा है कि उसकी सहायता और मंत्र-महिमा ने राजा को यश प्राप्त करने में सहायता की। उसमें यह भी लिखा है कि उसने काशी के राजा के शत्रुओं से सफलतापूर्वक युद्ध किया।

(५) **उसके मण्डलिक**—गोविन्दचन्द्र के राज्य के पश्चिमी अंचल में तीन मण्डलिक राजवंश थे जिन्होंने गजनी के यमीनी सुलतानों की आक्रामक सेना के विरुद्ध दृढ़ बांध का काम किया। प्रतीत होता है कि गोविन्दचन्द्र की मृत्यु के बाद दिल्ली के तोमरों पर से गाहडवाल वंश का आधिपत्य हट गया। चाहमान राजा वीसलदेव ने ११६४ ई० के कुछ पूर्व दिल्ली को विजय किया। बदायूँ का राष्ट्रकूट वंश गोविन्दचंद्र का मण्डलिक था। कान्यकुब्ज में गाधिपुराधिपतिः गोपाल का वंश राज्य कर रहा था। वहाँ का समकालीन शासक मदनपाल था। उसका मंत्री विद्याधर ११११९ ई० के सेत-महेत दानपत्र का दाता था। सिंगर वत्सराज के कमौली दानपत्र से प्रतीत होता है कि सिंगर नामक एक मण्डलिक वंश भी था। गोरखपुर के कलचुरि वंश के अतिरिक्त उत्तर में भी एक कलचुरि वंश था जो गाहडवालों का मण्डलिक था। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मण्डलिक-चक्र उसकी सेवा करते थे ('समस्त-राज-चक्र-संसेवित-चरण')।

(६) **मूल्यांकन**—वह अपने समय का महानतम् राजा था। उसने अनेक प्रदेशों को जीता और पड़ोस के राजाओं से राजनयिक संबंध कर गाहडवाल वंश की प्रतिष्ठा और प्रभाव की वृद्धि की। अपने पिता के शासन-काल में उसने अनेक सफल युद्ध किए। उस समय के उत्कीर्ण लेखों ने उसकी प्रशंसा में लिखा है कि 'वह समस्त राज विशेषाधिकारों से युक्त था।' उसने अपने पिता से पाये हुए राज्य का विस्तार किया। अपने युवराज काल में उसने यमीनी सुलतान की सेना को कान्यकुब्ज से खदेड़ कर उस पर अधिकार किया और गौड सेना से सफलतापूर्वक युद्ध किया। 'समस्त-राज-प्रक्रियोपेत' पद से स्पष्ट है कि वह युवराज-काल में राज्य के प्रशासन में भाग लेता था। वह विवेकी था और गाहडवाल राज्य के हित में उसने वैवाहिक संबंध जोड़े और पड़ोस के राजवंशों से राजनयिक संबंध किए जिसकी चर्चा प्रायः समस्त महत्त्वपूर्ण पड़ोस के राजाओं के उत्कीर्ण लेखों में है। उत्तरी भारत के राजनीतिक क्षेत्र में उसका सम्मान और प्रतिष्ठा थी। वह विद्वानों का संरक्षक था। उसने कश्मीर को विद्वत् सभा में अपने प्रतिनिधि रूप में सुहल को भेजा। उसने अपने महासन्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर से कृत्य कल्पतरु नामक ग्रंथ की रचना कराई। समस्त उत्कीर्ण लेखों में उसकी प्रशंसा में कहा गया है कि वह 'विविध-विद्या विचार-वाचस्पति' था। उसकी राज्ञियाँ कुमारदेवी और वसन्तदेवी बौद्ध थीं। उसकी पटरानी गौसल्लदेवी वैष्णवी थी उसने सूर्य भगवान के समक्ष दान किया। उसकी धार्मिक

नीति उदार थी। वह 'परम-माहेश्वर' था फिर भी उसने कुछ बौद्ध भिक्षुओं के प्रति दान अर्पण किया। वह तीर्थस्थानों का रक्षक माना जाता था। उसकी आज्ञा से उसके महासन्धिविग्रहिक लक्ष्मीधर ने 'कृत्य-कल्पतरु' नामक एक ग्रंथ की रचना की जिसमें ब्रह्मचारी, गार्हस्थ, श्राद्ध-दान आदि तथा राजधर्म और व्यवहार आदि के संबंध में विवेचन है। यह एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता था जिसमें से बंगाल, मिथिला, उत्तर भारत और दक्खिन के स्मृतिकारों ने पूरे-पूरे, लम्बे उद्धरणों को अपने ग्रंथों में ग्रहण किया है।

———

अध्याय ४

गाहडवाल वंश का ह्रास और पतन

(१) **विजयचन्द्र (लगभग ११५५-११६९ ई०)**—गोविन्दचन्द्र का अन्तिम ज्ञात उत्कीर्ण लेख ११५४ ई० का है। प्रतीत होता है कि इस तिथि के एक या दो वर्ष के अन्दर ही उसकी मृत्यु हुई। उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि गोविन्दचन्द्र के तीन पुत्र थे - युवराज आस्फोटचन्द्र, महाराज पुत्र राज्यपाल और विजयचन्द्र।

(२) **उत्तराधिकार-कलह**—गोविन्दचन्द्र के ११५४ ई० के उत्कीर्ण लेख के १३ वर्ष बाद का एक उत्कीर्ण लेख उपलब्ध है जो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी विजय चन्द्र द्वारा निःसृत किया गया था। गोविन्दचन्द्र के शासन-काल के ४४ उत्कीर्ण लेख मिले हैं; किन्तु ११५४ ई० और ११६८ के बीच के समय का एक भी गाहडवाल उत्कीर्ण लेख प्राप्त नहीं है। गोविन्दचन्द्र के दो पुत्र युवराज आस्फोटचन्द्रदेव और महाराज पुत्र राज्यपालदेव सिंहासन पर नहीं बैठे। हो सकता है कि गोविन्दचन्द्र के जीवनकाल में ही उन दोनों की मृत्यु हो गई हो, या गोविन्दचन्द्र के तीनों पुत्रों के बीच में उत्तराधिकार का झगड़ा हुआ हो। हो सकता है कि १३ वर्ष के समय का एक भी गाहडवाल लेख के न मिलने का कारण वह संकट हो जो मुसलमान आक्रमण के फलस्वरूप दिल्ली निकल जाने से उत्पन्न हुआ था।

(३) **मुसलमानों की पराजय**—गाहडवाल उत्कीर्ण लेखों में मुसलमानों के विरुद्ध विजयचन्द्र के सफल युद्ध का उल्लेख है। एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि विजयचन्द्र ने 'भुवन-दलन की क्रीड़ा के निवास-स्थान हम्बीर के नारियों के नेत्रों से, जलद के समान, बहती हुई धारा से भू-लोक के तपन का अन्त किया। गजनी यमीनी सुलतानों के हाथ से निकल गया था और उन्होंने पंजाब में अपनी शक्ति दृढ़कर पूरब की ओर बढ़ने का प्रयास किया। गाहडवाल राजा विजयचन्द्र ने उनका अवरोध किया और उनको पराजित किया। विजयचन्द्र के ११६८ ई० के कमौली उत्कीर्ण लेख में इसकी चर्चा है। अतः यह निश्चित है कि यह घटना ११६८ ई० के पूर्व किसी समय घटित हुई।

डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि विग्रहराज चतुर्थ ने तोमर वंश से दिल्ली और हाँसी छीन लिया और इस तरह चौहानों और तोमरों के बीच दीर्घकाल से जो संघर्ष चल रहा था उसका अन्त हुआ। इस विजय से आर्यावर्त की स्वतंत्रता की रक्षा का भार शाकम्भरी और अजमेर के चौहानों पर आ पड़ा। अब वे मध्यदेश के द्वार पर थे और अब उनको बलात् भारतीय स्वाधीनता और संस्कृति के विरोधियों को नष्ट करना था। ११६३ ई० के सिवालिक स्तम्भ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि विग्रहराज ने गजनवियों के हाथ से अधिकांश हिन्दू प्रदेश छुड़ा लिया। केवल पंजाब उनके हाथ में बचा। किन्तु यह प्रायः निश्चय है कि पहले विजयचन्द्र ने हम्मीर को हराया और उसके बाद चौहान विग्रहराज ने।

(४) **पालवंश से युद्ध**—लक्ष्मणसेन का माधै नगर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि लक्ष्मणसेन ने जब वह कुमार था, 'काशीराज' को पराजित किया। बाद के उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि लक्ष्मणसेन ने या विश्वरूप सेन ने प्रयाग में 'समर-जय' स्तम्भ खड़ा किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस प्रदेश पर लक्ष्मणसेन ने दो बार आक्रमण किए। प्रतीत होता है कि ११६४ ई० के पूर्व जब विजयचन्द्र अपनी मुख्य सेना को लेकर तुरुष्कों से युद्ध करने के लिए पश्चिम की ओर गया था तभी अवसर देखकर लक्ष्मणसेन ने गाहड़वाल राज्य के पूर्वी क्षेत्र पर आक्रमण किया। प्रतीत होता है उस समय विजयचन्द्र के पूर्वी क्षेत्र की प्रतिरक्षा अपर्याप्त थी और सेन नरेश ने सरलता से विजय प्राप्त की और वाराणसी और प्रयाग में विजय स्तम्भ खड़े किये। प्रतीत होता है कि लक्ष्मणसेन ने गाहड़वाल राज्य के पूर्वी क्षेत्रों को अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया; क्योंकि ११६४ ई० के कमौली दानपत्र में लिखा है कि वाराणसी से महाराजपुत्र जयचन्द्रदेव ने एक दानपत्र निःसृत किया। ११६९ ई० का उत्कीर्ण लेख शाहाबाद जनपद से निःसृत किया गया था। बोधगया उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि विजयचन्द्र का पुत्र पटना और गया क्षेत्रों में राज्य कर रहा था। स्पष्ट है कि तुरुष्कों को हराने के बाद विजयचन्द्र शीघ्रतापूर्वक पूर्वी क्षेत्रों में आया और अपनी राजनीतिक सत्ता पुनः स्थापित की।

प्रतीत होता है कि जिस समय विजयचन्द्र पूर्वी क्षेत्रों में अपनी सत्ता जमाने के लिए शीघ्रतापूर्वक दिल्ली से लौटा तो दिल्ली के तोमरवंश ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की। इसी बीच में चाहमानों ने तोमरों को पराजित कर दिल्ली पर अधिकार किया। जैसा कि चौहान विग्रहराज के दिल्ली-सिवालिक स्तम्भ उत्कीर्ण लेख से तथा चौहान सोमेश्वर के विजोलिया उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है दिल्ली तोमर वंश के हाथ में थी जो विजयचन्द्र का मण्डलिक था और विजय चन्द्र अपने राज्य के पूर्वी क्षेत्रों में अपनी सत्ता जमाने में व्यस्त था। इस कारण विजयचन्द्र और चौहान विग्रहराज में कोई

युद्ध नहीं हुआ और ऐसे किसी युद्ध की चर्चा न तो गाहड़वाल वंश के किसी उत्कीर्ण लेख में और न चौहान वंश के किसी उत्कीर्ण लेख में है। यह घटना वाराणसी और प्रयाग पर लक्ष्मणसेन के आक्रमण के बाद अवश्य ही ११५७-५८ ई० के लगभग हुई होगी।

प्रतीत होता है कि जिस समय विजयचन्द्र पूर्वी क्षेत्रों में अपनी सत्ता के पुनर्स्थापन के लिए गया, उसी समय उसने दक्षिण-पूरब की ओर सोननदी तक के प्रदेश पर अधिकार किया, जो महानायक प्रतापधवल के अधिकार में था। विजयचन्द्र के पुत्र जयचन्द्र ने अपने पिता की प्रशंसा करते हुए एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि जब वह तीनों दिशाओं में त्रिविक्रम की तरह घूमा तो उसके यश से बलवान राजाओं का भय तीव्र हो गया। अप्रत्यक्ष रूप से इसमें विजयचन्द्र की तीनों दिशाओं के सफल कार्यों का उल्लेख है; पश्चिम में तुरुष्कों के विरुद्ध, दक्षिण-पूरब से प्रतापधवल के विरुद्ध, और पूरब में सेन राजा लक्ष्मण सेन के विरुद्ध अपनी राजनीतिक सत्ता के पुनः स्थापन में।

(५) दिल्ली का सामरिक महत्व—गाहड़वालों के हाथ से दिल्ली के निकल जाने से गहरा प्रभाव पड़ा। दिल्ली से तोमरवंश उखड़ गया जिसने लगभग २०० वर्ष तक वहाँ राज्य किया था। अन्तर्वेदि की रक्षा करने का भार गाहड़वालों पर से हटकर सीधे चाहमानों पर आ पड़ा। उन्होंने अपने वंश के एक व्यक्ति को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। गाहड़वालों ने पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण सामरिक स्थानों पर मण्डलिक-चक्र स्थापित किये थे। इनमें से कुछ मण्डलिक अब चाहमानों के अधीन थे। गाहड़वालों और चाहमानों में प्रतिद्वन्द्विता थी। उनका बल भी समान था। अन्तर्वेदि की रक्षा का उत्तरदायित्व विच्छिन्न हो जाने से तुरुष्क आक्रमण के अवरोध की शक्ति स्पष्टतः क्षीण हो गई जिसका प्रभाव गाहड़वालों के हाथ से दिल्ली के निकल जाने के ३० वर्ष पश्चात् प्रतीत हुआ।

(६) मण्डलिक राजवंश—महानायक प्रतापधवल खयरवाल वंश का था और जापिल में राज्य कर रहा था। प्रतीत होता है कि इसने ११५८-११६९ ई० तक राज्य किया। १२२३ ई० के रोहतासगढ़ शिलाखण्ड-लेख में श्री प्रताप का नाम आया है। कीलहार्न के अनुसार यह भी खयरवाल वंश का था। इस वंश के अतिरिक्त अन्य राज्यवंश भी जो गोविन्दचन्द्र के अधीन थे, विजयचन्द्र के शासन-काल में मण्डलिक बने रहे। केवल दिल्ली का तोमरवंश अपनी स्वतंत्रता घोषित करने के बाद चाहमान राज्य में विलीन हुआ।

(७) जयचन्द्र (लगभग ११७० ई०-लगभग ११९४ ई०)—इस राजा का राज्याभिषेक २१ जून ११७० ई० में हुआ। इसने लगभग २४ वर्ष राज्य किया और

संभवतः चंद्वार के युद्ध में ११९४ ई० में मारा गया। मुसलमान इतिहास लेखकों के वर्णन से प्रतीत होता है कि वह भारतवर्ष का महानतम् राजा था। उसका राज्य सबसे बड़ा था और उसके पास हाथियों और अश्वारोहियों की महती सेना थी। उसकी सेना 'बालू के कणों की तरह अगणित थी।'

(८) राजनीतिक महत्व—इस वंश के तथा समकालीन अन्य वंशों के उत्कीर्ण लेखों में किसी ऐसे युद्ध का उल्लेख नहीं है जो गाहड़वाल राजा जयचन्द्र से हुआ हो। चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो में चाहमान पृथ्वीराज और चन्द्रात्रेय परमर्दि के बीच युद्ध हुए। जिसमें चन्द्रात्रेय वंश कई बार परास्त हुआ। मदनपुर का स्तम्भ उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि पृथ्वीराज ने परमर्दि के प्रदेश जेजाक भुक्ति पर आक्रमण किया। चन्दबरदाई ने लिखा है कि जयचन्द्र ने परमर्दि की सहायता की थी। यह संभाव्य भी है, क्योंकि परमर्दि के प्रपिता मदनवर्मन् का गाहड़वाल वंश से मैत्रीभाव था, और दूसरा कारण यह है कि थोड़े ही समय पूर्व चाहमान विग्रहराज चतुर्थ ने गाहड़वाल के मण्डलिक के हाथ से दिल्ली छीन ली थी। अतः चाहमान वंश उन दोनों का समान शत्रु था और हो सकता है कि चाहमानों के विरुद्ध जयचन्द्र ने परमर्दि का साथ दिया हो।

(९) संयोगिता का स्वयंवर—चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो, विद्यापति कृत पुरुष-परीक्षा, मेरुतुङ्ग कृत प्रबंध चिन्तामणि आदि ग्रंथों में संयोगिता के स्वयंवर और पृथ्वीराज के साथ उसके पलायन की कथा का वर्णन है, किन्तु किसी प्रामाणिक साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं है। इस कथा से केवल इतना तात्पर्य निकलता है कि पृथ्वीराज और जयचन्द्र में अमैत्रीभाव था। और यही कारण था कि मुसलमान आक्रमण के समय इन प्रबल राजाओं ने एक दूसरे के प्रति असहयोग किया और अपने समान शत्रु के विरुद्ध ये एक होकर खड़े नहीं हुए।

(१०) चंद्वार का युद्ध (लगभग ११९३ ई०)—विद्यापति कृत पुरुष-परीक्षा, नयचन्द्र कृत रम्भामंजरी नाटक और चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो सूचित करते हैं कि जयचन्द्र ने मुइज्ज उद्दीन (शिहाब उद्दीन) घूरी को युद्ध में कई बार परास्त किया। किन्तु मुसलमान इतिहास लेखकों ने केवल एक युद्ध का उल्लेख किया है जो चंद्वार के समीप ११९३ ई० के लगभग हुआ था। यह युद्ध जयचन्द्र और मुइज्जउद्दीन घूरी के भाई घियासउद्दीन के साथ हुआ था। तबकाते नासिरी सूचित करती है कि ११७८ ई० में ऊच्चह और मुलतान होते हुए सुलतान अणहिल्लपटन की ओर बढ़ा, किन्तु वहाँ के राजा भीमदेव ने उसकी सेना का घोर संहार किया और उसको पीछे खदेड़ दिया। इस अवसर पर चाहमानों ने नड्डुल के चाहमानों की या चालुक्य राजा भीम की सहायता नहीं की, जब घूरी

सेना ने उन पर आक्रमण किया। तबरहिन्द के पतन के बाद पृथ्वीराज सक्रिय हुआ और अनेक रईसों को जो संभाव्यतः उसके कुटुम्ब के थे या उसके मण्डलिक थे, उनको एकत्र किया। उस समय दिल्ली का राजा पृथ्वीराज का मण्डलिक गोविन्दराय था। पृथ्वीराज और सुलतान मुइज्जउद्दीन की मुठभेड़ तराइन युद्ध क्षेत्र में हुई। इस युद्ध में घूरी सेना की पराजय हुई किन्तु भारतीय सेना ने उसका पीछा न किया और वह सुरक्षापूर्वक पीछे हट गई। चाहमान राजा ने तबरहिन्द को अपने अधिकार में किया। अपनी सेना को पुनः संगठित कर सुलतान ने ११६२ ई० में फिर आक्रमण किया और दोनों ओर की विरोधी सेनाएँ पुनः तराइन के युद्ध क्षेत्र में आ डटीं। सुलतान ने देखा कि बिना धोखा-धड़ी के वह विजयी नहीं हो सकता, अतः उसने एक युद्ध-विराम सन्धि की, और रात भर युद्ध की योजना और तैयारी कर पौ फूटने के पूर्व ही उसने सन्धि की उपेक्षा कर चाहमानों पर आक्रमण किया जो रातभर रंगरेलियाँ करते रहे और पूर्णतया असावधान थे। इस युद्ध में असावधान पृथ्वीराज की हार हुई और वह बन्दी किया गया। अब सुलतान को अन्तर्वेदि पर चढ़ाई करने का अवसर मिला जो उत्तरी भारत का सर्वाधिक समृद्धिशाली प्रदेश था और जिस पर गाहडवाल राज्य कर रहे थे।

जयचन्द्र की सेना असीम थी। गाहडवाल उत्कीर्ण लेखों ने, समकालीन भारतीय साहित्य ने और मुसलमान लेखकों ने उसकी सामरिक शक्ति की प्रशंसा की है। गोविन्द चन्द्र के और विजयचन्द्र के उत्कीर्ण लेखों में गाहडवाल वंश की अश्वारोही और गज सेनाओं की अत्यंत प्रशंसा की गई है। साहित्यिक ग्रन्थों ने पृथ्वीराज के पराक्रमों के यशोगान के साथ जयचन्द्र की विशाल सेना का भी उल्लेख किया है। चन्दबरदाई ने लिखा है कि जयचन्द्र की सेना इतनी वृहद् थी कि प्रयाण के समय 'सेना का अग्रिम भाग युद्ध क्षेत्र में पहुँच गया इसके पूर्व कि सेना का पिछला भाग प्रस्थान करे।' सूरज प्रकाश ने लिखा है कि इस सेना में ८०,००० कवच धारी सैनिक, ३०,००० घोड़े जो रूई के बीच में रखे हुए कवच से ढके हुए थे, ३,००,००० पदाति, २,००,००० धनुर्धर और कुठारधारी और आरोहियों समेत गज सेना थी। वाराणसी-पति की वृहदाकार सेना से मुसलमान इतिहास लेखक भी पर्याप्त प्रभावित हुए। ताज-उल-मआथिर नामक एक समकालीन इतिवृत्त में लिखा है कि जयचन्द्र की सेना बालुका-कणों की तरह अगणित थी। एक दूसरे समकालीन इति वृत्त लेखक कामिल-उत-तवारिख ने लिखा है कि हिन्दू राजा के पास ७०० हाथी थे और कहा जाता है कि १०,००,००० सैनिक; उसकी सेना में अनेक राजे भी थे। फिरिश्ता के वर्णन में उल्लेख है कि कन्नौज और बनारस के राजा जयचन्द्र की सेना में ३०० से अधिक हाथियों के अतिरिक्त बहुसंख्यक अश्वारोही थे। दोनों ही

समकालीन मुसलिम वर्णनों से संकेत होता है कि आक्रामक वाराणसी के राजा के विशाल प्रदेश और बृहदाकार सेना से बहुत प्रभावित थे।

चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, विद्यापति कृत पुरुष परीक्षा, और जयचन्द्र कृत रम्भामञ्जरी नाटक में लिखा है कि लगभग ११६३ ई० के चंद्वार युद्ध के पूर्व जयचन्द्र ने कई बार घूरी राजा को पराजित किया। किन्तु मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि चंद्वार के पूर्व कई छोटी-मोटी मुठभेड़ें हुईं। हसननिज़ामी कृत ताज-उल-म आथीर सूचित करती है कि दिल्ली, अजमेर और कोल को विजय करने के बाद सुलतान ने गाहडवाल राज्य की ओर ध्यान दिया और ५०,००० सैनिकों को एकत्र किया। कुतुबउद्दीन के नेतृत्व में एक अग्रगामी दल ने 'धर्म के शत्रुओं की सेना को' परास्त किया। प्रतीत होता है कि यह गाहडवाल सीमा प्रतिरक्षक दल था, मुख्य सेना नहीं थी। उपर्युक्त पुस्तक ने हिन्द प्रदेश के आक्रमण का भी उल्लेख किया है जिसमें कुतुबउद्दीन ने बहुत से बन्दी और लूट के सामान प्राप्त किए। इस घटना की सूचना पाने पर जयचन्द्र ने मुसलमान अधिकृत प्रदेश पर एक बड़ी सेना लेकर चढ़ाई की। इस युद्ध के पश्चात् एक दूसरा युद्ध गाहडवाल सेना और मुसलमान सेना के बीच में चंद्वार में हुआ। 'विधर्मी अपनी संख्या के बल पर टिके थे, मुसलमान अपने साहस पर और धर्मनिष्ठों की विजय हुई।' फिरिश्ता ने लिखा है कि जयचन्द्र एक हाथी पर बैठ कर युद्ध कर रहा था। उस पर स्वयं कुतुबउद्दीन ने एक बाण चलाया जिससे उसकी मृत्यु हुई। चंद्वार की विजय के बाद घोर संग्राम हुआ और ३०० जीवित हाथी पकड़े गए। असनी के किले में गाहडवाल राजाओं का कोष एकत्र था, वह लूटा गया और लूट की विशाल सामग्री सोना, चाँदी और मूल्यवान् माणिक्य ले जाया गया। हिन्द देश की संस्कृति और धर्म के केन्द्र वाराणसी में लगभग १००० मन्दिर नष्ट किए गए और उनकी नीवों पर मस्जिदें खड़ी की गईं, हिन्द के रईस और राजे अपनी राजनिष्ठा अर्पित करने के लिए आए। इसके बाद एक राजनिष्ठ व्यक्ति को प्रशासन का भार सौंपा गया जो न्याय-वितरण करे और मूर्तिपूजा का दमन करे। सुलतान ने कुतुबउद्दीन को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया और दिल्ली वहाँ की राजधानी बनाई गई।

इस तरह मुसलमान आक्रामकों के विरुद्ध उत्तर भारत का अन्तिम दृढ़ मोर्चा का पतन हुआ। दिल्ली पर मुइज्जउद्दीन घूरी का अधिकार हो जाने से उत्तरी भारत का भाग्य कुण्ठित हो चुका था और यद्यपि जयचन्द्र ने वीरता से युद्ध किया किन्तु परिस्थितियाँ अत्यन्त वैषम्यपूर्ण थीं। चाहमान-गाहडवाल शत्रुता से न केवल अन्तर्वेदि का राजनीतिक संघटन नष्ट हो गया था बल्कि दीर्घकालीन युद्ध से वे दोनों ही निर्बल हो गए थे। जब हिन्दू भारत पर मुइज्जउद्दीन ने आक्रमण किया और पृथ्वीराज

जीवन-मरण युद्ध में फँसा हुआ था, जयचन्द्र ने उसकी सहायता करने का कोई प्रयास नहीं किया। स्वयं पृथ्वीराज इस उदासीनता और सहानुभूति हीनता का दोषी था। जब नड्डुल के राजा पर और चालुक्य राजा पर आक्रमण हुए तो उसने उनकी सहायता नहीं की और जब स्वयं उसका राज्य संकट में पड़ा तब उसने वीरता दिखाई। उत्तर भारत के दो महान् राजे पृथ्वीराज और जयचन्द्र दोनों ही समान रूप से राजनीतिक अदूरदर्शिता और उदासीनता के दोषी थे। सार्वभौमिकता के लिए वे आपस में लड़ते थे किन्तु उन्होने अपने समान शत्रु के विरुद्ध एक होकर खड़े होने की आवश्यकता अनुभव न की, यद्यपि शत्रु प्रबल था, और उसने भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में अपने पैर दृढ़ता से जमा रखे थे। डॉ० आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि पंजाब में गजनवियों को पूर्णतया परास्त करने के बाद मुहम्मद के लिए अन्तर्वेदि में बढ़ना अनिवार्य था और चन्द्रबरदाई का यह कथन कि जयचन्द्र ने अपने प्रतिद्वन्द्वी पृथ्वीराज को नष्ट करने के लिए घूरी सुलतान को आमन्त्रित किया था, गलत है।

यद्यपि मुसलमान आक्रमणों की चंद्वार युद्ध में विजय हुई, फिर भी वे न तो मण्डलिक राजाओं को नष्ट कर सके और न जयचन्द्र के वंशज को समूल नष्ट कर सके। किन्तु अगले ५० वर्षों में मुसलमान आक्रमणों ने धीरे-धीरे एक-एक करके इन समस्त राजाओं और राजवंशों को उखाड़ फेंका।

(११) गाहड़वाल हरिश्चन्द्र तथा मण्डलिक नरेश—जयचन्द्र की घोर पराजय और मृत्यु के बाद भी जयचन्द्र के पुत्र और उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र ने पूर्वी क्षेत्रों पर राज्य किया और परम-भट्टारक महाराजाधिराज-परमेश्वर-परम-माहेश्वर-अश्वपति-गजपति-नरपति-राजत्रयाधिपति-विविध-विद्या-विचार-वाचस्पति-विरुद धारण किए। उपर्युक्त उपाधियों से स्पष्ट है कि हरिश्चन्द्र गजनी सुलतानों का मण्डलिक नहीं था, बल्कि स्वतंत्र राजा था।

बेलखरा (मिर्जापुर जनपद, उ० प्र०) स्तम्भ-उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि 'परम भट्टारक…अश्वपति…राजत्रयाधिपति विविध विद्या विचार वाचस्पति-श्रीमत्-कान्यकुब्ज-विजयराज्य' के वर्ष में 'राणक-श्री-विजयकर्ण-राज्य' में एक स्तम्भ खड़ा किया गया। इससे स्पष्ट है कि मिर्जापुर जनपद में ११९७ ई० में कान्यकुब्ज के राज्य का सम्मान था। मुसलमान इतिहास लेखकों के वर्णनों को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि चंद्वार युद्ध (लगभग ११९३ ई०) के बाद कान्यकुब्ज विजय नहीं किया गया। तबकाते नासिरी में लिखा है कि मुसलमान सेना कन्नौज की ओर गई। किन्तु यह सेना वहाँ पहुँची अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में वह मौन है। उसने लिखा है कि इल्तुतमिश (१२१०-१२३६ ई०) ने कान्यकुब्ज जीता और इसकी स्मृति में नई मुद्राएँ

निकालीं। ताज-उल-म आथीर और कामिल-उत-तवारिख ने भी नहीं लिखा है कि मुसलमान सेना कन्नौज गई। उन्होंने लिखा है कि इल्तुतमिश (१२१०-१२३६ ई०) ने कन्नौज, बदायूँ और अयोध्या को विजय किया। स्पष्ट है कि चंद्वार युद्ध के बाद कान्यकुब्ज का स्वत्व अन्तर्वेदि में बना रहा और पूर्णतया विनष्ट नहीं हुआ था। हरिश्चन्द्र के रूप में यह वंश जीवित रहा। बेल्खरा उत्कीर्ण लेख संकेत करता है कि हरिश्चन्द्र के अधिकार का सम्मान सम्भाव्यतः गंगा के दोनों ओर जौनपुर से मिर्जापुर तक किया जाता था। सम्भाव्यतः वाराणसी भी उसके राज्य के अन्तर्गत था।

मध्यभारत, नागोड राज्य में प्राप्त एक खण्डात्मक उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि १२३७ ई० में आडक्कमल्ल नाम का एक गाहडवाल राजा था जिसका मण्डलिक महमन्ददेव था। प्रतीत होता है कि बोदामयूट का राष्ट्रकूट वंश जयचन्द्र की पराजय का लाभ उठाकर स्वतन्त्र हो गया। जापिल का खयरवाल वंश कुछ समय तक रोहतासगढ़ प्रदेश में राज्य करता रहा और कम से कम २७ वर्ष तक इसने मुसलमान सेना का अवरोध किया। प्रतीत होता है कि गाहडवालों का मण्डलिक प्रतापधवल का पौत्र इन्द्रधवल ११९७ ई० में स्वतन्त्र हो गया। गाहडवाल मण्डलिक 'महासामन्त राज-भरहदेव' कान्यकुब्ज पर राज्य कर रहा था और अन्ततः इल्तुतमिश द्वारा सिंहासन से च्युत किया गया। अयोध्या के राजा बर्टू ने लगभग २०,००० मुसलमानों को मारा किन्तु बाद को इल्तुतमिश के पुत्र द्वारा पराजित हुआ। सम्भाव्यतः यह राजा गाहडवाल वंश का कोई वंशज था या कोई मण्डलिक।

खण्ड ४

परमार राजवंश

अध्याय | १

परमारों की उत्पत्ति

दसवीं शती में यह लोक-प्रसिद्ध था कि परमार वंश के मूलपुरुष की उत्पत्ति अबुर्दाचल के एक अग्निकुण्ड से हुई है। सुप्रसिद्ध कवि पद्मगुप्त वाक्पति-मुञ्ज (९७२-९९५ ई०) और उसके उत्तराधिकारी सिंधुराज दोनों ही राजाओं का समकालीन था। उसके नवसहसाङ्क-चरित में लिखा है कि अबुर्दाचल वशिष्ठ का तपोवन था जो अथर्वन गीत के आदि समीक्षक एवं इच्वाकु के कुल-पुरोहित थे। उनके पास एक कामधेनु थी जिसको किसी समय गाधिसूनु (विश्वामित्र) हरण कर ले गए। इससे वशिष्ठ को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कुछ मन्त्रों को पढ़कर अग्नि में आहुति दी। उस अग्नि में से तत्काल एक वीर पुरुष निकला जो धनुष, किरीटी और कांचन-कवच धारण किए हुए था। उसने विश्वामित्र से कामधेनु को बलात् छीनकर वशिष्ठ को लाकर दिया। इससे वशिष्ठ अत्यन्त प्रसन्न हुए और परमार (शत्रु-संहारक) की संज्ञा देकर उसको भूतल का आदि राजा बनाया। इस वीर पुरुष से एक वंश प्रवर्तित हुआ।

पूर्णपाल का वसंतगढ़ शिला लेख तिथ्यंकित १०४२ ई०, आबूपर्वत पर अचलेश्वर मन्दिर का शिलालेख और परमार चामुंडराज का अर्थुवा शिला लेख का वर्णन पूर्णरूपेण या अंशतः नवसहसाङ्क चरित के वर्णन से मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि परमार एक वंश का नाम था न कि जाति का। एक वीर के नाम पर इस वंश का नाम चला। शिला-लेखों में स्पष्ट लिखा है कि यह वंश 'परमार वंश' कहलाता था क्योंकि इसका उद्भव 'परमार' नामक व्यक्ति से हुआ है। प्राचीन भारत के अन्य अनेक राजवंशों के सदृश ही इसकी उत्पत्ति है। महाराज गुप्त मगध के चक्रवर्ती गुप्त राजवंश का संस्थापक था और प्रत्यक्षतः उसके नाम पर इस वंश का नाम पड़ा। प्रतिहार गुर्जर जाति की एक शाखा थी। कुछ ही अवसरों पर उन्होंने अपने को गुर्जर कहा है। वे सदा अपने को प्रतिहार कहना पसन्द करते थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस वंश का संस्थापक प्रतिहार उपाधि धारण करने वाले हिन्दू पौराणिक कथा के वीर लक्ष्मण थे। 'परमार' नाम किसी जाति, वर्ण या उसके कोई उपविभागों के अर्थ में प्राचीन भारतीय साहित्यों में प्रयुक्त नहीं हुआ है।

चाहमानों, चौलुक्यों और परिहारों के शिलालेख उनकी अग्निकुल के होने के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहते । इसके विपरीत इसके सम्बन्ध में वे बिलकुल ही भिन्न बातें कहते हैं । इन तीनों जातियों को 'अग्निकुल' के समूह में रखना उत्तरवर्ती काल के चारणों की कल्पना मात्र है ।

परमार सीअक द्वितीय के शासन काल का एक शिलालेख मिला है जिसकी तिथि ६४८ ई० है । इस वंश का यह प्राचीनतम ज्ञात अभिलेख है ।

उपर्युक्त दानपत्र से प्रत्यक्ष है कि परमार राष्ट्रकूट जाति के अंग थे । परमारों की राष्ट्रकूट उत्पत्ति इस तथ्य से और भी प्रमाणित है कि सीअक द्वितीय के पुत्र वाक्पति मुंज ने अमोघवर्ष, श्री वल्लभ और पृथ्वी वल्लभ राष्ट्रकूट उपाधियाँ धारण की थीं । परमारों का मूल वासस्थान अवश्य ही दक्षिण में रहा होगा जो किसी समय चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों का निवास-स्थान तथा राज्य था । आईने अकबरी में भी लिखा है कि परमार वंश के संस्थाप क धंजी दक्खन से अपनी राजधानी बदल कर मालव का अधीश्वर बना । इस वंश की मुख्य शाखा मालव या अवन्ती में शासन करती थी । परमारों के स्थापना के पूर्व इस प्रदेश पर गुर्जर जाति जाति की एक प्रतिहार शाखा राज्य करती थी जिसका राजनिवास उज्जैन में था ।

प्रतीत होता है इस प्रतिहार वंश का राज्य उज्जैन के लगभग ७० मील दक्षिण नर्मदा तक फैला हुआ था, जिसके आगे मान्यखेत के राष्ट्रकूटों की प्रभुता थी । इस वंश के संस्थापक नागभट्ट प्रथम ने लगभग ७२५ ई० में प्रशासन आरंभ किया । दक्खिन के राष्ट्रकूट इन प्रतिहारों के राज्य को निरंतर कष्ट देते थे । राष्ट्रकूट राज्य के संस्थापक दन्तिदुर्ग ने अन्य राजाओं के साथ गुर्जरपतियों को उस समय प्रतिहार बनाया जब उज्जैन में क्षत्रियों द्वारा महान् हिरण्यगर्भ दान समारोह किया गया था । नागभट्ट प्रथम के बाद कक्कुक, देवराज और वत्सराज हुए । उपर्युक्त अन्तिम राजा के सम्बन्ध में जैनहरिवंश के एक अंश से ज्ञात होता है कि वह ७८३-८४ ई० में अवन्ती में राज्य कर रहा था । वत्सराज के बाद नागभट्ट द्वितीय सिंहासन पर बैठा । उसके शासन काल में प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों की शत्रुता चरम बिन्दु पर पहुँची, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिहारों से मालवा छिन गया । नवीं शती ईसवी के प्रारम्भिक वर्षों में गोविन्द तृतीय (७९४-८१४ ई०) राष्ट्रकूट राज्य के सिंहासन पर था । उसके एक सामरिक पराक्रम के सम्बन्ध में राधनपुर पट्टे तिथ्यंकित ८०८ ई० के श्लोक १६ में लिखा है कि "यह देखकर कि अपनी राज्य लक्ष्मी को सुरक्षितरखने का एकमात्र उपाय उसके (गोविन्द तृतीय के) चरणों पर झुकना है, नीतिकुशल मालव-पति ने हाथ जोड़ कर दूर से ही नमस्कार किया ।" अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र से ज्ञात है कि नर्मदा के किनारे-किनारे जाकर गोविन्द तृतीय ने मालव को

विजय किया। कर्कराज के बरोदा पत्र, तिथ्यंकित ८१२ ई० में लिखा है कि गोविन्द तृतीय ने मध्य और दक्षिणी गुजरात के शासक कर्कराज को मालवपति की रक्षा के लिये गुर्जरों के प्रति एक द्वार-अवरोध बनाया। ये गुर्जर जोधपुर के प्रतिहार थे।

राधनपुर पट्टों के श्लोक पन्द्रह में लिखा है कि '(गोविन्द तृतीय के) भय से गुर्जर पता नहीं कहाँ अन्तर्ध्यान हो गया जिससे कि वह स्वप्न में भी युद्ध न देख सके।' अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपट्ट में लिखा है कि गोविन्द तृतीय 'गरजते गुर्जरपति के शौर्य का विनाशक था।' निलगुड उत्कीर्ण लेख, तिथ्यंकित ८६६ ई० ने अंतिम रूप से निर्णय कर दिया है कि गोविन्द तृतीय द्वारा पराजित किये गए गुर्जर चित्रकूट नामक पर्वत दुर्ग में रहते थे जिसका तादात्म्य राजपूताना के उदयपुर राज्य में स्थित आधुनिक चित्तौड़गढ़ से है। इस भाग पर जोधपुर के प्रतिहारों का अधिकार था।

उपर्युक्त मालवपति का तादात्म्य नागभट्ट द्वितीय से है जो वत्सराज के शासन की समाप्ति के बाद अवन्ती के सिंहासन पर बैठा। अमोघवर्ष के संजन पट्ट के श्लोक २२ से ज्ञात होता है कि 'नागभट्ट और चन्द्रगुप्त राजाओं की निर्मल और अचल कीर्ति को युद्धों में अपहृत कर कीर्ति प्राप्ति में संलग्न उसने (गोविन्द तृतीय ने) अन्य राजाओं को जो पूर्णतया पौरुष विहीन हो गये थे, शालिधान की तरह उखाड़ कर बाद को उनको उनके स्थानों पर पुनः अवस्थित किया।'

राधनपुर और संजन पट्टों के उपर्युक्त दोनों श्लोकों की तुलना करने से प्रतीत होता है कि यद्यपि गोविन्द तृतीय ने नागभट्ट को बलात् अधीन कर उसकी प्रतिष्ठा अपहृत कर लिया था, उसने उसको अपने प्रदेश पर कुछ काल तक राज्य करने दिया। यह ज्ञात है कि इस राष्ट्रकूट सम्राट ने उत्तरी देशों के विरुद्ध एक अभियान किया और अपनी विजय-यात्रा में हिमालय तक गया जिससे बंगाल के राजा धर्मपाल और उसके मण्डलीक कन्नौज के चक्रायुद्ध ने अपने को उसकी दया पर छोड़ा। यह गौरवपूर्ण सफलता अवश्य ही उसको मालवपति पर विजय प्राप्त करने के बाद मिली होगी क्योंकि उसका राज्य प्रत्यक्षतः राष्ट्रकूट साम्राज्य की उत्तरी सीमा से सटा था। किन्तु उत्तरी अभियान से लौटने के तुरन्त ही बाद उसने मालव और दक्षिण में स्थित अपने पड़ोस के कुछ प्रान्तों के सम्बन्ध में अपनी नीति को बदल दिया। संजन पट्टों के श्लोक २४ में लिखा है कि 'गोविन्द तृतीय वहाँ से (अर्थात् अपने उत्तरी अभियान से) लौट आया (यह सोच कर) कि यह मंत्रिवर्गीय सेवकों का कार्य है, और पुनः नर्मदा के तट का (मानो अपने ही पराक्रम का) अनुगमन कर, और कोसल, कलिङ्ग, वंग (वेंगि), डाहल और ओड्रक के साथ

मालव प्रदेश को प्राप्त कर, उस विक्रम ने स्वयं उनको भोग करने के किए अपने भृत्यों को नियुक्त किया ।

उपर्युक्त कथन से यह बिलकुल स्पष्ट है कि इस बार गोविन्द तृतीय ने नागभट्ट को उसके पैतृक राज्य से हटा कर मालव के प्रशासन का अधिकार अपने एक भृत्य को सौंपा । यह संदिग्ध है कि इस अवसर पर मालव स्थायी रूप से राष्ट्रकूट साम्राज्य में मिला लिया गया क्योंकि आनेवाले वर्षों में तृतीय गुर्जरों के क्षिप्राक्रमणों के विरुद्ध इसके शासक की रक्षा के लिए पर्याप्त सावधानी करता हुआ दिखाई देता है ।

यद्यपि नागभट्ट इतना सशक्त नहीं था कि वह राष्ट्रकूट सत्ता से सफलतापूर्वक मुठभेड़ कर सके, किन्तु स्पष्टतः वह एक उच्चकोटि का सेनापति था । अपने पैतृक सिंहासन से वंचित होने के बाद उसने उत्तर में अपने भाग्य को अजमाने को सोचा । उसने देखा कि बंगाल से लेकर पंजाब की सीमा तक संपूर्ण प्रदेश बंगाल के पालों के प्रभुत्व में है और उनके आश्रितरूप में चक्रायुध नामक एक सरदार कन्नौज में राज्य कर रहा है । राष्ट्रकूटों की अपेक्षा पाल प्रत्यक्षतः कम शक्तिशाली थे । पालवंशीय धर्मपाल और उसके मण्डलिक चक्रायुध को एक पूर्व अवसर पर गोविन्द तृतीय की सामरिक शक्ति के समक्ष झुकना पड़ा था । अतः नागभट्ट का उत्कर्ष तभी संभव था जब वह बंगाल के राजा को परास्त कर सके, जैसा कि भोज के ग्वालियर उत्कीर्ण लेख के श्लोक १० का आशय है । उसने जोधपुर के प्रतिहार नृप कक्क, सौराष्ट्र के मण्डलिक राजा बाहुकधवल, और कुछ अन्य युवराजों की सेवाएँ ग्रहण कर बंगाल के विरुद्ध प्रयाण किया। उसका विरोध करने के लिए धर्मपाल ने मुंगेर के समीप अपनी सेना को सज्जित किया किन्तु पराजित होकर उसे पीछे हटना पड़ा। इसके बाद अपनी स्थिति को बनाए रखना चक्रायुध को अत्यन्त कठिन हो गया। उसने अपने प्रदेश कन्नौज को नागभट्ट को दे दिया और वहाँ तुरन्त ही एक नया प्रतिहार आधिपत्य स्थापित किया गया । उसके बाद नागभट्ट ने अपने खोए हुए मालव प्रदेश को पुनः प्राप्त करने का एक और प्रयास किया, और प्रत्यक्षतः उस प्रदेश के एक सीमावर्ती किले पर अधिकार करने में सफल हुआ । किन्तु इस सिद्धि का परिणाम केवल अस्थायी था । नागभट्ट के उत्तराधिकारी रामभद्र (८३३-८३५ ई०) के शासनकाल में ग्वालियर कन्नौज के प्रतिहार राज्य की दक्षिणी सीमा था ।

न केवल कन्नौज के प्रतिहार बल्कि जोधपुर शाखा के प्रतिहार भी नवस्थापित मालव प्रशासन को निरंतर कष्ट दे रहे थे । अपने शासक कक्क के अधीन इन जोधपुर प्रतिहारों ने एक नवीन जीवन और शक्ति प्राप्त की; क्योंकि उसने मुंगेर में बंगाल के धर्मपाल के विरुद्ध सफलतापूर्वक युद्ध कर अतिशय कीर्ति अर्जित की थी ।

कक्क प्रत्यक्षतः गोविन्द तृतीय और नागभट्ट द्वितीय का समकालीन था क्योंकि यह ज्ञात है कि उसका पुत्र और उत्तराधिकारी बाउक ८३८ ई० में राज्य कर रहा था। बंगाल के राजा पर विजयी होने से उत्साहित होकर उसने अपने दक्षिण-पूर्वी पड़ोसी मालव के नव राजा के विरुद्ध एक सेना का नेतृत्व किया। प्रतीत होता है कि मालव-पति के ऊपर उसने प्रारंभिक विजय प्राप्त की। किन्तु अपने मण्डलिक की सहायता के लिए गोविन्द तृतीय ने तुरन्त आकर कक्क की सेनाओं को सफलतापूर्वक परास्त किया। इसके बाद और विपत्ति से बचने के लिए राष्ट्रकूट सम्राट् ने अपने मण्डलिक कर्कराज को, गुर्जरों के क्षिप्राक्रमणों के विरुद्ध, मालव को जाने वाले राजमार्ग की सुरक्षा का संरक्षक नियुक्त किया। कर्कराज के दानपत्र तिथ्यंकित ८१२-१३ ई० में लिखा है कि "परास्त मालव (पति) की रक्षाहेतु उसकी (कर्कराज की) भुजा को गुर्जरों के पति के प्रदेश का उत्तम द्वार-अवरोध बनाया जो गौड़ और वंगपति को विजय कर दुष्ट भावना से प्रेरित हो गए थे,—इस प्रकार उसका अधीश्वर (गोविन्द तृतीय) आधिपत्य के (समस्त) फलों के रूप में उसकी दूसरी भुजा का भी भोग करता है। इस विजय के फलस्वरूप कन्नौज नागभट्ट के हाथ में चला गया। इसके बाद से भट्ट बहुत दिनों तक प्रतिहारों की राजधानी रहा। ८१२ ई० में जब बरोंदा पट्ट निःसृत किया गया, उस समय नागभट्ट कन्नौज में और कक्क जोधपुर में राज्य कर रहे थे। इन परिस्थितियों में मध्य और दक्षिणी गुजरात का शासक कर्कराज केवल जोधपुर प्रतिहारों के प्रदेश का 'द्वार अवरोध' हो सकता था, न कि नागभट्ट के राज्य का, जो मालव के उत्तर-पूरब में दूर कन्नौज में था।

मालव में प्रतिहार शासन के उखड़ने का यह वास्तविक इतिहास है। इसके बाद से वहाँ चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों का एक अधीनस्थ मण्डलिक शासन करता था। मालव ८०८ ई० के बाद किसी समय राष्ट्रकूट साम्राज्य का एक अंग बना। कर्कराज के बरोदा पट्ट से उन प्रबन्धों की सूचना मिलती है जो गोविन्द तृतीय ने गुर्जरों के भीषण आक्रमणों के प्रति मालव युवराज की रक्षा के लिए किए थे। इस दानपत्र की तिथि ८१२-१३ ई० है, अतः गोविन्द तृतीय द्वारा मालव की प्राप्ति और उस पर एक शासक की नियुक्ति अवश्य ही उस तिथि के पूर्व की गई होगी। इन सब तथ्यों से यह सुरक्षा-पूर्वक दावा किया जा सकता है कि ८०८ और ८१२ ई० के बीच में गुर्जर प्रतिहार मालव से निकाले गए और इसका आधिपत्य मान्यखेत के राष्ट्रकूटों के एक भृत्य के रूप में एक नए शासक ने ग्रहण किया। मालव का यह नया शासक सर्व संभाव्यता, परमार वंश का संस्थापक उपेन्द्र—कृष्णराज था।

नर्मदा के उत्तर के एक वृहद् प्रदेश को विजय कर राष्ट्रकूटों ने साधारणतः अपने ही वंश के कार्यक्षम सदस्यों में बाँटा। गोविन्द तृतीय ने लाट और

गुजरात के प्रदेश में अपने भ्राता इन्द्रराज को नियुक्त किया जो बरोदा पट्ट के कर्कराज का पिता था। इसी प्रकार पथरी में जो मध्यभारत में है, और बीजापुर में जो दक्षिणी राजपूताना में है, अन्य राष्ट्रकूट युवराज इसी समय के लगभग राज्य करते हुए पाए जाते हैं। पथरी और गुजरात के बीच में मालव प्रदेश था। सीअक द्वितीय का हर्सोल दानपत्र इस तथ्य का साक्ष्य करता है कि उपेन्द्र और उसके उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट राजवंश के वंशज थे। आईने-अकबरी में लिखा है कि मालव में परमार वंश का संस्थापक वीर दक्षिण से आया था। वाक्पति मुंज जो उपेन्द्र के वंशजों में सातवाँ नृप था, ९७१ और ९७२ ई० के बीच में सिंहासनारूढ़ हुआ। यदि प्रत्येक शासन-काल के लिए २५ वर्ष की अवधि रखी जाय तो उपेन्द्र का राज्यरोहण नवीं शती ई० के प्रथम चरण में होना माना जायेगा। प्रो० बुहलर की राय है कि उपेन्द्र मालव सिंहासन पर ८०८ ई० के कुछ पश्चात् बैठा। प्रतिहार वंश की पराजय के बाद ८०८ और ८१२ ई० के बीच के वर्षों में मालव के प्रशासन का भार एक नये शासक मण्डलिक ने ग्रहण किया था। इसका उपेन्द्र के जीवन-काल की अवधि से जोड़ बैठता है। संभाव्यतः वह राष्ट्रकूट सेना के उत्तरी प्रयाण में साथ था, और अपनी मूल्यवान सामरिक सेवा के बदले में उसको यह पद सौंपा गया। उदयपुर प्रशस्ति का कथन है कि उसने 'अपने शौर्य से राजपद की उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की।'

इस प्रकार नर्मदा के दक्षिण से उपेन्द्र कृष्णराज द्वारा परमार वंश मालवा में आया। उपेन्द्र के बाद राजाओं की एक वंशावली चली जिसने लगभग ५०० वर्षों तक इस प्रदेश पर राज्य किया—उस समय तक जब तक कि यह राजवंश मुसलमानों द्वारा अन्तिम रूप से पराजित किया गया। परमारों के चार और शाखा वंश थे जिनका आधिपत्य आधुनिक बासवारा, आबूपर्वत और राजपूताना के जोधपुर राज्य पर था। बांसवारा (वागड) के परमार वंश का इतिहास का पता मुख्य रूप से चमुण्ड-राज्य के अर्थुना शिलालेख तिथ्यंकित १०८० ई० से तथा मण्डलिक के पनहेरा शिला-लेख तिथ्यंकित १०५६ ई० से पता चलता है कि इस वंश की उत्पत्ति वीर परमार से भी रेखांकित की जाती है। इस वीर के वंश में वैरिसिंह पैदा हुआ जिसका छोटा भाई डम्बरसिंह था। उपर्युक्त वंश में कक्कदेव नाम का एक राजा था जिसके बाद युवराजों की एक लम्बी वंशावली चली। वैरिसिंह का उपेन्द्रकृष्णराज के पुत्र और उत्तराधिकारी वैरिसिंह प्रथम से तादात्म्य है। अतः इससे यह तात्पर्य निकलता है कि यह परमार वंश धारा के मुख्य वंश का एक सपिण्ड शाखा था, जो नवीं शती ई० के मध्य में बासवारा में बसा। अनेकानेक ऐतिहासिक अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि आबू पर्वत पर एक परमार वंश ने बहुत समय तक राज्य किया जो

राजपूताना के आधुनिक सिरोही राज्य में है। इस वंश का प्राचीनतम ज्ञात अभिलेख पूर्णपाल का बसंतगढ़ शिलालेख है।

परमार वंश के समस्त शासकों में सर्वप्रथम राजा वाक्पति-मुंज या उत्पल था जो अपने सामरिक अभियानों के बीच आबूपर्वत के पड़ोस में अपनी सेना ले गया। मेवाड़ और उसके पड़ोस को विजय कर वह मारवाड़ प्रदेश पहुँचा और चाहमान प्रशासन को उखाड़ फेंकने का भय उत्पन्न किया। वह इसके दक्षिणी भाग को हस्तगत करने में सफल हुआ। यद्यपि नदोल विजय करने का इसका प्रयास पूर्णरूपेण असफल रहा। मारवाड़ पर अभियान करने के पूर्व उसने अवश्य ही आबूपर्वत को विजय किया होगा जो उस प्रदेश को जाने के रास्ते में पड़ता है। इस अवधि में उसने संभाव्यतः अपने नव-विजित प्रदेशों में कई परमार उपनिवेशों की स्थापना की और अर्बुद-मण्डल के प्रशासन की देख-रेख के लिए उसने अपने पुत्र अरण्यराज्य को नियुक्त किया।

शेष दोनों शाखा-वंशों के सम्बन्ध में ज्ञात है कि एक ने अपना आधिपत्य जालोर में स्थापित किया और दूसरे ने भीनमाल में। ये दोनों ही स्थान राजपूताना में हैं। जालोर शाखा के इतिहास की जानकारी जालोर से प्राप्त एक शिलालेख से होती है जिस पर तिथि १११७ ई० पड़ी है। इसकी वंशावली वाक्पतिराज से आरम्भ की गई है जिसका पुत्र चन्दन था। चन्दन प्रत्यक्षतः दसवीं शती ई० के अन्तिम चरण में जीवित था जो वाक्पतिमुंज के शासन काल (६७३-६६६ ई०) की अवधि थी। इससे यह परिणाम निकलता है कि जालोर शिलालेख का वाक्पति प्रत्यक्षतः धारा का वाक्पतिमुंज था।

भीनमाल शाखा के इतिहास के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान मुख्यतया केराडु के एक मंदिर की दीवाल के एक उत्कीर्णलेख के साक्ष्य तक सीमित है। इस अभिलेख की तिथि ११६१ ई० है। इसमें सिन्धुराज का वर्णन इस वंश के प्राचीनतम पूर्वज के रूप में किया गया है जिसका पुत्र और उत्तराधिकारी दूसल था। इस सिन्धुराज का तादात्म्य संभवतः वाक्पतिमुंज के कनिष्ठ भ्राता और उत्तराधिकारी से किया जा सकता है। वाक्पति अपनी सामरिक अभियान-यात्रा में एक बार मारवार प्रदेश तक गया था। हो सकता है कि उसी अवधि में धारा के चक्रवर्ती वंश के उपराजाओं के रूप में चंदन और दूसल जालोर और भीनमाल में यथाक्रम नियुक्त किए गए हों। ८०८ और ८१२ ई० के बीच में राष्ट्रकूट वंश के उपेन्द्र ने राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय के अनुग्रह से मालव का आधिपत्य प्राप्त किया जिसने प्रतिहार नागभट्ट द्वितीय से इस प्रदेश को छीना था। बाद को जब उसके उत्तराधिकारियों ने चक्रवर्ती पद ग्रहण किया तो युग की सामान्य

रीत्यानुसार उन्होंने अपनी उत्पत्ति परमार नामक एक काल्पनिक वीर से ढूंढ़ी। उपेन्द्र के एक पुत्र डम्बर सिंह ने वर्तमान बांसवारा राज्य में एक राज्य स्थापित किया। दसवीं शती ई० के अन्तिम चरण में धारा के शासक वंश से तीन और अवर शाखाएँ फूटी, और उन्होंने आबू, जालोर, तथा भीनमाल में शासन स्थापित किए। कालान्तर में संख्यावृद्धि होने पर परमार अनेकानेक छोटी शाखाओं में बंट गए, और अधिकांश अवस्थाओं में बहुत कुछ राजनीतिक स्वत्व प्राप्त किए बिना राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ के विभिन्न भागों में अवस्थित हुए।

———

अध्याय | २

प्रारम्भिक परमार शासक

इस समय मालवा का वंश प्रमुख वंश था और अन्य वंश उसकी शाखाएँ थीं। मालवा के इन शासकों ने प्राचीन भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भाग अभिनीत किया और उच्चचक्रवर्ती पद प्राप्त किया। कभी वे मालवपति के रूप में और कभी अवन्ती नरेश के नाम से अविहित किए जाते थे। वे उज्जैन और धारा के शासकों के नाम से भी विख्यात थे। अपने उत्कर्ष के समय में उनके राज्य की सीमा उत्तर में कोटा और बूंदी राज्यों तक, जिनके उस पार दुबकुण्ड के कच्छपघातों और मेवाड़ के गुहिलोतों का प्रदेश था; पूरब में भिलसा, होशंगाबाद और सागर जनपद के भाग तक जो त्रिपुरी के कलचुरियों और जेजाक भुक्ति के चंदेलों के राज्यों की सीमा पर था; दक्षिण में गोदावरी नदी और खन्देश प्रदेश तक जिसके उस पार कल्याणी के चालुक्यों का राज्य था, पश्चिम में माही नदी तक जो गुजरात के चौलुक्य शासकों के राज्य से इसे अलग करता था।

परमारों के उत्कर्ष से बहुत पूर्व धारा मालवा का प्रमुख नगर था। कन्नौज के मौखरि राजा ईश्वरवर्मन् ने धारा के राजा के एक आक्रमण को पीछे ढकेला। पद्मगुप्त ने धारा को राजा सिन्धुराज की 'अपरा-पुरी' तथा उसकी 'कुलराजधानी' कहा है। इससे प्रमाणित होता है कि इस वंश ने सर्वप्रथम धारा को अपनी राजधानी बनाया। 'पारिजात मंजरी' में धारा नगरी को राजप्रासादों का नगर कहा है जिसमें इसके चारों ओर की पहाड़ियों पर सुन्दर प्रमोद उपवन थे। यह अपने कुशल गायकों और प्रकाण्ड विद्वानों के लिए विख्यात था। वहाँ की सभ्यता और संस्कृति उच्च-कोटि की थी।

(१) उपेन्द्र—परमार वंश का प्रथम राजा उपेन्द्र था जो राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का एक माण्डलिक था। उदयपुर प्रशस्ति और 'नवसाहसाङ्क चरित' दोनों में लिखा है कि उपेन्द्र एक बहुत प्रतापी राजा था, और वह विशेष रूप से 'यज्ञ समूह' करने के लिए विख्यात था। पहले अभिलेख में यह भी लिखा है कि राजा ने अपने करों के बोझ को कम किया। इसमें यह भी वर्णन है कि उसका यश दूर-दूर तक फैला और भोज की राजसभा कि कवियित्री ने उस पर गीत रचे और इसने उसको

आश्वस्त किया, जिस प्रकार हनुमान ने पौराणिक वीर राम की पत्नी सीता के श्रांत मन को लंका नगर में उसके बन्धन काल में, आश्वस्त किया था।

उपेन्द्र ने अपना शासन ८०८ और ८१२ ई० के बीच किसी समय आरम्भ किया। मालवा के शासकों की उदयपुर प्रशस्ति सूचित करती है कि उपेन्द्र के बाद वैरिसिंह प्रथम, सीअक प्रथम और वाक्पति प्रथम गद्दी पर बैठे।

(२) वैरिसिंह प्रथम—अपने पिता के शासन की समाप्ति के बाद वैरिसिंह प्रथम लगभग ८३६-३७ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसके कनिष्ठ भ्राता डम्बरसिंह को सम्भाव्यतः उससे, वागड प्रान्त मिला और उसने वहाँ मालवा वंश के एक माण्डलिक के रूप में शासन किया। इस नये राजा के सामरिक पराक्रमों की कवि ने सामान्य रूढ़िगत प्रशंसा की है। उसके पश्चात् सीअक प्रथम लगभग ८६३ ई० में गद्दी पर बैठा।

(३) सीअक प्रथम—इस राजा के शासन के सम्बन्ध में भी हमारा ज्ञान अत्यल्प है। एक महान् विजेता के रूप में उसका वर्णन किया गया है और कहा जाता है कि उसने अपने बहुसंख्यक शत्रुओं का बध किया। उसका उत्तराधिकारी वाक्पति प्रथम था जो सम्भाव्यतः ८९०-९१ ई० के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ।

(४) वाक्पति प्रथम—उदयपुर प्रशस्ति के श्लोक १० में इस राजा के सम्बन्ध में लिखा है कि वह 'अवन्ति की कुमारियों के नेत्रोत्पलों के लिए सूर्य था।' अप्रत्यक्ष रूप से इससे प्रमाणित होता है कि इस प्रदेश पर उसका पूर्ण आधिपत्य था। उसके सामरिक शौर्य की तुलना शतमख (इन्द्र) से की गई है और कहा गया है कि उसकी सेनाओं ने गंगा और समुद्र के जलों को पिआ। निःसन्देह यह कविकृत प्रशंसा है।

(५) वैरिसिंह द्वितीय—प्रतीत होता है कि वाक्पति का शासन ९१७-१८ ई० के लगभग समाप्त हुआ, जब उसके पुत्र वैरिसिंह द्वितीय ने प्रशासन भार ग्रहण किया। वह वज्रट के नाम से भी प्रसिद्ध है। उपेन्द्र से वैरिसिंह द्वितीय तक के इन पाँचों परमार शासकों के सामरिक पराक्रमों के सम्बन्ध में हमारी सूचना अत्यल्प है। इसका कारण यह है कि वे दक्खिन के राष्ट्रकूटों के माण्डलिक थे और अपने शक्तिशाली पड़ोसी राजाओं के विरुद्ध आक्रमणशील युद्ध करने की पर्याप्त सम्पन्नता उनमें न थी। वास्तव में परमारों का उत्कर्ष उत्तर में गुर्जर-प्रतिहार शक्ति के, और दक्षिण में राष्ट्रकूट आधिपत्य के ह्रास और पतन पर हुआ।

नागभट्ट द्वितीय का पुत्र प्रतिहार रामभद्र निर्बल और सामरिक शौर्यविहीन था। उसके बाद भोज आया, जो युद्ध-विद्या में अपनी कुशलता के लिए विख्यात था।

इस सम्राट् ने अनेक विजयों द्वारा अपना नाम किया और अपने राज्य की सीमाओं का दूर तक विस्तार किया। प्रतीत होता है दक्षिण-पश्चिम में सौराष्ट्र के चालुक्यों ने उसकी अधीश्वरता स्वीकार की। किन्तु सैन्य कार्यों को आगे बढ़ाने के उसके प्रयास को असाधारण असफलता सहन करनी पड़ी। वह राष्ट्रकूट राज्य में धँस न सका, जिसका विस्तार उत्तर में मालवा और लाट तक था। लाट के राष्ट्रकूट राजा ध्रुव द्वितीय द्वारा ८६७ ई० के कुछ समय पूर्व वह परास्त किया गया। अनेक उत्कीर्ण लेखों से प्रकट होता है कि मालवा इस समय भी राष्ट्रकूट राज्य का एक भाग था। अमोघवर्ष के शासन-काल के तिथ्यंकित ८६६ ई० के निलगुण्ड शिलालेख में लिखा है कि मालवपति उस राजा की पूजा करता था। कन्नौज राज्य पर चढ़ाई करने के अवसर पर राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय (९१४ ई०) उज्जैन में ठहरा और महाकाल मंदिर में अपनी शक्ति प्रदर्शित की। जब तक इन्द्र तृतीय दक्खिन के सिंहासन पर था, कन्नौज के प्रतिहार दक्षिण में अधिक लाभ न उठा सके। किन्तु ९१८ के कुछ ही समय पूर्व उसकी मृत्यु हो जाने से राष्ट्रकूट राज्य में अव्यवस्था फैली। गोविन्द चतुर्थ ने अपने ही ज्येष्ठ भ्राता इन्द्र तृतीय के उत्तराधिकारी की चाल चलकर हत्या कर दी और उसके सिंहासन को छीन लिया। वह आततायी था और उसके शासन-काल में अवैधता और अव्यवस्था ने महान् राष्ट्रकूट साम्राज्य को संक्षुब्ध किया। प्रतिहार प्रशासन को कुछ ही वर्ष पूर्व इन्द्र तृतीय के हाथ एक प्रचण्ड आघात सहन करना पड़ा था। उसने दक्खिन में इस परिवर्तित स्थिति की ओर ध्यान दिया। प्रतिहार भोज प्रथम के बाद महेन्द्रपाल प्रथम और भोज द्वितीय सिंहासन पर बैठे। भोज द्वितीय के बाद महीपाल जो ९१४ और ९४६ ई० के बीच शासन करता था (डॉ० पुरी के अनुसार उसने ९३० ई० तक राज्य किया)। भोज द्वितीय का राजपद प्राप्त किया। वह एक महान् योद्धा था। राष्ट्रकूट साम्राज्य में किंचित् समय पूर्व क्रान्ति का जो आकस्मिक प्रादुर्भाव हुआ था, उससे उसको अपने सामरिक गुणों के प्रदर्शन का निर्बाध कार्य-क्षेत्र मिला। उसकी सेनाएँ विजय-यात्रा करती हुई देश-देश घूमीं। महीपाल के राजकवि राजशेखर ने अपने स्वामी की सामरिक सिद्धियों का निम्नलिखित कविसुलभ स्फूर्तियुक्त सजीव वर्णन किया है।

'उस वंश में यशस्वी महिपालदेव उत्पन्न हुआ जिसने मुरलों के शिरों की शिखाओं के केश-समूहों को झुका दिया है, जो मेकलों के पूयोत्पादन करने का कारण बना है, जिसने युद्ध में अपने सामने कलिङ्गों को खदेड़ा है; जिसने केरलों के चन्द्रमा (राजा) के मनोरंजन को भंग किया है; जिसने कुलूतों को विजय किया है; जो कुन्तलों के लिए कुठार रूप है; और जिसने रमठों की सम्पदाओं को बलात् छीन लिया है।'

अधिकांश प्रदेश जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, प्रतिहार साम्राज्य की सीमा पर थे; और डा० आर० सी० मजूमदार ने योग्यतापूर्वक दिखलाया है कि उपर्युक्त वर्णन को मात्र कवि-सुलभ अतिशयोक्ति मानने का कोई न्यायसंगत कारण नहीं है। कुंतल नर्मदा के दक्षिण के प्रदेश का नाम था जिस पर राष्ट्रकूटों का शासन था। पंपाभारत ने भी कुंतलों और महीपाल के बीच जो युद्ध हुआ, उसका वर्णन किया है। प्रतीत होता है कि उसने ठीक इसी समय के लगभग मालवा प्रदेश को विजय कर अपने राज्य में मिलाया।

गोरखपुर जनपद (उत्तर प्रदेश) के कलचुरि प्रत्यक्षतः कन्नौज के प्रतिहारों के माण्डलिक थे। इस वंश का एक मुख्य युवराज गुणाम्बोधि भोज (८३४-८६० ई०) का प्रिय हो गया और उससे भूमि प्राप्त की। उसने सैनिकों और अस्त्र-शस्त्रों से बंगाल को विजय करने में अपने स्वामी की सहायता की। उसका उत्तराधिकारी उल्लभ था और उल्लभ का उत्तराधिकारी भामान था। पूर्वोक्त अन्तिम राजा प्रत्यक्षतः भोज के पौत्र कन्नौज के राजा महीपाल (६१४-६३१ ई०) का समकालीन था। कहलापट्ट से ज्ञात है कि उसने धारा को विजय कर ख्याति पाई। वह कन्नौज के प्रतिहारों के अधीन एक क्षुद्र स्थानीय शासक था, अतः मालवा जैसे दूरस्थ प्रदेश के विरुद्ध अपने ही बल पर कोई सामरिक अभियान करना निश्चय ही उसके लिए असंभव था। सर्व संभाव्यतः वह अपने अधीश्वर महीपाल के दक्षिणी प्रयाण में साथ था और उसके साथ उस विजय में भाग लिया। इससे एक महत्वपूर्ण तथ्य का निर्णय होता है कि इसके पूर्व मालवा कन्नौज के राज्य में सम्मिलित नहीं था। यह असंदिग्ध है कि इस अवधि के लगभग इस पर प्रतिहारों का आधिपत्य था। महीपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय के शासन का तिथ्यंकित ६४६ ई० का प्रतापगढ़ शिलालेख सूचित करता है कि ६४६ ई० में माधव महत् मण्डलेश्वर एवं उज्जैन का राज्यपाल था और मुख्य सेनापति श्री शर्मन् इस प्रतिहार सम्राट् के अधीन मंडपिका में (वर्तमान मंडू, मध्यभारत) राज्य-कार्य संचालन कर रहा था। इस अवधि में मालवा पर कन्नौज के प्रतिहारों का पूर्ण नियंत्रण था, किन्तु यह स्थिति बहुत दिन नहीं रही। महीपाल अपने वंश का अन्तिम महान् राजा था। उसके पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय के राज्यारोहण के अत्यल्प समय पश्चात् विशाल प्रतिहार साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। यह ध्यान देने की बात है कि भारत के दो महान् चक्रवर्ती वंशों—प्रतिहार और राष्ट्रकूट—का विखण्डन लगभग एक ही समय दसवीं शती ईसवी के मध्य में आरम्भ हुआ। इससे अन्य गौण शासक वंशों को इसका अधिकतम लाभ उठाने का स्वर्ण अवसर हाथ लगा। प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड का चंदेल राजा यशोवर्मन् (६२५-५० ई०) प्रतिहार साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठाने

वालों में प्रथम था। उसने इसके दक्षिणी प्रदेशों का अधिकांश भाग जो राष्ट्रकूटों के के हाथ में चला गया था, उनसे छीन लिया। ईसवी ६५३ के कुछ समय पूर्व चंदेल राज्य का विस्तार उत्तर में यमुना नदी से लेकर चेदि के सीमान्तों तक और पूरब या उत्तर पूरब में कालिंजर से उत्तर-पश्चिम में गोपाद्रि या वर्तमान ग्वालियर तक था। ऐसी प्रगति अति स्पष्ट रूप से प्रतिहार प्रशासन की संकटपूर्ण स्थिति का बोधक है। वह साम्राज्य जो किसी समय दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था, अब इतने पीछे ढकेला जा चुका था कि ग्वालियर तक सीमित हो गया।

उथल-पुथल और अव्यवस्था की इस अवधि में सिंहासनच्युत परमार वैरिसिंह द्वितीय चुपचाप नहीं बैठा। वह राष्ट्रकूट राज्य में निर्वासनावस्था में रह रहा था। अपनी क्षमता से स्थिति का जितना भी अधिकाधिक लाभ वह उठा सकता था, उसने उठाया और मालवा में परमार शासन को पुनः जीवित करने में कोई बात उठा न रखी। प्रतीत होता है, उसने मान्यखेट के राष्ट्रकूटों से सेना प्राप्त की जिसको लेकर वह उपराजा महेन्द्रपाल द्वितीय पर टूट पड़ा और उसको हराकर उसने प्रतिहार आधिपत्य का अन्तिम चिह्न मिटा दिया। उदयपुर प्रशस्ति का ग्यारहवाँ श्लोक इस बात का संकेत करता है। इसमें लिखा है कि 'राजा (वैरिसिंह द्वितीय) ने सूचित किया कि यह विख्यात धारा है, जब उसने असि-धारा से शत्रु समूह का बध किया।' बुह्लर ने लिखा है कि इस पद का अर्थ है 'असि-धारा से शत्रु पर प्रहार कर राजा ने सूचित किया कि धारा उसकी है।'

इस प्रकार अनुमानतः चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों की सहायता से मालवा में परमार वंश का पुनः स्थापन हुआ। इस समय से आगे इसका दृष्टिकोण पूर्णतया बदल गया और इसके विचार ढंग का स्वरूप भिन्न हो गया। प्राचीन शासक वंश राजनीतिक मंच से वेग से लोप हो रहे थे और उनका स्थान नवीन वंश ले रहे थे। अतः परमारों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाया।

(६) सियक द्वितीय—मालवा की पुनः विजय के शीघ्र ही बाद वैरिसिंह द्वितीय की मृत्यु हुई। ईसवी सन् ६४६ के कुछ पूर्व उसका पुत्र सीअक सिंहासन पर बैठा और अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में 'महाराजाधिराजपति' और 'महामण्डलिक-चूड़ामणि' की उपाधियाँ धारण कीं। सियक 'हर्ष' के नाम से भी विख्यात था। यह अब समस्त विवाद के परे है कि सियक और हर्ष एक ही राजा के नाम थे, क्योंकि उत्कीर्ण अभिलेखों में दोनों को सिन्धुराज का पिता कहा है।

सौराष्ट्र के चालुक्यों से युद्ध—उसके आक्रमण का प्रथम लक्ष्य सौराष्ट्र मण्डल के चालुक्य थे। इस वंश के राजकुमार कन्नौज के प्रतिहार वंश के माण्डलिकों के रूप में अपने प्रदेश पर राज्य कर रहे थे। प्रतीत होता है कि इस वंश के एक

प्रारम्भिक शासक बाहुकधवल ने बंगाल के पालों के और दक्खन के राष्ट्रकूटों के विरुद्ध युद्ध में नागभट्ट द्वितीय की सहायता की। अवनिवर्मन् द्वितीय जो 'योग' भी कहलाता था उसका प्रपौत्र था। संभाव्यतः उसने प्रतिहारों के विरुद्ध अपने युद्ध में वैरिसिंह द्वितीय का दृढ़ता से सामना किया और बाद को मालवा में प्रतिहार आधिपत्य को पुनः जीवित करने के लिए षड्यन्त्र किया। संभवतः इस कारण से सीअक ने उस पर धावा किया। इस अवसर पर चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों के माण्डलिक खेडकमण्डल (वर्तमान कैरा, गुजरात) के शासक ने सीअक को सहयोग दिया। हर्सोल उत्कीर्ण लेख के कथन का आशय है कि इस युद्ध में योगराज पूर्णतया पराजित किया गया। उस अभियान से लौटते समय सियक मही नदी के तट पर ठहरा और दो ब्राह्मणों को भूमि-दान किया।

हूणों से युद्ध—कुछ समय बाद सीअक ने एक हूण राजकुमार के विरुद्ध अभियान किया जिसका प्रदेश मालवा के उत्तर-पश्चिम में था। सौराष्ट्र के योगराज के पिता बलवर्मन् ने हूण राजकुमार जज्जप को युद्ध में परास्त कर बध किया। 'नवसाहसाङ्कचरित' का कथन है कि सियक ने हूण राजकुमारों का बध कर उनके अंतःपुर को विधवाओं का वास-स्थान बना दिया। वह हूण राजकुमार जिसको उसने परास्त किया था, प्रतीत होता है जज्जप का उत्तराधिकारी था। फिर भी दसवीं शती ईसवी के अन्त के पूर्व हूणों से युद्ध समाप्त नहीं हुआ।

चंदेलों से युद्ध—जेजाकभुक्ति के चंदेलों ने इस समय के लगभग अपने प्रदेश की सीमा पश्चिम में भिलसा तक विस्तार की। तिथ्यंकित ९५४ ई० के खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि इस समय चंदेल राज्य मालव नदी के तट पर स्थित भास्वत (भिलसा) तक विस्तृत था। प्रतीत होता है कि पश्चिम की ओर भाग्य परीक्षा करने के लिए सियक को चंदेलों से युद्ध में शीघ्र फँसना पड़ा। किन्तु उन्होंने उसकी प्रगति को सफलतापूर्वक अवरुद्ध किया। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में वर्णन है कि चंदेल यशोवर्मन् (९२५-९५० ई०) 'मालवों के लिए यम था'।

मान्यखेट के राष्ट्रकूटों से युद्ध—दसवीं शती ईसवी के तृतीय पाद में प्रतिहार साम्राज्य का प्रायः पूर्ण विखण्डन हो चुका था। प्राचीन भारत के इतिहास का यह संक्रमण काल था। प्राचीन शासक वंशों की शक्ति का वेगपूर्वक ह्रास हो रहा था और उनका चक्रवर्ती पद दूसरे वंश ले रहे थे। हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि चंदेल राज्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। कच्छपघातों ने मालवा के उत्तर की ओर ग्वालियर और दुबकुण्ड में अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया। प्राचीन चावड राज्य को उखाड़ कर एक चौलुक्य वंश ने मूलराज प्रथम के नेतृत्व में अन्हिलवाड (वर्तमान पटन जो बड़ौदा में है) में अपना आधिपत्य जमाया। दक्षिण में राष्ट्रकूट शक्ति का

प्रभाव ह्रास पर था और अपने विनाश के अन्तिम दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। इस राजनीतिक स्थिति ने सियक को दक्षिण में अपनी शक्ति-परीक्षा करने को प्रेरित किया।

उसने महाराजाधिराजपति और महामण्डलिक चुड़ामणि की उपाधियाँ धारण कीं, जिससे संकेत होता है कि सिंहासीन होने के कुछ ही समय बाद वह राष्ट्रकूटों की अधीश्वरता अस्वीकार करने का प्रयत्न कर रहा था। उत्तर, पूरब और पश्चिम में युद्धों को पुनः आरम्भ करने की समस्त योजनाओं को त्याग कर उसने राष्ट्रकूट साम्राज्य के विरुद्ध प्रथम बार अपनी सेनाएँ भेजीं। इस साहसिक महत् कार्य में वागड के उसके माण्डलिक कंक ने सहायता की। कृष्ण तृतीय का भाई और उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट खोट्टिग (९७१ ई०) उस समय दक्खन के सिंहासन पर था। उसने परमारों का विरोध करने के लिए वेगपूर्वक अपनी सेना मालवा की ओर भेजा। नर्मदा के तट पर कलिघट्ट नामक स्थान पर एक घमासान युद्ध हुआ। जिसमें कंक ने राष्ट्रकूट सेना के अवरोध को भंग किया और वीरतापूर्वक लड़ते हुए उसकी मृत्यु हुई। खोट्टिग की इस युद्ध में भारी पराजय हुई और वह अपनी राजधानी लौट गया। किन्तु प्रतीत होता है कि सियक राष्ट्रकूट साम्राज्य को विजय करने पर तुला हुआ था। पराजित सम्राट् का पीछा करता हुआ वह मान्यखेट के फाटकों पर पहुँचा। खोट्टिग मालव-आक्रामक सेनाओं को अवरुद्ध न कर सका और अपनी राजधानी को उनकी दया पर छोड़ दिया। नगर प्रत्यक्षतः विजेताओं द्वारा लूटा गया। धनपाल ने अपने ग्रन्थ पाइयलच्छी के अन्तिम श्लोकों में लिखा है कि उसने इस ग्रंथ को उस समय पूर्ण किया 'जब वि० सं० के १०२९ वर्ष बीत चुके थे, उस समय जब मालवपति के एक आक्रमण के फलस्वरूप मान्यखेड (मान्यखेट) लूटा गया।

वि० सं० में यहाँ व्यक्त की हुई तिथि ईस्वी संवत् के अनुसार ९७१-७२ है। यह बताया जा चुका है कि इस समय खोट्टिग मान्यखेट के सिंहासन पर था। उपर्युक्त मालवनृप सर्व संभाव्यतः सीअक था, क्योंकि उदयपुर प्रशस्ति ने खोट्टिग पर उसकी विजय का उल्लेख किया है। नवसाहसाङ्क चरित ने रुडपाटी-पति पर उसकी विजय का कथन किया है। संभवतः राष्ट्रकूट के राजा खोट्टिग से इसका तादात्म्य है। यद्यपि सियक की सेनाओं ने ऐतिहासिक नगर मान्यखेट पर अधिकार कर उसको लूटा, किन्तु वे इसके मुख्य क़िले को विजय न कर सके जो राजवास स्थान था। पश्चिमी गंगमारसिंह द्वितीय ने इसकी सफलतापूर्वक प्रतिरक्षा की। स्रवन बेलगोला समाधि उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'उसने (मारसिंह द्वितीय ने) अपने अस्त्र-शस्त्रों के बल पर मान्यखेट नगर में स्थित सम्राट् के अवस्थान की रक्षा की।

यह युवराज गंग सीअक और खोट्टिग दोनों का समकालीन था। क्योंकि

उसका शासन ९६३-६४ ई० में आरंभ और ९७३-७४ ई० में समाप्त हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि उपर्युक्त उत्कीर्ण लेख का विचाराधीन उद्धरण का यह अर्थ लिया जा सकता है कि यह उद्धरण उस संघर्ष का संकेत करता है जो राष्ट्रकूट कक्क द्वितीय और दक्षिण में नए चालुक्य साम्राज्य के संस्थापक तैलप द्वितीय के बीच में हुआ था। किन्तु इस मत में अधिक शक्ति नहीं रह जाती, यदि संपूर्ण स्थिति पर विचार किया जाय। यह एक स्पष्ट तथ्य है कि तैलप की विजय के तुरन्त बाद राष्ट्रकूट आधिपत्य की पूर्ण समाप्ति और दक्खिन में एक नए चालुक्य साम्राज्य की स्थापना हुई थी। इसको ध्यान में रखते हुए यह नहीं माना जा सकता कि सियक की सफलता अस्थायी से अधिक थी। अतः मान्यखेट के शिविर की प्रतिरक्षा करने का मारसिंह का अहंकार और भी न्यायोचित ठहरता है, यदि इसका संबंध सियक और खोट्टिग के बीच में हुए संघर्ष से है।

घटनाओं की इन समस्त गतियों से स्पष्ट है कि सशक्त राष्ट्रकूट साम्राज्य का विनाश लाने में परमार मुख्यरूप से कारण थे। उन्होंने नर्मदा के तटों पर खोट्टिग को असाधारण रूप से पराजित किया, उसके राज्य को पददलित किया, और अन्ततः सर्व प्रमुख नगर मान्यखेट को लूटा और ध्वंस किया। इससे निःसंदेह राष्ट्रकूटों के सामरिक साधनों पर भारी बोझ पड़ा जिससे उनकी शक्ति के विनाश होने पर तैलप द्वितीय के लिए दक्खिन का सिंहासन प्राप्त करना अधिक सरल हो गया। इस समय ठीक-ठीक यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि सियक ने अपने दक्षिणी अभियान से कितना लाभ उठाया। उसके पुत्र वाक्पति और उसके पौत्र भोज के शासन-काल में गोदावरी का उच्चतर बहाव परमार राज्य की दक्षिणी सीमा था। यह अत्यन्त संभाव्य है कि सियक ने उस सीमा तक परमार राज्य का विस्तार किया।

सियक परमार राज्य का वास्तविक संस्थापक, तथा अपने वंश का प्रथम चक्रवर्ती शासक था। एक तुच्छ स्थानीय राजा के पद से उसने अपनी विलक्षणता और सामरिक दक्षता से अपने युग के अग्रतम शासकों में स्थान पाने में सफल हुआ। उसने अपने पीछे एक विशाल साम्राज्य छोड़ा, जिसका विस्तार उत्तर में बांसवारा राज्य तक; पूरब में भिलसा तक, दक्षिण में गोदावरी तक; और पश्चिम में माही तक था। दक्षिणी अभियान से लौटने के शीघ्र ही बाद उसने अपने सिंहासन को अपने पुत्र वाक्पति के पक्ष में छोड़ दिया। पद्मगुप्त ने लिखा है कि अपने राज्य के उत्तर-वर्ती काल में 'राजा ने एक ऋषि का जीवन ग्रहण किया और राजर्षि का कुश-चीवर पहनकर अपने को अलंकृत किया', और तपसचर्या में पूर्णतया संलग्न हो गया। वडजा उसकी राज्ञी का नाम था। वाक्पति के अतिरिक्त उसका एक अन्य पुत्र सिन्धुराज था। उसने अपने शासन-काल की समाप्ति ९७० ई० और ९७३ ई० के बीच किसी समय किया।

अध्याय | ३

वाक्पति द्वितीय और सिन्धुराज

(१) **वाक्पति द्वितीय**—वाक्पति की उपाधियाँ 'श्रीवल्लभ' और 'पृथ्वी वल्लभ' थीं जो दक्षिण के चक्रवर्ती राष्ट्रकूटों के वंश के विरुद्ध थे। 'अमोघवर्ष', 'उत्पल', और 'मुंज' उसके अन्य नाम थे। नागपुर प्रशस्ति में मुंज के नाम से उसका वर्णन है और उसके वंश के शेष उत्कीर्ण लेखों में उसका नाम वाक्पति आया है। राजा अर्जुन वर्मन् ने 'अमरुशतक' पर रसिक संजीवनी नामक अपनी टीका में लिखा है कि वाक्पतिराजअपर नाम मुंज उसका पूर्वज था।' 'नवसाहसाङ्क चरित' में एक स्थान पर वाक्पति को सिन्धुराज का ज्येष्ठ भ्राता लिखा है, जो उसकी मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठा। एक अन्य स्थान पर मालवा के प्रारम्भिक परमार नरेशों के इतिहास का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि सिन्धुराज उत्पलराज के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। यहाँ वाक्पतिराज नाम न देकर कवि ने दोनों की तादात्म्यता प्रमाणित की है। इसकी और पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने जिस एक श्लोक के रचयिता का नाम उत्पलराज लिखा है, वल्लभदेव ने उसी श्लोक के रचयिता का नाम वाक्पतिराज लिखा है।

राज्याभिषेक—मेरुतुंग ने वाक्पति के जन्म और प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में एक रोचक कहानी कही है। एक बार जब राजा राज-परिभ्रमण में था, उसको मुंज-घास के एक झुरमुट में एक नवजात शिशु दिखलाई पड़ा जिसको उसने तुरन्त स्नेहपूर्वक अपनी बाहुओं में उठा लिया। इस बालक का नाम मुंज रखा गया, क्योंकि मुंज-घास में वह पाया गया था। कुछ समय बाद राजा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम उसने सिन्धुल (सिन्धुराज) रखा। किन्तु इस अप्रत्याशित घटना के बाद भी मुंज के प्रति राजा का स्नेह अडिग बना रहा। मुंज के युवराजोचित गुणों से राजा अतिशय प्रभावित था। एक बार राजा मुंज के आवास में अकस्मात् पहुँचा। उसको सिंहासन का अपना उत्तराधिकारी बनाने की अपनी वर्तमान इच्छा व्यक्त की। अन्त में उसने अपनी इस अभिलाषा पर बल दिया कि मुंज अपने कनिठ भराता

सिन्धुराज के प्रति मैत्री और स्नेहपूर्ण भाव रखे। थोड़े ही दिनों बाद मुंज का राजतिलक-उत्सव बड़े हर्ष और धूमधाम से मनाया गया।

उपर्युक्त कहानी की पुष्टि में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। हो सकता है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में संतानहीन होने के कारण सीयक ने अपने सिंहासन के उत्तराधिकारी रूप में मुंज को ग्रहण किया हो, और एक पुत्रोत्पत्ति के कुछ समय बाद भी इस प्रबन्ध की पुष्टि की हो।

राष्ट्र-कल्याण—वाक्पति के सिंहासनासीन होने पर मालवा में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। जीवन के हर एक क्षेत्र में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ और देश में धन और साधनों की वृद्धि हुई। साम्राज्य दृढ़ किया गया और प्रशासन एक दृढ़ नींव पर आधारित किया गया। इस समय से आगे परमार राजाओं ने केवल विजय के लिये सामरिक अभियानों तक ही अपने कार्यों को सीमित न रखा, बल्कि अपनी जनता के सांस्कृतिक विकास और सामाजिक कल्याण की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया। मालवा की जनता एक दृढ़ राष्ट्र में परिवर्तित हुई। रुद्रादित्य राजा का मंत्री था और महाइक और कवि धनिक क्रमशः उसके प्रशासन के महासाधनिक और महासाध्यपाल थे।

राज्य-विस्तार—मालवा के सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद वाक्पति ने सर्वप्रथम राज्य-विस्तार की ओर अपनी शक्ति लगाया। उसके राज्य के चारों ओर अनेक शक्तिशाली शासक वंश थे। उसने उनके विरुद्ध अभियान क्रम का सूत्रपात किया।

कलचुरियों से युद्ध—वाक्पति की चरम सफलता कलचुरियों पर उसकी विजय थी, जिनका मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग पर राज्य था और जिनके प्रशासन का केन्द्र त्रिपुरी था। उनका राजा युवराज द्वितीय लगभग (९७५-१००० ई०) वाक्पति का समकालीन था। उसके पिता लक्ष्मण ने तैलप द्वितीय के साथ अपनी कन्या बोंथादेवी का विवाह कर उससे मित्रता स्थापित की थी। उसने अपने राज्य की समृद्धि सफल सामरिक विजयों द्वारा भी बढ़ाया। कोशलपति को पराजित कर उसने उसकी एक अत्यन्त मूल्यवान 'कालिय' प्रतिमा छीन ली, और जब वह सामरिक अभियानों के सिलसिले में सागर के पश्चिमी तट पर पहुँचा तो उसने उस मूर्ति को सोमेश्वर के मन्दिर में अर्पणकर पुण्य लाभ किया। युवराज द्वितीय के अतिरिक्त उसका एक अन्य पुत्र शंकरगण भी था, जो उसके सिंहासन का निकटतम उत्तराधिकारी था और जिसके बाद युवराज द्वितीय सिंहासन पर बैठा। इन दोनों राजकुमार भाईयों में वह सामरिक दक्षता न थी जिससे उसके पिता की ख्याति हुई।

वाक्पति ने चेदि के विरुद्ध उस काल में प्रयाण किया जब कलचुरि प्रशासन इस निर्बल शासक के हाथ में था। युवराज की असाधारण रूप से पराजय हुई, यद्यपि उसने अपनी समस्त सेना लेकर उसका सामना किया। उसके अनेक पदाधिकारी युद्ध क्षेत्र में मारे गए और उसका सम्पूर्ण राज्य परमारों के अधीन हो गया। उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि वाक्पति ने युवराज को युद्ध में परास्त किया, उसके सेना-पतियों का बध किया, और त्रिपुरी में अपना आधिपत्य स्थापित किया। चालुक्य विक्रमादित्य पंचम के कौथेम दानपत्र से मोटे तौर से इसकी पुष्टि होती है जिसमें यह कहा गया है कि उत्पल चेदियों की शक्ति को विनष्ट किया।

गुहिलों और चाहमानों से युद्ध—उत्तर में भी वाक्पति की सफलताएँ युग-परिवर्तनकारी थी। उस दिशा में मेदपाट या मेवार के गुहिल उसके आक्रमण के प्रथम लक्ष्म थे। दसवीं शती ई० के अन्तिम चरण में नरवाहन का पुत्र और उत्तरा-धिकारी राजा शक्तिकुमार (६७७ ई०) उन पर शासन कर रहा था। वाक्पति ने संभाव्यतः इस युवराज से युद्ध कर उसको बुरी तरह हराया। उसने उसकी हस्ति सेना को विनष्ट कर मेवार की राजधानी आघाट (वर्तमान अहर जो उदयपुर रेलवे स्टेशन के समीप है) को लूटा और उसे अपने राज्य से भागने को विवश किया। सिंहासन-च्युत होकर इस संकट में गुहिल राजकुमार ने हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल की शरण ली। इस विजय से प्रलोभित होकर वाक्पति ने अपनी सेना को पश्चिम में और आगे भेजा, जिससे उसे मारवार के चाहमानों से युद्ध करना पड़ा। अपने राजा शोभित के नेतृत्व में चाहमानों ने आबूपर्वत के शासक को बलपूर्वक विनष्ट कर अपने राज्य की सीमाओं को आबूपर्वत तक बढ़ाया था। शोभित का उत्तराधिकारी बलिराज इस समय के लगभग मारवार के सिंहासन पर था। प्रतीत होता है कि वाक्पति ने सर्वप्रथम उससे आबूपर्वत छीना जो जोधपुर राज्य में बलमेर से सोलह मील उत्तर-पश्चिम में है। चालुक्य विक्रमादित्य पंचम के कौथेम दानपत्र में अंकित है कि उत्पल के पहुँचने पर मारवार की जनता काँपने लगी। पद्मगुप्त के एक स्फुट श्लोक में लिखा है जो संभाव्यतः वाक्पति की मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् रचा गया था, कि 'हे उत्तम नृप (मालवपति) वहाँ (मारवार में) आप का भृत्य स्थित हो गया जैसा कि भाग्यवश होना था और वहाँ चकितचित्त होकर इतने दिन तक ठहरा रहा, जहाँ आपका प्रताप हरिण के समान नेत्रों वाली स्त्रियों के उत्कंपन करते हुए स्तन-तट के मोतियों को नचा देता है।'

वाक्पति ने अब इस नव विजित प्रदेश को धारा के राजवंश के राजकुमारों में बाँट दिया। उसने अपने पुत्र अरण्यराज को अबुर्द या आबू प्रदेश में स्थापित किया, अपने दूसरे पुत्र चंदन को सालोर में बैठाया और अपने भतीजे दूसल को मीनमाल

का प्रशासन सौंपा जिसके आधिपत्य का विस्तार पश्चिम में बलमेर तक था। इस तरह दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाने के बाद प्रतीत होता है उसने चाहमानों की राजधानी नड्डुल (नादोल) विजय करने का प्रयत्न किया किन्तु उसके प्रतिद्वन्दी बलिराज ने अपने को अवसर के उपयुक्त प्रकट किया और सफलतापूर्वक अपने राज्य की प्रतिरक्षा की। सूंधापर्वत उत्कीर्ण लेख का कथन है कि उसने मुंज की सेना को भंग कर दिया। परमारों की यह पराजय अवश्य ही ६८२ ई० के बाद किसी समय हुई होगी क्योंकि यह तिथि बलिराज के प्रपिता लक्ष्मण के शासनकाल की है।

हूणों से युद्ध—प्रतीत होता है इस समय के लगभग वाक्पति ने हूणों के विरुद्ध एक अभियान किया और उनको पूर्णरूपेण परास्त किया। कौथेम दानपत्र में लिखा है कि उत्पल ने हूणों के प्राणों का विनाश किया।

गुजरात के चौलुक्यों से युद्ध—दक्षिणी मारवार विजय करने के कुछ समय पश्चात् वाक्पति गुजरात के चौलुक्यों से युद्ध में फँस गया। चौलुक्य मूलराज प्रथम जिसने ६४१ ई० से ६६७ ई० तक राज्य किया, उसका समकालीन था। परमारों के पहुँचने पर चौलुक्य सेनाएँ भयभीत हो गईं। मूलराज ने अपने शत्रुओं की प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु उस युद्ध में असाधारण रूप से परास्त किया गया। विजेताओं के भारी दबाव के कारण वह सपरिवार मारवार की मरुभूमि में भागा। किसी नेता और पथप्रदर्शक के न होने के कारण उसकी सेनाएँ किंकर्तव्य विमूढ़ हुईं और जाकर हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल से शरण माँगी। बीजापुर उत्कीर्ण लेख का कथन है कि जब राजा मुंज के भयानक युद्ध से गुर्जरपति की शक्ति विनष्ट हुई तो उसकी सेनाओं ने धवल से रक्षा की याचना की और उसने उनको तुरन्त पर्याप्त रक्षा प्रदान की। इस समय मूलराज की विपत्तियों का कोई अन्त न था। उसने बिना आहार और जल के अत्यन्त कष्ट में अपने दिन काटे। गूर्जर नरेश की दयनीय अवस्था का पद्मगुप्त ने निम्नलिखित श्लोकों में अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप से वर्णन किया है:

'वह न तो भोजन करता है और न जल ग्रहण करता है, वह स्त्री समाज से दूर रहता, वह बालू पर लेटता है, समस्त सांसारिक आमोद-प्रमोद से मुक्त है और प्रचण्डतम आतप का सेवन करता है। हे मालवसिंह, मुझे प्रतीत होता है कि यह गूर्जरपति मारवार के जंगलों में तपस्या कर रहा है, क्योंकि वहाँ आपके पद-रजरूपी प्रसादकणिका को प्राप्त करने के लिए उत्सुक है।'

'भयभीत होकर जंगल में घूमती हुई वह गूर्जर महिषी बारम्बार अपने पति के कृपाण को देखती है कि क्या इसमें धार नहीं है, क्योंकि उसने अतीत में बन्दीजनों को बहुधा यह कहते हुये सुना था 'हे नाथ, आपके खड्ग की धार (या धारा) से प्रेरित युद्ध में आपके समस्त शत्रु-समूह डूब गए हैं।'

लाट के विरुद्ध युद्ध—उत्तरी गुजरात की विजय के बाद उसने लाट प्रदेश पर चढ़ाई की जो मही और ताप्ती नदियों के बीच की भूमि है। चौलुक्य वंशज बारप्पा जो कर्णाट नरेश तैलप द्वितीय का सेनापति था, उस समय इसका शासक था। प्रतीत होता है, वाक्पति की उससे मुठभेड़ हुई और उसने निर्णायक विजय प्राप्त की। उदयपुर प्रशस्ति में लाटवासियों पर उसकी विजय का वर्णन है।

इन विजयों से वाक्पति कुछ समय के लिए एक विस्तृत प्रदेश का स्वामी बन गया, जिसमें पूरब की ओर कलचुरि राज्य, पश्चिम की ओर गुजरात और लाट, और उत्तर की ओर मेवार और दक्षिणी मारवार सम्मिलित थे। किन्तु दक्षिणी मारवार को छोड़कर इनमें से कोई भी नवविजित प्रदेश बहुत दिनों तक परमारों के नियन्त्रण में न रहा। चौलुक्यों और कलचुरियों ने अत्यन्त अल्पकाल में अपने प्रदेशों को पुनः प्राप्त किया और उनपर पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य किया। वाक्पति उनपर अपनी सार्वभौमिक सर्वसत्ता स्थापित न कर सका। उनपर अपने आधिपत्य को बनाए रखने के लिए उसको एक बड़ी सेना और साधनों की आवश्यकता थी। नवजात चालुक्य प्रशासन की प्रगति को रोकने के लिए उसको अपनी समस्त सेनाओं को अपने राज्य की दक्षिणी सीमा पर सुसज्जित करना पड़ा।

कर्णाट के चालुक्यों से युद्ध—मारसिंह की सहायता से राष्ट्रकूट खोट्टिग सीअक और उसकी सेनाओं को मान्यखेट से भगाने में सफल हुआ। किन्तु राष्ट्रकूट कठिनता से अपनी पूर्व स्थिति में आए ही थे कि सम्भाव्यतः परमारों से भी अधिक भयानक अन्य बृहदाकार शत्रु दक्खिन के मैदानों में घुस आया और उनके चक्रवर्ती प्रशासन को उलटने का प्रयत्न किया। इन आक्रामक सेनाओं का नेता चालुक्य वंश का तैलप द्वितीय था। खोट्टिग का उत्तराधिकारी कर्कराज इस आक्रमणकारी धारा को रोक न सका, और अन्ततः अपनी राजधानी और राज्य उनको समर्पण किया। इसके बाद राष्ट्रकूट साम्राज्य के लिए परमारों और चालुक्यों के बीच में संघर्ष हुआ। वास्तव में उच्चाकांक्षी परमारों की शक्ति को नष्ट किए बिना दक्खिन में एक स्थायी अधीश्वरता स्थापित करना तैलप के लिए बिलकुल असम्भव था। इस कारण आधिपत्य के लिए एक कठोर संघर्ष आरम्भ हुआ जो इन पड़ोसी वंशों के बीच में कई पीढ़ियों तक चलता रहा। वाक्पति अपने एक प्रारम्भिक प्रयास में तैलप की सेनाओं द्वारा परास्त किया गया। तैलप के शासन काल के निलगुण्ड उत्कीर्ण लेख (९८२ ई०) में लिखा है कि तैलप द्वितीय के नाम को सुनकर राजा उत्पल चकित हुए, विचार-विमर्श किया कि उसको क्या करना चाहिए कहाँ जाना चाहिए और कहाँ रहना चाहिए। प्रतीत होता है इस आक्रमण के अतिरिक्त उसने दक्खिन के विरुद्ध कई अभियान चलाए और अधिकांशों में उसको सफलता प्राप्त हुई। मेरुतुङ्ग

ने लिखा है कि युद्ध के अन्तिम समाप्ति के पूर्व मुञ्ज ने तैलप को ६ बार परास्त किया। उदयपुर प्रशस्ति ने भी कर्णाट सेना पर उसकी विजय को अभिलिखित किया है। किन्तु इन सब प्रारम्भिक विजयों को प्राप्त कर लेने पर भी वह चालुक्यों की शक्ति तोड़ न सका। अब उसके शासन का गौरवपूर्ण काल बीत चुका था और उसके पतन का दिन वेग से आ रहा था। हजार रश्मियों सहित पूरब में उदय होने वाला सूर्य अस्त होने के ठीक पूर्व निःस्तेज हो गया था। अभूतपूर्व शौर्ययुक्त गौरवपूर्ण राजा मुञ्ज अंतिम युद्ध में तैलप के हाथों में बन्दी हो गया और जब वह अनन्त कष्ट भोग चुका, तब शत्रु के शिविर में उसका बध किया गया। उसकी तीव्रतम आपदाओं की कहानी जो परंपरा आगामी पीढ़ियों को इन लम्बे वर्षों में विरासत के रूप में सौंपती आई थी, अन्ततः जैन गुरु मेरुतुङ्ग के हृदय में जो तेरहवीं शती ईसवी में पैदा हुआ था, कारुणिक भाव उत्पन्न किया जिसको उसने 'मुञ्ज-प्रबन्ध' में उपयुक्त वाणी दी है। उसने वर्णन किया है कि तैलप के छापामारों से निरन्तर पीड़ित किए जाने पर मुञ्ज ने उसके राज्य पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसके मन्त्री रुद्रादित्य ने जो उस समय किसी व्याधि से पीड़ित था उसको उसके प्रस्तावित योजना से विमुख करने का प्रयत्न किया किन्तु यह देखकर कि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए दृढ़ता से तुला हुआ है, उसने उससे गोदावरी के पार न जाने की प्रार्थना की।

युद्ध में बारंबार विजयी होने से मुञ्ज को पूर्ण विश्वास था कि इस अवसर पर भी वह विजयी होगा। उसने अपने मन्त्री के सद्परामर्श की ओर ध्यान न दिया और एक लम्बा प्रयाण करने के बाद अन्त में उसने गोदावरी के उस पार अपना शिविर स्थापित किया। थोड़े समय पश्चात् मुञ्ज ने शत्रुओं का सामना किया और एक घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। उसके भाग्य का अन्त हो चुका था और उसने अपने दूरदर्शी मन्त्री की चेतावनी की अवहेलना का दण्ड भोगा। उसकी पराजय हुई और तैलप के हाथ वह बन्दी बना जिसने छल-कपट-पूर्ण युक्तियों से सफलता प्राप्त की थी।

अब उसके दुःखों का अन्त न था। वह एक रस्सी से बाँधा गया। एक लकड़ी के पिंजड़े में रखा गया, और कर्णाट के कारागार में डाल दिया गया। उसके अन्य मन्त्रीगण जो बाद को वहाँ पहुँचे, एक गुप्त सुरंग खोदी और उसके भागने का सम्पूर्ण प्रबन्ध कर लिया; किन्तु उसकी मूर्खता और अविवेकता के कारण उसके लिए किए गए उनके सभी प्रयास पूर्णतया विफल हो गए। इससे तैलप की प्रतिशोधवृत्ति और भी भड़की और वह उसके प्रति पहले से अधिक निर्दय हो गया। उसने अपने भृत्यों को बन्दी राजा को रस्सियों से बाँध कर अपना दैनिक भोजन माँगने के लिए द्वार-द्वार ले जाने की आज्ञा दी। उसके हृदय की अनन्त पीड़ाएँ उसके नेत्रों के मौन

अश्रुओं और प्रायः गहरे निःश्वासों के रूप में फूटती थीं। तीव्र पीड़ा से अभिभूत होकर मुञ्ज अपने भाग्य के नाम रोता था और बीच-बीच में जोरों से चिल्लाता था।

इस तरह बहुत दिनों तक मुंज को सड़कों पर घुमाते हुए चालुक्य राजा के भृत्य अन्त में उसको बध-स्थान पर लाए। उन्होंने उसके सिर को उसके शरीर से अलग कर और गाढ़े मट्ठे से तरकर राजप्रासाद के दालान में एक ढेर पर जमा किया।

मेरुतुङ्ग द्वारा लिखे गए वर्णन की पुष्टि चालुक्यों के उत्कीर्ण लेख से होती है। विक्रमादित्य पंचम का कौथेम दानपत्र सूचित करता है कि उसके पितामह तैलप ने उत्पल को कारागार में डाला। विक्रमादित्य षष्ठ का सडग उत्कीर्णलेख गर्व करता है कि उस सम्राट् के दूरवर्ती पूर्वज तैलप द्वितीय ने वीर मुंज का बध किया। इस कथन की पुष्टि आईने-अकबरी ने भी की है, कि दक्खिन के युद्धों में मुंज का प्राणान्त हुआ।

इस परमार युद्ध में तैलप की सहायता सम्भवतः उसके माण्डलिक भिल्लम द्वितीय ने की थी जो परमार राज्य के सीमावर्ती दक्षिणी खन्देश का शासक था। इस यादव माण्डलिक का संगमनेर ताम्रपट्ट का कथन है कि उसने महान् राजा मुंज की सामरिक शक्ति को कुचल दिया और इस तरह उसके भाग्य लक्ष्मी को यशस्वी रणरंगभीम के भवन में सती स्त्री के व्रत का पालन कराया गया। तैलप दक्खिन में एक चालुक्य साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। वाक्पति मुंज उसके पक्ष में अवरोध था, बाद को उसकी पराजय और मृत्यु हो जाने मात्र से तैलप ने एक स्थायी आधिपत्य स्थापित किया। वाक्पति जो निरंतर बीस वर्षों से अधिक काल तक चालुक्य नरेश को कष्ट देता रहा, उस रूप में तैलप के प्रतिशोध का शिकार हुआ।

अमितगति ने सुभाषितरत्नसंदोह ९९३ ई० में पूर्ण किया। उस समय मुंज मालवा के सिंहासन पर था। मुंज के विनाशक तैलप द्वितीय की मृत्यु ९९८ ई० के कुछ ही पूर्व हुई। अतएव परमार नरेश का बध अवश्य ही इन दो तिथियों के बीच हुआ होगा।

सामरिक विजय की महत्वाकांक्षा होते हुए भी वाक्पति अपने राज्य के आन्तरिक विकास के प्रति उदासीन नहीं था। वह स्वयं एक महान् कवि था और कार्य में लगे हुए लोगों को उदारतापूर्वक वृहद् उपहारें देता था। अपने उदार संरक्षण, सरस्वती के प्रति अक्षुण्ण भक्ति और मूल्यवान् योगदानों द्वारा उसने मालवा में संस्कृत साहित्य की पुनः जागृति की। पद्मगुप्त उसका मुख्य राजकवि था। धनंजय भट्ट, हलायुध, धनिक, धनपाल, शोभन तथा अन्य कवि उसके पूर्ण उदार संरक्षण में फूलते-फलते रहे।

उसने मालवा में अनेक रम्य सरोवर खुदवाया जिसमें से दो आज भी धारा में स्थित हैं। उसमें से एक का नाम मुंजसागर है। कहा जाता है कि उसने उज्जैन, महेश्वर, ओंकेर-मान्धाता और धर्मपुरी में अनेक मंदिरों और बाँधों का निर्माण किया।

वाक्पति पितृतुल्य शासक था। उसके कुशल प्रशासन से उसकी प्रजा उसके प्रति अतिशय स्नेहबद्ध थी। योद्धा रूप में, कवि रूप में और निर्माणक रूप में वह अपने अनेक समकालीनों से कहीं बढ़-चढ़कर था। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसकी सफल कार्य-सिद्धियों ने उसके वंश की कीर्ति और ख्याति की वृद्धि की। उसने अपने देश को प्रकाश प्रदान किया, उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व और महान् शौर्य से उसकी उच्चकीर्ति फैली। उसकी शक्तिशाली सेनाओं की दृढ़ता ने चेदि, लाट, माखार, गुजरात और मेवारवासियों के गर्व को नत किया। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि तैलप द्वितीय ने छल-कपट युक्तियों से, न कि अपनी सामरिक शक्ति की उत्कृष्टता से, इस परमार नरेश पर विजय प्राप्त की। इन परिस्थितियों में दक्षिण में वाक्पति को असफलता किसी भी तरह उसके वीर योद्धा और कुशल सेनापतिरूपी यश को कम नहीं करती। उसकी मृत्यु उसके राज्य के लिए एक वास्तविक क्षति थी। उसकी मृत्यु से उसकी प्रजा को गहरा आघात लगा।

सिन्धुराज—यद्यपि वाक्पति के दो पुत्र अरण्यराज और चंदन थे जो क्रमशः आबूपर्वत और जालोर के राज्यपाल नियुक्त किए गए थे, उसके कनिष्ठ भ्राता सिन्धुराज ने सिंहासन का उत्तराधिकार पाया।

पद्मगुप्त ने नवसाहसाङ्कचरित में वर्णन किया है कि 'जब कालक्रम से उसने (वाक्पति ने) अम्बिका के पति के नगर को प्रस्थान किया, तब उसने इस पृथ्वी को इसके (सिंधुराज के) बाहु पर रख दिया जो प्रत्यंचा के क्षति चिह्न से अंकित है।' इस पर प्रो० बुहलर ने ठीक ही टिप्पणी की है कि 'ठीक-ठीक व्याख्या करने पर इस वाक्य का अर्थ होगा कि उसने अपनी मृत्यु शैय्या पर अपने भाई को युवराज बनाया और उसको यथारीति अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। वाक्पति की मृत्यु का रूप ज्ञात है, अतः यह मत ग्राह्य नहीं है। यह उद्धरण यह संकेत करता है कि वाक्पति के अभियान के कुछ समय पूर्व सिंधुराज युवराज बन चुका था।'

सिंधुराज ने 'कुमारनारायण' और 'नवसाहसाङ्क' विरुद धारण किए। पद्मगुप्त ने सामान्यतया 'अवन्तीश्वर' 'परमार-महीभृद्' और 'मालवराज' आदि शब्दों में उसका वर्णन किया है। यशोभट जो रमांगद नाम से भी विख्यात था, उसका मुख्य मंत्री था। सिंधुराज के शासन का कोई अभिलेख अभी तक नहीं मिला है। हमारे साक्ष्य का मूल स्रोत पद्मगुप्त कृत 'नवसाहसाङ्कचरित' है। इस पुस्तक का प्रयोजन

कुछ उन घटनाओं का कहानी रूप में वर्णन करना है जिनके फलस्वरूप राजा का विवाह नाग राजकुमारी शशिप्रभा से परिपक्व हुआ।

तेरहवीं शती ईस्वी के प्रथम चरण में कवि मदन ने पारिजात मञ्जरी लिखा था, जिसका प्रयोजन उन घटनाओं का एक नाटक के रूप में निरूपण करना था जिनके फलस्वरूप उसके संरक्षक राजा अर्जुन वर्मन् का गूर्जर राजकुमारी विजयश्री के साथ संयोग हुआ। यद्यपि संपूर्ण कथानक कल्पना पर आधारित है, तथापि इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अब अनेक उत्कीर्ण लेखों के खोज से प्रमाणित हो चुकी है। नवसाहसाङ्क-चरित के सम्बन्ध में भी यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त कारण है कि इसने एक काल्पनिक प्रेमकथा के रूप में एक ठोस ऐतिहासिक तथ्य का निरूपण किया है। कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसकी कथा का हेतु सिंधुराज की जीवन-कहानी लिखना है जिसको उसने कवित्व-दर्प से नहीं, बल्कि अपने स्वामी की आज्ञा से लिखा है। इस पुस्तक का कुछ ऐतिहासिक रूप है और शुद्ध काल्पनिक गुण-कीर्तन नहीं है, इस तथ्य से यह और भी अधिक प्रमाणित होता है कि असुर-राजकुमार के हाथ मंत्री रामांगद की मृत्यु का इसमें कथन किया गया है, यद्यपि कथानक को बिना कोई वस्तु-निष्ठ क्षति पहुँचाए यह सुरक्षापूर्वक छोड़ा जा सकता था। प्रो० बुहलर ने टिप्पणी की है कि पद्मगुप्त ने अपने नवसाहसाङ्कचरित में महाकाव्यों की विशिष्ट व्यापकता के साथ जो कहानी कही है, निःसन्देह उसकी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। न केवल कविता का नायक राजा सिंधुराज वस्तुतः वर्तमान था, बल्कि अन्य पात्र भी जिनका नाम कविता में आया है, उदाहरणार्थ, नाग, विद्याधर, असुर आदि ने भी राजा के साथियों या शत्रुओं के रूप में भूमिका अभिनीत की है। अभी उन ऐतिहासिक पात्रों के वास्तविक नाम और पद निश्चित करना कठिन है, जिनका नाम पद्मगुप्त में आया है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि पद्मगुप्त कृत नवसाहसाङ्कचरित का विषय वज्र के मान राजा के विरुद्ध किए गए सिन्धुराज के साहसिक अभियानों में से एक था।

बस्तर राज्य का प्राचीन नागवंश की अपने पड़ोसियों—वज्र के अनार्य राजाओं—से निरन्तर शत्रुता चलती थी। दसवीं शती ईसवी के अन्तिम चरण में उस नागवंश के एक राजा ने युद्ध में मानों से असफल होने पर सिंधुराज से सहायता माँगी। परमार राजा ने तुरन्त उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और एक सेना लेकर मान राजा के विरुद्ध प्रयाण किया। उस अभियान में उसका मन्त्री रामांगद भी साथ था। प्रत्यक्षतः शिलाहार अपराजित तथा नाग-सेनाओं ने उसकी सहायता की। अपने लम्बे प्रयाण के बीच में उसने एक बार अपना शिविर वेन गंगा के तटों पर गाड़ा और बाद को मान राजधानी रत्नावती पर आक्रमण करने के लिए वज्र प्रदेश

के एक जंगल में ठहरा। उसने मान राजा से अधीन होने को कहा, किन्तु उसके तुरन्त अस्वीकार कर देने पर एक घनघोर युद्ध हुआ। मान राजकुमार के हाथ रामांगद को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। सिंधुराज ने युद्ध में मान राजाओं को मार डाला और अन्ततः रत्नावती विजय किया। नागराजा ने उसके प्रति की गई सेवाओं की कृतज्ञता स्वरूप उसे अपनी कन्या विवाह दी। सिंधुराज ने नववधू को मूल्यवान् रत्नों से अलकृत किया जो उसने मान राजधानी की लूट द्वारा प्राप्त किया था और तत्पश्चात् अपने राज्य की ओर विजय-यात्रा आरंभ की।

प्रतीत होता है कि मानराजा पर सिंधुराज की विजय के कुछ समय पूर्व सिंधुराज का महाकोशल के कलचुरियों से संघर्ष हुआ, जिनका प्रदेश वज्र प्रदेश के उत्तर-पश्चिम सीमा पर था। उसकी राजधानी तुम्मान थी जिसका वर्तमान नाम तुमन है और जो मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ मण्डल के बिलासपुर जिले का एक गाँव है। पद्मगुप्त ने लिखा है कि कोशल राजा पर सिंधुराज की विजय हुई। कोशल का प्रत्यक्षतः अर्थ है दक्षिण-कोशल। कोशल का पराजित राजा अवर कलचुरि शाखा का संस्थापक कलिङ्गराज प्रतीत होता है। उस समय बस्तर राज्य के नाग वंश का कलचुरियों से युद्ध चल रहा था। कलचुरि के जाजल्लदेव (१११४ ई०) ने नाग सोमेश्वर को युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिया।

यह संदेहास्पद है कि सिन्धुराज अपने सामरिक अभियान-क्रम में मुरल प्रदेश तक गया। पद्मगुप्त ने लिखा है कि मुरल केरल है जिसका तादात्म्य वर्तमान मालाबार तट से होता है। प्रो० बुहलर ने संकेत किया है कि हो सकता है कि इस शब्द से कवि का अर्थ संपूर्ण द्रविण जनपद से रहा हो और कवि ने चालुक्यों और परमारों के बीच जो संघर्ष हुए, उनका उल्लेख किया हो, जो सिन्धुराज के शासन-काल में हुआ था, किन्तु यह अमान्य है।

हूणों से युद्ध—हूणों के विरुद्ध जो युद्ध सियक के शासन-काल में हुआ था, अब सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। उदयपुर प्रशस्ति और नवसाहसाङ्क चरित दोनो ने ही हूण राजा पर उसकी विजय का गौरवगान किया है। वागड उस प्रदेश का नाम था जिसमें वर्तमान बंसवारा और डूंगरपुर राज्य सम्मिलित हैं। इसके दक्षिणी भाग पर परमारों की एक अवर शाखा राज्य करती थी जो धारा के वंश की मण्डलिक थी। प्रतीत होता है सिन्धुराज ने इसका उत्तरी भाग मेवार के गुहिलों से छीना था। नवसाहसाङ्क चरित में उस प्रदेश के निवासियों पर उसकी विजय का वर्णन है।

लाट के चौलुक्यों से युद्ध—लाट सरदार बारप्प को जो प्रतीत होता है, एक अवसर पर वाक्पति द्वारा पराजित किया गया था, बाद को मूलराज के पुत्र चौलुक्य चामुण्डराज के हाथों अपने प्राणों को त्यागना पड़ा। प्रतीत होता है, उस

अवसर पर चौलुक्यों ने संपूर्ण लाट को विजय किया, किन्तु पारप्प का पुत्र गोंगिराज एक वीर सेनापति था। उसने चौलुक्यों के आधिपत्य को उखाड़ फेंक कर और अपने पैतृक प्रदेश को सफलतापूर्वक प्राप्त किया। त्रिलोचनपाल की तिथ्यंकित १०५० ई० का एक ताम्रपट्ट दानपत्र का कथन है कि 'महान् विष्णु की तरह गोंगिराज ने अपने प्रदेश को छुड़ा लिया, वह प्रदेश जिस पर असुरों की तरह उसके शक्तिशाली शत्रुओं ने अधिकार कर लिया था।' किन्तु प्रत्यक्षतः अपने पैतृक सिंहासन पर अपना आधिपत्य पूर्णतया स्थापित करने के पूर्व उसको परमारों की एक आक्रामक सेना का सामना करना पड़ा। जो युद्ध हुआ उसमें उसकी अस्थायी पराजय हुई। पद्मगुप्त ने लाट के विरुद्ध सिन्धुराज के सफल अभियान की चर्चा की है।

गुजरात के चौलुक्यों से युद्ध—गुजरात के पड़ोस में किये गए उसके अभियानों ने शीघ्र ही उसको अणहिलवाड के चौलुक्यों के झगड़े में फँसा दिया। उस समय जब परमार वाक्पति के नेतृत्व में दक्खिन में संघर्ष कर रहे थे, मूलराज ने इस अवकाश का अपने साधनों को बढ़ाने के लिए सदुपयोग किया। अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ के द्वारा वह अपनी मृत्यु पर एक दृढ़ और सुस्थापित साम्राज्य छोड़ने में सफल हुआ। उसका पुत्र चामुण्डराज (९९७—१००९ ई०) जिसने अपनी युवावस्था में लाट की विजय द्वारा अपना नाम किया था, उसका सुयोग्य उत्तराधिकारी था। गुजरात के विरुद्ध सिन्धुराज का अभियान चामुण्डराज के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही हुआ था। किन्तु चामुण्डराज ने सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर परमारों को पूर्णतया परास्त किया। कुमारपाल की तिथ्यंकित ११५१ ई० की वड़नगर प्रशस्ति का कथन है कि चामुण्डराज की सेनाओं को दूर से देखकर सिन्धुराज अपनी गज-सेनाओं सहित ऐसी कायरता से भागा कि इससे उसकी समस्त सुस्थापित कीर्ति समाप्त हो गई।

परमारों की इस पराजय ने उत्तर में उनके राजनीतिक आधिपत्य पर गहरा प्रभाव डाला। प्रतीत होता है कि इससे आबू पर्वत और दक्षिणी मारवार पर, जो उनका आधिपत्य था, उसमें ढिलाई आ गई, जिससे अन्ततः ग्यारहवीं शती ईसवी के तीसरे दशक में प्रथमोक्त प्रदेश में परमार राज्य के अस्थायी उच्छेदन में चरम परिणिति हुई।

अपने राजनीतिक कार्यकलापों के साथ सिन्धुराज ने सोत्साह उस साहित्यिक प्रगति की पुष्टि की, जो उसके पूर्वजों के संरक्षण में मालवा में प्राणवंत रूप से चल रही थी। वाक्पति की मृत्यु के कारण जो साहित्यिक कार्य बन्द हो गए थे, सिन्धुराज के सोत्साह ध्यान देने पर उन्होंने नवीन गति प्राप्त की। प्रतीत होता है कि प्राचीन कवि धनिक और धनपाल भी उसकी राजसभा को सुशोभित करते थे।

अध्याय | ४

महान् भोज

वाक्पति के तुरन्त बाद भोज मालव के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अभिलेख संबंधी तथा अलबेरूनी के साक्ष्य से परमार राज्य की सीमा की निम्न रूपरेखा खींची जा सकती है। उत्तर में इसकी सीमा बांसवारा और डुंगर पुर तक, पूरब में भिलसा तक, दक्षिण में गोदावरी की ऊपरी धाराओं, खन्देश और कोंकण तक, और पश्चिम में वर्तमान कैरा जनपद तक फैली थी।

प्रतीत होता है कि सियक द्वितीय के राज्यारोहण के पश्चात् परमार राज्य का प्रमुख नगर उज्जैन था। उस कालावधि में धारा का महत्व बहुत कुछ क्षीण हो गया था। भोज ने इस नगर का एक नए नमूने पर पुनः निर्माण कर उज्जैन से यहाँ अपनी राजधानी स्थानान्तरित की। उसके प्रशासन का मुख्य मंत्री रोहक था, और कुलचन्द्र, साढ़ और सुरादित्य उसके सेनापति थे। जिस समय भोज ने शासनाधिकार अपने हाथ में लिया, उस समय उसकी आयु पन्द्रह वर्ष या उसके लगभग थी। उसके शासन-काल में देश की समृद्धि और ऐश्वर्य की खूब बढ़ती हुई। परमारों की उन्नति चरमोत्कर्ष पर पहुँची। वाक्पति ने जो आदर्श अपने सामने रखे थे, वे अब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्णता को प्राप्त हुए। नए शासक की साहित्यिक और भवन-निर्माण संबंधी सफलताओं की ख्याति फैली। अपने पूर्वजों की तरह वह निर्भीक योद्धा, निपुण सेनापति और एक महान् विजेता था। प्रतीत होता है कि उसने अपने जीवन के आरंभ में ही संपूर्ण मध्य भारत पर सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने की कल्पना की थी। इस उच्चाकांक्षा को पूर्ण करने के प्रयास में उसे शीघ्र ही अपने पड़ोस के शासकों से अनवरत युद्धों में उलझना पड़ा।

विक्रमाङ्कदेव चरित के एक पद्य में वर्णन है कि 'अपने विजयों की कीर्ति से संपूर्ण स्वर्ग को व्याप्त कर जयसिंह ने स्वयं इन्द्र के हाथ से, पारिजात वृक्ष से एकत्र किए हुए पुष्पों का, एक हार प्राप्त किया। अभिलेख सम्बन्धी कुछ साक्ष्य प्राप्त हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि दक्षिण की अपनी सामरिक विजय-यात्रा में भोज की चालुक्य

जयसिंह से मुठभेड़ हुई। जिस कष्टपूर्ण परिस्थिति में उसके चाचा मुंज की मृत्यु दक्खिन में हुई थी, उसकी स्मृति उसके मन में ताजी बनी हुई थी, और इसने जैसा कि मेरुतुङ्ग ने लिखा है, उसको कर्णाट पर चढ़ाई करने को प्रेरित किया। चालुक्य साम्राज्य पर एक साथ आक्रमण करने के लिए उसने कलचुरि गांगेय और चोल राजेन्द्र प्रथम के साथ एक अस्थायी मैत्री की। प्रतीत होता है कि जो युद्ध हुआ, उसमें उसने कुछ प्रारम्भिक सफलताएँ प्राप्त की। कल्वन उत्कीर्ण-लेख और उदयपुर प्रशस्ति दोनों ने कर्णाटों पर उसकी विजय को अभिलिखित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्खिन पर प्रभुत्व जमाने के लिए उसने जो अन्तिम प्रयास किया वह असाधारण रूप में असफल रहा। जयसिंह के शासन के एक उत्कीर्ण-लेख (तिथ्यंकित १०१६ ई०) में लिखा है कि वह 'महीपति राजा भोज रूपी कमल से लिए चन्द्रमा था' और उसने 'मालव संघ को ढूंढा, घेरा, पीछा किया, पीसा, और खदेड़ दिया।' इसी राजा का १०२८ ई० तिथ्यंकित कुलेनुर अभिलेख में लिखा है कि राजा ने चोल, गाङ्गेय और भोजराज के गजदलों को पराजित किया। प्रतीत होता है कि जयसिंह को उसके एक मण्डलिक बाचिराज ने इस प्रतिरक्षात्मक युद्ध में सहायता दी और उसकी प्रशंसा की गई है कि उसने अपने विजयी शस्त्रों द्वारा मालव्यों को लज्जित किया।

प्रतीत होता है कि इसके उपरान्त दोनों कुलों की शत्रुता कई वर्षों तक शान्त रही। किन्तु जयसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम के राज्यारोहण करने पर पुराना झगड़ा पुनः खड़ा हो गया। उसने १०४४ से १०६८ ई० तक दक्खिन में राज्य किया। पड़ोस के राजाओं से निरन्तर युद्ध करने के कारण भोज की सामरिक शक्ति उसके शासन के उत्तरकाल में क्षीण हो गई, जिससे कि सोमेश्वर को मालवा के विरुद्ध अभिघाती आक्रमणों को करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

बिल्हण ने विक्रमांक देव चरित में वर्णन किया है कि जब आह्वमल्ल से किए एक संग्राम में धारा पर धावा बोला गया, जो मालव के परमार पृथ्वीपतियों का गौरव था, तब नृप भोज भाग गये और चालुक्यों ने नगर पर अधिकार कर लिया। सोमेश्वर प्रथम के शासन के एक अभिलेख में लिखा है कि राजा ने धारा नगरी पर भी धावा किया जो उसके पूर्व के राजाओं के लिए अजेय थी। सुदि में प्राप्त तिथ्यंकित १०५९-६० ई० एक उत्कीर्ण लेख में वर्णन है कि आह्वमल्ल 'सम्पूर्ण-मालव्यवंशाराधि के लिए वडवानल था।' इस अभिलेख में यह भी लिखा है कि चालुक्य राजगृह का प्रबंधक एवं सैनिक अधिकारी नागदेव 'भोज रूपी सर्प के लिए गरुड़ था।' इससे प्रकट होता है कि इस सेनापति ने भोज को पराजित किया। नागदेव

एक प्रदेश का राज्यपाल था, जिसमें 'किसुकाड़ सत्तर', 'तोरगरे साठ', तथा अनेक 'भट्टग्राम' सम्मिलित थे।

तिथ्यंकित होट्टूर उत्कीर्ण-लेख में वर्णन है कि सोमेश्वर प्रथम का एक मण्ड-लिक जेमरस भोज के लिए विनाश-शिखा था। इस चालुक्य सम्राट् का एक माण्डलिक माधुव भी था। नगाई में प्राप्त और उसके शासन-काल में प्रकाशित तिथ्यंकित एक उत्कीर्ण-लेख ने इस तथ्य को लिखा है कि सोमेश्वर ने धारा और उज्जैन को जलाया। स्वयं माधुव ने इस साहसिक कार्य में भाग लिया, और धारा के स्वामी को उसकी राजधानी से खदेड़ने का श्रेय उसने अपने को दिया है। गुण्डमय सोमेश्वर प्रथम का दण्डनायक था। १०६० ई० तिथ्यंकित एक अभिलेख में उसके गौरव का इन शब्दों में वर्णन किया गया है, 'वह नर्मदा के दोनों तटों पर विचरने वाला एक राजहंस, मालव-जनों के लिए एक अशुभ धूमकेतु, माण्डवगढ़ (वर्तमान् मण्डु) का भंजक, और धारा नगरी में पूजित था।'

इन सब बातों से यह अवधारणा की जा सकती है कि सोमेश्वर प्रथम ने अपने सहायकों नागदेव, गुण्डमय, जेमरस और माधुव के साथ ग्यारहवीं शती के मध्य में मालवा पर आक्रमण किया, और भोज इस विशाल सेना को पीछे ढकेलने में असमर्थ होने के कारण अपनी राजधानी से भाग गया। चालुक्य सेनाओं ने मालवा को रौंद डाला और इसकी राजधानी धारा को लूटा। किन्तु सोमेश्वर शीघ्र ही शत्रु देश से हट गया, जब भोज ने वापस आकर वहाँ अपनी सत्ता पुनः स्थापित की।

इससे निश्चय ही परमार शक्ति को एक गहरा धक्का लगा, और इस राज्य-विपत्ति में, मालूम होता है कि उनके हाथ से उनके दक्षिणी राज्य का बड़ा अंश निकल गया। प्रतीत होता है कि सियक द्वितीय के समय से गोदावरी परमार राज्य की सीमा रही है; किन्तु १०८७ ई० तिथ्यंकित सीताबल्दी स्तम्भ उत्कीर्णलेख से प्रमाणित होता है कि चालुक्य साम्राज्य की सीमा उस समय उत्तर में मध्यप्रान्त के नागपुर तक पहुँच गई थी। संभाव्यतः इसका श्रेय सोमेश्वर प्रथम को था जिसने एक बार सम्पूर्ण मालव राज्य को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में कर लिया। कई कारणों से इस चालुक्य आक्रमण का प्रभाव परमारों के लिए विनाशकारी हुआ। इससे न केवल उनकी सीमा संकुचित हो गई, बल्कि उनके पड़ोस के शासकों का उनकी असहाय अवस्था से लाभ उठाने का जी ललचाया।

इन्द्ररथ से युद्ध—यह पराजित सेनापति कम महत्व का राजा न था। सर्व-संभाव्यतः यह वही व्यक्ति है जिसका नाम इस काल के कुछ चोल उत्कीर्ण लेखों में आया है। राजेन्द्र चोल (१०१२-१०४२ ई०) के छठवें वर्ष (१०१८ ई०) के तिरुववलंगडु उत्कीर्ण-लेख में लिखा है कि राजा के सेनापति ने इन्द्ररथ पर विजय

प्राप्त की और उस चन्द्रवंशमणि के देश पर अधिकार किया, जिसने शक्तिशाली गजों, अश्वों और असंख्य पदातियों के सहित उसका सामना किया। इसी चोल सम्राट् के तेरहवें वर्ष (१०२५ ई०) के तिरुमलै शिलाखण्ड उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि राजा ने विख्यात नगरी आदिनगर में लड़े गए एक संग्राम में चन्द्रवंश के इन्द्ररथ को उसके परिवार के साथ पकड़ लिया। आदिनगर का वर्तमान नाम मुखलिंगम् है। यह नगरी मद्रास अहाते के गंजम् जनपद में है। यह कलिङ्ग के गंगों की राजधानी थी। हो सकता है कि इन्द्ररथ कलिंग के गंगों का वशवर्ती रहा हो। ऐसा वर्णन है कि चोलों ने उसको १०१८ ई० के पूर्व बंदी किया, अतः परमारों द्वारा उसकी पराजय संभवतः उस विपत्ति के पूर्व हुई थी।

लाट से युद्ध—जयसिंह और इन्द्ररथ के प्रति किए गए युद्धों के उपरान्त भोज ने अपने शस्त्रों का उपयोग भारत प्रायद्वीप के पश्चिमी तट के आंचलिक प्रदेशों के विरुद्ध किया। इस ओर उसकी विजय वेग गति से हुई और उसने विस्तृत भूभाग-पर अधिकार कर लिया। यह अधिकार थोड़े ही समय तक रहा। प्रतीत होता है कि अपने दक्षिणी अभियान में उसने सर्वप्रथम लाट प्रदेश पर धावा किया, जिसका विस्तार बम्बई अहाते में सूरत तक था। कल्वन अभिलेख तथा उदयपुर प्रशस्ति दोनों में लाट पर भोज की विजय का वर्णन है। कीर्तिराज के पौत्र त्रिलोचनपाल के दान-पत्र में प्रत्यक्षतः इस संकट का इन शब्दों में उल्लेख है कि कीर्तिराज के शासन में उसके शत्रुओं ने कुछ काल के लिए उसके यश का अपहरण किया।

कोंकण से युद्ध—लाट पर अधिकार हो जाने पर भोज ने दक्षिण में और आगे बढ़ने का साहस किया। वह कोंकण के आंचल तक पहुँचा जिसका विस्तार बम्बई अहाते के थाना जनपद से लेकर मद्रास अहाते के मलाबार तक था। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में शिलाहारों का राज्य था, जिसका विस्तार गोआ तक था। उनकी सिंधुराज से मित्रता थी और उन्होंने वैरिगढ़ के मानों के विरुद्ध उनके अभियान में उनकी सहायता की थी; किन्तु कुछ कारणवश भोज के प्रति उनके सम्बन्ध अमैत्रीपूर्ण हो गए। इस वंश का दसवाँ राजा अरिकेशरिन् था, जिसका दूसरा नाम केशिदेव था। उसके शासन का थाना से प्राप्त पट्ट तिथ्यंकित १०१७ ई० में लिखा है कि उसका राज्य संपूर्ण कोंकण पर था, जिसमें स्वयं उसके बाहुबल से प्राप्त अनेक प्रदेश थे और उसमें पुरी आदि चौदह सौ गाँव थे। यह सर्वसंभाव्य है कि इस राजकुमार के शासन-काल में भोज ने कोंकण पर आक्रमण किया और उसे पराजित करने और अपनी सर्वसत्ता स्वीकार कराने में सफल हुआ। मालवा लौटने पर उसने इस घटना का उत्सव बड़े धूमधाम और समारोह के साथ मनाया और ब्राह्मणों को उदारतापूर्वक दान दिया। उनके अपने प्रलेखों के अनुसार कोंकण-विजय-पर्व ३ जनवरी १०२० ई० को मनाया

गया, किन्तु शिलाहारों का राज्य कोंकण पर संभाव्यतः परमारों के मण्डलिक के रूप में, बारहवीं शती ईसवी के पूर्वकाल तक बना रहा, जब गुजरात के चालुक्यों ने उस पर अधिकार किया। अरिकेशरिन् के अगले उत्तराधिकारी महामण्डलेश्वर चित्तराज के भाण्डुप पट्ट लिप्यंकित १०२६ ई० में लिखा है कि इस राजकुमार का राज्य संपूर्ण कोंकण भू-भाग पर था, जिसमें पुरी आदि चौदह सौ गाँव थे। उसके उत्तराधिकारियों ने सदा चक्रवर्ती सरदार की पदवी धारण की है।

इसी समय के लगभग अर्थात् ग्यारहवीं शती के तीसरे दशक में उत्तरी भारत में मुसलमानों के उत्तरोत्तर आक्रमणों से उत्पन्न संकटमय स्थिति के कारण भोज ने दक्षिण में अपने अभियानों को रोक दिया। इन नए आक्रमकों ने जिस विनाशपूर्ण स्थिति में उसके पड़ोसियों को ला पटका था, उससे उसको अपनी स्थिति का पूर्णरूपेण बोध हो गया। अपने राज्य की उत्तरी सीमा पर उनको संभाव्यतः अपनी संपूर्ण सेनाओं को युद्धार्थ सज्जित करनी पड़ी, जिससे कि वे उनके आशंकित आक्रमण का दृढ़ता से सामना कर सकें।

मुसलमानों से युद्ध—भोज के सिंहासनारूढ़ होने के दिनों में सुलतान महमूद गजनी भारत के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहियाँ आरम्भ कर रहा था। फिरिश्ता ने लिखा है कि '३९९ हिजरी वर्ष (१००८ ई०) में, अपने सैन्य दलों को एकत्र कर महमूद ने भारत पर फिर आक्रमण करने का, और आनन्दपाल को दण्ड देने का निश्चय किया, क्योंकि उसने मुलतान पर पिछले आक्रमण के समय बहुत धृष्टता दिखलाई थी। महमूद के संकल्पों की सूचना पाकर आनन्दपाल ने चारों ओर दूत भेजकर हिन्दुस्तान के अन्य राजकुमारों से सहायता आमन्त्रित की, क्योंकि मुसलमानों का भारत से निष्कासन वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने एक संघ बनाया और अपने सैन्य दलों को लेकर वे पंजाब की ओर बढ़े। इसके पूर्व इतनी विशाल सेना अमीर सबुक्तिगीन के विरुद्ध कभी खड़ी नहीं की गई थी। नेतृत्व ग्रहण कर स्वयं आनन्दपाल आक्रामक का सामना करने को आगे बढ़ा। इसके बाद जो युद्ध हुआ उसमें हिन्दू अन्ततः पराजित किए गए और उनमें से ८,००० मारे गए।

ग्यारहवीं शती ईसवी के आरम्भिक वर्षों में उज्जैन परमार शासन की राजधानी थी और १००८ ई० में भोज प्रतीयमानतः इसके सिंहासन पर था। यदि फिरिश्ता का कथन सत्य प्रमाणित होता है तो यह दावा किया जाता है कि परमारों ने मुसलमानों के विरुद्ध उसके युद्ध में आनन्दपाल की सहायता की। श्री वी० ए० स्मिथ ने फिरिश्ता के कथन को ठीक माना है। सर वोल्सेले हेग ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि आनन्दपाल के मित्रगणों की गिनती तथा महत्व संभवतः बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। किन्तु महमूद की अत्यन्त सावधानी से यह स्पष्ट है कि

आनन्दपाल की शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि हुई थी और जो सेना उसने युद्ध-क्षेत्र में खड़ी की थी, वह उस सेना से नितान्त भिन्न थी जिसको महमूद ने मुल्तान की ओर जाते समय अत्यन्त सरलतापूर्वक विनष्ट किया था। समकालीन मुसलमान ऐतिहासिकों में से एक ने भी कोई ऐसी बात नहीं कही है कि इस युद्ध में, जैसा कि फ़िरिश्ता ने कहा है, अन्य हिन्दू सामन्तों ने भाग लिया। अतः इस कथन को यथोचित संकोच के साथ ग्रहण करना चाहिए। तबकाते अकबरी में लिखा है कि 'जब महमूद ने सोमनाथ से लौटने का निश्चय किया, उसको सूचना मिली कि हिन्दुस्तान के महत्तम राजाओं में से एक राजा जिसका नाम परमदेव है, उसको मार्ग में रोकने की तैयारी कर रहा है। इस समय उनसे भिड़ना उचित न समझ कर सुलतान सिन्ध से होकर मुलतान की ओर चला गया। फिरिश्ता ने भी यह सूचना दी है। कुछ लोगों की धारणा बँध रही है कि परमदेव 'परमार-देव' अर्थात् भोज है। फिरिश्ता ने लिखा है कि (सोमनाथ) के आक्रमण के तीसरे दिन परमदेव और दाब्शिलीम् सैन्यदल लेकर पहुँचे। महमूद ने उन पर आक्रमण कर पराजित किया। इसमें ५००० हिन्दू मारे गए। यह बहुत संभाव्य है कि तबकाते-अकबरी में जिस परमदेव का नाम आया है, वह वही परमदेव है जिसका उल्लेख यहाँ किया गया है और जिसका तादात्म्य गुजरात के बरमदेव या भीमदेव से है।

उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि भोज ने भाड़े के टट्टुओं द्वारा तुरुष्कों को पराजित किया। उसके शासन-काल में मुसलमानों ने मालवा पर एक बार भी आक्रमण नहीं किया। इससे यह मालूम होता है कि उसने अपने भृतिभोगी सैनिकों को मुसलमानों से लड़ने के लिए अपने राज्य के बाहर किसी स्थान पर भेजा था। निश्चित रूप से यह ज्ञात नहीं है कि उसकी सैनिक टुकड़ी से शत्रुओं की मुठभेड़ कब और कहाँ हुई। फिरिश्ता ने लिखा है कि अन्य राजाओं के साथ दिल्ली के राजा ने १०४२ ई० में हंसी, तह्नेसुर और उनके अधीनस्थ प्रदेशों को उन राज्यपालों से छीना जिनको महमूद ने उन्हें सौंपा था। हिन्दू वहाँ से नागरकोट किले की ओर बढ़े और इस पर चार महीने तक घेरा डाले रहे। खाद्य सामग्री की कमी तथा लाहौर से सैनिक सहायता न पहुँचने के कारण दुर्गसेना आत्म-समर्पण करने को विवश थी। हो सकता है कि भोज ने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध में दिल्ली के राजा की सहायता में सैनिक टुकड़ी भेजी हो।

कलचुरियों से युद्ध—इसके पूर्व के अध्याय में लिखा जा चुका है कि वाक्पति द्वितीय ने अपने सैनिक अभियानों में चेदि प्रदेश पर अधिकार किया और उसकी राजधानी त्रिपुरी से वहाँ के शासक सम्राट् युवराज द्वितीय के भाग जाने पर उसको लूटा। कुछ ही समय बाद कलचुरियों ने इस पर पुनः अधिकार किया, किन्तु

युवराज को फिर सिंहासन पर नहीं बैठाया, क्योंकि उसने परमारों के आने पर ऐसी निकृष्ट कायरता दिखलाई थी। उन्होंने राजच्युत सम्राट् के स्थान पर उसके पुत्र कोकल्ल द्वितीय को राजा चुना। गांगेय-विक्रमादित्य उसका उत्तराधिकारी था, जिसकी पूर्वतम ज्ञात तिथि १०१६ ई० है। उसने १०४२ ई० के कुछ पूर्व अपने शासन का समापन किया। वह एक शक्तिशाली सम्राट् था और उसके राज्यकाल में कलचुरि प्रशासन ने सर्वप्रथम चक्रवर्तित्व प्राप्त किया। उसने गौड-नरेश पर विजय प्राप्त कर तीरभुक्ति पर अधिकार किया। अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में कर्णाट प्रदेश पर एक साथ आक्रमण करने के लिए उसने भोज और राजेन्द्र चोल से मैत्री-संगठन किया। किन्तु, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, मित्र-राजाओं के छक्के छूट गए और चालुक्य जयसिंह द्वितीय ने उन्हें पराजित किया। इसके बाद यह मैत्री-संगठन भंग कर दिया गया और परमारों और कलचुरियों की पुरानी कलह पुनरुज्जीवित हुई। अपने कुशल सैनिकों को लेकर भोज ने त्रिपुरी पर चढ़ाई की और गांगेय पर निर्णायक विजय प्राप्त की। काल्वन उत्कीर्ण लेख और उदयपुर प्रशस्ति दोनों में चेदि राजा पर भोज की विजय की प्रशंसा की गई है। पारिजात-मञ्जरी में लिखा है कि 'उन्होंने गांगेय के पराजय का उत्सव मनाकर अपने मनोरथों को पूर्ण किया।' कलचुरि गांगेय और यह पराजित राजा प्रत्यक्षतः एक हैं। इस शक्तिशाली कलचुरि राजा पर भोज की विजय उसकी उच्च सैनिक शक्ति को प्रकट करती हैं।

गांगेय के बाद उसके पुत्र कर्ण ने (१०४१-१०७२ ई०) उत्तराधिकार प्राप्त किया। वह एक निपुण सेनापति और प्राचीन भारत के महत्तम राजाओं में से था। उसके शासन-काल में कलचुरियों और परमारों में पूर्ण वेग से युद्ध चलता रहा। उसने और चालुक्य भीम ने मित्रवत् संगठित होकर पूर्व और पश्चिम से एक ही समय में मालवा पर आक्रमण किया। किन्तु जब तक भोज जीवित रहा, कर्ण कोई बहुत महत्वपूर्ण लाभ नहीं प्राप्त कर सका।

चंदेलों से युद्ध—दक्षिण अभियान समाप्त करने के बाद भोज ने अपनी सामरिक शक्ति को अपने उत्तरी पड़ोसियों की ओर मोड़ा। परमार राज्य की उत्तर-पूर्व सीमा पर जेजाक भुक्ति के चंदेलों का राज्य था। चंदेल यशोवर्मन का दशवीं शती के मध्य में मालवा के परमारों से युद्ध ठना था। उसके बाद धंग (९५०-९९९ ई०) और गण्ड (९९९-१०२५ ई०) गद्दी पर बैठे। गण्ड के बाद विद्याधर गद्दी पर आए। वह अपनी वीरता और रणप्रिय-कर्मठता के लिए विख्यात था। उसने कन्नौज के प्रतिहार राज्यपाल को हराया और वध किया। उसकी सैनिक शक्ति के सामने कलचुरि गांगेय को भी झुकना पड़ा। जब तक विद्याधर की सैनिक शक्ति भंग न हुई, तब तक उत्तर में स्वच्छंदतापूर्वक सैनिक कार्यवाहियाँ करना भोज के लिए अत्यन्त कठिन था।

अतः उन्होंने चंदेल राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु परिणाम बहुत अनुकूल नहीं हुआ। चंदेलों के महोबा अभिलेख में भोज से विद्याधर की श्रेष्ठता की डींग हाँकी गई है। उसमें लिखा है कि कलचुरियों के चन्द्रमा के साथ भोजदेव इस युद्धविद्या के गुरु (अर्थात् विद्याधर) की एक शिष्य की तरह समय पूजा करता था, जिसने कान्य-कुब्ज के राजा का विनाश किया।

ग्वालियर के कच्छपघातों और कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों से युद्ध— चंदेलों से हारने पर भी भोज उत्तर में सैनिक कार्यवाहियाँ करने में अनुत्साहित न हुआ। भोज प्रत्यक्षतः कन्नौज को विजय करने का अभिलाषी था, जो गुर्जर-प्रतिहारों के चक्रवर्तित्व के भंग हो जाने के कारण संक्रान्ति काल के चपेट में आ गया था। परमार वैरिसिंह द्वितीय ने मालवा को दसवीं शती ईसवी के मध्य में प्रतिहार महेन्द्रपाल द्वितीय (९४६ ई०) या उसके उत्तराधिकारी देवपाल (९४८ ई०) से छीन लिया था। उस समय से कन्नौज के शासन की शक्ति वेग से क्षीण होती गई और उसका राज्य उसकी राजधानी के आस-पास थोड़ी भूमि तक सीमित रह गया। देवपाल के बाद विजयपाल (९६० ई०) और राज्यपाल (१०२५ ई०) गद्दी पर बैठे। चंदेल विद्याधर ने उपर्युक्त अन्तिम राजा का बध कर दिया। उसके बाद त्रिलोचनपाल (१०२७ ई०) और यशपाल (१०३६ ई०) क्रमशः गद्दी पर बैठे। इसके बाद गुर्जर-प्रतिहार राजवंश का आगे कोई चिह्न नहीं है।

उत्तर में ऐसी स्थिति होने के कारण भोज को अपनी सैनिक दक्षता को प्रदर्शित करने का एक बहुत विस्तृत क्षेत्र मिला। उसके उत्तरी पड़ोसी डुबकुण्ड के कच्छपघात कन्नौज के प्रतिहारों के कट्टर शत्रु थे। इस परिवार के राजकुमार अर्जुन ने राज्यपाल को पराजित तथा बध करने में चंदेल विद्याधर की सहायता की थी। उसके बाद अभिमन्यु गद्दी पर बैठा। उत्तरी अभियान के पूर्व प्रत्यक्षतः भोज ने उसके साथ एक मैत्री गठबन्धन किया। सैनिक अभियानों में सफलता प्राप्त करने में अभिमन्यु की सहायता बहुत मूल्यवान् हुई। अभिमन्यु के पौत्र विक्रमसिंह के डुबकुण्ड अभिलेख (१०८८ ई०) में लिखा है कि बुद्धिमान् नरेश यशस्वी भोजदेव ने उसकी (अभिमन्यु की) प्रवीणता की प्रशंसा दूर-दूर तक फैलाई है, जो उसने अश्वों और रथों के अति अद्भुत नियन्त्रण में और शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में प्रकट की है।

डुबकुण्ड राजकुमार की मैत्री-गठन से भोज को कन्नौज राज्य के आंचल तक पहुँचने के लिए निष्कंटक रास्ता नहीं मिला, क्योंकि कच्छपघातों की एक अन्य शाखा जिसका ग्वालियर पर अधिकार था, उसके रास्ते में एक अवरोधक थी। प्रतीत होता है, मंगलराज का उत्तराधिकारी कीर्तिराज इस समय सिंहासनारूढ़ था। परमार सैन्य दलों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए उसने अपनी सेना को सज्जित किया।

एक भयानक संग्राम हुआ जिसमें परमारों की घोर पराजय हुई। कच्छपघात महीपाल के सासबहु अभिलेख में लिखा है कि कीर्तिराज ने मालवा के राजकुमार के असख्य दल को पराजित किया। इस अवसर पर मालवा की सेना को ऐसा भयानक धक्का लगा कि भय से उनके हाथों से भाले गिर गए और बाद को प्रत्यक्षतः ग्वालियर के ग्रामीणों ने उनको उठाकर अपने घरों के चारों ओर उनके ढेर लगा दिए।

यद्यपि भोज ग्वालियर के राजा को अपने नियन्त्रण में लाने में असफल रहा, किन्तु वह किसी मूल्य पर बलात् उधर से होकर कन्नौज के राज्य तक पहुँचने में सफल हुआ। वहाँ वह प्रतिहारों पर टूट पड़ा जिनका राजा उस समय संभाव्यतः यशपाल था और ऐसी निर्णायक विजय प्राप्त की कि प्रतिहारों का राज्य पूर्णतया समाप्त हो गया और पुनः पैर पर न खड़ा हो सका और इसका स्थान परमारों ने ले लिया। उदयपुर प्रशस्ति लिखती है कि भोज ने चेदिपति, इन्द्ररथ, तोग्गल (?), भीम, कर्णाटों, लाट अधीश्वर, गुर्जरों के राजा तथा तरुष्कों को विजय किया। जिस भीम का यहाँ नाम आया है, वह स्पष्टतः गुजरात का चौलुक्य नरेश था; इसी सम्बन्ध में गुर्जरों के राजा का जो उल्लेख हुआ है, उसका तादात्म्य कन्नौज के प्रतिहार राजा से होता है। मेरुतुङ्ग ने भी उसी देश के राजा पर भोज की विजय का संकेत किया है।

कन्नौज बहुत दिनों तक परमारों के नियन्त्रण में नहीं रहा। बाद को कलचुरि कर्ण ने इसको छीन लिया। ग्यारहवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में चंद्रदेव के नेतृत्व में गाहडवालों ने इस पर अपना आधिपत्य जमाया। गोविन्दचन्द्र का बसहिपट्ट तिथ्यंकित ११०४ ईसवी का कथन है कि गाहडवाल वंश में महियल का पुत्र चंद्रदेव नामक एक विजयी राजा था। जब राजा भोज और राजा कर्ण की मृत्यु हुई और संसार पर विपत्ति आई, तो वह उसकी रक्षा में आया, राजा बना और अपनी राजधानी कान्यकुब्ज में स्थापित की। यदि यह श्लोक उदयपुर प्रशस्ति द्वारा दी हुई सूचना के प्रकाश में पढ़ा जाय तो यह संकेत करता है कि भोज ने कन्नौज पर कुछ समय के लिए किसी प्रकार की राजनीतिक सत्ता स्थापित की थी। उसके शासन की समाप्ति पर यह प्रदेश कर्ण के आधिपत्य में चला गया जिसकी मृत्यु के बाद वहाँ अराजकता और अव्यवस्था फैली रही, जब तक कि गाहडवाल वंश के चन्द्रदेव ने आकर सार्वभौमिकता नहीं धारण की और शान्ति और व्यवस्था पुनः स्थापित नहीं की।

चम्बनरेश से युद्ध—अपने उत्तरी प्रयाण करने की अवधि में प्रतीत होता है, भोज का पंजाब में चम्ब शासक वंश से युद्ध हुआ। भोज का तिलकवाड ताम्रपट्ट तिथ्यंकित १०४७ ई० सूचित करता है कि सेनापति सुरादित्य ने साहवाहन तथा अन्य राजाओं को युद्ध में बध कर भोज की राज्य-श्री को स्थिर किया। साहवाहन

नामक किसी राजा का अब तक पता नहीं चला है, जो भोज के बिलकुल समकालीन रहा हो। राजाओं का एक वंश ग्यारहवीं शती ईसवी में चम्ब पर राज्य करता था, जो पंजाब में है। इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सालवाहनदेव था, जो साहिल्लदेव, साल-साहिल और सोइल नाम से प्रसिद्ध था और जिसने साहसाङ्क, निश्शंकमल्ल् और मटमटसिंह की अतिरिक्त सुन्दर उपाधियाँ ग्रहण की थीं। उसने वीर सेनाओं को, दुर्गर के अधीश्वर को और तुरुष्कों को पराजित किया। त्रिगर्त के शासक ने उसके मैत्री की याचना की और कुलूत के अधीश्वर से उसने राज्यनिष्ठा प्राप्त की। किन्तु जैसा कि राज-तरंगिणी सूचित करती है, कश्मीर के राजा अनन्त ने उसकी शक्ति का अवरोध किया। यह अवरोध १०२५ ई० और १०३१ ई० के बीच हुआ। इसमें सालवाहन को भोज का समकालीन बताया है। हो सकता है कि उसका तादात्म्य तिलकवाड उत्कीर्ण लेख के सालवाहन से हो। कश्मीर से भोज का घनिष्ठ सम्बन्ध था जो चम्ब के उत्तरी सीमा पर है। सालवाहन के अन्य सामरिक पराक्रमों के बारे में चम्ब ताम्रपट्ट सूचित करता है कि उसने कुरुक्षेत्र में अपने शत्रुओं के राजों की व्यूह रचना को विनष्ट कर अपने लिए करिवर्ष नाम प्राप्त किया। कुरुक्षेत्र का अब भी वही प्राचीन नाम है और यह पंजाब के करनाल जनपद में एक पवित्र स्थान है। हो सकता है कि इस चम्ब राजा से भोज की मुठभेड़ उस ऐतिहाहिक युद्ध क्षेत्र में हुई हो। यह तथ्य कि सुरादित्य ने सालवाहन को हरा कर भोज की लक्ष्मी को स्थिर करने का दावा किया है, संकेत करता है कि उसके अधीश्वर को युद्ध में कुछ प्रारम्भिक पराजय सहन करनी पड़ी, यद्यपि अंततः वह विजयी हुआ।

शाकम्भरी और नदोल के चाहमानों से युद्ध—उत्तर में सामरिक क्रियाकलापों के कारण शीघ्र ही भोज को शाकम्भरी (वर्तमान अजमेर) के चाहमानों से भिड़ना पड़ा। उस समय चाहमान वाक्पति द्वितीय का उत्तराधिकारी राजा वीर्यराम उस देश के सिंहासन पर था। भोज ने उस पर आक्रमण कर उसकी सामरिक शक्ति को गहरा धक्का दिया। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि वीर्यराम का गौरव अवन्ती के भोज द्वारा नष्ट किया गया। चाहमानों की मुख्य शाखा पर उसकी इस देदीप्यमान विजय ने भोज को अपने शस्त्रों को उनके सपिण्ड शाखा के प्रति प्रयोग के लिए उत्साहित किया, जिनका आधिपत्य दक्षिणी मारवार पर था। चाहमान बलिराज के हाथ वाक्पति मुञ्ज की पराजय के बाद इन दोनों वंशों में कुछ समय के लिए संघर्ष रुक गया। बलिराज के उत्तराधिकारी क्रमशः महिन्दु, अश्वपाल और अहिल थे। यद्यपि ये राजा एक छोटे प्रदेश पर राज्य करते थे, तथापि उनकी सामरिक सेना अपने महत्वाकांक्षी पड़ोसियों से सफलतापूर्वक सामना करने के लिए पर्याप्त थी। अहिल

गुजरात के भीम की एक सेना को परास्त करने में सफल हुआ। उसके उत्तराधिकारी अनहिल ने इसी चौलुक्य नरेश के एक दूसरे आक्रमण को पीछे ढकेला और शाकम्भरी जीत कर अपना नाम किया। अब उसे परमारों की विशाल सेना का सामना करना पड़ा। उसके चाचा मुञ्ज के भाग्य की अपेक्षा भोज का भाग्य अधिक अनुकूल न था। वह पराजित किया गया और उसके सेनापति साढ ने इस मुठभेड़ में अपने प्राण गँवाए।

गुजरात के चौलुक्यों से युद्ध—गुजरात के चौलुक्यों के साथ भोज का संघर्ष दीर्घकालिक था। चौलुक्य चामुण्डराज द्वारा उसके पिता सिंधुराज के असाधारण पराभव ने निश्चय ही उसके मन पर एक गहरा प्रभाव डाला। अपने पिता के शत्रु से बदला लेने के लिए वल्लभराज ने एक बड़ी सेना लेकर प्रयाण किया। मार्ग में अन्य अनेक राजा मूल्यवान् उपहार लेकर उसे मिले और उनके परामर्श के अनुसार उसने कुंतल देश से जाने वाले पथ का अनुसरण किया और इस तरह दो नदियों—पारा पारा और सिन्धु सिन्धु—पार करने की कठिनाई से बचा; किन्तु अभाग्यवश मालवा पहुँचने के पूर्व वह एक गम्भीर चेचक के रोग से पीड़ित हुआ। उसके वैद्यों के प्रयास निष्फल रहे, और जब यह बिलकुल स्पष्ट था कि उसके बचने की कोई आशा नहीं है, तो उसने अपने सेनापतियों को अपने प्रयाण को रोकने और गुजरात लौटने के आदेश दिए। तदनुसार वे अपने प्रिय स्वामी की मृत्यु के बाद अणहिलवाड लौट आए (१०१० ई०)। यह अतीव दुःखदायी समाचार सुनकर प्रशासन का भार अपने द्वितीय पुत्र दुर्लभराज को सौंप कर चामुण्डराज नर्मदातट पर स्थित शुक्लतीर्थ (भड़ौच के समीप) को चला गया।

मालवा नरेश के विरुद्ध वल्लभराज का प्रयाण रूपी तथ्य एक उत्कीर्ण अभिलेख में भी दिया हुआ है, जो द्वयाश्रय के निर्माण के समय के लगभग निःसृत किया गया था। यह कहता है कि 'उससे (चामुंडराज से) राजाओं में एक चूड़ामणि जिसका नाम वल्लभराज था, उत्पन्न हुआ जिसने अपने साहसिक महान् कार्यों द्वारा पृथ्वी मण्डल को चकित किया।' 'उसके प्रयाण की सूचना से भयभीत मालव राजा के साम्राज्य से उठा हुआ घना काला धुआँ उसकी क्रोधाग्नि के फैलने की सूचना था।' मेरुतुङ्ग ने भी इस घटना की यह लिख कर पुष्टि की है कि राजा की मृत्यु चेचक से हुई, जब वह मालव देश में धारा की गढ़बन्दी को घेरे हुए था। अरिसिंह कृत 'सुकृत-संकीर्तन' और जयसिंह कृत 'सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी' ने इस तथ्य को मालवा नरेश पर वल्लभ राज की विजय के रूप में कीर्तिगान किया है। इन समस्त प्रामाणिक ग्रन्थों में जिस मालव नरेश का उल्लेख किया गया है, वह स्पष्टतः भोज था। हेमचन्द्र ने भी वल्लभराज के निकटतम उत्तराधिकारी दुर्लभराज से (१०१० ई०-१०२२ ई०) भोज की मुठभेड़ का वर्णन किया है।

उपर्युक्त मालवा का राजा सर्वसंभाव्यतः भोज था । नदोल नरेश महेन्द्र (महीन्दु नाम से जिसका नाम सिन्धु-पर्वत उत्कीर्ण लेख में आया है) दुर्लभ और भोज दोनों का समकालीन था । मेरुतुङ्ग सूचित करता है कि पहले इन दोनों सम्राटों में घनिष्ठ मैत्री थी, किन्तु बाद को अणहिलवाड प्रशासन के विरुद्ध एक अभिघाती युद्ध छेड़ कर भोज ने वैर भाव पुनः आरंभ किया । एक अवसर पर भीम ने पंजाब को प्रस्थान किया, और सिन्ध के निचले भाग को पार कर सिन्ध पर आक्रमण किया । उस देश के राजा हम्मुक में चौलुक्यों की सेना का विरोध करने की पर्याप्त शक्ति न थी । किन्तु जब भीम अपने सामरिक गुणों के प्रदर्शन से उत्तर-पश्चिम में उच्च विशिष्टता प्राप्त कर रहा था, उसके गुजरात के राज्य पर परमारों के आक्रमण का संकट उपस्थित हुआ । मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि जब वह सिन्धु में लड़ रहा था गुजरात से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर भोज ने अपने सेनापति कुलचंद्र को अणहिल-बाड लूटने के लिए भेजा । कुलचंद्र ने राजधानी को लूटा, और राजप्रासाद के घड़ी-स्तम्भ के सिंहद्वार पर कौड़ियाँ बो दीं और प्रशासन से बलात् एक विजय अभिलेख लिया । चौलुक्यों की क्षति इतनी अधिक थी कि 'कुलचंद्र की लूट' एक कहावत हो गई है । उदयपुर प्रशस्ति में भीम पर भोज की विजय का वर्णन है ।

सिंध से लौटने के बाद प्रतीत होता है, भीम भोज की शक्ति को विनष्ट करने में पूर्णतया जुट गया । मुंज द्वारा आबू पर्वत की विजय के समय से मुख्य परमार वंश के एक अवर शाखा का राजकुमार इसका प्रशासन चला रहा था । संभाव्यतः धारा के केन्द्रीय प्रशासन पर आक्रमण करने के प्रारम्भिक रूप में भीम ने भोज के मांडलिक धन्धु के विरुद्ध अपनी सेनाएँ लगा दीं । जो उस समय आबू का परमार शासक था । विशाल चौलुक्य सेना और धन्धु में कोई समता न थी और बुरी तरह घिर जाने पर वह भोज की शरण में मालवा भाग गया । भीम ने आबू पर्वत को सरलतापूर्वक जीत लिया और उसको अपने ही राज्य में सम्मिलित कर लिया । विमल नामक एक विशिष्ट व्यक्ति राज्य प्रतिनिधि के रूप में उस प्रदेश पर राज्य करने के लिए नियुक्त किया गया । उसने वहाँ १०३१ ईसवी में आदिनाथ का मन्दिर बनवाया ।

धन्धु के हाथ से आबू के निकल जाने का स्पष्ट अर्थ है कि मालवा के परमारों का नियन्त्रण इस पर से टूट गया । अतः भोज ने इस घटना को बिना ध्यान दिए जाने न दिया । उसने धन्धु का पक्ष ग्रहण कर खोए हुए प्रान्त को पुनः प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया और अंततः भीम को पीछे हटने को विवश किया, और परमारों का आधिपत्य वहाँ पुनः स्थापित हुआ । उदयपुर प्रशस्ति में इस चौलुक्य राजा पर भोज की गौरवपूर्ण विजय का एक सामान्य वर्णन दिया हुआ है । यद्यपि

यह प्रमाणित करने के लिए कोई सीधा साक्ष्य इस समय उपलब्ध नहीं है कि उसने चौलुक्यों से आबू पर्वत छीना। यह तथ्य की धंधु का पुत्र और उत्तराधिकारी पूर्णपाल ग्यारहवीं शती ईसवी के मध्य में इस पर राज्य कर रहा था और गुजरात से पूर्णतया स्वतन्त्र था, हमें उस परिणाम पर ले जाता है। धन्धु या पूर्णपाल दोनों ही के लिए बिना बाहरी सहायता के भीम से अपना पैतृक सिंहासन पुनः प्राप्त करना बिलकुल असम्भव था।

भोज के शासन का उत्तरार्द्ध उतना ही दुःखद और अपकीर्तियुक्त था। जितना उसके पूर्वजों—मुंज और सिंधुराज—का था। अपने पड़ोसियों से निरंतर युद्धों ने उसकी सामरिक शक्ति क्षीण कर दी, और १०४४ ई० के कुछ ही समय पश्चात् कर्णाट नरेश सोमेश्वर द्वारा इस पर एक भयानक आघात करने के फलस्वरूप यह और भी निर्बल हो गया। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सोमेश्वर ने मालवा पर आक्रमण किया, इसकी राजधानी को लूटा और भोज को भागने को विवश किया। इसके बाद इस प्रदेश पर विदेशी सैनिकों के डाका डालने वाले दलों के प्रायिक आक्रमण होते रहे। इस काल में वहाँ कितनी अव्यवस्था फैली, इसकी बहुत कुछ परिकल्पना मेरुतुङ्ग के कथन से लग सकती है। कहा जाता है कि एक अवसर पर जब भोज धारा नगरी की बाहरी सीमा में स्थित अपनी कुलदेवी के मन्दिर में पूजा करने गया। गुजराती सिपाहियों के परिभ्रमण करते हुए एक दल ने उस पर आक्रमण किया और अकस्मात् इस अप्रत्याशित घटना से घिर जाने पर वह तुरन्त घोड़े को दौड़ाकर नगर आ गया और जब वह मुख्य सिंह-द्वार में से होकर जा रहा था, तब आलूय और अकोलूय नामक दो गुजराती घुड़सवारों ने उसका रास्ता रोक लिया, किन्तु कोई अप्रिय बात न होने पाई और वह बच कर निकल गया।

अन्त में इस अव्यवस्थित स्थिति का न्याय-संगत परिणाम हुआ। भोज बूढ़ा हो चला और उसके इने-गिने दिन रह गए। राजवंश में कोई ऐसा सशक्त व्यक्ति न था, जो स्थिति का नियन्त्रण कर सके। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि इस संकटापन्न क्षण में भीम ने मालवा पर आक्रमण करने के लिए कलचुरि कर्ण से मैत्री की। उनके समझौते में यह तय किया गया कि विजय होने पर वे विजित प्रदेश को सम भागों में बाँट लेंगे। मित्र सेनाओं ने उस युग के दो अत्यन्त कुशल सेनापतियों के नेतृत्व में मालवा की ओर प्रयाण किया। इस संकटपूर्ण स्थिति में भोज ने, यद्यपि वह निराश और हतोत्साहित था, उपयुक्त प्रतिरक्षा के लिए सर्वसम्भव प्रबन्ध किए। किन्तु अभाग्यवश वह एक शारीरिक व्याधि से पीड़ित हुआ और युद्ध की अवधि में मर गया। उसके उत्तराधिकारी जयसिंह ने आक्रामक सेनाओं के भीषण आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण समर्पण कर दिया।

अब परमारों का संपूर्ण राज्य भीम और कर्ण के सामने पड़ा हुआ था। विजय मनाते हुए उन्होंने राजधानी में प्रवेश किया। मेरुतुङ्ग के उपर्युक्त वर्णन की मुख्य-मुख्य बातों की पुष्टि अनेक प्राचीन अभिलेखों से होती है। चालुक्य राजकुमार के शासन की वड़नगर की प्रशस्ति का कथन है कि भीम अपने शत्रुओं के किए भयानक, और अपने मित्रों के लिए स्नेहमय था। इसमें क्या आश्चर्य था कि उसके अश्व जो पाँच पगों (धारा कहे जाने वाले) की निष्पत्ति में अत्यन्त कुशल थे, शीघ्रता पूर्वक धारा पहुँचे जो मालव के सम्राट् की राजधानी था। सोमेश्वर ने अपनी कीर्ति कौमुदी में लिखा है कि भीम ने भोज को परास्त किया।

मूल्यांकन—इस तरह भोज की दीर्घकालिक जीवन-यात्रा समाप्त हुई। उसमें वस्तुतः उत्कृष्ट गुण और दुर्लभ शौर्य था। इसमें सन्देह नहीं कि उसको जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखने पड़े, फिर भी यह तथ्य कि वह एक उच्च कोटि का सामरिक नेता था संदेह के परे है। उसके बलवान बाहु की शक्ति का लोहा दक्षिण में कर्णाट और शिलाहार, पूरब में चेदि और पश्चिम में चालुक्य मानते थे। उसके वीर सैनिकों ने कन्नौज और उत्तर में अजमेर होते हुए विजय-यात्रा की। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि जब भोज विजयों के लिए निकलता है, तो 'चोल नरेश समुद्रतल में छिपता है, आंध्र नरेश बहुत बड़े पर्वत के छिद्र में चला जाता है, कर्णाट का राजा अपनी पगड़ी धारण नहीं करता, गुजरात का राजा पर्वत-प्रपातों को बारंबार जाता है, चेदि का समर-प्रिय सम्राट् अपने अस्त्र-शस्त्रों से खड़खड़ाता है, कान्यकुब्ज नरेश यहाँ दुहरा झुका है।'

राजा के समक्ष भाट गाते थे :

'हे भोज, समस्त राजा केवल आपकी सेना के प्रयाण रूपी भय के बोझ से विक्षुब्ध हैं, रात में आपके कारावास के तल पर कहाँ शय्याएँ लगाना है इसके संबंध में क्रोधयुक्त झगड़े इन पारस्परिक प्रतिद्वंद्वियों के बीच में बढ़ गए हैं जो इस प्रकार वाद-विवाद करते हैं। कोंकण का राजा कोने में सोता है, लाट (का राजा) द्वार के पास, कलिङ्ग (का) दालान में, कोसल आप नये आगंतुक हैं, मेरे पिता भी इस सम स्थान पर निवास करते थे।....'

यह वर्णन यद्यपि कवित्वपूर्ण शब्दावली में है बहुत कुछ तथ्यपूर्ण हैं। इस नरेश की सामरिक जीवन-यात्रा के संक्षिप्त सर्वेक्षण से प्रगट होगा कि उपर्युक्त श्लोक में उल्लिखित प्रायः समस्त नरेशों से उसका संघर्ष हुआ। उसके शासन के प्रारंभिक

वर्षों में उसकी विजय निर्बाध थी और उसके अधिकार में विशाल प्रदेश आये।

भोज की सामरिक सफलताएँ महान् तो थीं ही, शान्तपूर्ण कलाओं में उसकी निष्पत्तियाँ और भी अधिक श्लाघनीय थीं। उसके बहुमुखी मस्तिष्क ने अपने क्रिया-कलापों को केवल युद्ध-कार्य तक ही नहीं सीमित रखा, उसने इसका उपयोग मालवा में एक आदर्श राज्य निर्माण करने की ओर भी लगाया, अपनी प्रजाओं की उचित शिक्षा के लिए उसने पाठशालाएँ स्थापित कीं। उसने आर्थिक सहायताएँ उन लोगों को दीं जिन्होंने अपने जीवन को साहित्यिक विज्ञान के पोषण में अर्पण किया था। वह स्वयं एक महान् कवि था, और उसने अपने समय को मेधावी विद्वानों की संगति में बिताया। उसके युग के समस्त साहित्यकार उसको चाहते थे, और उसकी असीम वदान्यता उनको अपने काम में लगे रहने के लिए नवीन उत्साह प्रदान करती थी। महान् कवि बिल्हण ने खेद प्रकट किया है कि वह उसके सामने नहीं गया और यह बात उसको अत्यन्त खली। अपनी भावना को उसने 'विक्रमांकदेव चरित' में प्रकट किया है : 'हा, हतास्मि ! हम उसके प्रत्यक्ष क्यों नहीं गये।'

भवन निर्माण के क्षेत्र में भी भोज के क्रिया-कलाप विशेष ध्यान देने योग्य हैं। 'उदयपुर प्रशस्ति' ने बहुसंख्यक मंदिरों के निर्माण का श्रेय उसको दिया है। आज उसके विस्तृत निर्माण के इने-गिने ही अवशेषों का पता लग सका है। तथ्य यह है कि मुसलमानों द्वारा मालवा की पूर्ण विजय के समय से बहुसंख्यक प्राचीन हिन्दू मंदिर नये शासकों द्वारा मस्जिदों के रूप में बदले गये हैं।

इस काल में मालवा ने सुखद जीवन भोग किया। जनता ने आनन्द और उत्सव में अपने दिन व्यतीत किये। फिरिश्ता ने लिखा है कि वर्ष में दो बार राजा भोज एक बड़ा प्रीतिभोज देते थे जो चालीस दिनों तक चलता था और जिसमें भारत के समस्त अत्यन्त विख्यात नर्तक और गायक एकत्र होते थे, और भोजन और मदिरा का वितरण किया जाता था, और भोज के अन्त में प्रत्येक अतिथि को नये वस्त्र और दस मिस्कल उपहार स्वरूप दिये जाते थे।

भोज अपनी दानशीलता और उदारता के लिए विख्यात था। अपने उज्जैन पट्ट में उसने निम्नलिखित नीति-वचन लिखा है जो प्रत्यक्षतः उसके जीवन का ध्येय रहा है :—

'धन बिजली के चमक की तरह या जल के बिन्दु की तरह चंचल है। उसके दो सद्फल या उपयोग हैं, एक तो दान-कार्यों में लगाना और दूसरा उसके द्वारा दूसरे मनुष्यों की कीर्त्ति को बनाये रखना।'

ये सब उसके हृदय की विशालता प्रकट करते हैं। विजेता के रूप में, कवि के रूप में, और भवन निर्माण के कुशलता के रूप में वह प्राचीन भारत के सम्राटों में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है। कल्याणकारी सम्राट् के रूप में उसकी समता करने वाला प्रायः कोई नहीं है। अपने पीछे उसने एक स्थायी छाप छोड़ी है जो आज भी जीवित है।

●

अध्याय | ५

जयसिंह से जयवर्मन् तक

भोज जब कलचुरियों और चालुक्यों की सम्मिलित सेनाओं से युद्ध कर रहा था तभी बीमार पड़ा और अकस्मात् मर गया। उसके शत्रुओं ने धारा पर अधिकार कर लिया और अपनी उच्चतर शक्ति के बल पर वे कुछ समय तक इस पर आधिपत्य जमाए रहे। इस समय कर्णाट का सोमेश्वर प्रथम ही एक मात्र ऐसा राजा था जिसके पास विशाल सैनिक शक्ति थी, अतः जयसिंह ने समस्त जातीय द्वेषों और वंशाभिमान को ताक पर रखकर उससे सहायता माँगी।

यद्यपि चालुक्यों और परमारों के बीच की निरंतर शत्रुता से जो प्राचीन घाव हो गया था वह अब तक भरा नहीं था, फिर भी सोमेश्वर ने सिंहासनच्युत परमार राजा के पक्ष को ग्रहण किया। संभाव्यतः उसने सोचा कि मालवा में परमार प्रशासन की समाप्ति उसके दोनों पड़ोसियों को अपनी शक्ति दृढ़ करने में सहायता पहुँचायेगी जो निकट भविष्य में स्वयं उसके विरुद्ध उपयोग की जा सकती है।

कर्ण के सेनापति वपुल्लक ने श्वेतपाद प्रदेश को (१०५१ और १०६१ ई० के बीच के वर्षों में) और लाट प्रान्त को विजय कर महान् सफलता प्राप्त की। यह बिलकुल प्रत्यक्ष था कि उसके आक्रमण का दूसरा लक्ष्य दक्खिन का चालुक्य राज्य होगा। अतः सोमेश्वर ने जयसिंह के पक्ष को सहायता करने के लिए एक बड़ी सेना के साथ अपने पुत्र विक्रमादित्य को भेजा जो एक यशस्वी सेनापति था। घनघोर युद्ध के बाद चालुक्य राजकुमार कर्ण और भीम को परास्त करने में सफल हुआ। उसने उनको मालवा की भूमि से खदेड़ा, और फिर एक बार जयसिंह को उनके सिंहासन पर बैठा दिया। इस तरह अस्थायी पतन सहन करने के बाद पूर्व गौरव रहित परमार प्रशासन फिर उठ खड़ा हुआ।

जयसिंह प्रथम—जयसिंह के शासनकाल के दो उत्कीर्ण लेख पाये गए हैं :

१. मन्धत पट्ट—जो धारा स्थित राज आवास से संवत् १११२ आषाढ़ कृष्ण १३ तदनुसार १०५५ ई० को निस्सृत किये गए थे। इसमें जयसिंह ने पावन अमरेश्वर में स्थित पट्टशाला के ब्राह्मणों के निर्वाह के लिए पूर्ण पथक मंडल में मक्कुल (समूह) ४२ के भीम ग्राम का दान लेखबद्ध किया है। इन स्थानीय नामों में से अमरेश्वर

स्पष्टतः इसी नाम का वर्तमान तीर्थस्थान है जो मन्धत द्वीप के समीप नर्मदा के दक्षिणी तट पर नीमर जनपद में है ।

२. पन्हेर उत्कीर्ण लेख—जो जयसिंह के मण्डलिक प्रदेश वागड के शासक द्वारा निस्सृत किया गया था । इस पर वि० स० १११६ (१०५९ ई०) तिथि पड़ी है ।

कन्ह से युद्ध—जयसिंह को १०५९ ई० के कुछ समय पूर्व एक विरोधी सेना का सामना करना पड़ा जिसका नेतृत्व कन्ह नामक सेनापति कर रहा था । जयसिंह अपने मण्डलिक की सहायता से शत्रु को परास्त करने में सफल हुआ । पन्हेर उत्कीर्ण-लेख वर्णन करता है कि जयसिंह के मण्डलिक ने सेनापति कन्ह को उसके समस्त अश्वों और गजों सहित युद्ध में पकड़ा और उनको जयसिंह को प्रदान किया । अभी तक यह पता नहीं चला है कि कन्ह किसका सामरिक सेनापति था ।

वेंगि पर आक्रमण और चोलों से युद्ध—जयसिंह ने चालुक्यों की सहायता से अपना सिंहासन प्राप्त किया था अतः वह उनके प्रशासन का परम अनुयायी हो गया । ग्याहरवीं शती ईसवी के छठे और सातवें दशकों में चालुक्य अपने दक्षिणी पड़ोसियों से निरंतर युद्धरत थे । विक्रमादित्य षष्ठम् उस समय बनवासी का राज्य-पाल था, जिसको उसके पिता ने अपने साम्राज्य के हितों की रक्षा करने के लिए दक्षिण में भेजा था । वेंगि के राजा पूर्वी-चालुक्य राजराज की मृत्यु १०६२ ई० में हुई । उसका पुत्र राजेन्द्र द्वितीय (बाद को कुलोत्तुग चोल प्रथम) प्रशासन करने के लिए बहुत ही छोटा था । विक्रमादित्य ने वेंगि विजय करने के इस अवसर का लाभ उठाने को सोचा और इस निमित्त एक विशाल सेना संगठित की । प्रतीत होता है जयसिंह उसके पक्ष की सहायता करने के निमित्त इस अभियान में सम्मिलित हुआ । सम्मिलित सेनाएँ वेंगि की ओर बढ़ीं । युवा राजेन्द्र उनके आक्रमण का प्रतिरोध न कर सका, और विक्रमादित्य और जयसिंह ने वेंगि पर अधिकार कर लिया । उस संकट काल में मृत राजराज के कनिष्ठ भ्राता विजयादित्य सप्तम् ने अपने भतीजे का पक्ष ग्रहण कर चोल वीर राजेन्द्र (१०६२-१०६९ ई०) से सहायता माँगी । चोल नरेश ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर एक बड़ी सेना लेकर वेंगि की ओर प्रयाण किया । बेजवाडा (विशैयवाडैं) के समीप कृष्णा नदी के तट पर उसने शत्रुओं को ललकारा । तत्स्वरूप जो युद्ध हुआ उसमें कर्णाट और परमार बुरी तरह परास्त हुए जिसमें जयसिंह के भ्राता तथा अन्य अनेक सेना-पतियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा । चोलों ने वेंगि को पुनः प्राप्त किया और चोल वीर राजेन्द्र ने विजयादत्त को राजेन्द्र चोल की ओर से इस पर शासन करने के लिए नियुक्त किया । वीर राजेन्द्र के शासन के द्वितीय वर्ष के तिरवेंगडु उत्कीर्ण लेख का कथन है कि उसने वेंगइ नाडु में विक्रमादित्य द्वारा भेजी गई सेना को परास्त

किया। उसके शासन के चौथे वर्ष का कोमुव्यर उत्कीर्ण लेख अभिलिखित करता है कि उसने समस्त दिशाओं में भयंकर व्याघ्र (अंकित ध्वज) भेजा और केरल के बारन के (जो बड़े-बड़े कड़े पैरों में डाले थे) और धारा के ज (न) नाथ के कनिष्ठ भ्राता के सुन्दर शिरों को काट लिया जो युद्ध क्षेत्र में (जीते गए) मालाओं से घिरे हुए थे। उसके शासन के पाँचवें वर्ष (१३६७ ई०) के मनिमङ्गलम् उत्कीर्ण लेख में कथन है कि 'रम्भदेश बेंगइ को बिना जीते हम नहीं लौटेंगे जिसको (हम लोग पहले) जीत चुके हैं। आप[1] (जो) शक्तिशाली है आवें और इसकी रक्षा करें यदि सक्षम हों। वह सेना जिसके सेनापति जननाथन, मुप्परसन् और दण्डनायक राजमयन् थे जिनके मत्तगज झुंडों में चिंघाड़ते थे।'

ऊपर उल्लिखित जननाथ सर्व संभाव्यतः जयसिंह है जो उस समय धारा के सिंहासन पर था।[2] दण्डनायक राजमयन् और मुप्परसन् जिनके साथ मिलकर जननाथ ने वेंगि पर धावा किया था, प्रतीत होते हैं, विक्रमादित्य के पदाधिकारी थे।

चालुक्यों और कर्णाटों से युद्ध—अपने शासन के उत्तर भाग में जयसिंह को एक दूसरे संकट का सामना करना पड़ा जो पुनः उसके सिंहासन को छीन ले गया और परमार प्रशासन को उखाड़ फेंका। चालुक्य सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भुवनैकमल्ल सोमेश्वर द्वितीय १०६६ ई० में कल्याणी के सिंहासन पर बैठा। वह अपने कनिष्ठ भ्राता विक्रमादित्य से झगड़ बैठा। जब चालुक्य साम्राज्य पर भ्रातृघातक रूपी संकट आया तो जयसिंह सोमेश्वर द्वितीय के विरुद्ध हो गया और संभाव्यतः चालुक्य नरेश को हटाने के लिए विक्रमादित्य से षडयंत्र किया। प्रतीत होता है इससे उत्तेजित होकर सोमेश्वर ने मालवा के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। उसने परमार आधिपत्य को विनष्ट करने के लिए भीम प्रथम के उत्तराधिकारी गुजरात सिंहासनारूढ़ कर्ण (१०६३-१०६४ ई०) के साथ मैत्री की और उसकी सामरिक कार्यवाही में सहायता करने के लिए अपने सेनापति गंग उदयादित्य तथा अपने मण्डलिक होयशल एऋयंग को एक बड़ी सेना के साथ भेजा। जयसिंह ने कर्ण और कर्णाटों के अभियान के विरुद्ध अपने राज्य की प्रतिरक्षा करने का घोर प्रयत्न किया,

---

१. यह उन राजाओं को संबोधित किया गया है जो वेंगि पर अधिकार किए हुए थे।

२. प्राचीन तमिल अभिलेखों में पूर्वी नाम प्रायः प्रचुर मात्रा में विकृत रूप में मिलते हैं। कलिङ्गट्टु-परीण ने विक्रमादित्य षष्ठम् को विरुदराज लिखा है। करुव्युर उत्कीर्ण लेख में धारा के जननाथ के साथ उसका नाम विक्कलन्, और मनिमङ्गलम् उत्कीर्ण लेख में विक्कि लिखा है। तिरुवल्लम् उत्कीर्ण लेख में विक्रमादित्य षष्ठम् के कनिष्ठ भ्राता जयसिंह को शिंगणण् कहा है।

किन्तु असाधारण रूप से असफल रहा। तत्पश्चात् जो घोर युद्ध हुआ उसमें उसका प्राणांत हुआ और आक्रामकों ने सफलतापूर्वक मालवा को विजित किया। कर्णाटों के साथ चालुक्यों ने धारा नगर पर अधिकार किया और इस पर पुनः गौरवपूर्ण विजय-ध्वज फहराया। नागपुर प्रशस्ति ने युद्ध में जयसिंह की मृत्यु का, और कर्ण और कर्णाटों की सम्मिलित सेनाओं द्वारा मालवा की विजय का वर्णन किया है। सुदि से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख ने सोमेश्वर द्वितीय का इस रूप में वर्णन किया है : 'मालव्यों के वंश रूपी समुद्र की वड़वाग्नि'। बलगमि से प्राप्त एक शिलालेख तिथ्यंकित शक ९९३ तदनुसार १०७१ ई० दण्डनायक उदयादित्य के संबंध में कथन करता है कि 'मालव नरेश को, जिसने शत्रुता ठानी थी, और उन सब को जिन्होंने सिंहासन के विरुद्ध और स्वामी के विरुद्ध गुप्त रूप से षड्यंत्र किया था, पूर्णतया परास्त कर, और उनकी संपत्ति पर और रत्नों से लदी हुई स्त्रियों पर अधिकार कर उसने उनको सम्राट् (सोमेश्वर द्वितीय) को प्रदान किया। एऋयंग के शासन काल का एक उत्कीर्ण-लेख तिथ्यंकित ११०० ई० ने अभिलिखित किया है कि उसने चालुक्य सम्राट् की आज्ञा पर हिम पर्वत और सेतु के बीच के अनेकानेक राजाओं को परास्त किया। 'अग्नि साक्ष्य स्वरूप नन्तुगे के वक्षस्थल को प्रचंड क्रोध से, और धारा द्वारा (अपर अर्थ, जल धारा से) उस वीर पोय्सल नरेश ने पराक्रमदेवी को सहसा विवाह लिया। खाण्डव (वन) के जलने में मंडप राख हो गया, अतः पोय्सल नरेश की गौरव रूपी अग्नि विन्ध्यपर्वतों में उद्भूत हुई और उसके शत्रुओं के उध्रपुरम् (? उदयपुर) नगर को अभिभूत किया।'

विष्णुवर्धन के शासन काल का शिमोग तालुक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित लगभग १११२ ई० कथन करता है कि उसका पिता एऋयंग चालुक्य नरेश का दाहिना हाथ था। 'मालव सेना को कुचलते हुए उसने धारा को भी नहीं छोड़ा, बल्कि उसे जलाया और छितरा दिया'। इसी राजा का एक दूसरा उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११६१ ई० का कथन है कि 'चालुक्य के देखते-देखते एऋयंग ने बिना प्रयत्न के मालव नरेश के दुर्ग को लूटा जो चालुक्यों के लिए अति दृढ़ था'। नरसिंह के शासन काल के एक तीसरे उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११६४ ई० ने इस तथ्य को अभिलिखित किया है कि 'एऋयंग ने अपनी सेना द्वारा महान् धारा को, जो मालवा राज्य का मुख्य नगर था, दबा दिया, और इस तरह अपने सम्राट् को विजय प्रदान की'।

होयशल विष्णुवर्धन का बेलुर ताम्रपत्र तिथ्यंकित १११७ ई० ने अभिलिखित किया है कि एऋयंग ने उत्तर की एक विजय में मालवपतियों के गढ़ धारा पर अधिकार किया जिसको राजा भोज ने समृद्धिशाली किया था। विष्णुवर्धन के उत्तराधिकारी होयशल नरसिंह प्रथम का एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११५९ ई० यह

लिखकर इस तथ्य की पुष्टि करता है कि एकदयंग ने मालव नरेश की राजधानी धारा को क्षण भर में जला दिया ।

चालुक्य कर्ण के संबंध में 'पृथ्वीराज विजय' का कथन है कि उसने मालव को विजय किया । अरिसिंह लिखता है कि कर्ण ने मालव नरेश और उसकी सेना को पराजित कर उससे नीलकण्ठ (शिव) की एक मूर्ति छीना । कर्ण द्वारा मालव विजय के संबंध में लिखते हुए सोमेश्वर ने वर्णन किया है कि 'जब चालुक्यों ने धारा नरेश के प्रदेश को जीत लिया तो धारा नरेश के पुजारी ने अपने स्वामी के शत्रु का विनाश करने के लिए मंत्रों द्वारा एक दुष्ट आत्मा को बुलाया । किन्तु कर्ण के पुजारी अपने विपरीत मंत्रों द्वारा दुष्टात्मा को मंत्रजापक के विरुद्ध लौटाने में सफल हुआ जो इसके द्वारा तुरंत मार डाला गया' ।

उदयादित्य—एक दशक पूर्व जो धक्का उनको लगा था उससे वे प्रायः सम्हलने भी न पाये थे कि उनका आधिपत्य पुनः उनके हाथ से निकल गया । किन्तु इन विपत्तियों के दिनों में भी पूर्वी क्षितिज पर एक प्रकाश-किरण थी जो धीरे-धीरे बढ़ती गई और मालवा के आकाश से समस्त विपत्ति के बादलों को छितरा दिया । परमारों की अवर-शाखा का एक वंशज उदयादित्य अपने पैतृक साम्राज्य के छुटकारे के लिए वीरतापूर्वक खड़ा हुआ । उन विपत्तिपूर्ण घड़ियों में उसने शाकम्भरी के राजा चाहमान दुर्लभ तृतीय से सहायता माँगी । भोज द्वारा चाहमान वीर्यराम की पराजय होने के बाद शाकम्भरी और धारा के वंशजों के बीच एक मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हुआ प्रतीत होता है । अतः दुर्लभ ने तुरन्त ही परमारों की सहायता के लिए एक अश्वारोही दल भेजा । इस तरह पर्याप्त अधिक बल न प्राप्त कर उदयादित्य चालुक्यों और कर्नाटों की संयुक्त सेनाओं पर टूट पड़ा और थोड़े ही समय में अपने प्रदेश को पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ । 'पृथ्वीराज विजय' में लिखा है कि चाहमान दुर्लभ मालवा के उदयादित्य की सम्पन्नता का कारण था । उससे अश्वारोही दल प्राप्त कर उदयादित्य ने गुर्जर कर्ण को परास्त किया तथा मालवा प्राप्त किया । 'उदयपुर-प्रशस्ति' सूचित करती है कि 'जब भर्ग का भक्त (शिव अर्थात् भोज) जिसका प्रताप सूर्य के समान था देवताओं के सदन में चला गया, पृथ्वी, धारा की तरह, घने अंधकार रूपी अपने शत्रुओं से व्याप्त हुई, और उसके वंशानुगत सैनिक शरीर से निर्बल हो गए, तब एक दूसरे सूर्य की तरह राजा उदयादित्य का उद्भव हुआ जिसके खड्ग से निकली हुई किरणों से शक्तिशाली रिपुओं के तिमिर का नाश हुआ, (और इस प्रकार) अपनी द्युति से अपनी प्रजा के हृदयों को मुदित किया । देखो ! उस परमार के लिए इस पृथ्वी की रक्षा कितनी सरल थी जिसने बिना कठिनाई के उसे आदि वराह पुनः दिला दिया ।'

नागपुर उत्कीर्ण लेख ने यह लिख कर इसको अधिक स्पष्ट किया है कि 'जब उसने (भोज ने) इन्द्र का बन्धुत्व प्राप्त कर लिया था, और जब राज्य बाढ़ग्रस्त हो गया था और उसमें इसका सम्राट् मग्न हो गया था तब उसका सम्बन्धी उदयादित्य राजा हुआ। उसने पृथ्वी का उद्धार करने में पवित्र वराह की तरह कार्य किया जब वह राजाओं द्वारा पीड़ित की गई और जब कर्ण ने, जो महासागर की तरह था, कर्णाटों से मिलकर इस पर अधिकार कर लिया।'

उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि उदयादित्य नामक एक वीर ने मालवा में परमारों के आधिपत्य को शीघ्र ही पुनः जीवित किया, यद्यपि विदेशी शत्रुओं के हाथ इसको एक गहरा धक्का सहन करना पड़ा था। 'उदयपुर-प्रशस्ति' में उसको भोज का एक सम्बन्धी बताया गया है। भिलसा स्थित उदयपुर से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख ने उसकी वंशावली के सम्बन्ध में और अधिक विवरणात्मक सूचना दी है। वह लिखता है कि परमार (पावर) वंशज सौरविर (शूरवीर) नामक एक राजकुमार ने मालव में अपना एक निजी राज्य बनाया। वह विद्वान्, धार्मिक, उदार, शूर और अपनी और अपने शत्रुओं की सेनाओं से युक्त था। उसका पुत्र गोंडल था जो गुणागार, देवपरायण, शत्रु विजेता और अपने पराक्रमों के लिए विख्यात था। उसका पुत्र ग्याता (ज्ञाता) था जिसका पुत्र अरि-बल-मथन करने वाला उदयादित्य था जो पूर्वी प्रदेश को प्राप्त कर मालव के मध्य देश को गया जिस पर पूर्व में उसके पूर्वज राज्य करते थे। उसने प्रदेश को गौरवान्वित किया।

उपर्युक्त अभिलेख से यह आशय निकलता है कि उदयादित्य और उसके पूर्ववर्ती परमार वंश की एक अवर शाखा के थे। प्रतीत होता है कि वे धारा के साम्राजिक वंश के मांडलिकों के रूप में मालवा के पूरब में भिलसा स्थित उदयपुर में जो मालवा के पूर्वी हिस्से में है, राज्य करते थे। जब चालुक्यों और कर्णाटों की संयुक्त सेनाओं ने मालवा पर अधिकार किया और उनके विरुद्ध युद्ध में जयसिंह ने प्राण गवाएँ, तब उदयादित्य परमार राज्य का रक्षक प्रमाणित हुआ, और विदेशी सेनाओं की मुट्ठी से छीन कर उसे पूर्णतया पुनः प्राप्त कर लिया। धारा के राजवंश में कोई अन्य राजकुमार इतना सशक्त नहीं था जो उस संकटपूर्ण स्थिति में राज्य की बागडोर को संभाल सकता। अतः राज्यशक्ति उदयादित्य को सौंपी गई जिसका अधिकार अति प्रबलतः सर्वोपरि था। इस घटना की एक क्षीण स्मृति कुछ परिवर्तित रूप में 'आईने-अकबरी' में दी हुई है। इसमें लिखा है कि 'मंजु ने ईश्वर को धन्यवाद दिया, बड़े स्नेह से भोज का स्वागत किया और उसको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और जब उसके पुत्र जयचन्द का शासन समाप्त हुआ, तब उसका स्थान लेने के योग्य पोंवार जाति में कोई न था। पोंवार जाति का जितपाल जो एक प्रमुख भूमि-स्वामी था

सिंहासन के लिए चुना गया, और इस तरह भाग्य के उलट फेरों से अधीश्वरता उसके वंश में चली गई।'

यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त जयचन्द का जयसिंह से तादात्म्य है, और जितपाल संभवतः उदयादित्य है।

उदयादित्य के शासन के अनेक उत्कीर्ण लेख पाये गए हैं। 'उदयपुर-प्रशस्ति' एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण है और इस समय नीलकण्ठेश्वर मन्दिर के सामने पड़ा है जो उदयपुर, भिलसा में है। इससे मालवा के परमारों का प्रारंभिक इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए अति महत्व की प्रचुर सूचना मिलती है। यह एकमात्र उपलब्ध अभिलेख है जिसमें इस वंश के उपेन्द्र से भोज तक के शासकों की पूरी वंशावली दी हुई है।

नीलकंठेश्वर के मन्दिर के उत्कीर्ण लेखों के अतिरिक्त उसके शासन के दो अन्य लघु उत्कीर्ण लेख पाये गए हैं। एक नीमर जनपद में (स्थान) के एक मन्दिर के अंतराल में, और दूसरा धारा के भोज की पाठशाला में लगे हुए एक स्तम्भ पर।

एक प्रस्तर उत्कीर्ण लेख उदयादित्य के विजयी शासन में संवत् ११४३ तद-नुसार १०८६ ई० में निष्पादित किया गया था जो राजपूताना के झलरापटन नामक स्थान के सर्वसुखीय कोठी में है। इसमें लिखा है कि तैलिक वंशज पट्टकिल चाहिल के पुत्र पट्टकिल जन्न ने चिरिहिल्ला में जो चाडा धंष कूपिका और तरुवसक के बीच में है एक शिवमन्दिर और एक सरोवर बनवाया। उसने सेन्धवदेव के समारोह में वार्षिक दान स्वरूप चार पल तैल और कुछ मिठाई और मिष्ठान देने की प्रतिज्ञा की। यह उत्कीर्ण लेख विद्वान् हर्बुक ने उत्कीर्ण किया था।

इन उत्कीर्ण लेखों के साक्ष्य से सुष्टुरूपेण यह निर्णय किया जा सकता है कि वह राज्य जिस पर उदयादित्य का आधिपत्य था उत्तर में कम से कम झलरापटन तक, पूरब में भिलसा तक और दक्षिण में नीमर जनपद तक विस्तृत था। यह प्रमाणित करता है कि वह प्रायः उस संपूर्ण प्रदेश को पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ जिस पर उसका पूर्वज भोज अपने शासन के उत्तरार्द्ध में राज्य करता था। कलचुरि नरसिंह के भेराघाट उत्कीर्ण लेख में उदयादित्य को मालव प्रदेश का राजा कहा है। और कलचुरि जयसिंह के कर्न्बेल उत्कीर्ण लेख ने उसका धारा के अधीश्वर रूप में वर्णन किया है।

उदयादित्य स्वीकृत रूप में एक उच्चकोटि का सामरिक सेनापति था किन्तु उसके और युद्ध संबंधी कार्य-कलापों के संबंध में हमारी सूचना बहुत विस्तृत नहीं है।

मालवा में पुनः शान्ति स्थापित होने के बाद उदयादित्य को चालुक्यों के एक दूसरे आक्रमण का सामना करना पड़ा। सोमेश्वर द्वितीय १०७६ ई० में अपने कनिष्ठ

भ्राता विक्रमादित्य षष्ठम् द्वारा सिंहासनच्युत कर दिया गया। विक्रमादित्य, जो जयसिंह का मित्र था, उदयादित्य का शत्रु हो गया। प्रतीत होता है कि सिंहासनारूढ़ होने के थोड़े समय पश्चात् उसने मालवा के विरुद्ध एक सफल अभ्याक्रमण किया। शिकरपुर तालुक से प्राप्त तिथ्यंकित १०७७ ई० का एक उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि 'वह धारा नरेश के लिए भयरूपी महाज्वर का कारण था'।

किन्तु इन पराजयों ने परमार शासन की शान्तिपूर्ण अवस्थिति को वस्तुतः भंग नहीं किया।

उदयादित्य ने अपने शासन के शेष वर्ष शान्ति और सुख में बिताए। विद्वानों के प्रति उसमें गहरी श्रद्धा थी। भोज द्वारा धारा में स्थापित पाठशाला उसकी सावधान देख रेख में पनपती रही। उसने विद्यार्थियों के पथप्रदर्शन के लिए धारा स्थित भोज की पाठशाला की दीवारों पर और नीमर जनपद में उन नामक स्थान के चौबेर देरा मन्दिर में भी वर्णमाला और व्याकरण-नियमों से युक्त रेखाचित्रों को कवियों और राजकुमारों की परितुष्टि के लिए उत्कीर्ण किया।

उदयादित्य ने वास्तु कलात्मक स्मृति भवनों के निर्माण में भी स्थिर उत्साह दिखलाया। उसने भिलसा में उदयपुर नगर की नींव रखी और वहाँ नीलकंठेश्वर के महान् मन्दिर का निर्माण किया। उदयपुर से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख लिखता है कि उदयादित्य ने इस मन्दिर को १०५९ ई० में बनवाया। यह सारे भारतवर्ष में अपने ढंग का सर्वाधिक भव्य मन्दिर माना जाता था। उसी मन्दिर में प्राप्त एक दूसरे उत्कीर्ण लेख ने उसको उदयपुर उदयेश्वर, और उदय समुद्र की प्रतिष्ठा करने का श्रेय दिया है। संभवतः उदयेश्वर नीलकंठेश्वर है। यह उदयेश्वर उदयपुर के समीप अवश्य ही कोई झील या बड़ा सरोवर रहा होगा। लिखा है कि उदयादित्य ने अन्य अनेक मन्दिर बनवाए, तालाब खुदवाए, धार्मिक अनुष्ठान किए और ब्राह्मणों को सोना तथा उपजाऊ भूमि दान दिया। उन नामक स्थान के मन्दिर-समूह में अवश्य ही कुछ निर्माण किए हुए है।

उदयादित्य के शासन की कुछ सुवर्ण मुद्राएँ मध्य प्रदेश में पाई गई हैं। इनके अतिरिक्त इस वंश की अन्य मुद्राओं का अभी तक पता नहीं चला है।

मूल्यांकन राजा के रूप में उदयादित्य का जीवन अतुल सफलता का जीवन था। परमारवंश के अत्यंत घोर विपत्ति के दिन में वह एक वरदान के रूप में आया। अतिशय विपरीत परिस्थितियों में जो अत्यंत कठोर और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य उस पर आ पड़ा उसको उसने सफलतापूर्वक निष्पादन किया। उसने शान्ति और व्यवस्था, और जीवन के दैनिक धंधों के शान्तिपूर्ण आचरण के लिए उपयुक्त वातावरण का पुनः स्थापन किया। मुंज और भोज के सिंहासन के वास्तविक अधिकारी के रूप में

उसने साहित्यिक आंदोलन की स्वस्थ प्रगति के लिए भी वैसे ही ध्यान दिया। शिक्षा के प्रसार के लिए जो विवेकपूर्ण सावधानी उसने की वह अपने रूप की अनुपम है। वास्तुकला के क्षेत्र में उसकी निष्पत्तियाँ विस्मयकारी हैं। महान् नीलकंठेश्वर मन्दिर आज भी उसकी महत्ता के साक्ष्य स्वरूप खड़ा है। इस तरह मालवा को एक आदर्श राज्य के रूप में निर्माण करने का कार्य जो मुंज और भोज ने आरंभ किया था वह उदयादित्य के शासनकाल में पूरे वेग से चल रहा था, और राज-संरक्षण के अभाव में भी शिथिल नहीं हुआ।

उदयादित्य के जगद्देव नामक एक पुत्र था जो कुछ समय तक मालवा का राजा था। मेरुतुंग ने इस राजकुमार का नाम दिया है, किन्तु उसने उसकी वंशावली का कोई उल्लेख नहीं किया है। उसके अनुसार राजकुमार ने कुंतल के राजा परमदेव की सैनिक सेवा में प्रवेश किया। चालुक्य सिद्धराज उसका बड़ा सम्मान करता था। परमार अर्जुनवर्मन् ने अपनी 'रसिक संजोविनी' में लिखा है कि उसका पूर्वज जगद्देव अत्यंत रूपवान् था जिसके सौन्दर्य का वर्णन नाचिराज ने किया है। होयसल उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि ग्यारहवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में जगद्देव मालवा का राजा था।

उदयादित्य का कई पड़ोसी नरेशों से सम्बन्ध था। उसकी पुत्री श्यामल देवी गोमिल (गुहिल) वंश के हंसपाल के पौत्र और वैरिसिंह के पुत्र विजयसिंह से ब्याही गई थी। विजयसिंह का नाम प्राग्वाट के शासक के रूप में आया है। वह स्पष्टतः मेवार का राजा था। विजयसिंह और श्यामल देवी के सम्बन्ध से अल्हण देवी नामक एक कन्या पैदा हुई जिसका विवाह कलचुरि गैकर्ण (१११५-११५१ ई०) से किया गया।

उदयादित्य ने १०८६ ई० के कुछ पश्चात् अपना शासन समाप्त किया। अनुश्रुति है कि जगदेव सिंहासन का उसका निकटतम उत्तराधिकारी था किन्तु एक समकालीन परमार अभिलेख लिखता है कि लक्ष्मदेव उदयादित्य की मृत्यु के बाद मालवा का राजा हुआ। जगद्देव का नाम किसी परमार उत्कीर्ण खेल में नहीं आया है। किन्तु इस तथ्य की कि इस समय के लगभग कुछ वर्षों तक उसने मालवा में राज्य किया उपर्युक्त दो होयसल उत्कीर्ण लेखों से पुष्टि होती है। अतः इन परिस्थितियों में यह अनुमान किया जा सकता है कि जगद्देव और लक्ष्मदेव मात्र एक ही व्यक्ति के दो नाम थे।

लक्ष्मदेव—इस सम्राट् के जीवन पर प्रकाश डालने वाला मुख्य साक्ष्य नागपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेख है। इसमें लिखा है कि उसने सूर्य ग्रहण के अवसर पर संभाव्यतः एक मन्दिर के निर्वाह के लिए व्यापुर मण्डल में दो ग्रामों का दान किया। इस

दानपत्र की तिथि ठीक रूप से निश्चय नहीं की जा सकती क्योंकि १०८७ और १०६४ ई० के बीच में आठ सूर्य ग्रहण पड़े थे। यह उत्कीर्ण लेख एक साधारण पत्थर के टुकड़े पर उत्कीर्ण है जो स्पष्टतः किसी मन्दिर के निर्माण में उपयोग किया गया था। व्यापुर मण्डल नागपुर के समीप किसी जगह स्थित था। नागपुर व्यापुर नाम से भी ख्यात है। इससे श्री बालगंगाधर शास्त्री ने सुझाव दिया है कि व्यापुर से इसका तादात्म्य है। वर्तमान नागपुर नगर अठारहवीं शती ईसवी के प्रारंभिक वर्षों में राजा भक्त बुलन्द द्वारा स्थापित किया गया था। प्राचीन समय में नन्दिवर्धन या नागवर्धन इस जनपद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। इसी नाम का वर्तमान गाँव रामटेक के चार मील दक्षिण में है जहाँ अब भी प्राचीन किलों और मन्दिरों के वृहद अवशेष पड़े हुए हैं। अनुश्रुति है कि प्राचीन समय में नन्दिवर्धन परमारों का एक महत्वपूर्ण आवास था। इस स्थान में पोंवर जाति के वर्तमान अस्तित्व से इसकी दृढ़ता की पुष्टि होती है। अतः यह बिलकुल संभाव्य है कि नागपुर जनपद का एक भाग मालवा के परमारों के राज्य का अंग था। नन्दिवर्धन मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के राज्य में सम्मिलित था। राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने ६४० ई० में नागपुर-नन्दिवर्धन जनपद का एक ग्राम एक कन्नड ब्राह्मण को दान दिया। राष्ट्रकूट साम्राज्य के पतन के बाद इसके उत्तरी भाग पर परमारों ने अधिकार कर लिया और दक्षिणी भाग पर चालुक्यों ने। दसवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में गोदावरी जनपद में अपने-अपने प्रदेशों की सीमाओं के सम्बन्ध में मुंज और तैलप द्वितीय में एक भीषण संग्राम हुआ। इसके बाद प्रतीत होता है कि तब तक परमार नागपुर पर अधिकार किये रहे, जब तक कि विक्रमादित्य षष्ठम् ने इसके दक्षिणी भाग को अपने राज्य में मिला न लिया। विक्रमादित्य के एक मण्डलिक के रूप में राष्ट्रकूट धाडीभ (न् ?) डक जो लटलौर का एक प्रवासी था, १०८७ ई० में इस नवविजित प्रदेश पर राज्य कर रहा था।

बंगाल के विरुद्ध युद्ध—नागपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेख ने लक्ष्मदेव के सामरिक अभियानों के अभिलेखन में १६ श्लोक लिखे हैं। उसके सैनिक गुण आश्चर्यजनक और सर्वोपरि थे। अपने पड़ोसियों चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठम् और कलचुरि कर्ण की तरह वह एक बड़ी सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकला। महान पाल-साम्राज्य ग्यारहवीं शती ईसवी के प्रारंभिक वर्षों से तुच्छ स्थिति को प्राप्त हो रहा था जिससे उत्साहित होकर मध्य और दक्षिण भारत के अनेक अन्य शासक धन और लूट के लिए इस पर टूट पड़े। ग्यारहवीं शती ईसवी के अन्तिम चरण में दिव्वोक के नेतृत्व में कैवर्तों द्वारा संगठित एक क्रांति बंगाल में हुई जिससे 'वरेन्द्र-भूमि' (गौड या उत्तर बंगाल) में पाल-आधिपत्य का अस्थायी अंत हुआ। राजा रामपाल अपने मण्डलिकों की सहायता से बड़ी कठिनाई से इस विद्रोह का दमन करने और सिंहासन को पुनः प्राप्त

करने में सफल हुआ। इस उलझन ने जो पाल-राज्य में हुई लक्ष्मदेव को अपने सामरिक कार्य-कलापों के प्रदर्शन के लिए एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत किया। वह एक बड़ी सेना लेकर बंगाल में प्रवेश किया और उस पर एक सफल छापा मारा। कहा जाता है कि हाथियों को पकड़ने के लिए वह पहले हरी के पड़ाव (पूर्वी पड़ाव) की ओर बढ़ा और गौड़पति के नगर में प्रवेश किया।

त्रिपुरी के कलचुरियों से युद्ध—इस अवधि में त्रिपुरी के कलचुरि भी लक्ष्मदेव के आक्रमण के शिकार हुए। जयसिंह कलचुरि कर्ण के आधिपत्य से मालवा को छुड़ाने में सफल हुआ था। ग्यारहवीं शती ईसवी के मध्य में कर्ण परमारों के अप्रतिष्ठा और अपकीर्ति का सचमुच कारण था। इससे परमारों के गौरव में एक गहरा, घाव हो गया। इस तथ्य के होते हुए भी कि बाद को उन्होंने अपनी पूर्व स्थिति पुनः प्राप्त कर ली। लक्ष्मदेव कलचुरियों से बदला लेकर इस घाव को भरने के लिए तुला हुआ था। वह चेदि प्रदेश की ओर बढ़ा, और कलचुरि प्रशासन को पददलित करने के लिए संकट उपस्थित किया। कर्ण मर चुका था और उसका उत्तराधिकारी और पुत्र यशःकर्ण सिंहासन पर था (१०७२-१११५ ई०) यशःकर्ण साहसी योद्धा था और चम्पारण्य विजय कर कीर्ति प्राप्त की थी। किन्तु अपयशवश वह मालवा सेना के, आक्रमण के सामने ठहर नहीं सका। लक्ष्मदेव ने उसके राज्य को पददलित किया और उसकी राजधानी त्रिपुरी को लूटा। इसके पश्चात् उसने विंध्यपर्वत के नीचे नर्मदा के तट पर आवास किया जहाँ उसके हाथियों ने युद्ध के श्रम के बाद नदी-जल में स्नान कर विश्राम किया।

ऐसा लिखा है कि लक्ष्मदेव की अंग और कलिङ्ग की सेनाओं से मुठभेड़ हुई। नागपुर उत्कीर्ण लेख के श्लोक ४३ में लिखा है कि 'अंग और कलिङ्ग की गज-सेनाओं को भी, जो दिक् गजों के बांधव, प्रलय के समय के अंधड़, पर्वतों की तरह वृहद् और क्रीड़ा के लिए रखे गए सूकर-दल की तरह घने मेघों के प्रतिद्वंद्वी थे, दया की याचना करनी पड़ी, जब उसकी सेना के राजकुमारों के शक्तिशाली गजों और अंधड़ के ऐक्य से वे व्याकुल हो गए।'

बिहार का वर्तमान भागलपुर और मुंगेर अङ्ग प्रदेश में समाविष्ट थे जो रामपाल के राज्य का एक अंश था। कलिङ्ग, उड़ीसा और द्राविड़ प्रदेश के बीच का वह भाग था जो समुद्र के किनारे है और आजकल उत्तरी सरकार कहलाता है। श्री कनिंघम के अनुसार उसका विस्तार दक्षिण पश्चिम में गोदावरी के और उत्तर-पश्चिम में इन्द्रावती नदी की गूलिय शाखा के आगे न था। प्रो० रेप्सन ने इसका तादात्म्य महानदी और गोदावरी के बीच के प्रदेश से किया है। बंगाल आक्रमण की अवधि में लक्ष्मदेव ने अङ्ग सेना से संभवतः युद्ध किया या यह ही कि उसने अङ्ग सेना के

लड़ाकू टूकड़ी को हराया हो जो रामपाल के नेतृत्व में थी।

उत्तरी बंगाल में शान्ति स्थापन के बाद रामपाल ने अपने वंश के अतीत गौरवों को पुनः प्रतिष्ठापित करने की ओर ध्यान दिया। उसने उत्कल और कलिङ्ग के विरुद्ध प्रस्थान कर उसको अभिभूत किया। कलिङ्ग की विजय से संभाव्यतः प्रोत्साहित होकर रामपाल ने परमार राज्य पर धावा बोला जो नागपुर जनपद तक विस्तृत था। उस अवसर पर हो सकता है कि कलिङ्ग सेना ने उसकी सामरिक कार्यवाहियों में सहायता की हो। नागपुर प्रशस्ति का उपयुक्त श्लोक संकेत करता हैं कि अंग और कलिङ्ग सेना ने लक्ष्मदेव के विरुद्ध आक्रमणशील अभियान किया। किन्तु लक्ष्मदेव ने उसकी प्रगति का सफलतापूर्वक अवरोध किया।

सामरिक गौरव के लिए लक्ष्मदेव की उच्चाकांक्षा ने दक्षिण और दक्षिणी भारत के शक्तिशाली राजाओं के विरुद्ध युद्ध करने को प्रलोभित किया। उसने विक्रमादित्य षष्ठम् से मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाए रखना समयोचित समझा। एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११२९ ई० ने यह लिखकर इस तथ्य को संभाव्यतः बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है कि 'मालव तथा अन्य राजा काँपते हुए, मैत्री करके उसके समस्त कथन से सहमत होकर, भयपूर्वक उसकी आज्ञा का पालन किया, और वे अब भी अपना-अपना राज्य भोग कर रहे हैं, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वह उन महान् राजाओं को देवताओं के राज्य को भोगने के लिए तुरंत बिना दया के भेज दिया होता।'

मैसूर के होयसलों ने, जो कल्याणी के चालुक्य सम्राटों के मण्डलिक थे, ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रतीत होता है अधीनता रूपी अपने जुआ को उतार फेंकने का एक प्रयास किया। लक्ष्मदेव को होयसलों के प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए विक्रमादित्य षष्ठम् से मैत्री करने का यह अवसर मिला। उस समय होयसल एऋयंग अपने वृद्ध पिता विनयादित्य के प्रतिनिधि के रूप में मैसूर में राज्य कर रहा था। बल्लाल प्रथम, विष्णुवर्धन और उदयादित्य एऋयंग के पुत्र और साहसी योद्धा थे। लक्ष्मदेव ने चालुक्य सेना के साथ मैसूर को पददलित किया और इसकी राजधानी दोरसमुत्र को घेरा तब तब एऋयंग के तीनों पुत्र अपने-अपने को इस अवसर के उपयुक्त प्रकट किया, और आक्रमण सेना के विरुद्ध कठोर अवरोध प्रस्तुत किया। लक्ष्मदेव इस विरोध के सामने ठहर नहीं सका और पीछे हटने को बाध्य हुआ। इस घटना पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य प्रचुर मात्र में उपलब्ध हैं। एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११९६ ई० वर्णन करता है कि 'बल्लाल' ने आक्रामक सेना को युद्ध में पीछे खदेड़ दिया जिससे मालव सम्राट् जगदेव ने भी जिसके मदान्ध हाथी को उसने चिंघाड़ने के लिए विवश किया कहा 'खूब किया, अश्वारोही'। उसने प्रत्युत्तर दिया 'मैं मात्र एक

अश्वारोही नहीं हूँ, मैं वीर-बल्लाल हूँ' और अपने संहार से संसार को चकित किया। रुवन बेल्गोला उत्कीर्ण लेख, (११५९ ई०) का कथन है कि यम की तरह शक्तिशाली विष्णु ने अपने करतल से आहत कर सम्राट (विक्रमादित्य षष्ठम्) भेजे गए मालवपति जगद्देव आदि की सेना रूपी लहराते हुए महासागर को सहसा पी लिया'। एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११६१ ई० ने अभिलिखित किया है कि विष्णुवर्धन ने जब वह युवा ही था जगदेव को पराजित किया। बेलुर तालुक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११७७ ई० ने इस तथ्य को लिखा है कि उन्होंने (विष्णु और बल्लाल ने) दोरसमुद्र में जगदेव की सेना को परास्त कर विजय-श्री को सिंदूर के बदले उसके हाथियों के रक्त से रंगा, और उसके हार से सुमेरु के साथ उसके कोष पर भी अधिकार कर लिया'। नरसिंह प्रथम के उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११६४ ई० का कथन है कि बल्लाल, विष्णु और उदयादित्य तीनों भाइयों ने दोरसमुद्र में जगदेव की सेना को विनष्ट किया। जगदेव की पराजय का अभिकथन करने वाले अभिलेख की प्राचीन ज्ञात तिथि ११०० ई० है।

चोलों से युद्ध—इस समय के लगभग प्रायः संपूर्ण दक्षिणी भारत चोलों के आधिपत्य में था। ग्यारहवीं शती ई० के प्रारंभिक वर्षों में चोल साम्राज्य का विस्तार उत्तर में तुंगभद्रा नदी और कृष्णा के निचले बहाव तक था। कुलोत्तुङ्ग प्रथम (१०७०-१११८ ई०) के राज्यारोहण से वेंगि के पश्चिमी चालुक्यों और कांचि के चोलों के राज्य एक में मिल गए। इससे चोल साम्राज्य की उत्तरी सीमा परमार राज्य की सीमाओं के ३०० मील से कम दूरी गोदावरी नदी तक विस्तृत हो गई। इन दोनों राज्यों के बीच में पड़ने वाले प्रदेश इस काल के अनेक सैनिक साहसी व्यक्तियों के आक्रमण के लक्ष्य हुए। कुलोत्तुङ्ग प्रथम ने जब वह युवराज था वयिरगरग (वर्तमान वैरगढ़) को लूटा जो नागपुर जनपद के केवल कुछ ही मील दक्षिण में है। अब लक्ष्मदेव का चोलों से संघर्ष हुआ जिन पर समय कुलोत्तुंग प्रथम शासन कर रहा था। उसकी विजय इस अवसर पर व्यापक हुई। ऐसा लिखा है कि जब उसने दक्षिण की ओर अपने पगों को बढ़ाया तो चोल तथा अन्य जनजातियाँ उसके सामने नतमस्तक हुईं। इसके बाद लूट के लिए किए गए अपने अभियानों के क्रम में कहा जाता है कि वह ताम्रपर्णी पहुँचा जो पाण्ड्यों के राज्य के अन्तर्गत था और वहाँ से सेतुबन्धुरामेश्वरम् को पार कर लंका गया और उस द्वीप को अधीन किया। किन्तु किसी निश्चित संपोषक साक्ष्य के अभाव में निश्चयपूर्वक यह कहना असंभव है कि उसने पाण्ड्य प्रदेश और लंका पर धावा किया था या नहीं। यह मात्र कवि-प्रशस्ति प्रतीत होती है।

पहाड़ी जनजातियों का दमन—ऐसा लिखा है कि लक्ष्मदेव ने पूर्वी और

दक्षिणी अभियानों को समाप्त कर पश्चिमी प्रदेशों के विरुद्ध प्रस्थान किया था। द्वयाश्रय वर्णन करता है कि गुजरात राजा सिद्धराज जयसिंह (१०६५-११४५) के शासन काल में राक्षस सिद्धपुर में रहने वाले पुण्यात्मा ऋषियों को निरंतर दुःख देते थे। ऋषियों ने सिद्धराज से सहायता माँगी जिस पर राजा ने उन बर्बरों को दंड देने के लिए अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया।

राक्षस नेता बार्बर ने अर्तदेश के राजा के भाई की सहायता लेकर सरस्वती के तट पर उसका सामना किया, किन्तु वह परास्त किया गया और नियंत्रण में लाया गया। राक्षस निश्चय ही गुजरात के पर्वतों में रहने वाली जंगली पहाड़ी जनजातियाँ थीं। पश्चिम की ओर मैनाक पर्वत में रहने वाले तिमिंगलों और अन्य दानवों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय लक्ष्मदेव को दिया गया है। महाभारत के अनुसार यह पर्वत भारत के पश्चिमी सीमांत पर गुजरात में था। सिद्धराज ने जिन जनजातियों का दमन किया था उनमें संभाव्यतः तिमिंगल भी थे।

कीरों से युद्ध—कहा जाता है कि लक्ष्मदेव ने उत्तर के प्रदेशों के विरुद्ध भी अभियान किये थे। नागपुर उत्कीर्ण लेख के श्लोक ५४ में लिखा है कि 'वंक्षु के तट पर आवास करते हुए जो प्रकृत्या अति मृदु थे उससे भी अधिक मृदु हो गये, क्योंकि उन पर उगे हुए केसर के कुंकुम उन तुरुष्कों द्वारा प्रदान किये गये चपल अश्वों के दलों के चलने से मुरझा रहे थे, जिनको उसने सरलता से विनष्ट कर दिया था। उसने कीर राजा को अत्यंत चाटुकारी वाणी बोलना सिखाया जो सरस्वती की समीपता के कारण अपरिमित वाचाल था और एक बड़े पिंजड़े में बन्द किये गये तोते के समान था।'

वंक्षु गंगा की एक छोटी धारा थी जिसका अब तादात्म नहीं किया जा सकता। सरस्वती स्पष्टतः पंजाब की एक नदी का नाम है जो हिमालय श्रेणियों के अंतर्गत सिरमुर पहाड़ियों से, जिसका वर्तमान नाम सेवालिक है निकलती है और अम्बाला में अद-बर्दि स्थान पर मैदानों में प्रवेश करती है। मर्कंद और अन्य धाराएँ इसकी सहायक नदियाँ हैं और यह रसुल गाँव के समीप गग्गर में मिलती है। ब्रह्म-संहिता के अनुसार कीर कश्मीरियों के साथ रहने वाली एक जाति है जो उत्तर पूरब के प्रदेश में रहती है। बैजनाथ-उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि इस वंश का राजा लक्ष्मण ८०४ ई० में राज्य कर रहा था। कीर ग्राम वर्तमान किरगाँव है जो कट-कांगरा के लगभग ३० मील पूर्व कांगरा के पूरब में एक छोटा कस्बा है। इसके लगभग १०० मील दक्षिण में सरस्वती नदी बहती है। इस स्थान का नाम स्वयं संकेत करता है कि वह कीरों का एक आवास था। लक्ष्मण के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। एक शासक वंश के रूप में कीरों का अस्तित्व नवीं शती ईसवी के आरम्भ से रेखांकित

किया जा सकता है। पाल वंशीय धर्मपाल (७८०-८१५ ई०) ने कीरों को परास्त किया। चंदेल्ल यशोवर्मन् (९२५-९५० ई०) ने कीरशाहि से वैकुण्ठ की एक प्रतिमा प्राप्त की जो उसने भोट के शासक से पाया था। चम्ब के राजा साहिल्लदेव का, जो ग्यारहवीं शती ईसवी के द्वितीय चरण में वर्तमान था, इस रूप में वर्णन किया गया है। 'कीर सेनाओं की प्रचंड अग्नि-दुर्गर-पति रूपी वायु द्वारा प्रज्ज्वलित सौमतिकों से सहायता प्राप्त'। जब किलचुरी कर्ण (१०४२-१०७२ ई०) ने अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन किया तो कीर पिंजड़े के तोते की तरह अपने वासस्थान पर ठहरे रहे। यह बहुत ही सम्भाव्य है कि लक्ष्मदेव ने कांगरा जनपद के इन कीरों से युद्ध किया हो जो सरस्वती नदी के समीप रहते थे।

मुसलमानों से युद्ध—इस काल के लगभग परमार राज्य पर मुसलमानों के आक्रमण का संकट उपस्थित हुआ। मसऊद प्रथम का पुत्र और महान् विजेता महमूद का पौत्र इब्राहिम १०५९ ई० में गजनी के सिंहासन पर बैठा और अपने राज्य पर १०९९ ई० तक शाशन करता रहा। उसने अपने पुत्र महमूद को १०७५ ई० में अपने भारतीय अधिकृत क्षेत्रों का राज्यपाल नियुक्त किया। महमूद ने हिन्दुस्तान के विरुद्ध एक विस्तृत अभियान का सूत्रपात किया। तलवार के बल उसने आगरा को जीता, और बहुत से हिन्दू राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार की। कहा जाता है कि उसने पड़ोस के शासक राजाओं से उपहार के रूप में बहुसंख्यक हाथी पाये। उन हाथियों के निवास के लिए कन्नौज में गजशालाएँ बनाई गई, और चंदराइ उनकी देख-भाल करने के लिए नियुक्त किया गया। इस चंदराइ का तादात्म्य गाहडवाल राजवंश के चंद्रदेव से है जो ग्यारहवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में कन्नौज का राजा था। इस सफलता को प्राप्त करने के बाद महमूद ने अपनी सेनाओं को मालवा की ओर बढ़ाया। प्रतीत होता है कि लक्ष्मदेव, जो इस समय मालवा के सिंहासन पर था, बिना कोई युद्ध किये मुसलमानों के सामने आत्म-समर्पण करने वाला व्यक्ति न था। उसने आक्रामकों का कठोर अवरोध किया। जो संघर्ष हुआ उसमें मुसलमानों ने कुछ प्रारंभिक विजय प्राप्त कीं। किन्तु अंततः वे लक्ष्मदेव द्वारा पीछे ढकेले गये। फारसी का महान् कवि साल्मान सुल्तान इब्राहिम महमूद का समकालीन था। उसकी मृत्यु ११२६ ई० हुई। उसने मालवा पर महमूद के आक्रमण का एक वर्णन दिया है और राजकुमार को संबोधन करते हुए लिखा है : 'तुमने प्रत्येक प्रदेश में वर्ष के प्रचण्डतम ग्रीष्म ऋतु में आह्लादकारी स्थानों में आवास किया। इस यात्रा में तुम्हारी सेना ने १००० मूर्ति-मन्दिरों को नष्ट किया, और तुम्हारे हाथियों ने १०० से अधिक किलों को पददलित किया। तुम अपनी सेना उज्जैन ले गए; मालवा थर्राया और तुमसे भागा'।

संभवतः महमूद ने मालवा पर चढ़ाई उस समय की जब लक्ष्मदेव वहाँ राज्य

कर रहा था। 'नागपुर प्रशस्ति' ने मुसलमानों के विरुद्ध लक्ष्मदेव के संघर्ष का और तत्पश्चात् उन पर उसकी विजय का अभिलेखन किया है।

लक्ष्मदेव एक वीर योद्धा और निपुण सामरिक नेता था। पश्चिमी भारत के लोग अब भी जगद्देव के नाम का उसकी उच्च सामरिक दक्षता के लिए स्मरण करते हैं। निश्चय ही वह ग्यारहवीं शती ईसवी के अंतिम चरण का एक उत्तुंग व्यक्ति था। एक उल्का की तरह वह थोड़े समय के लिए मध्यभारत की क्षितिज पर चमका, और पीछे चिरकीर्ति छोड़ कर लोप हो गया। अपने वंश के योग्य पुत्र होने के नाते वह परमारों की स्थिति को, जो पिछले कुछ दशकों में अनेक उत्थान-पतन देखे थे साम्रा-जिक शक्तियों के बीच में अग्रतम पद पर ऊँचा उठाने में सफल हुआ।

भोजवर्मन् के केवल दानपत्र में लिखा है कि उदै के पुत्र जगद्विजयमल्ल ने अपनी पुत्री मालव्यदेवी का विवाह बंगाल के राजा सामलवर्मन से किया।

लक्ष्मदेव ने १०९४ ई० के कुछ समय पूर्व अपना शासन समाप्त किया और उसके कनिष्ठ भ्राता नरवर्मन् ने उसका स्थान ग्रहण किया।

नरवर्मन्—नरवर्मन् ने निर्वाण नारायण का विरुद ग्रहण किया। अब तक उसके शासन के छः उत्कीर्ण लेख मिले हैं। नरवर्मन् के पूर्वज सिंधुल, भोज और उदया-दित्य थे। यशस्वी हरदेव ने वज्रस्थान में शिव के एक मन्दिर का निर्माण किया जो दक्खिन और उदीच्य देश के छोर पर था। इस मन्दिर का प्रतिष्ठा-समारोह संवत् ११६४ तदनुसार ११०७ ई० में एक सूर्यग्रहण के अवसर पर किया गया था। हरदेव विद्वान् महादेव का पुत्र और रुद्रादित्य का पौत्र था। उसने राजा नरवर्मन् के गौरव को बढ़ा कर अपने को गौरवान्वित माना है। वह संभाव्यतः राजा नरवर्मन् के प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी था। कर्नल टॉड का विचार है कि मधुरकरघर नाम बाद को इस बंजस्थान को दिया। यह माना जा सकता है कि वह मन्दिर जिसमें यह प्रस्तर उत्कीर्ण लेख लगा हुआ था मधुकरघर से बहुत दूर नहीं था। इस स्थान का वर्तमान बूँदी राज्य से तादात्मय किया जा सकता है।

भिलसा नगर की बाहरी सीमा पर बीज मन्दिर नाम से विख्यात एक पुरानी मस्जिद है। इसके एक खम्भे पर नरवर्मन् के शासन काल का एक उत्कीर्ण लेख है जिसमें उसके नाम के साथ निर्वाण-नारायण विरुद लगा है। इसमें अभिलिखित है कि देवी चर्चिका (चर्चिका) के अनुग्रह से धारापति ने पृथ्वी का आधिपत्य ग्रहण किया। वह नरवर्मन् की प्रिय देवी थी जिसने उसे एक अच्छे शासक के समस्त गुण प्रदान किए थे। यह संकेत करता है कि वर्तमान् भवन मूलतः चर्चिका का मन्दिर था जो बाद को मस्जिद बना लिया गया।

धारा स्थित भोजनशाला में एक लघु उत्कीर्ण लेख है जिसमें नरवर्मन् को धर्म-रक्षक कहा गया है।

चन्देलों से युद्ध—विद्याधर के उत्तराधिकारी विजयपाल (१०४०-१०५०), देव वर्मन् (१०५०-१०६५ ई०) और कीर्तिवर्मन् (१०६५-११०६ ई०) थे। यह ज्ञात नहीं है कि परमारों ने इनमें से किसी से युद्ध किया हो। कीर्तिवर्मन का उत्तराधिकारी सल्लक्षण वर्मन (११००-१११०) था जो स्पष्टत: नरवर्मन् का समकालीन था। चंदेल राज्य की सीमा परमारों के राज्य से सटी हुई थी।

परमार प्रशासन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र उदयपुर भैल्ल स्वामिमहाद्वाशक में था। सल्लक्षण वर्मन् ने नारायणवर्मन् से युद्ध छेड़े जिसमें उसकी विजय हुई। अजयगढ़ से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख का कथन है कि उसने मालवों और चेदियों की लक्ष्मी अपहृत कर लिया।

चोलों से युद्ध—प्रतीत होता है नरवर्मन् ने चोलों से संघर्ष किया जिसमें उसकी पराजय हुई। विक्रम-चोलन्-उला का कथन है कि विक्रम चोल के सेनापति ने जो एक पल्लव मंडलिक था (१११८-११३३ ई०) सिंघल कोङ्कण, और मालव के राजाओं को पराजित किया।

गुजरात के चालुक्यों से युद्ध—कर्ण पर उदयादित्य की विजय होने के बाद गुजरात और मालवा के संघर्ष अस्थायी रूप से रुके। कर्ण का उत्तराधिकारी जयसिंह-सिद्धराज (१०९६-११४५ ई०) बहुत ही छोटा था जब वह ११९६ ई० में अणिहलवाड की गद्दी पर बैठा। उसकी माता मयणल्ल देवी प्रतिशासन बनी और कुछ समय तक राज-कार्य संचालन किया। स्वयं प्रशासन का प्रभार ग्रहण करने के कुछ ही समय बाद बड़ी तीव्रता के साथ मालवा से पुन: झगड़ा आरम्भ हुआ। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि जब सिद्धराज तीर्थ यात्रा पर था और गुजरात से अनुपस्थित था तब मालवपति यशोवर्मन् ने उसके राज्य पर धावा बोला। चालुक्य मंत्री शान्तू जिस पर प्रशासन का प्रभार था अपनी स्थिति निर्बल समझ कर अपमानजनक शर्तों पर आक्रामक को समर्पण किया।

गुजरात लौटने पर सिद्धराज ने मंत्री को, उसके आचरण पर तीव्ररूप से दोषी ठहराया और मालवा पर चढ़ाई करने के लिए सेना को एकत्र करने की तुरन्त आज्ञा दी। इस तरह परमारों से एक युद्ध छिड़ा जो १२ वर्ष तक चलता रहा और यशोवर्मन् के पराजित होने और बन्दी बनाए जाने पर समाप्त हुआ। आगे चल कर यह दिखाया जायगा कि ३ वर्ष के अल्प शासन के बाद यशोवर्मन् ११३६ ई० में चालुक्य राजा का बन्दी बनाया गया। अत: यदि लड़ाई की दीर्घ अवधि के सम्बन्ध में मेरुतङ्ग का कथन सत्य है तो यशोवर्मन् ने निश्चय ही अपने पिता नरवर्मन् के शासन काल

में और प्रत्यक्षतः उसके आदेश पर गुजरात पर चढ़ाई की थी।

जिनमण्डल कृत कुमारपाल प्रबन्ध वर्णन करता है कि सिद्धराज ने प्रण किया था कि जब वह नरवर्मन् का बध करेगा तो वह उसकी त्वचा से अपनी तलवार की एक म्यान बनाएगा। यह युद्ध १२ वर्ष तक चलता रहा और नरवर्मन् के पराजित और बन्दी किए जाने पर समाप्त हुआ। किन्तु सिद्धराज ने अपने प्रण को पूरा नहीं किया क्योंकि उसके मंत्रियों ने उसे बताया कि राजा अवध्य है। यह संदिग्ध है कि चालुक्य राजा सचमुच नरवर्मन् को बन्दी बनाने में सफल हुआ, यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नरवर्मन् की पराजय हुई थी।

मालवा प्रशासन की ये सब पराजय निश्चय ही प्रमाणित करती हैं कि बारहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में इसकी सामरिक शक्ति की अधोगति थी। न तो नरवर्मन् और न उसके उत्तराधिकारी इसके पूर्वगौरव में पुनः स्थापन के सम्बन्ध में कुछ कर सके। अतः बहुत ही अल्पकाल में एक अत्यन्त गहरी विपत्ति परमारों पर आई जिससे आगामी दीर्घकाल तक उनकी राजनीतिक सत्ता लोप रही।

नरवर्मन् स्वयं एक कवि तथा उन व्यक्तियों का संरक्षक था जो अपना जीवन साहित्यिक कार्य-कलापों में अर्पण किए थे। उसने उनको सहानुभूति तथा भौतिक सहायता प्रदान की। उसने अनेक स्तुतियाँ और श्लोक रचे। उसने अनेक मंदिर बनवाए यद्यपि अब उनके इनेगिने अवशेषों का ही पता चल सकता है। उत्कीर्ण अभिलेखों के साक्ष्य के अनुसार उसने नागपुर और भिलसा में भवन निर्माण कार्य किए।

नरवर्मन् की राज्ञी मोमल देवी से यशोवर्मन् नामक एक पुत्र हुआ जो ११३३ ई० में अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

यशोवर्मन्—यशोवर्मन् मालवा के सिंहासन पर उस समय बैठा जब इसके प्रायः समस्त सामरिक साधन गुजरात के चालुक्यों से दीर्घकाल पर्यन्त युद्ध से क्षीण हो गए थे। वह न तो कुशल सामरिक नेता था, और न उसके पास एक दक्ष कूटनीतिज्ञ की सूक्ष्म दृष्टि ही थी जिसकी परमार वंश को इसके वेगयुक्त अतःपतन के उन तमाच्छादित दिनों में अत्यंत आवश्यकता थी। अतः यह स्पष्ट था कि मालवा पर पुनः एक भयानक घोर विपत्ति आने वाली है।

प्रतीत होता है विजयपाल पहले धारा के परमारों का एक राज्यपाल था। नरवर्मन् की मृत्यु के थोड़े समय पूर्व उसने अधीश्वर का साथ छोड़ कर अपनी स्वतंत्रता घोषित की। उसके शासन का एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११९०. आषाढ़ तदनुसार जून ११३३ ई० इग्नोद में एक नवनिर्मित मंदिर की दीवाल में पाया गया है। यह अभिलेख स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि नरवर्मन् के शासन के उत्तरार्द्ध काल से

परमार राज्य का विखण्डन आरंभ हो गया था किन्तु इससे भी अधिक भयंकर विपदाएँ यशोवर्मन् के भाग्य में लिखी थीं।

इस समय के लगभग परमार शाकम्भरी के चाहमानों के एक आक्रमण से आतंकित हुए। विग्रहराज तृतीय, पृथ्वीराज और अजयराज (जयदेव) चाहमान दुर्लभ के बाद गद्दी पर बैठे जिसने चालुक्यों के विरुद्ध उदयादित्य की सहायता की। एक प्रस्तर उत्कीर्ण लेख अभिकथन करता है कि अजयराज ने उज्जैन तक के प्रदेश को जीता। 'पृथ्वीराज विजय' का कथन है कि अजयराज ने मालवपति सुल्हण पर आक्रमण कर उसे परास्त किया। सोमेश्वर के बिजोलिया उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११६९ ई० का कथन है कि जगदेव ने दंडनायक सुल्हण को युद्ध में बन्दी बनाया और एक ऊँट की पीठ से उसको बाँध कर अजमेर लाया। अजयराज ११३९ ई० के कुछ पूर्व वर्तमान था जो उसके उत्तराधिकारी अर्णोराज की पूर्वतम ज्ञात तिथि है। उसका समकालीन मालव नरेश या तो नरवर्मन् था या यशोवर्मन्। अतः बिजोलिया उत्कीर्ण लेख के सुल्हण को दंडनायक रूप में वर्णन करना ठीक प्रतीत होता है।

गुजरात के चालुक्यों के साथ युद्ध—गुजरात सेना ने सिद्धराज के नेतृत्व में मालवा की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ थे नदुल नरेश आशाराज और एक भील सरदार जिसकी सहायता उस पहाड़ी प्रदेश में उसके लिए बहुत मूल्यवान थी। बिना अधिक कठिनाई के वह उज्जैन नगरी के वहिर्भागों में पहुँचा और शिप्रा नदी के तट पर अपना शिविर गाड़ा। यशोवर्मन् ने वीरतापूर्ण प्रतिरोध प्रस्तुत किया, किन्तु वह परास्त किया गया और बन्दी बनाया गया। उज्जैन सहित समस्त अवन्तिदेश जयसिंह के हाथों में आ गया, और गुजरात साम्राज्य में सम्मिलित किया गया।

मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि राजा ने धारा के किले पर घेरा डाला, किन्तु उस पर अधिकार करने में वह असफल रहा और पीछे हटने की तैयारियाँ करने लगा। इसी बीच उसके मन्त्री मुंजल ने यह सूचना प्राप्त की कि किले के दक्षिणी द्वार पर सावधानी पूर्वक आक्रमण करने से सफलता मिलने की अच्छी आशा है, क्योंकि यहाँ की प्रतिरक्षा सर्वाधिक निर्बल है। जयसिंह ने जैसे ही यह सुना अपनी गज सेना लेकर उस स्थान की ओर लपका और कठोर प्रयत्न करने के बाद नगर को अपने अधिकार में करने में सफल हुआ। यशोवर्मन् ने हथियार डाल दिया और चालुक्य सम्राट् को बन्दी बना लिया गया। इस घटना के बाद मालवा पर जयसिंह का आधिपत्य स्थापित हो गया।

यद्यपि इन दोनों जैन विद्वानों के वर्णन, विस्तार में कुछ पृथक हैं, किन्तु यशोवर्मन् पर सिद्धराज की पूर्ण सफलता के संबंध में दोनों में पर्याप्त सहमति है जिसकी दृढ़ पुष्टि अनेक पूर्वकालीन अभिलेखों से होती है। 'सुकृत संकीर्तन' ने लिखा

है कि जयसिंह ने धारापति यशोवर्मन् को कारागार में डाला। सोमेश्वर कृत 'सुरथोत्सव' और 'कीर्ति कौमुदी' दोनों में वर्णन है कि जयसिंह ने परमारों को हराया, नरवर्मन् के नगर धारा को विजय किया और धारापति को लकड़ी के पिंजड़े में डाला।

मालवा के राजा पर सिद्धराज की विजय मात्र सामरिक अभियान न था। उसने परमार प्रशासन को पूर्णतया उखाड़ कर इस प्रदेश को अपने साम्राज्य में मिला लिया। मेरुतुंग ने लिखा है कि सिद्धराज ने यशोवर्मन् को मालव में रहने की अनुमति नहीं दी, बल्कि वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया। वि० सं० १२६३ से लेकर १२९९ तक की विभिन्न तिथियों के बहुसंख्यक चालुक्य दानपत्रों ने सिद्धराज को अवन्तिनाथ लिखा है। सिद्धराज ने दंड दादाक के पुत्र महादेव को जो नागर जाति का था अवन्ति प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया। जयसिंह का एक प्रस्तर उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित वि० सं० ११९५ तदनुसार ११३८ ई० जो उज्जैन में पाया गया हमें बताता है कि राजा ने यशोवर्मन् को हरा कर बलपूर्वक अवन्ति मंडल पर अधिकार किए रहा, और उसकी ओर से महादेव उस प्रदेश पर प्रशासन कर रहा था। जहाँ तक यशोवर्मन् का संबन्ध है यह वर्णन है कि वह थोड़े ही समय में गुजरात के कारा-वास से अजमेर के चाहमानों की सहायता से भाग आया। प्रतीत होता है कि उसने जयसिंह की शर्तें मान लीं; और अंततः धारा में या मालवा के किसी अन्य भाग में उसके मंडलिक रूप में राज्य करता रहा। अपने अभिलेख में तिथ्यंकित वि० सं० ११९१ में वह 'महाराजाधिराज' कहा गया है। यह विरुद स्वतंत्र सम्राट् की उपाधि है, किन्तु एक वर्ष बाद वि० सं० ११९२ में निस्सृत एक अभिलेख में उसने 'महाराज' की मंडलिक उपाधि ग्रहण की।

वि० सं० ११९१ और ११९३ के बीच के वर्षों में मालवा गुजरात साम्राज्य का एक अंश था, क्योंकि अनुवर्ती तिथि जयसिंह के उत्कीर्ण लेख की पूर्वतम ज्ञात तिथि है जिसमें उसको अवन्तिनाथ के रूप में गौरवान्वित किया गया।

इस काल में चालुक्य राज्य में केवल मालवा ही नहीं मिलाया गया था, बल्कि उसकी उत्तरी सीमा दक्षिण मारवार तक विस्तृत की गई थी जहाँ नदोल के चाहमानों ने जयसिंह के आधिपत्य को स्वीकार किया किन्तु इस सम्राट् की साम्राजिक नीति अंततः असफल रही। वह अपने शासन के बाद के वर्षों में सुखी और गौरवपूर्ण जीवन न व्यतीत कर सका। उसके मंडलिक चाहमान आशाराज ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। आशाराज का पुत्र कटुदेव अणिहलवाड प्रशासन के नियंत्रण से स्वतंत्र दक्षिणी मारवार पर राज्य करता हुआ दिखाई पड़ता है। किन्तु इसके पूर्व मालवा के परमार उसके नियंत्रण से पृथक् हुए प्रतीत होते हैं। दोहद उत्कीर्ण लेख वर्णन करता है कि

जयसिंह ने संभाव्यतः, जैसा कि प्रो० बुहलर ने टिप्पणी की है 'मंडु' और धार के राजपथ के रक्षार्थ—अपनी सेनाओं के लिए मार्ग साफ रखने के लिए, और इस ओर से अचानक आक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरक्षा करने के लिए, दधिपद और अन्य जनपदों (मालवा और गुजरात के बीच पंचमहल में वर्तमान दोहद) के लिए एक सेनापति नियुक्त किया। अवन्ति जयसिंह के हाथ से निकल गया था, यह इस तथ्य से प्रकट है कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल को सिंहासनारूढ़ होने के तुरन्त बाद ही इसे उज्जैन-पति से पुनः विजय करना पड़ा।

यशोवर्मन्—यशोवर्मन् के बाद उसका पुत्र जयवर्मन् सिंहासन पर बैठा। महाराजाधिराज विरुद धारण कर अपने को स्वतंत्र सम्राट् घोषित किया। इस राजा ने अपने पैतृक प्रदेश को गुर्जरों के आधिपत्य से ११३८ ई० के लगभग किसी समय संभाव्यतः मुक्त किया।

यद्यपि जयवर्मन् अधीनता के बन्धन से अपने राज्य को मुक्त करने में सफल हुआ किन्तु वह इस पर अधिक समय तक अपना स्वत्व न बनाए रख सका। परमारों की साम्राजिक शक्ति पहले ही छिन्न-भिन्न हो गई थी और जयवर्मन् अपनी सामरिक शक्ति को पुनः प्राप्त करने का कोई वास्तविक प्रयत्न न कर सका। मालवा पर अन्य कई ओर से आक्रमण का संकट आ उपस्थित हुआ। इसी समय के लगभग नरवर्मन् के विपक्षी सल्लक्षण वर्मन् के एक भतीजे चंदेल्ल मदनवर्मन् (११२८-११६३ ई०) ने मालव पर आक्रमण किया। उसके शासन के मऊ उत्कीर्ण लेख ने अभिलेखन किया है कि उसने वेग से मालवपति को अभिभूत किया जो दर्प से भरा हुआ था। चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठम् के बाद सोमेश्वर तृतीय (११२८-११३८ ई०) और जगदेकमल्ल द्वितीय (११३९-११४८ ई०) गद्दी पर बैठे। जगदेकमल्ल एक बड़ी सेना का नेतृत्व करते हुए मालव पर टूट पड़ा। जयवर्मन् इस शक्तिशाली शत्रु के भीषण आक्रमण के सामने ठहर नहीं सका। प्रतीत होता है कि उसकी गहरी पराजय हुई और वह युद्ध क्षेत्र में मारा गया। एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित लगभग ११५७ ई० ने अभिलेखन किया है कि जगदेकमल्ल ने मालवपति को विनष्ट किया। दूसरे उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११५८ ई० का कथन है कि अधिकार किए बिना वह मानव से चला गया। एक तीसरे उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित लगभग ११६५ ई० ने वर्णन किया है कि उसने मालव नरेश की लक्ष्मी को पूर्णतया लूटा। प्रतीत होता है कि इस अभियान में विष्णु वर्धन् के पुत्र होयसल नरसिंह प्रथम ने, जो उसका मंडलिक था, जगदेकमल्ल की सहायता की थी। लगभग ११५० ई० के एक अभिलेख का कथन है कि नरसिंह ने मालव राजा को अभिभूत किया। तिथ्यंकित ११६२ ई० के हुन्सुर उत्कीर्ण लेख ने इस तथ्य की पुष्टि करने के साथ यह भी लिखा है कि उसकी तलवार मालव राजा का भक्षण

करने को आतुर थी । उदयवर्मन् का भोपाल दानपत्र इस तथ्य का अप्रत्यक्ष रूप से साक्ष्य है कि जयवर्मन् अपने सिंहासन और राज्य से विहीन हुआ । इसने लिखा है कि लक्ष्मीवर्मन् के शासन का अन्त हो जाने के बाद बलपूर्वक सम्राट्पद प्राप्त किया ।

इस प्रकार सामाजिक परमार प्रशासन ने दूसरी भयानक विपत्ति सहन की, और इस बार उसको लगभग २५ वर्ष तक बिना किसी राजनीतिक सत्ता के रहना पड़ा । यह घटना अवश्य ही ११४३ ई० के कुछ समय पूर्व हुई होगी जो लक्ष्मीवर्मन् की पूर्वतम ज्ञात तिथि है । जयवर्मन् के बाद बल्लाल नामक एक राजा ने मालव पर राज्य किया । उसकी वंशावाली के सम्बन्ध में तथा किस तरह उसने अपना राज्य प्राप्त किया, इसके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है । मैसूर के होयसलों में यह नाम अत्यन्त सामान्य था । हो सकता है कि वह होयसल राजवंश का एक वंशज हो, और होयसलों और चालुक्यों की सम्मिलित सेनाओं द्वारा जयवर्मन् के पददलित किए जाने पर भाग्य लक्ष्मी उसके हाथ लगी हो । किन्तु बल्लाल अपने भाग्य को दीर्घकाल तक न भोग सका । शीघ्र ही उसे गुजरात सम्राट् कुमारपाल से संघर्ष करना पड़ा जिसने उसको पराजित किया और मार डाला । कुमारपाल ने तब मालव को विजय किया । इस भाग की अचिन्त्यगति द्वारा मालवा पुनः चालुक्यों का एक प्रदेश बना जिन्होंने इस बार इस पर अपनी सत्ता को अधिक दृढ़ आधार पर स्थापित किया । इस काल में साम्राजिक परमार वंश धुंध में विलीन हो गया । अब मालवा में कोई ऐसा 'उदयादित्य' नहीं था जो चालुक्यों की सेनाओं के विरुद्ध दृढ़ अवरोध प्रस्तुत कर सके । अतः इसके अनिवार्य परिणाम हुए । परमार इस बाढ़ के जलप्लावन की गहराई में दीर्घ कालावधि तक डूबे रहे ।

अध्याय | ६

मालवा के परमारों का पतन

मालवा विजय करने के बाद चालुक्य कुमारपाल की ११७२ ई० में मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी निर्बल थे। परमारों ने पुन: एक बार मालवा की अपनी पैतृक जन्मभूमि प्राप्त करने का प्रयत्न किया। विन्ध्यवर्मन् (अजयवर्मन) सिंहासनाच्युत जयवर्मन् का पुत्र था। उसने मूलराज द्वितीय के शासनकाल के पूर्वार्द्ध में घनघोर युद्ध के बाद गुर्जरों की मुट्ठी से संपूर्ण मालवा प्रदेश इसकी राजधानी धारा सहित छीन लिया। मूलराज द्वितीय ने सेनापति कुमार को एक बड़ी सेना के साथ विन्ध्यवर्मन् के विरुद्ध भेजा। उसको कुछ प्रारंभिक सफलता प्राप्त हुई। उसने गोगस्थान नाम्नी नगरी को विनष्ट किया और जिस स्थान पर राजप्रासाद था वहाँ एक कुँआ खुदवा दिया। उसने मालवा प्रदेश को लूटा और उसके सारे धन को अपहृत किया। प्रतीत होता है अन्ततः विन्ध्यवर्मन् विजयी हुआ। विन्ध्यवर्मन् ने मालवा में शान्ति और व्यवस्था प्रतिष्ठापित की और कुछ वर्षों में इसने अपनी सामान्य स्थिति पुन: प्राप्त की।

गुजरात में अव्यवस्था व्याप्त थी। अत: गुजरात की ओर से मालवा पर आक्रमण का संकट थोड़े समय के लिए टला रहा। दक्खिन में उथल-पुथल तथा राजवंशों के परिवर्तन हुए फिर भी परमार राज्य के लिए उस ओर से आक्रमण का संकट दूर नहीं हुआ था।

होयसलों से युद्ध—ईसवी सन् ११७३ और ११७७ के बीच में किसी समय बल्लाल द्वितीय के नेतृत्व में होयसलों ने मालवा पर लूट-मार अभियान किया। उसने अपने चारों ओर के और भी प्रदेशों को लूटा। अत: अनेक शासक राजाओं ने जिनमें विन्ध्यवर्मन् भी सम्मिलित था उसके विरुद्ध एक संघ बनाया और उन्होंने इसकी सफलता के लिए सेनाएँ प्रदान कीं। सम्मिलित सेनाओं ने मैसूर पर अकस्मात् धावा बोला किन्तु बल्लाल द्वितीय ने उनको सफलतापूर्वक परास्त किया है। अर्सिकेरे उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित १२०६ ई० में लिखा है कि बल्लाल द्वितीय चोल, मालव और गुर्जर के लिए ज्वर था।

देवगिरि के यादवों से युद्ध—यादव भिल्लम ने विन्ध्यवर्मन् के प्रदेश पर

धावा बोला और इसको सफलतापूर्वक लूटा । इसके बाद चालुक्य भीम द्वितीय को हरा कर वह दक्षिणी मारवाड़ में बलात् घुस गया जहाँ उसकी प्रगति नदोल के चाहमान राजा केल्हण ने रोकी । इन अभियानों में भिल्लम को सारहीन गौरव के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगा ।

मुसलमानों का आक्रमण—जिस समय उत्तर में यादव अपनी सामरिक दक्षता प्रदर्शित कर रहे थे और परमार और चालुक्य अपने प्रदेशों की प्रतिरक्षा में लगे हुए थे, शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के नेतृत्व में मुसलमानों ने हिन्दुस्तान के द्वार पर पुनः टक्कर मारी । इस बार वे भारत में मुसलमान साम्राज्य स्थापित करने की दृष्टि से आए थे । तराइन के युद्ध-क्षेत्र में मुसलमान और हिन्दुओं ने एक दूसरे का सामना किया । अजमेर के महान् चाहमान राजापृथ्वीराज ने मात्र दो वर्ष पूर्व शिदाब-उद्दीन पर एक गहरे घाव का आघात किया था और उसकी सेना को परास्त किया । भारत के अन्य राजाओं की हृदयहीनता और उदासीनता के कारण तथा स्वयं पृथ्वीराज की आमोदप्रियता, असावधानी, आलस्य और उपेक्षा के कारण अजमेर सहित समस्त उत्तरी भारत मुसलमानों के अधिकार में चला गया । मुसलमानों ने शान्तिपूर्ण हिन्दुओं पर अत्याचार करना आरंभ किया । जहाँ-जहाँ मुसलमान आक्रामक गए अपने साथ विध्वंस और लूट लेते गए । मन्दिर धराशायी किए गए और मूर्त्तियाँ फेंकी और तोड़ी गईं । लुटेरों के अत्याचार से बचने के लिए लोग मालवा आए ।

मूल्यांकन—विन्ध्यवर्मन् एक योग्य सैनिक और कुशल सेनापति था । उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । मालवा में परमार आधिपत्य पुनः स्थापित कर उसने अपने परिवार की महान् सेवा की । यह उसके असीम अध्यवसाय और अथक कर्मठता का परिचायक है कि उसने मालवा को विदेशी नियंत्रण से मुक्त किया । उसका शासन कब समाप्त हुआ यह ज्ञात नहीं है ।

सुभटवर्मन्—विन्ध्यवर्मन् के बाद उसका पुत्र सुभटवर्मन् मालवा के सिंहासन पर बैठा । उस समय गुजरात की स्थिति गम्भीर थी । चालुक्य भीम द्वितीय के मंत्रियों और मण्डलिकों ने उसके राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर आपस में बाँट लिया और वे स्वतंत्र राजाओं के रूप में शासन करने लगे ।

लाट पर विजय—गुजरात की इस अव्यवस्था का लाभ उठा कर यादव-राजा भिल्लम और मरु के चाहमान राजा ने गुजरात पर आक्रमण किए, किन्तु वे असफल रहे । कुतुबउद्दीन ऐबक ने ११६४ ई० में संपूर्ण प्रदेश को विध्वंस किया । सुभटवर्मन् ने इस अवसर को हाथ से जाने न दिया और अविलम्ब चालुक्य साम्राज्य के लाट प्रदेश पर आक्रमण किया, उसको लूटा और अपने राज्य में मिला लिया । उसने बहुसंख्यक जैन मंदिरों को लूटा और विनष्ट किया । बाद को वस्तुपाल ने

स्तम्भन के पार्श्वनाथ मंदिर का उद्धार किया, दभोइ के वैद्यनाथ मंदिर को उन्नीस स्वर्ण कुम्भ अर्पण किए क्योंकि मालवभूप सुभटवर्मन् वहाँ के स्वर्ण कुम्भों को अपहृत कर ले गया था।

गुजरात पर आक्रमण—लाट में दृढ़ता से अपना पैर जमाने के बाद परमार सेना ने गुजरात की राजधानी अणहिलवाड के विरुद्ध प्रयाण किया। लूट और विध्वंस करती हुई वह सौराष्ट्र में सोमनाथ नगरी के सिंहद्वारों तक पहुँच गई किन्तु भीम द्वितीय के एक राज्यपाल श्रीधर ने उनको परास्त किया और पीछे हटने को बाध्य किया। चालुक्य भीम द्वितीय के मंत्री लवण प्रसाद ने भी एक शक्तिशाली सेना एकत्र कर मालवभूप सुभटवर्मन् का पीछा किया। अतः सुभटवर्मन् अपनी समस्त सेनाओं के साथ गुजरात से लौट आया। मेरुतुंग और कीर्त्तिकौमुदी में और दभोइ उत्कीर्ण लेख में लवणप्रसाद की इस विजय का उल्लेख है।

यादवों से युद्ध—यादव भिल्लम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जयतुगि (११९१-१२१० ई०) में सिंहासन पर बैठा। उसने मालवा की दक्षिणी सीमा पर नियुक्त मालव सेनापति को हराया। किन्तु इससे मालवा को कोई भौतिक हानि न हुई।

मूल्यांकन—उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि सुभटवर्मन् युद्ध विद्या में अत्यंत कुशल था। उसने लाट को परमार राज्य में सम्मिलित किया। इसके अतिरिक्त वह धर्मात्मा था और धार्मिक कृत्यों में लगा रहता था।

अर्जुनवर्मन्—सुभटवर्मन् के बाद उसका पुत्र अर्जुनवर्मन् सिंहासन पर बैठा। उसका राज्याभिषेक १२१० ई० में हुआ।

गुजरात के चालुक्यों से युद्ध—अर्जुनवर्मन् ने चालुक्यों से युद्ध चालू रखा। उस समय गुजरात और भी अधिक दयनीय अवस्था में था। जयसिंह नामक एक अपहर्ता ने १२१० ई० के कुछ पूर्व भीम द्वितीय को कुछ समय के लिए सिंहासनाच्युत कर दिया। किन्तु अन्य प्रान्तीय राज्यपाल उसके अधिकार को स्वीकार नहीं करते थे और भीम द्वितीय को ही अपना अधीश्वर मानते थे। अर्जुनवर्मन् ने जयसिंह पर आक्रमण किया। जयसिंह मालव सेना के सामने ठहर न सका और भाग गया। प्रतीत होता है इसके बाद जयसिंह ने अर्जुनवर्मन् से सन्धि की और अपनी पुत्री विजय श्री का विवाह उससे किया।

यादवों से युद्ध—यादव जैतुतिग का उत्तराधिकारी सिंहण (१२०९ ई०—१२४१ ई०) शक्तिशाली राजा था उसने मुसलमानों को हराया, होयसलवीर बल्लाल को उखाड़ फेंका, और आन्ध्र के राजा को झंझागिरि के शासक कक्कल्ल को, और कोल्हापुर के शिलाहार भोज को झुकाया। उसने लाट और मालवा पर आक्रमण

किया । अर्जुनवर्मन् और उसके मण्डलिक लाट के सिन्धुराज ने उसको रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न किया किन्तु वे असाधारण रूप से असफल रहे । इस युद्ध में सिन्धुराज काम आया । लूटमार करने के बाद यादव सेना लौट गई ।

अर्जुनवर्मन् का शासन शान्ति और व्यवस्थापूर्ण था । 'पारिजातमंजरी' ने इस समय के मालवा के गौरव को लिपिबद्ध किया है । जनता सुखी थी और परिमार्जित रुचि के सामाजिक कार्यों में भाग लेती थी । अर्जुनवर्मन् विद्या का संरक्षक था और विद्वानों को साहित्य-अनुशीलन में प्रोत्साहित करता था । वह स्वयं महान् कवि था । मदन उसका राजकवि था और विख्यात जैन ग्रन्थकार आशाधर उसके राज्य के नल कच्छपुर नगर में रहता था । उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ अतः उत्तराधिकार महाकुमार हरिश्चन्द्र के पुत्र देवपाल को मिला ।

देवपाल—देवपाल हरिश्चन्द्र का पुत्र था । संयोगवश उसको मालवा का सिंहासन मिला । उसने 'साहसमल्लविरुद' धारण किया ।

देवपाल के उत्कीर्ण लेख तथा अर्जुनवर्मन् के उत्कीर्ण लेख से प्रभावित होता है कि तेरहवीं शती ईसवी के प्रारम्भिक भाग में परमार राज्य पूरब में कम से कम उदयपुर तक, दक्षिण में होशंगाबाद और नीमर जनपदों तक, और पश्चिम में भड़ौंच जनपद तक फैला हुआ था । इस वंश के बाद के उत्कीर्ण लेखों से प्रकट होता है कि बारहवीं शती ईसवी के मध्य से वागड़ परमारों के हाथ से निकल गया और मेवार के गुहिलों का इस पर अधिकार हो गया । उसके शासनकाल में बिल्हण ने जो कुछ समय के लिए राज्य के प्रशासनिक कार्य से सेवानिवृत्त हुआ था । पुनः सान्धिविग्रहिक के रूप में पद ग्रहण किया । लाट का राजा सिन्धुराज का पुत्र शंख (संग्रामसिंह) मालवीयराम देवपाल का मण्डलिक था ।

शंख—शंख की युद्धकला में आश्चर्यजनक दक्षता थी । उसने देवगिरि से यादवों और गुजरात के चालुक्यों से युद्ध किया । उसके राज्यारोहण के कुछ समय बाद यादवों ने लाट पर एक भारी आक्रमण किया, और वे नर्मदा तक बढ़ गए । शंख ने उनको असाधारण रूप से परास्त किया । इस समय के लगभग उत्तर से अर्णवराज के पुत्रों ने लाट पर आक्रमण किया किन्तु मालव भूप की समयोचित मध्यस्थता से वह विनाश से बच गया । कुछ समय बाद यादवों ने शंख पर पुनः आक्रमण किया और शंख को बन्दी कर लिया । इसके बाद यादवराज सिंहण एक पक्ष, और देवपाल और उसके मण्डलिक शंख दूसरे पक्ष के बीच सन्धि हुई ।

गुजरात के विरुद्ध युद्ध—कुछ समय पूर्व चालुक्यों ने लाट प्रदेश के कैम्बे पर अधिकार करके चालुक्य साम्राज्य में मिला लिया । शंख ने इस पर पुनः अधिकार

करने के लिए युद्ध घोषित किया किन्तु चालुक्य सचिव वस्तुपाल ने उसको पीछे हटने के लिए विवश किया।

इस पराजय के बाद देवपाल और शंख ने यादव सिंहण से मिलकर गुजरात पर आक्रमण करने के लिए एक संगठन बनाया। इस समय चालुक्य राजा वीरधवल तुरुष्क आक्रमण को पीछे ढकेलने के लिए उत्तर की ओर गया हुआ था। इससे उसके शत्रुओं को बड़ी सुविधा हुई। वीरधवल ने मुसलमानों पर विजय प्राप्त की। इस विजय के बाद वीरधवल ने शंख से एक सन्धि की। 'प्रबन्धचतुर्विंशति' में लिखा है कि वीरधवल ने धारावर्ष की सहायता से सुरत्राण मौजदिन (मुइज़्ज़ुद्दीन इयलतिमिश) को हराया।

मुसलमानों द्वारा मालवा पर आक्रमण—जिस समय देवपाल गुजरात साम्राज्य को विनष्ट करने में व्यस्त था। मुसलमानों ने परमार राज्य की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर रण-नाद किया। मुसलमान अजमेर सहित उत्तरी भारत के अधिकांश भाग को ११९२-३ ई० में विजय कर चुके थे और उन पर दिल्ली से राज्य कर रहे थे। उन्होंने १२२६ ई० परमार राज्य की उत्तरी सीमा के समीप स्थित मन्दसौर किले को विजित किया और उन्होंने गुजरात पर आक्रमण किया किन्तु वीरधवल ने उनको पीछे खदेड़ा। इसी समय के लगभग देवपाल ने यादवों के साथ गुजरात पर एक सम्मिलित आक्रमण किया। जातीय ईर्ष्याओं से अंधे होकर उस संकट की ओर न देखा जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, और उसे उस अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा। मालवा मुसलमानों के आक्रमणों का ग्रास हुआ। इयलतिमिश ने १२३३-३४ ई० में ग्वालियर पर अधिकार किया और अपने सैन्यदलों को मालवा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। देवपाल इस आक्रमण के लिए तैयार न था। सुलतान ने भिलसा किले पर सुगमता से अधिकार कर लिया और उज्जैन नगरी में विजय प्रयाण किया। फिरिश्ता ने लिखा है कि इस अवसर पर मुसलमानों ने महाकाल को अर्पित किए हुए एक भव्य मंदिर को विनष्ट किया जो सोमनाथ के मंदिर के ढाँचे पर बना था। इस मन्दिर को बनाने में ३०० वर्ष लगे थे और यह सौ हाथ ऊँची एक दीवाल से घिरा था।

इस तरह परमार राज्य को एक दूसरा उग्र धक्का लगा जिसने निःसन्देह इसके ह्रास और पतन की गति को तीव्र किया। इस भीषण उथल-पुथल में धोलक के वीरधवल ने देवपाल के मण्डलिक शंख से भड़ौंच छीन लिया।

जयतुगिदेव—इसने बालनारायण नाम ग्रहण किया। इसके समय से परमार वंश का द्रुतह्रास और क्षय आरम्भ हुआ और अन्ततः यह समाप्त हुआ।

यादवों से युद्ध—सिंहण के पौत्र कृष्ण ने १२४७ ई० के बाद किसी समय

मालवा पर धावा किया और उसको लूटा किन्तु उसने इसके किसी भाग पर अधिकार नहीं किया। राजा कृष्ण द्वारा की गई लूट खसोटों ने निश्चय ही जयतुगिदेव के सामरिक साधनों को क्षीण किया। उसको अपनी दक्षिणी सीमा की प्रतिरक्षा के लिए अपनी समस्त सेनाओं को खड़ा करना पड़ा। मुसलमानों ने उत्तर भारत में कई अन्य प्रदेशों को वशीभूत किया किन्तु जयतुगिदेव उन घटनाओं के प्रति आँख मूँदे रहा, और भावी संकट के विरुद्ध अपने राज्य की प्रतिरक्षा के लिए कोई प्रबंध न किया। दिल्ली के मुसलमान शासक इलतुतमिश का ध्यान मालवा की क्षीण सामरिक शक्ति की ओर गया। वह ऐसे अवसर की ताक में था। उसने शीघ्र ही अपने सेनापति बलबन को दक्षिणी हिन्दू राज्य को वशीभूत करने के लिए भेजा। उन्होंने चंदेरी तथा अन्य उनके स्थानों के अतिरिक्त मालवा पर अधिकार किया। इससे परमारों की गिरती हुई शक्ति को एक और गहरा धक्का लगा।

धोल्क के बाघेलों से युद्ध—मालवा पर तुरुष्कों द्वारा ढाई गई विपत्ति को देखकर चालुक्य बीसलदेव ने मालवा पर आक्रमण किया और इसकी राजधानी धारा को लूटा। संभाव्यत: उसने यह इसलिए किया कि जब उसका पिता वीरधवल उत्तर में तुरुष्कों से युद्ध कर रहा था तो जयतुगिदेव के पिता देवपाल ने यादवों से मैत्री कर गुजरात पर आक्रमण किया था। एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि बीसलदेव के आक्रमण से मालवा में प्रज्ज्वलित अग्नि उठते हुए धूम्र से उच्चाकाश में भयंकर अँधेरा छा गया। बीसल ने लूट-मार किया किन्तु इसके किसी भाग को अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया। अनेकानेक आक्रमणों से मालवा अत्यंत क्षीण हो गया और अन्त में इसका पतन हुआ।

जयवर्मन् द्वितीय—ह्रास के इस काल में भी मालवा राज्य का विस्तार उत्तर में कम से कम भानपुर तक, पूरब में सागर जनपद तक और दक्षिण में नीमर जनपद तक था।

रणथम्भोर के चाहमानों से युद्ध—परमारों का एक दूसरा प्रबल शत्रु रणथम्भोर का चाहमान राजवंश था। इस समय दिल्ली और अजमेर में चाहमान शासन पूर्णरूप से समाप्त हो चुका था। ई० सन् ११९२ में पृथ्वीराज तृतीय की पराजय और मृत्यु होने के बाद उसके पुत्र गोविन्दराज ने मुसलमानों की अधीश्वरता में रणथम्भोर में राज्य स्थापित किया। गोविन्दराज का पौत्र वीरनारायण इलतुतमिश के झूठे आश्वासनों में आकर दिल्ली गया और वहाँ विष देकर मार डाल गया। उसके बाद सुलतान ने सरलता से रणथम्भोर को विजित किया। वीरनारायण के चाचा वाग्भट ने वीरनारायण को दिल्ली न जाने का परामर्श दिया था किन्तु उसने अपने चाचा की बात नहीं मानी और वह असंतुष्ट होकर मालवा चला गया। रणथम्भोर

को विजित करने के बाद सुलतान ने मालवा के राजा को आदेश भेजा कि वह वाग्भट को मार डाले। मालवा नरेश इस आज्ञा को पालन करने के लिए सहमत हुआ। वाग्भट को इस षड्यंत्र का पता चल गया और वह मालव राजा की हत्या कर सिंहासन पर बैठ गया। मालवा के साधनों को प्राप्त कर वाग्भट ने रणथम्भोर पर अधिकार किया। प्रतीत होता है कि जिस मालव राजा की वाग्भट ने हत्या की थी वह जयवर्मन् द्वितीय था। यह घटना संभवतः १२६० ई० के कुछ बाद हुई।

जयसिंह द्वितीय—प्रतीत होता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था। वाग्भट के उत्तराधिकारी जैत्रसिंह ने परमारों पर चढ़ाई की और साहसी मालव सेना को झंपैथाघट्ट स्थान पर परास्त किया। अनुवर्ती इतिहास से प्रकट है कि मालवा पर जैत्रसिंह का कोई नियंत्रण न था।

अर्जुनवर्मन् द्वितीय—इसके राज्य में भयानक उपद्रव हुए। अर्जुनवर्मन् और उसके मंत्री के बीच में वैमनस्य उत्पन्न हुआ। मुसलमान इतिहास लेखक वास्साफ ने लिखा है कि दीर्घकालीन युद्धों और अतिशय संहारों के बाद उन दोनों में से हर एक ने उस प्रदेश के एक-एक भाग पर अधिकार कर लिया। इन उपद्रवों के परिणाम स्वरूप मालवा पर प्रतिवर्ष द्रुत आक्रमण किए गए, और बहुत सी सम्पत्ति, धन, बन्दी, और सुन्दर किरबास (चादरें) अपहृत किए गए। फिर भी वहाँ की स्थिति में कोई सुधार न हुआ।

मालवा पर यादवों का छापा—यादव राजा ने मालवा पर एक सफलद्रुत आक्रमण किया। उसके शासन के थानापट्ट (१२७२ ई०) में लिखा है कि वह 'मालवों के प्रद्दीपों को बुझाने में प्रलय का अंधड़ था।'

मालवा पर चाहमान हम्मीर का आक्रमण—इसके बाद रणथम्भोर के चाहमानों के द्रुत आक्रमण आरंभ हुए। जैत्रसिंह के पुत्र चाहमान हम्मीर ने मालवा पर धावा बोला और उसकी सामरिक शक्ति को अतिशय क्षीण किया।

बाघेलों का आक्रमण—परमार राज्य की निर्बलता का लाभ उठाकर धोल्क के बाघेलों ने मालवा पर विजय प्राप्त की। उस समय बाघेलों का राजा सारंगदेव था।

भोज द्वितीय—मालवा पर हम्मीर का दूसरा आक्रमण—अर्जुनवर्मन् के बाद भोज द्वितीय मालवा के सिंहासन पर बैठा। उसके शासन-काल में रणथम्भोर के चाहमान राजा हम्मीर ने पड़ोसी हिन्दू राजाओं की निर्बलता का लाभ उठाकर सामरिक कीर्त्ति-यात्रा पर निकला। उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि मुसलमान उसके ही राज्य पर आक्रमण करने की व्यापक तैयारियाँ कर रहे हैं। हम्मीर गढ़-

मण्डल, धारा, उज्जैन, मेवार, आबू पर्वत, और वर्धमानपुर पर विजय प्राप्त कर रणथम्भोर लौटा।

उस समय जबकि मुसलमान शासक उसके राज्यों की उत्तरी सीमा पर युद्ध-घोष कर रहे थे, हम्मीर ने अपनी जाति के राजाओं से बिना विचारे एक युद्ध-क्रम में अपने को फँसा लिया। उसकी यह कूटनीतिज्ञता की कमी न केवल उसके विनाश की बल्कि परमारों के विनाश की भी कारण बनी। अलाउद्दीन खिलजी के नेतृत्व में १३०१ ई० में मुसलमानों ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। 'हम्मीर महाकाव्य' ने हम्मीर की मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब उसके अन्त:पुर की समस्त रमणियों ने एक चिता पर बैठकर स्वेच्छा से अपने को जलाकर राख कर दिया, हम्मीर अपने साथियों के साथ किले से सवेग निकलकर शत्रुओं पर सहसा टूट पड़ा। उसके समस्त पराक्रमी सेनापति वीरतापूर्वक लड़ते हुए एक के बाद एक सद्गति को प्राप्त हुए। 'अन्त में सौ बाणों से विद्ध शक्तिशाली हम्मीर गिरा किन्तु जीवन रहते विपक्षियों के हाथों में पड़ना गर्ह्य मानते हुए उसने एक ही अन्तिम झटके में अपने ही हाथों से अपने शिर को अपने शरीर से अलग कर दिया।'

मल्लक देव—इसके बाद परमार राज्य के पतन की बारी आई। इस समय मालवा जीवन और स्फूर्ति से रहित प्राय: संज्ञाशून्य हो चला था। इसी बीच मेवार के गुहिलराजा लक्ष्मसिंह ने इस पर भयानक आक्रमण किया और विजय प्राप्त की।

मुसलमानों द्वारा मालवा की पूर्ण विजय—रणथम्मोर के पतन के बाद १३०५ ई० में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चुने हुए सैन्यदल को लेकर मालवा पर आक्रमण किया। मल्लकदेव और उसके सेनापति कोका (गोगा) ने सैनिकों को यथाशक्ति भरती कर एकत्र किया जो कुल मिलाकर ३० या ४० हजार अश्वारोही और असंख्य पदाति थे। मालव सेना के सैकड़ों योद्धा युद्धक्षेत्र में मारे गए, और कोका के प्राण संघर्ष करते हुए निकल गए। मल्लकदेव ने मण्डु के किले में शरण ली। मालवा विजय किया गया और मुसलमान साम्राज्य में मिला गया। सुलतान ने एलुनमुल्क को मण्डु विजय करने के लिए भेजा। एक गुप्त मार्ग से एक भेदिया उसको किले के अन्दर ले गया। वहाँ जाकर वह अकस्मात् मल्लकदेव पर टूट पड़ा और उसको मार डाला।

जयसिंह तृतीय—परमार प्रभुसत्ता मालवा में अब सदा के लिए समाप्त हो चुकी थी, किन्तु मल्लकदेव के उत्तराधिकारी जयसिंह तृतीय ने कुछ समय तक भिलसा में स्वतंत्रता का ध्वज फहराते रखा। बाद को यह प्रदेश भी विजित किया गया और मुसलमान साम्राज्य में मिला लिया गया।

उपसंहार—इस राजवंश ने मध्यभारत के एक विस्तृत क्षेत्र पर असीम

प्रभुता के साथ ५०० वर्ष तक राज्य किया किन्तु पारस्परिक विनाशकारी युद्ध की ज्वालाओं में यह मुर्झा गया और सूख गया। इसने अपने पीछे एक महान् चिरस्थायी सभ्यता और संस्कृति छोड़ी। राजनीति के क्षेत्र में इसकी सफलताएँ भव्य थीं; सरस्वती की वेदी पर इसकी देन अपरिमित थीं; और भवन-निर्माणकला के क्षेत्र में इसकी उपलब्धियाँ अभूतपूर्व थीं; दीर्घकाल तक मुसलसान आक्रमणों की वेगधाराओं को यह रोके रहा। इसकी महान् शक्ति को देखकर ग़ज़नी के महमूद और घोर के शिहाब-उद्दीन मुहम्मद को परमार साम्राज्य के एक पत्थर तक को छूने का साहस न हुआ, अद्यपि उन्होंने मालवा के इर्द-गिर्द के समस्त प्रदेशों को पददलित और विध्वंस किया। यद्यपि अजमेर, कन्नौज, और अणहिलवाड़ की सम्पदाओं की अपेक्षा उज्जैन और धारा की सम्पदाएँ कम द्युतिमान् न थीं, और न महाकाल मूर्त्ति की ख्याति सोमनाथ की मूर्ति की ख्याति से कम थी।

परमारों के सुखद राज्यकाल में हरेक दृष्टि से मालव सभ्यता ने अत्यंत उच्चपद प्राप्त किया। राजनीति के क्षेत्र में भी इसकी सफलता महान् और यशस्वी थी। उस काल में वास्तु विद्या उत्कृष्टता के उच्चशिखर पर पहुँची थी और आज भी उदयपुर के एवं 'उन' के मंदिरों का स्थान भारतीय—वास्तुविद्याविषयक—अवशेषों के श्रेष्ठ नमूनों में उच्च है। संस्कृत साहित्य के भण्डार को अमूल्य देन प्रदान करने का उच्चतम श्रेय उसी को है। परमार राजवंश के शासनकाल में मालवा में जितने अधिक साहित्यिक धुरंधरों ने जन्म लिया उतने कदाचित् ही किसी प्रान्त में हुए हों। किसी देश की संस्कृति का निश्चयात्मक एवं निर्णायिक परीक्षण उसका साहित्य है। अपनी मूल्यवान् विभिन्न और प्रचुर साहित्य की उपलब्धि से मालवा ने अपनी उच्च सफलता प्रमाणित की है। मालवा में जो कुछ निर्माणकार्य रूप प्रगति हुई है उसके पीछे परमार नरेश थे। आदर्श राज्य की निरंतर सिद्धि के लिए उनकी मुक्तहस्त दान-शीलता, चिरंतन प्रोत्साहन और उदार सहानुभूति प्रेरक शक्ति रही है।

अपने पश्चिमी पड़ोसियों के आक्रमणों से मालव राज्य की नींव तक हिल गई और वह फिर पनप न सका। और इसके पूर्व वैभव और गौरव का अन्त हो गया। अनेकानेक हिन्दू राजाओं के बारंबार आक्रमणों से जो गहरा घाव उसको लगा वह भरा न जा सका; और अन्त में मुसलमानों ने इसकी क्षीणकृत शक्ति पर धावा किया। इसके पतन के बाद दक्षिण की ओर मुसलमान आक्रामकों की बाढ़ को रोकने-वाला कोई बाँध न रह गया, और यह बाढ़ दक्षिण के समस्त हिन्दू साम्राज्यों को बहा ले गई।

●

अध्याय ७

परमार राजवंश की आबू शाखा

वाक्पति मुंज ने जालोर, भीनमाल और आबू पर्वत पर तीन नए अवस्थान बनाकर अपने परिवार के राजकुमारों को वहाँ के राज्यपाल नियुक्त किए। जिस प्रदेश पर आबू शाखा का प्रभुत्व था वह अर्बुद मण्डल के नाम से विख्यात था। इसका कम से कम विस्तार पूरब में देलवारा, दक्षिण में पालनपुर और उत्तर में गोद्वार जनपद तक था। पश्चिम की ओर इसकी सीमा पर भिनमाल के परमारों के प्रदेश थे। इसकी राजधानी चन्द्रावती थी जो राजपूताना के सिरोही राज्य के दक्षिण-पूरब के समीप बनस नदी के तट पर स्थित थी।

उत्पल का पुत्र अरण्यराज अपने वंश का सर्व प्रथम राजकुमार था जो इस प्रदेश का अधीश्वर बना। उसके बाद महान् कीर्तिवान् अद्भुत—कृष्णराज सिंहासनारूढ़ हुआ। हेमचन्द्र कृत द्व्याश्रय-महाकाव्य वर्णन करता है कि अर्बुद के राजा ने सौराष्ट्र के मण्डलिक ग्रहरिपु के विरुद्ध युद्ध में गुजरात के चालुक्य मूलराज (९४१—९९७ ई०) को सहायता दी। हो सकता है कि उपर्युक्त आबू का राजकुमार उसका पिता अरण्यराज हो।

धंधुक—इसके बाद इस वंश में महीपाल राजा हुआ। उसका उत्तराधिकारी धंधुक था। वह मालवा के राजा भोज का समकालीन था। उसके शासनकाल में अणहिलवाड़ के घराने और धारा के घराने के बीच की शत्रुता ने उग्रतम रूप धारण किया। महमूद के आक्रमण की धारा जब पीछे हटी तो गुजरात के भीम प्रथम ने अपने राज्य को यथासामान्य सुव्यवस्थित करने में सफलता प्राप्त की। प्रतीत होता है कि इस समय के लगभग उसने आबू के परमारों के विरुद्ध शस्त्र उठाया और माँग की कि उनका शासक धंधुक समर्पण करे किन्तु धंधुक ने चालुक्यों के समक्ष नतमस्तक होना अंगीकार न किया, किन्तु उनके आक्रमण का सामना करने में अपने को असमर्थ देखकर उसने धारा के भोज की शरण ली। तत्पश्चात् भीम ने सरलता से अर्बुदमण्डल पर अधिकार कर लिया और अपना शासन बनाए रखने के निमित्त प्राग्वाटवंश के विमल को वहाँ नियुक्त किया। अपने राज प्रतिनिधित्व काल में उसने आदिनाथ का एक भव्य मंदिर आबू पर्वत पर १०३१ ई० में बनवाया।

पूर्णपाल—किन्तु भीम दीर्घकाल तक आबू पर शासन नहीं कर सका। धंधुक का पुत्र और उत्तराधिकारी पूर्णपाल संभवतः भोज की सहायता से अपने पैतृक राज्य पर अपना शासन स्थापित करने में सफल हुआ। ऐसा वर्णन है कि उसने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अबुर्द मण्डल पर शासन किया। पूर्णपाल के राज्यारोहण की निश्चित तिथि का पता नहीं चलता। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। प्रतीत होता है कि राजा विदेशी नियंत्रण से मुक्त स्वतंत्ररूप से अपने प्रदेश पर राज्य करता था। पूर्णपाल के शासन की समाप्ति के बाद लगभग १०० वर्ष तक इस वंश के इतिहास की जानकारी नहीं है। पूर्णपाल के बाद अनुक्रम से संभवतः धूमराज और ध्रुवभट्ट ने राज्य किया। भोज की मृत्यु से (१०५५ ई० के लगभग) आबू राजकुमारों का चालुक्यों के आक्रमणों के विरुद्ध एक शक्तिशाली सहायक उठ गया। ग्यारहवीं शती ई० के छठवें दशक के उत्तरार्ध में जब परमार शासन विपत्ति झेल रहा था। राजा भीम ने आबू प्रदेश के विरुद्ध पुनः तलवार उठाई। उसने इस प्रदेश को विजय कर लिया किन्तु प्रतीत होता है कि उसने परमार राजकुमारों को अपना मण्डलिक बना कर उनको उस पर शासन करने दिया। इसके बाद आबू पर्वत तेरहवीं शती ई० के अन्त तक चालुक्य साम्राज्य का एक अंग बना रहा।

विक्रमसिंह—बारहवीं शती ई० के द्वितीय चतुर्थांश में आबू पर्वत पर रामदेव राज्य कर रहे थे। उसके बाद उसका भाई विक्रमसिंह सिंहासन पर बैठा। वह चालुक्य कुमारपाल का एक मण्डलिक थी। ११४५ ई० में जब कुमारपाल अजमेर के चाहमानों के विरुद्ध अपनी सेना के साथ प्रयाण कर रहा था तो वह आबू पर्वत पर ठहरा। वहाँ विक्रमसिंह से उसकी भेंट हुई और उसने उसका हार्दिक स्वागत किया। किन्तु थोड़े दिनों पश्चात् जब गुजरात की सेनाएँ मारवाड़ में लड़ रही थीं तो परमार राजकुमार ने विद्रोह किया, और संभवतः उज्जैन के राजाबल्लाल की प्रयाण करती हुई सेनाओं का साथ दिया। हेमचन्द्र ने विक्रमसिंह के नाम का उल्लेख नहीं किया है किन्तु यह लिखा है कि विजय और कृष्ण नाम के दो मण्डलिक उज्जैन के राजा से मिल गए जिनको कुमारपाल ने वल्लाल के विरुद्ध भेजा था जो। वह आण के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था। विक्रमसिंह को इस विश्वासघात के दण्ड स्वरूप अपने सिंहासन से वंचित होना पड़ा। जिन मण्डलकृत 'कुमारपालप्रबंध' में लिखा है कि कुमारपाल ने विक्रमसिंह को युद्ध में पराजित कर उसकी दुष्टता के कारण उसको कारागार में डाल दिया और उसके स्थान पर उसके भतीजे यशोधवल को आबू पर्वत के सिंहासन पर बैठाया।

यशोधवल—यशोधवल को सिंहासन की प्राप्ति कुमारपाल की कृपा से हुई थी। उसने उसकी ओर से मालवा की सेनाओं के विरुद्ध लड़कर उसके प्रति

अपनी स्वामिभक्ति प्रमाणित की। अजमेर के युद्ध क्षेत्र से लौटने के बाद कुमारपाल को सूचना मिली कि बल्लाल गुजरात के मध्य तक पहुँच चुका है और उसकी सेना अणहिलवाड़ पर आक्रमण करने के लिए प्रयाण कर रही है। उसने तुरन्त एक टुकड़ी लेकर शत्रु से घनघोर युद्ध किया और बल्लाल को पराजित कर मार डाला। इस अवसर पर यशोधवल ने अपने अधीश्वर की महती सेवा की और मालवा के राजा को मार डालने का दावा किया। आबू पर्वत पर स्थित नेमिनाथ मंदिर के लेख में लिखा है कि जब यशोधवल को मालूम हुआ कि मालवराज बल्लाल चालुक्य कुमारपाल के विरुद्ध हो गया है तो उसने तुरन्त बल्लाल का बध कर दिया। उसके शासन की समाप्ति ११६३ ई० के कुछ पूर्व हुई जो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी धारावर्ष की पूर्वतम ज्ञात तिथि है। प्रतीत होता है कि परमार शासक यशोधवल में चालुक्य कुमारपाल के कोंकण अभियान में प्रमुख भाग लिया क्योंकि आबू पर्वत के तेजपाल प्रशस्ति में लिखा है कि 'जब क्रोधाक्रान्त होकर यशोधवल युद्ध क्षेत्र में निश्चल हुआ तो कोंकणाधीश की पत्नियों के नेत्रोत्पल से जलकण गिरने लगे। यह घटना ११६० ई० और ११६२ ई० के बीच की है।

धारावर्ष—धारावर्ष एक विख्यात शासक था। बहुत वर्षों तक वह आबू के सिंहासन पर आरूढ़ रहा। उसके शासन-काल के अनेक अभिलेख पाए गए हैं।

धारावर्ष महान् योद्धा था और वाण विद्या में अपनी निपुणता के लिए विख्यात था। एक अवसर पर उसने सफलतापूर्वक एक ही वाण के एक मात्र प्रहार से तीन भैंसों को भेद दिया। इस निष्पत्ति का उत्सव मनाने के निमित्त आबू पर्वत पर अचलेश्वर मंदिर के बाहर मंदाकिनी सागर के किनारे उसकी एक मूर्ति बनवाई गई जिसमें उसके हाथ में एक धनुष था और उसके सामने तीन भैंसे खड़े थे जिनके पेट फटे थे। यह मूर्ति अब भी पूर्वदशा में वर्तमान है। राजा के शासन का मंत्री कोविदास था।

कोंकण से युद्ध—धारावर्ष गुजरात के राजा कुमारपाल, अजयपाल, मूढ़राज द्वितीय और भीम द्वितीय का समकालीन था। ११६२ ई० के उसके अभिलेख से प्रतीत होता है कि उसने उस समय तक अर्द्धस्वतंत्र मण्डलिक की स्थिति प्राप्त कर ली थी क्योंकि इस अभिलेख में उसने महामंडलेश्वर और महाराजाधिराज दोनों ही उपाधियाँ ग्रहण की हैं। अपने शासन के आदि और उत्तरकाल में गुजरात शासन से उसके संबंध मैत्रीपूर्ण थे। उनके विपत्तिकाल में उसने उनकी अमूल्य सेवाएँ की थीं। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि यशोधवल ने मालवपति के विरुद्ध युद्ध में चालुक्यों की सहायता की थी। कोंकण पर सब कुमारपाल ने अभियान किया तो धारावर्ष भी उसके साथ था। मेरुतुङ्ग ने वर्णन किया है कि एक अवसर पर जब कुमारपाल अपनी

प्रजा के सभी लोगों से साक्षात्कार कर रहा था। उसने एक चारण को कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन (११५६-११६० ई०) के नाम के साथ राजपितामह (राजाओं के पितामह) की महान् सम्मानसूचक उपाधि लगाते सुना। इससे उसके राजकीय गर्व को बड़ी ठेस लगी। राजा की उस समय की भावनाओं को भंग करने के निमित्त आबंड ने एक सेना ले जाने की इच्छा प्रकट की। कुमारपाल ने इस प्रस्ताव की बहुत ही श्लाघा की और इस विशेष अवसर के लिए आंवड को अपनी सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त किया। साम्राज्य के प्रायः सभी विशिष्ट मण्डलिक इस अभियान में आबंड की सहायता करने के लिए भेजे गए और कष्टपूर्ण प्रयाण के पश्चात् उसने शत्रु देश में प्रवेश किया। जब वह काल्विनी नदी की वेगधारा को पार कर रहा था, मल्लिकार्जुन ने आक्रमण कर उसकी सेना को पूर्णतया तहस-नहस कर दिया। उसका गर्व चकनाचूर हो गया और भग्नहृदय वह गुजरात लौटा। किन्तु कुमारपाल का उसके शौर्य में विश्वास बना रहा और अभियान को चलाने के लिए उसने उसको एक नई सेना के साथ भेजा। इस अवसर पर आवंड ने काल्विनी नदी को पार करने में बहुत सावधानी बरती। उसने इस नदी पर एक पुल बनाकर अपने सेना को सफलतापूर्वक उस पार उतारा। मल्लिकार्जुन ने अपनी शक्ति भर उसका अवरोध किया, किन्तु इस बार उसकी पराजय हुई और वह मारा गया, और उसकी राजधानी लूटी गई। लूट का बहुत साधन लेकर आबंड अणहिलवाड़ को लौटा और कुमारपाल के समक्ष पराजित राजा का सिर रखा। सोमेश्वरकृत 'कीर्ति कौमुदी' और अरिसिंहकृत 'सुकृत संकीर्तन' में भी लिखा है कि कोंकण राजा पर कुमारपाल ने विजय प्राप्त की।

प्रतीत होता है कि धारावर्ष उन मण्डलिकों में था जिसके उपादेय सहाय्य से निश्चय ही अखंड ऐसी पूर्ण विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। नेमिनाथ मंदिर आबूपर्वत के शिलालेख में लिखा है कि 'जिस समय क्रोध से अभिभूत हो कर धारावर्ष युद्ध क्षेत्र में अविचल डटा रहा, उस समय कोंकणपति के पत्नियों के कमलनेत्रों से अश्रु गिरने लगे।' यह पूर्ण संभाव्य है कि धारावर्ष ने अपने अधीश्वर चालुक्य कुमारपाल की ओर से इस युद्ध में भाग लिया।

अजमेर के चाहमानों से युद्ध—अजमेर के चाहमान राजा अर्णोराज की ११५६ ई० में कुमारपाल के समक्ष घोर पराजय हुई। उसके लड़के विग्रहराज (११५३-११६४ ई०) ने गुजरात साम्राज्य के उत्तरी प्रदेशों को ध्वंस कर चालुक्यों से बदला लिया। इस कारण कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल ने अजमेर के विरुद्ध पुनः युद्ध आरंभ किया कहा जाता है कि वह अजमेर के राजा को अपना सामन्त बनाने में सफल हुआ। किन्तु जब ११७८ ई० में भीम द्वितीय अणहिलवाड़ के सिंहासन पर बैठा तो उसके और अजमेर के राजघराने के बीच शत्रुतापूर्ण व्यवहार होने लगे। कहा

जाता है कि युवा चालुक्य राजा भीनमाल के शासक परमार जयसिंह की कन्या से विवाह करना चाहता था, किन्तु इस राजकुमारी का वाग्दान अजमेर के चाहमान पृथ्वीराज तृतीय से हो चुका था। इस कारण चालुक्यों और चाहमानों में युद्ध हुआ जिसमें चाहमानों का राजा सोमेश्वर मारा गया। सिंहासीन होने के शीघ्र ही बाद पृथ्वीराज तृतीय ने (११७९-११९३ ई० में) गुजरात पर धावा किया। इस अवसर पर भी धारावर्ष ने अपने अधीश्वर की सहायता कर अपनी राजभक्ति प्रमाणित की। उसने शत्रु का कड़ा प्रतिरोध किया। प्रह्लादन ने अपने 'परमार्थ-पराक्रम' में जांगल (अजमेर) के राजा पृथ्वीराज के एक रात्रि आक्रमण को विफल करने का श्रेय धारावर्ष को दिया है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि इस युद्ध में चाहमान राजा के विरुद्ध भीम द्वितीय की घोर पराजय हुई।

मेवाड़ के गुहिलों से युद्ध—कुमारपाल की मृत्यु के बाद गुजरात साम्राज्य का ह्रास होने लगा। परमार विंध्यवर्मन् ने मालवा को पुनः जीत लिया और शाकम्भरी के चाहमानों ने अपने शासक के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला शत्रुता घोषित कर दी। किन्तु इसका सबसे प्रबल शत्रु गुहिल सामंतसिंह था जिसकी दो ज्ञात तिथियाँ ११७२ और ११७९ ई० हैं। उसने गुजरात पर आक्रमण किया जिस पर प्रत्यक्षतः इस समय अजयपाल (११७२-११७६ ई०) शासन कर रहा था। अजयपाल की घोर पराजय हुई और युद्धक्षेत्र में वह बुरी तरह आहत हुआ। सोमेश्वर ने लिखा है कि उसके पूर्ववर्ती कुमार ने बटुकेश्वर देवता की पूजा कर अजयपाल के क्षतों को अच्छा किया। उस संकट काल में धारावर्ष ने गुजरातवंश का निष्टापूर्वक साथ दिया और अपने कनिष्ठभ्राता प्रह्लादन को एक शक्तिशाली सेना देकर अजयपाल की सहायता को भेजा। आबू पर्वत शिलालेख में लिखा है प्रह्लादन ने पृथ्वी पर दनु के वंशजों के प्रति घोर शत्रुतापूर्ण आचरण का प्रदर्शन किया—उस प्रह्लादन ने जिसकी दक्ष तलवार ने कीर्तिमान् गुर्जर राजा की उस समय रक्षा की थी जब सामन्तसिह ने युद्धक्षेत्र में उसकी शक्ति भंग कर दी थी। गुर्जर राजा जिसका यहाँ उल्लेख हुआ है प्रत्यक्षतः अजयपाल था, और पूर्ण संभाव्य है कि सामन्तसिंह उस नाम का गुहिल राजा था इसमें कोई संदेह नहीं है कि आबू के परमारों की उस समय की सहायता ने चालुक्य सार्वभौमिकता को सर्वनाश से बचा लिया।

गुजरात सार्वभौमिकता के विरुद्ध धारावर्ष का विद्रोह—अजयपाल और मूलराज द्वितीय ने बहुत दिनों तक राज्य नहीं किया। भीम द्वितीय के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में गुजरात सार्वभौमिकता पर और अधिक महान् एवं अधिक कष्टप्रद विपत्ति आ पड़ी। सोमेश्वर ने लिखा है कि मंत्रियों और सामन्तों ने युवाभीम द्वितीय के साम्राज्य को आपस में बाँट लिया। प्रत्यक्षतः धारावर्ष भी उनमें से एक था जिन्होंने

विद्रोह की ध्वजा फहराई थी। किन्तु उस विपत्तिकाल में भीमपल्ली के शासक धवल के पुत्र अर्णोराज ने गुजरात सम्राट् की रक्षा की। उसने धारावर्ष और मेदपाट के राजा का जोरों से पीछा किया, और उनको पराजित किया। जयसिंह कृत 'सुकृत-कीर्त्ति-कल्लोलनी' नामक ग्रन्थ में वर्णन है कि अर्णोराज ने मेदपाट (मेवाड़) और चन्द्रावती के राजाओं की शक्ति कुचल दी।

मुसलमानों से युद्ध—धारावर्ष का नाम उन वीरों की नामावली में प्रमुख है जिन्होंने मुसलमानों के दक्षिणी प्रयाण का दृढ़ता से प्रतिरोध किया। जब भीम द्वितीय अणहिलवाड के सिंहासन पर बैठा तो ११७८ ई० में मोहम्मद घोर एक शक्तिशाली सेना लेकर गुजरात साम्राज्य के उत्तरी द्वार पर आ पहुँचा। किन्तु वह मुसलमान सेनापति जी तोड़ प्रयत्न करने पर भी गुजरात की सेनारूपी प्राकार को तोड़ न सका और वह पीछे हटने को विवश किया गया। उसके बहुसंख्यक सैनिक युद्ध में काम आए, और जो बच रहे उनको गजना लौटते समय अत्यंत कठिनाई सहन करनी पड़ी। तबकाते नासिरी में वर्णन है कि शिहाबुद्दीन मोहम्मद घोर उच्च और मुलतान के रास्ते से नहरवाला की ओर बढ़ा। उस समय भीमदेव अल्पवयस्क था किन्तु उसके पास एक बड़ी सेना और राज-शक्ति थी जिसने सुलतान को युद्ध में आहत किया और उसे पीछे हटने को बाध्य किया। ताजुलमआशिर में लिखा है कि यह युद्ध आबू पर्वत की उपत्यका में हुआ था। एक प्राचीन प्रमाण के अनुसार इस स्थान का नाम कासहरद है जो आबू पर्वत के उपत्यका में है और जिसका वर्तमान नाम कायद्रम (ग्राम) है। सून्ध पर्वत उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि नदुल के चाहमान केल्हण (११६१-११९४ ई०) ने तुरुष्कों की शक्ति को चकनाचूर किया। उसके भाई कीर्त्तिपाल (११६१-१२१५ ई०) को भी कासहरद स्थान पर उन्हीं तुरुष्कों के ऊपर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। डॉ० भंडारकर का विचार ठीक है कि ये दोनों भाई उपर्युक्त अवसर पर मुसलमानों से लड़े। भीम द्वितीय की ओर से उन्होंने यह युद्ध किया था, क्योंकि यह युद्ध स्थान प्रत्यक्षतः वही है जिसमें मोहम्मद घोर ने चालुक्यों की सेना से मुठभेड़ की, क्योंकि कासहरद (वर्तमान कायद्रभ) जहाँ धारावर्ष का शिलालेख पाया गया है, उसके शासनाधिकार क्षेत्र में था। अतः यह निश्चयप्राय है कि उसने भी मुसलमानों के विरुद्ध इस युद्ध में भाग लिया था, और शिहाबुद्दीन को पीछे ढकेल कर उसके राज्य की रक्षा की थी।

अन्ततः अजमेर को मुसलमानों ने ११९२-११९३ ई० में विजय कर लिया। दो वर्ष पश्चात् ११९५ ई० में अणहिलवाड शासन ने अजमेर पुनः विजय कर लेने के प्रयास में मेरों को साहाय्य भेजा। उसके बाद जो युद्ध हुआ उसमें बहुसंख्यक मुसलमान मारे गये और उनका नेता कुतुबुद्दीन ऐइबक तीव्ररूप से आहत हुआ, हिन्दू आगे

बढ़े और अजमेर से एक 'पर्संग' के अन्दर ही मुसलमानों ने पड़ाव डाला। किन्तु उनके शत्रुओं ने उसके समस्त प्रयत्नों को विफल कर दिया। अतः गजनी से एक नई सेना आई जिसकी सहायता से मुसलमानों ने न केवल मेरों को पीछे हटा दिया बल्कि वे गुजरात की ओर भी बढ़े जहाँ से अजमेर को पुनर्विजय करने के लिए हिन्दू सैनिकों को खाद्य सामग्री प्राप्त होती थी। उन्होंने सरलतापूर्वक पाली (बाली) और नदूल को विजित किया, किन्तु वे हतोत्साहित हुए जब उनको मालूम हुआ कि गुजरात को जाने-वाली सड़क की रक्षा केल्हण और धारावर्ष की संयुक्त सेनाएँ कर रही हैं। ताजुल मआशिर ने इस युद्ध का वर्णन अति विस्तृत विवरण के साथ दिया है। इसमें लिखा है कि जब ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन के अधीन एक सेनानायक पाली और नदूल के किलों पर पहुँचा तो उसने देखा कि वे खाली हैं और उनमें उल्लू निवास कर रहे हैं, क्योंकि मुसलमानों के आगमन से लोग भाग गए थे और बड़ी संख्या में रायकरण और धारावर्ष के नेतृत्व में आबू पर्वत की उपत्यका में एकत्र हो गए थे और एक दर्रे के मुहाने पर लड़ने और मार डालने के लिए तैयार खड़े थे। ऐसी स्थिति में उन पर आक्रमण करने का मुसलमानों का साहस न हुआ। विशेष रूप से,कारण से भी कि उसी स्थान पर सुलतान मोहम्मदशाह गोरी आहत हो चुका था। और यह अपशकुन माना गया कि उसी स्थान पर फिर युद्ध हो, इस डर से कि कहीं सेनापति के साथ उसी प्रकार की कोई दुर्घटना न हो जाय।

इस दुविधा का अर्थ हिन्दुओं ने कायरता और त्रास लगाया, और दर्रे को छोड़कर वे युद्ध क्षेत्र-और मान और ख्याति के मैदान की ओर चले, क्योंकि उनको यह विश्वास दिलाया गया था कि धर्म की पवित्र प्राचीर की रक्षा के हृदय में भय ने घर कर लिया है। कुछ समय तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी रहीं और युद्ध की तैयारी करती रहीं। रविवार, रबिउल अव्वल तेरहवीं की पिछली रात्रि को इस्लाम की सेना एक सौभाग्यपूर्ण क्षण में शिविर से आगे बढ़ी, और प्रातः विधर्मियों के स्थान पर पहुँच गई। ऊषाकाल से मध्याह्न तक घनघोर युद्ध हुआ। मध्याह्न के समय अभिशाप और मूर्तिपूजा हुई। सेना युद्ध पंक्ति को छोड़ कर भाग खड़ी हुई। इनके अधिकांश नायक बन्दी बना लिए गए, और लगभग ५० हजार विधर्मी तलवार के बल नरक भेजे गए और मृतकों के ढेरों से मैदान और पहाड़ियाँ समतल हो गईं। राय-करन युद्ध-क्षेत्र से भाग गया।

मुसलमान इतिहास लेखक ने ध्रुववर्ष की क्या गति हुई इसके संबंध में कुछ नहीं लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण योग दिया, यद्यपि उसको भी अन्य समस्त हिन्दू सेनाओं के साथ पराजय भोगनी पड़ी। पराजय का कारण हिन्दुओं की यह अविवेकता थी कि उन्होंने दर्रे के मुहाने की अत्यन्त अनुकूल

सामरिक महत्त्व की स्थिति को छोड़ दिया। प्रतीत होता है कि इस विजय के बाद मुसलमानों ने लगभग चौथाई शती तक गुजरात को शान्तिपूर्वक रहने दिया। भीम द्वितीय के सिंहासनासीन होने के समय से जो आन्तरिक उपद्रव चालुक्य साम्राज्य की नीवों की प्राण-शक्ति खींच रहा था, तेरहवीं शती ईसवी के प्रथम चतुर्थांश में अपनी चरम सीमा में पहुँचा, जब जयसिंह नामक एक अपहर्ता ने भीम द्वितीय को पदच्युत किया। किन्तु इस समय के लगभग गुजरात में सर्वाधिक प्रमुख व्यक्ति धोल्का का शासक लवण-प्रसाद का पुत्र वीरधवल था।

गुजरात की इस अव्यवस्थित समस्या ने शीघ्र ही सुलतान इलतुतमिश (१२११-१२३६ ई०) का ध्यान आकर्षित किया और वह एक सेना लेकर अणहिलवाड़ की ओर बढ़ा। इस आपत्तिकाल में वीरधवल ने देश की रक्षा करने का बीड़ा उठाया किन्तु उसकी स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई, जब महान् यादव सिंहण और परमार देवपाल ने दक्षिण की ओर एक संयुक्त आक्रमण किया। इस विकट परिस्थिति में उसने अपने मंत्री वस्तुपाल को दक्षिणी सीमा की रक्षा के लिए नियुक्त किया और मुसलमानों की प्रगति रोकने के लिए उसने स्वयं मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया। मरुदेश (मारवाड़) के सामन्त—सोमसिंह, उदयसिंह और धारावर्ष—जिनके प्रदेशों में मुसलमान सेना-नायकों की सेनाएँ बिना किसी अवरोध या बाधा के प्रयाण कर रही थीं, अब बड़ी उत्सुकता से उसके साथ सम्मिलित हो गए, जिस तरह कि सौराष्ट्र के शासक भीमसिंह ने किया। 'हम्मीर-मद-मर्दन' ने इस मुसलमान सेनानायक का नाम हम्मीरवीर मीलक्षी-कार लिखा है किन्तु 'प्रबंधचतुर्विंशति' ने अधिक शुद्ध नाम सुरत्राण मौजदिन लिखा है जो सुलतान मुइज़ुद्दीन बहरामशाह संशुद्दीन इलतुतमिश के नाम का संक्षिप्तीकरण है जो १२१० ई०—१२३६ ई० तक दिल्ली का शासक था।

जिस समय वीरधवल सुलतान का सामना करने के लिए इस तरह शीघ्रता-पूर्वक प्रस्थान कर रहा था उसे सूचना मिली कि सुलतान आबूपर्वत की ओर से गुज-रात में प्रवेश करने का प्रयास कर रहा है। उसने धारावर्ष को तुरंत यह आदेश भेजा कि शत्रु को दक्षिण की ओर बिना बाधा के बढ़ने दो और तब पहाड़ी दर्रे से उनके निकलने के मार्ग को काट दो। धारावर्ष ने इस कार्य को बड़ी कुशलता से निबाहा और इसका परिणाम अत्यंत सौभाग्यपूर्ण रहा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ावस्था में मुसलमानों को यह मालूम हुआ कि वे पहाड़ी दर्रे में फँस गए हैं और उनके पृष्ठभाग में धारावर्ष ने और अग्रभाग में वीरधवल ने घेर रखा है। उनको गहरी क्षति उठानी पड़ी और इस युद्ध में उनकी सेना के बहुसंख्यक सैनिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

यह युद्ध वस्तुपाल के मंत्रित्व के आरंभ की तिथि १२२९ ई० और 'हम्मीर-मदमर्दन' की रचना के बीच में ही हुआ होगा। तबकाते नासिरी में लिखा है कि

१२२६ ई० सुलतान इलतुतमिश ने एक सेनानायक को रणथम्भोर किले को विजय करने को भेजा, और इसके दूसरे वर्ष (१२२७ ई०) उसने स्वयं मंडोर किले पर चढ़ाई की जो शिवालिक प्रदेश की सीमा में है। इस अवसर पर उसने संभवतः मारवाड़ में और आगे दक्षिण की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया किन्तु वीरधवल और धारावर्ष की संयुक्त सेनाओं ने उसे निष्ठुरता से खदेड़ दिया।

धारावर्ष इन सब सामरिक कार्यकलापों का इतनी सफलतापूर्वक निष्पादन उसके राज्य की विपुलशक्ति और साधन को प्रमाणित करता है। ५४ वर्ष से अधिक दीर्घ-काल तक उसने राज्य किया। उसके उत्कीर्ण लेखों की तीथियाँ ११६३ ई० से १२१७ ई० में तक फैली हुई हैं। यदि यह सत्य है कि इलतुतमिश ने १२२७ ई० में मारवाड़ पर आक्रमण किया जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, तो यही समझना चाहिए कि उस तिथि के बाद उसका शासनकाल समाप्त हो गया।

प्रह्लादन—यह प्रमाणित करने के लिए कोई निश्चित साक्ष्य नहीं है कि धारावर्ष के बाद उसका छोटा भाई प्रह्लादन सिंहासन पर बैठा। पाटनारायज लेख में जो तेरहवीं शती के अन्त में लिखा गया था उसके नाम का उल्लेख नहीं है। इसमें सोमसिंह का धारावर्ष के उत्तराधिकारी के रूप में वर्णन किया गया है। 'सोम-सौभाग्य' ग्रन्थ ने जो पन्द्रवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में रचा गया था, प्रह्लादन को अर्बुदाचल-पति कहा है। यह युवराज अपने सिंहासनारोहण के समय निश्चय ही वृद्ध था, यदि वास्तव में वह अपने भ्राता के बाद तक जीवित रहा और उसके बाद गद्दी पर बैठा भी। अपनी युवावस्था में वह एक अच्छा सेनानायक था। जिस समय गुहिलों ने अजय-पाल की सेना को तहस-नहस किया उसने अपने वीरोचित शौर्य के बल पर चालुक्य साम्राज्य को विनष्ट होने से बचाया। किन्तु युद्ध सम्बन्धी सामरिक सफलताओं से अधिक उसकी सरस्वती के प्रति निष्ठा थी। धारावर्ष के शासन काल के आबू पर्वत लेख में जिस पर १२०९ तिथ्यंकित है वर्णन है कि वह समस्त ललित-कलाओं एवं उपयोगी शास्त्रों में पारंगत था। नेमिनाथ के मन्दिर के १२३०ई० के आबू पर्वत लेख में उसके उच्च संस्कार और विद्या की प्रशंसा की गई है। कवि सोमेश्वर ने जिसने इस लेख की रचना की है लिखा है, 'यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि इस पृथ्वी पर यह प्रह्लादन के रूप में कमलासन (ब्रह्मा) से उत्पन्न देवी है या 'कामप्रदा कामधेनु हैं'। इस ग्रन्थकार ने अपनी कीर्त्तिकौमुदी में लिखा है कि प्रह्लादन ने कुछ सुन्दर कहानियों की रचना करके सरस्वती देवी को पुनः प्रसन्न किया जो भोज और मुंज की मृत्यु से दुःखार्त थी। इस युवराज ने अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की थी। शार्ङ्गधर पद्धति में जो सुरुचिपूर्ण उदाहरणों का एक संग्रह है और जो चौदहवीं शती में लिखा गया था उसकी कुछ रचनाएँ उद्धृत हैं। जल्हण कृत सूक्तिमुक्तावली में भी

उसके कुछ पद उद्धृत हैं। उसने पार्थपराक्रम नामक एक व्यायोग या एकांकी नाटक की रचना की थी जिसका मुख्य विषय कौरवों को पूर्णतया पराजित कर राजा विराट की गौत्रों को महाभारत के वीर अर्जुन द्वारा पुनः प्राप्ति के पराक्रम का वर्णन है। यह नाटक सर्वप्रथम भगवान् अचलेश्वर के यज्ञोपवीत संस्कार के पर्व पर धारावर्ष की सभा में अभिनीत किया गया था।

सोमेश्वरकृत सुरथोत्सव में लिखा है कि प्रह्लादन की मृत्यु से लोकोपकारक कार्यों की इतिश्री हो गई। उसने प्रह्लादनपुर (पालनपुर) नामक नगर की स्थापना की। 'उपदेश-तरंगिणी' में लिखा है कि प्रह्लादन ने एक जैन पीतल मूर्ति को गलाकर उस धातु से अचलेश्वर महादेव के एक वृषभ की रचना की। जिसके फलस्वरूप उसको कुष्ट हो गया। जैन गुरु शीलधवलाचार्य ने इस रोग से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय अनेकानेक मन्दिरों और जैन देवताओं की मूर्तियों की स्थापना बताया। तदनुसार उसने पाल्ल-विहार मन्दिर की और उसके गर्भगृह में पार्श्वनाथ की स्वर्णिम मूर्ति स्थापित की। उसका कुष्ठ अच्छा हो गया और उसने अपना शेष जीवन जैन धर्म के नियमों के पालन में व्यतीत किया। 'सौमसौभाग्य' नामक कृति में जिसकी रचना पन्द्रहवीं शती ईसवी के अन्त में की गई थी उपर्युक्त पुर और मन्दिर की अत्यन्त श्लाघा की गई है। स्पष्ट है कि वह अपने साहित्यिक और वास्तु सम्बन्धी कार्यों के लिए दीर्घकाल तक लोक-स्मृति में जीवित रहा।

सोमसिंह—धारावर्ष का पुत्र सोमसिंह १२३० ईसवी के कुछ पूर्व अपने चाचा प्रह्लादन के बाद सिंहासन पर बैठा। उत्कीर्ण लेख में वर्णन किया गया है कि वह ब्राह्मणों के प्रति उदार और विद्या के प्रति निष्ठावान् था। उसने अपने पिता से शौर्य, अपने पितृव्य से विद्या, और दोनों से दानशीलता उत्तराधिकार में प्राप्त की।

कृष्णराज—सोमसिंह के बाद उसका पुत्र कृष्णराज सिंहासन पर बैठा। अचलेश्वर मन्दिर के लेख से ज्ञात होता है कि उसके शासन काल में मेवाड़ के गुहिल राज्य ने आबू पर्वत विजय किया और उस विजित प्रदेश पर जैत्रकर्ण को राज्यपाल नियुक्त किया।

प्रतापसिंह—कृष्णराज का पुत्र और उत्तराधिकारी प्रताप सिंह निर्भीक योद्धा था। उसने धोलक के बाघेलों की सहायता से जैत्रकर्ण को हरा कर चन्द्रावती को पुनः प्राप्त किया। वह अणहिलवाड के बाघेलों के अधीन था। वह प्रत्यक्षतः पुंसंतान-हीन था। उसी मृत्यु के उपरान्त बाघेलों के उपराजा बीसल ने आबू पर्वत को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में लाकर चन्द्रावती को अपनी राजधानी बनाया।

यह प्रान्त बाघेलों के आधिपत्य में बहुत दिनों तक नहीं रहा। जब सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने सारंगदेव के उत्तराधिकारी कर्ण से गुजरात छीना

और वहाँ अव्यवस्था फैली, तब नादोल के चाहमानों ने आबू पर्वत पर अधिकार किया और इसको अपने राज्य का एक प्रान्त बनाया।

उपसंहार—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चन्द्रावती के परमार राजवंश की राजनीतिक शक्ति का लगभग उसी समय अन्त हुआ जिस समय धारा के चक्रवर्ती राजवंश का अन्त हुआ। यह वंश धारा के मुख्य राजवंश की अवर शाखा थी और उन्हीं की कृपा से इसने यह राज्य पाया था, किन्तु बाद को धारा के मुख्य वंश से राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद करने को यह विवश हुआ और चालुक्य भीम की प्रबल शक्ति के समक्ष अपने को समर्पण किया। इस वंश ने चालुक्य वंश की अनेक युद्धों में सहायता की, और एक से अधिक अवसर पर पूर्ण विनाश से उसकी रक्षा की। इस वंश के लम्बे शासन की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह वंश मालवा के परमारों के विरुद्ध किए गए दीर्घकालीन युद्ध में चालुक्यों की सहायता करता कभी नहीं देखा गया। इस वंश के पतन का मुख्य कारण मेवाड़ के गुहिलों और रणस्तम्भपुर के चाहमानों का आक्रमण था जिनसे इसके शासकीय शक्ति पर सांघातिक आघात पहुँचा।

अध्याय | ८

वागड, भीनमाल और जालोर के परमार वंश

वागड शाखा—वागड के परमार-राजकुमार उपेन्द्र-कृष्णराज के छोटे पुत्र डम्बरसिंह के वंशज थे। वे धारा के साम्राजिक परमार राजवंश के सामन्तों के रूप में इन प्रदेशों पर बहुत दिनों तक राज्य करते रहे। इस वंश का पूर्वतम ज्ञात शासक धनिक है जिसका समय दसवीं शती ईसवी के मध्य में है। उसमें उज्जैन में महाकाल के मन्दिर के समीप धनेश्वर का मन्दिर बनाया उसका उत्तराधिकारी चच्च या कक्क या कंक मालवा के सीयक—हर्ष (९४८-९७२ ई०) का समकालीन तथा एक वीर योद्धा था। मान्य खेट के राष्ट्रकूट खोट्टिग के विरुद्ध किए गये अभियान में वह सीयक की सेनाओं के साथ गया जौर अपूर्व शौर्य एवं वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मृत्यु को आलिंगन किया। पन्हेर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है। कि यह युद्ध नर्मदा के तट पर खलिघट्ट नामक स्थार पर हुआ था जो अब भी वर्तमान है।

चच्च का पौत्र सत्यराज धारा के महान् भोज की ओर से गुजरात के चालुक्यों के विरुद्ध लड़ा था और सम्भवतः उसने सेनानायक कुलचन्द्र के साथ अणहिलवाड के लूटने में प्रमुख भाग लिया उसने राजश्री नामक एक चाहमान राजकुमारी से विवाह किया जिससे लिम्बराज और मण्डन या मण्डलीक नामक दो पुत्र हुए जो क्रमशः उसके पश्चात् सिंहासन पर बैठे। मण्डलीक मालवा के राजा जयसिंह (१०५९ ई०) का सामन्त था। अर्थूणा लेख से तथा पन्हेर लेख से स्पष्ट है कि वह निःसन्देह एक महान् योद्धा था। उसने शत्रुओं की आक्रमणात्मक कार्यवाहियों को विफल कर अपना भाग्योदय किया। उसने एक नगर का निर्माण किया जिसको उसने श्वेत-ग्रहों तथा वाटिकाओं से अलंकृत किया और अर्थूणा के समीप जो मण्डलेश्वर देव का मन्दिर है उसके लिए उसने राजस्व नियत किए।

मण्डलीक के बाद उसका पुत्र चामुण्डराज सिंहासनासीन हुआ। वह युद्ध कला में पारंगत था। अर्थूंड़ा उत्कीर्ण लेख वर्णन करता है कि उसने युद्ध में सिन्धुराज की शक्ति को चकनाचूर किया जो संभवतः सिन्ध का राजा था। वह दानी तथा शिव भक्त था। उसके बाद उसका पुत्र विजयराज सिंहासन पर बैठा। विजयराज के शासन के दो उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक लेख से प्रतीत होता है कि वह हनुमान

जी का भक्त था। उसके शासन के बाद उसके वंश के इतिहास के सम्बन्ध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। गुजरात के चालुक्यों ने ११४५ ई० में मालवा को विजित किया। धारा के पतन के बाद वागडशाखा निर्बल हो गई। इसकी असहाय अवस्था का लाभ उठाकर मेवाड़ के गुहिलों ने इस प्रदेश पर आक्रमण किया और इसे अपने राज्य में मिला लिया। मूतानेड़सी ने लिखा है कि गुहिल सामन्त सिंह (११७२-११०९ ई०) ने वागड पर अपना आधिपत्य जमा कर आस-पास के समस्त प्रदेश को अपने वश में किया।

तिथि-क्रम—मालवा के सीयक द्वितीय और राष्ट्रकूट के खोट्टिग से ९७०-९७१ ई० में युद्ध हुआ जिसमें युवराज चच्च काम आया। यदि चच्च के पुत्र चण्डप के शासन का आरंभ ९७० ई० मान लिया जाय और २५ वर्ष की अवधि हर एक पीढ़ी के लिए नियत कर दी जाय, तो वागडशाखा की वंशावली इस प्रकार होगी। उपेन्द्र – डम्बर सिंह—धनिक (९२०-९४५ ई०)—चच्च (९४५-९७० ई०)—चण्डप (९७०-९९५ ई०)—सत्यराज (९९५-१०२० ई०; भोज का समकालीन)—लिम्बराज (१०२०-१०४५ ई०)—मण्डलीक (१०४५-१०७० ई०; ज्ञात दिनांक १०५९ ई०)—चामुण्डराज (१०७०-११०० ई०; ज्ञात दिनांक १०७९, १०८० तथा ११०० ई०)—विजयराज (११००-११२५ ई०; ज्ञात दिनांक ११०८ तथा ११०९ ई०)।

जालोर शाखा—धारा के साम्राज्यिक परमार वंश के वाक्पति राज का पुत्र चंदन इस शाखा का प्रथम युवराज है। उसके बाद देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष और बीसल हुए।

इस राजवंश का अन्त बारहवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में नदोल के चाहमानों द्वारा हुआ। मूतानेड़सी में लिखा हुआ है कि नृप केल्हण (११६४-११९२ ई०) के छोटे भाई चाहमान कीर्तिपाल ने परमारों से जाबालिपुर (जालोर) छीना। इस विजय के बाद चाहमान राज्य की राजधानी नदोल से जालोर बदल दी गई।

भिनमाल शाखा—परमार वंश की भिनमाल शाखा ने इस काल के इतिहास में प्रचुर योगदान दिया। इस वंश के राजाओं ने 'मरुमण्डल-शासक' की उपाधि धारण की। उनका राज्य बल्मेर तक था, और उनकी राजधानी श्रीमाल (भिन-माल) थी।

सिन्धुराज के पुत्र दूसल ने दसवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में अपने चाचा वाक्पति राज से मरुमण्डल का राज्य प्राप्त किया। प्रतीत होता है कि चालुक्य चामुण्ड-राज द्वारा मालव सम्राट् सिन्धुराज के पराभव के बाद भीनमाल शाखा के परमार देवराज ने शाकम्भरी के चाहमानों के साथ मैत्री संबंध स्थापित किया। प्रतीत होता

है कि चाहमान राजा दुर्लभराज देवराज से प्रसन्न हुआ। देवराज का पुत्र धंधुक और धंधुक का पुत्र महाराजाधिराज श्री कृष्णराज था।

ग्यारहवीं शती के छठवें दशक में धारा के परमार-राज्य की शक्ति के क्षीण होने पर भीम चालुक्य ने मारवाड़ और आबू की परमार शाखाओं को स्वेच्छापूर्वक रौंदना आरंभ किया। भीम ने कृष्णराज को पकड़कर कारागार में डाल दिया। नादोल के चाहमानों ने कृष्णराज को कारागार से छोड़ने के लिए भीम को विवश किया। कारागार से छुटकारा पाने के बाद कृष्णराज ने अपना राज्य पुनः प्राप्त कर अपने प्रदेश पर एक स्वतंत्र राजा के रूप में राज्य किया। उसके बाद सोच्छिराज, उदयराज, और सोमेश्वर सिंहासनासीन हुए।

प्रतीत होता है कि बारहवीं शती के मध्य में कुमारपाल चालुक्य की सहायता से नादोल के चाहमानों ने भिनमाल शाखा के अन्तिम परमार शासक सोमेश्वर से किरड़ु प्रदेश छीन लिया। चालुक्य कुमारपाल ने अजमेर के राजा अर्णोराज को हराया। इसके बाद गुजरात साम्राज्य की खूब समृद्धि हुई। अर्णोराज के बाद विग्रहराज चतुर्थ (११५३-११६४ ई०) सिंहासन पर बैठा। उसने अपने सशक्त सामरिक नेतृत्व में चालुक्यों के राज्य पर आक्रमण कर 'नड्डुल (नादोल) को नड्वल (नरकुल की क्यारी) में, और जाबालिपुर (जालोर) को ज्वालापुर (अग्नि ज्वालाओं का नगर) में, और पल्लिका को पली (पुरवा) में परिणत किया।'

संभवतः मारवाड़ की अव्यवस्थित अवस्था का लाभ उठा कर सोमेश्वर ने अजमेर के चाहमानों की सहायता से अपने पैतृक प्रदेश किरड़ु पर पुनः अधिकार किया। प्रतीत होता है कि सोमेश्वर के बाद जयतसीह (जयत सिंह) सिंहासन पर बैठा। एक समकालीन इतिवृत्त से ज्ञात होता है कि चाहमान राजा ने गुजरात पर आक्रमण किया। पार्थ-पराक्रम में वर्णित है कि चालुक्य भीम द्वितीय के सामन्त राजा परमार धारावर्ष ने जांगल के राजा चौहान पृथ्वीराज द्वारा किए गए एक रात्रि-आक्रमण को निष्फल किया। इस घटना के कुछ ही समय बाद जयतसिंह के शासन का अन्त हुआ। प्रतीत होता है कि उसके बाद उसका पुत्र सलख सिंहासन पर बैठा।

अजमेर के चाहमान वंश का पतन ११९३ ई० में हुआ और उस पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया। इससे भीनमाल के परमार असहाय अवस्था में पड़ गए। नादोल के चाहमानों ने इसका शीघ्रातिशीघ्र लाभ उठा कर उनसे उनका राज्य छीना। इस तरह बारहवीं शती के अन्त में नादोल के चाहमानों ने लगभग एक ही समय में मारवाड के परमारों की दोनों सपिण्ड शाखाओं से राजनीतिक शक्ति छीन ली।

●

खण्ड ५

चंदेल वंश

अध्याय | १

चंदेलों की उत्पत्ति और प्रारंभिक इतिहास

१. उत्पत्ति—उत्तर भारत के अन्य अनेक राजपूत राजवंशों की तरह चंदेलों की भी उत्पत्ति अस्पष्ट और अनिश्चित है। अधिकांश राजवंशों की उत्पत्ति की धारणाएँ उन गाथाओं पर आधारित हैं जो प्रशस्तियों में या भाटों के गाथा-गीतों में या अलिखित जन अनुश्रुतियों में पाई जाती हैं। कलचुरि अपनी उत्पत्ति ययाति से, कछवाह कुश से (रायचन्द्र के पुत्र) और गुहिलोत स्वयं राम से बताते हैं। इसी प्रकार चंदेल अपनी उत्पत्ति चन्द्रमा से कहते हैं और इस संबंध में इस वंश के शिलालेख तथा अनुश्रुतियाँ प्राय: एकमत हैं। इनके उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि इस वंश की उत्पत्ति चन्द्रात्रेय से हुई। ('चन्द्रात्रेय-मुनेर महीयसी कुले'; 'चन्द्रात्रेय नरेन्द्रानां वंश') खजुराहो उत्कीर्ण लेख (९५४ ई०) सूचित करता है कि 'विश्वसृक् पुराण पुरुष' से मरीचि, अत्रि आदि विख्यात ऋषि उत्पन्न हुए। अत्रि का पुत्र चन्द्रात्रेय था जिसके वंश में चंदेल वंश का प्रथम राजा नन्नुक उत्पन्न हुआ। महाराज परमर्दिदेव के बटेश्वर शिलालेख में लिखा है, 'अत्रि के कमल लोचन से शैलसुता के प्रियपति के अलंकार चन्द्रदेव उत्पन्न हुए। उनसे इस वंश की उत्पत्ति हुई जो अपनी उज्ज्वल कीर्ति रूपी मोतियों से प्रकाशित रहा है। इस वं में सुखद आचरण के चन्द्रात्रेय राजकुमार उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी सशक्त विशाल बाहुओं से शत्रुदल को पीस डाला।'

परम्परागत आख्यायिकाओं के अनुसार भी चंदेलों की उत्पत्ति चंद्रमा से है। चारण कवि चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो के 'महोबा खण्ड' के अनुसार चंदेलों के मूलपुरुष चन्द्रव्रह्म (चन्द्रवर्मन्) की उत्पत्ति चंद्रमा और काशी के गहिरवार राजा इन्द्रजीत के पुरोहित हेमराज की विधवा पुत्री हेमवती के संयोग से हुई है। हेमवती का शील स्वभाव शोभनीय और शरीर चित्रवत् सुन्दर था। ग्रीष्मऋतु की एक रात में, जब वह रतितालाब में स्नान कर रही थी तब उसको देखकर कलानिधि चन्द्रमा आकाश से उतरकर आए और उसको कण्ठ से लगाया। हेमवती ने चन्द्रमा को शाप देने की धमकी दी तब चन्द्रमा ने कहा, 'तुम्हारा पुत्र पृथ्वीपति होगा।' तब हेमवती ने प्रश्न किया कि मैं विधवा हूँ और मेरा कोई पति नहीं है। मेरा कलंक कैसे मिटेगा? चन्द्रमा ने उत्तर दिया डरो मत, 'शुभ कर्णावती के तीर, तुव पुत्रहोय सुवीर', तब

उस पुत्र को षज्जुरपुर (खजुराहो) ले जाकर दान में दे देना और एक यज्ञ करना, वह महोबा में राज्य करेगा और एक महान् राजा होगा। उसके पास एक पारस पत्थर होगा जिससे वह लोहे को स्वर्ण में बदलेगा और कालिंजर के पहाड़ पर एक किले का निर्माण करेगा। इससे हेमवती को संतोष नहीं हुआ। उसको इस लोक में कलंक का और मरने के बाद नरक का भय बना रहा। अतः उसने कहा 'भुव पुत्र करि है राजु, म्हा कहतु नर्क समाजु'। चन्द्रमा ने उत्तर दिया कि जब तुम्हारा कुमार सोलह वर्ष का होगा तब वह एक भाण्डच यज्ञ करेगा जिससे तुम्हारा पातक बह जायगा। तुमको डरने की कोई बात नहीं है, तुम्हारा पुत्र 'वड़ छौनी क्षत्रिय होई'। उसके बाद हेमवती काशी से कालिंजर आई और 'करि तीरथ अस्नान सुदाये, पुत्र काज सब देव मनाये।' तदुपरांत चार महीने ग्रामपति के सदन में रही वहाँ उसको चन्द्रब्रह्म (चन्द्रवर्मन्) नामक एक पुत्र हुआ जो चन्द्रमा की तरह सुन्दर था। इसकी जन्म पत्री 'सुरगुरु' बृहस्पति ने लिखी और चन्द्रमा ने महोत्सव मनाया। जब चन्द्रब्रह्म (चन्द्रवर्मन्) सोलह वर्ष का हुआ तब उसने मात्र एक पत्थर से एक व्याघ्र को मार डाला और एक छोटे डंडे से बारह हाथ लम्बे एक शेर को मारा। यह सूचना पाकर हेमवती को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने चन्द्रमा की स्तुति की। चन्द्रमा तुरन्त आए और चन्द्रब्रह्म (चन्द्रवर्मन्) को पारसमणि दिया। इसी अवसर पर कुबेर, बृहस्पति और निशानाथ चन्द्रमा ने उसको राजनीति की शिक्षा दी। पारसमणि की प्राप्ति के बाद चन्द्रब्रह्म (चन्द्रवर्मन्) ने अनेक महान् कार्य किए, कालिंजर का किला बनवाया, और ब्राह्मणों और तपस्वियों को सौ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दीं और पाँच प्रहर के भीतर दो जनपदों पर अधिकार किया। चन्द्रवर्मन् के पराक्रमों को देखकर गहरवार काशी छोड़ कर भागे और चन्द्रवर्मन् ने उस पर अधिकार कर लिया। उसकी माता ने उससे अपना दुःख कहा कि विभिन्न प्रकार के लोग उसके अतीत जीवन के कलंक की चर्चा करते हैं। अतः भाडच यज्ञ करके मेरा उद्धार करो और पच्चासी मन्दिर बनवाओ, और प्रत्येक के साथ एक सरोवर और एक उद्यान की रचना करो। अपनी माता के आदेशानुसार चन्द्रवर्मन् ने भाडच यज्ञ किया और निर्माण-कार्य के लिए विश्वकर्मन् की सहायता माँगी जिन्होंने चार घड़ी के अन्दर ही ८५ मंदिर निर्मित किए। हेमवती के सब पाप कट गए और वह देवलोक को गई। 'धन्य-धन्य दुजदेवन रट्टे, हेमवती के पातिक कट्टे।' हेमवती तन छुट्टीयव वैढिव देव विमान। मृत्यलोक निर्म्मल भई जानी सकल जहान'॥

श्यामसुन्दरदास ने 'महोबाखण्ड' का 'परमाररासो' के नाम से सम्पादन किया है और उन्होंने लिखा है कि यह चन्दवरदाई की कृति नहीं है। यह सत्रहवीं या

अठारहवीं शती ई० की रचना है। इसके पूर्व की यह रचना नहीं हो सकती। स्मिथ ने लिखा है कि यह आख्यायिका मूर्खतापूर्ण है।

इस आख्यायिका में कुछ शास्त्र विरुद्ध बातें हैं : (१) ब्राह्मण स्त्री से क्षत्रिय वंश की उत्पत्ति। (२) विधवा से समागम करना शास्त्र विरुद्ध है। (३) समागम के स्वरूप से प्रत्यक्ष है कि चन्द्रवर्मन् की उत्पत्ति अशुद्ध है। इस आख्यायिका में अनेक अविश्वसनीय बातें भी हैं, जैसे, चन्द्रमा से समागम, बृहस्पति द्वारा जन्मपत्री का लिखा जाना, बृहस्पति, कुबेर और चन्द्रमा द्वारा चन्द्रवर्मन् को राजनीति की शिक्षा दिया जाना, देवनारियों द्वारा चन्द्रवर्मन् के जन्म, विवाह आदि अवसरों पर शुभ कृत्यों का किया जाना; साधारण पत्थर के टुकड़े या डंडे से व्याघ्र या शेर का बध करना, पारस पत्थर द्वारा अपरिमित धन प्राप्त होना, कुबेर द्वारा उसको अपनी सब सेना देना, कालिंजर आदि प्रदेश पर पाँच प्रहर के अन्दर ही अधिकार करना; विश्वकर्मन् द्वारा मंदिरों, सरोवरों और उद्यानों का निर्माण किया जाना।

चंदेल वंश की उत्पत्ति के संबंध में 'महोबाखण्ड' में जो कथा दी हुई है उसकी किंचित् ही पुष्टि चंदेल शासन के समय के उत्कीर्ण लेखों से होती है। इस कथा और उत्कीर्ण लेखों में केवल इतना ही साम्य है कि चंदेलों की उत्पत्ति चन्द्रमा से हुई है।

स्मिथ ने लिखा है कि चंदेलों की उत्पत्ति संभवत: मूल-जनजातियों—भारों और गोंडों से हुई है। महोबाखण्ड की आख्यायिका से यह स्वीकारोक्ति ध्वनित होती है कि इस जाति के कुल के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यह आख्यायिका स्वीकार करती है कि चंदेल अशुद्ध वंश के हैं। चंदेलों की निम्न उत्पत्ति के संबंध में स्मिथ का दूसरा तर्क यह है कि उनका शासन गोंडों, कोलों, भीलों, भारों, चमारों, आदि तथा अन्य निम्न वर्ण और जातिवहिष्कृत जनता पर था और वे मात्र शासक वंश के घटक थे और उनका समुदाय छोटा था और उन्होंने वहाँ की जनजातियों का मूलोच्छेदन नहीं किया। तीसरा तर्क यह है कि चंदेल नरेशों के अभिरक्षक देवता 'मनीयदेव' की प्रतिमा गोंडों के देवताओं की प्रतिमाओं से मिलती जुलती है। इस तर्क की पुष्टि इससे भी होती है कि चंदबरदाई ने चंदेलों के परम्परागत मूलनिवास 'मनीयगढ़' का संबंध एक गोंड सरदार से किया है। स्मिथ का चौथा तर्क है कि गढ़मण्डल के राजा के साथ चंदेल वंश की दुर्गावती के विवाह की प्रथा करती है कि सोलहवीं शती तक चंदेलों और गोंडों में वैवाहिक संबंध प्रचलित था। स्मिथ ने लिखा है कि चंदेल संभवत: भार और गोंड रक्त से गहरवारों के शंकरीकरण के परिणाम हैं, क्योंकि गहरवार चंदेलों के पूर्ववर्ती थे, और स्थानीय जनता बहुत से प्राचीन बाँधों, सूखे सरोवरों और तालाबों को गहरवारों द्वारा निर्मित बताती है। इस संबंध में स्मिथ ने एक गोरखपुर अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार गहरवार राजा नल के

वंशज हैं जो नलपुर (नरवर ग्वालियर के समीप) से काशी आए। स्मिथ का विचार है कि हर्षवर्धन के शासन के बाद के राजनीतिक उथल-पुथल के कारण संभवत: उनकी एक शाखा महोबा में आकर ठहरी और एक शाखा काशी चली गई। हो सकता है कि महोबा में गहरवारों का नाम गीतों और गाथा काव्यों में प्रचलित रहा हो और चंदकवि ने गहिरवारों और गहरवारों (गाहड़वालों) के नामों की सभ्यता से संबंध मान लिया हो और जनता की दृष्टि में महोबा के गहिरवारों का पद ऊँचा उठाने के लिए उनका संबंध काशी से जोड़ लिया हो, यद्यपि काशी के गाहड़वालों का नाम ग्यारहवीं शती ई० के पूर्व सुना नहीं गया और कनिंघम आदि विद्वानों ने चंदेल राज्य के संस्थापक की तिथि नवीं शती का आरंभ मानी है।

रस्सल का विचार है कि चंदेलों की उत्पत्ति आदिवासी भारों से हुई है। अपने विचार की पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं। सामान्य अनुश्रुति के अनुसार गोरखपुर से बुन्देलखण्ड तथा सागर तक के संपूर्ण प्रदेश पर भारों का स्वत्व था और बहुत से पाषाण दुर्ग, बाँध और अन्तर्भौमिक कन्दराएँ जो आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर और इलाहाबाद में हैं उनकी मानी जाती हैं। इससे संकेत होता है कि सभ्यता में उन्होंने प्रचुर प्रगति की थी। अनुश्रुतियों में चंदेलों का संबंध गहरवारों से दिखाया गया है जो भारों का श्रीमन्त वर्ग था। बुन्देलखण्ड में गोंडों के आधिपत्य की कोई अनुश्रुति नहीं है। उनका सर्वप्रथम उल्लेख चंदेल वंश के आरंभ होने के कई शतियों बाद है। अनुश्रुतियों के अनुसार गोंड दक्षिण से आए और उत्तर-पश्चिम में उनकी पहुँच प्राय: अधिक से अधिक सागर और दमोह तक हुई। स्मिथ ने चंदेलों के मनीयदेव के मन्दिर को हमीरपुर जनपद के जिस गाँव में खोज निकाला था उसके संबंध में ख्याति थी कि वह पहले भारों के हाथ में था। आधुनिक काल में मिर्जापुर में बहुत चंदेल हैं जो किसी समय भारों का मुख्य स्थान था, किन्तु मिर्जापुर में गोंडों की संख्या कभी भी अधिक नहीं थी और न कभी उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। रस्सल का सुझाव है कि हो सकता है कि चंदेल गहरवारों की मात्र एक स्थानीय शाखा रही हो और उन्होंने चंदेरी से या किसी अन्य ढंग से एक प्रादेशिक संज्ञा ग्रहण की हो, जैसा कि अन्य जातियों के संबंध में निरन्तर होता रहा है। गहरवारों की उत्पत्ति संभवत: भारों से हुई थी।

सी० वी० वैद्य ने चंदेलों की उत्पत्ति के आख्यान के संबंध में लिखा है कि वैदिककाल से कवि और भाट इस प्रकार की कथाएँ गढ़ते आए हैं और इससे वंश के संस्थापक के जन्म की तुच्छता या श्रेष्ठता का अनुमान नहीं किया जा सकता। ये कहानियाँ कल्पनामात्र हैं। वैद्य ने लिखा है कि चन्देल शंकरी वंशज नहीं हैं। कवि चन्द ने जिन छत्तीस राजवंशों की तालिका दी है उसमें छंद सर्वप्रथम हैं। वैद्य का विश्वास है कि

यह नाम चन्देल का है। इसके अतिरिक्त चन्देल नाम कुमारपाल संस्कृतहस्तलिपिसूची में आया है जिसको टॉड ने छत्तीस परम्परागत राजपूत वंशों के नामों की सूचियों की तालिका में सम्मिलित किया है। शिलालेखों के साक्ष्य से प्रकट है कि चन्देलों और अन्य विख्यात राजपूत वंशों से अन्तर्विवाह होता था। वैद्य का विचार है कि हूण और कुशाण आक्रमण के समय चन्देल पंजाब तथा गंगा की घाटी से जाकर मनियागढ़ में बसे और वहाँ से वे महोबा गए और अपने साथ मनीयदेव की आराधना लेते गए। वैद्य के तर्क पर्याप्त पुष्ट नहीं हैं। महाकवि चन्द ने छत्तीस राजपूत वंशों में हूण, जीत आदि भी सम्मिलित किए हैं। इनके राजपूत होने का प्रमाण कहीं नहीं मिलता। यह महाकाव्य अविश्वसनीय तथा बहुत बाद का है। कुमारपाल बारहवीं शती ईसवी में लिखा गया था। उस समय कदाचित् चन्देल अपने को शुद्ध क्षत्रिय प्रस्तुत करने में सफल हो गए थे। वैद्य ने इसका साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि चन्देल मूलरूप से क्षत्रिय थे और भारत पर हूण या कुशाण आक्रमण के समय वे पंजाब या गंगा की घाटी से महोबा आए।

डॉ० आर० सी० मजुमदार का विचार है कि चन्देल यद्यपि क्षत्रिय माने जाते थे, मूलरूप में आदिवासी थे और बाद को आर्य समुदाय में सम्मिलित किए गए। यह अर्थ पूर्ण है कि आख्यायिकाओं में चन्देलों के उत्पत्ति की कथा में गहरवारों से संबंध जोड़ा गया है। बाँधों के निर्माणकर्त्ताओं के रूप में गहरवारों और चन्देलों की अनुरूपता विचारणीय है। डॉ० निमाई साधन बोस ने लिखा है कि चन्देल संभाव्यत: भारों से उत्पन्न हुए थे। स्मिथ ने भी लिखा है कि बाँदा में किसी समय भार अधिक संख्या में थे और हमीरपुर जनपद के प्रत्येक भाग में निवास करते थे, और धसन नदी के पश्चिम झाँसी जनपद में भी पाए जाते थे। हमीरपुर जनपद के परगनों के स्थानीय नाम से इस बात की पुष्टि होती है कि पहले ये परगनें भारों के हाथ में थे। उनके पुराने नाम इस प्रकार थे—भोरुआ, मऊधा, पन्वारी—जैतपुर इस वंश की उत्पत्ति से संबंधित मत स्थानीय परम्पराओं, आख्यायिकों और बाद के साहित्यिक ग्रन्थों पर आधारित हैं। किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचने के लिए वस्तुतः कोई पर्याप्त विश्वसनीय साक्ष्य नहीं हैं।

२. चंदेल नाम के रूपान्तर—धंग का खजुराहो उत्कीर्ण लेख (९४५ ई०) इस वंश का सबसे प्रथम शिलालेख है। इसमें तथा इस वंश के अन्य अनेक शिलालेखों में इस वंश का नाम 'चन्द्रात्रेय' दिया हुआ है। यशोवर्मन् के पौत्र देवलब्धि के दुदाहि (ललितपुर जनपद का एक गाँव) उत्कीर्ण लेख में इस वंश का नाम 'चन्द्रेल्ल' मिलता है। कीलहार्न ने सुझाव दिया है कि 'चन्द्रात्रेय' रूप 'चन्द्रेल' का संस्कृत रूप है। उसका सन्देह है कि 'चन्द्रात्रेय' नाम बाद का शब्द है जिसकी उत्पत्ति का कारण कुछ

अधिक संस्कृतनिष्ठ नाम रखने की आकांक्षा है। कीलहार्न ने 'चन्द्रेल्ल' की व्युत्पत्ति 'चन्द्र+इल्ल (प्राकृत प्रत्यय)' से मानी है जिसका अर्थ है 'चन्द्र का वंशज'। जन-अनुश्रुतियों में 'चन्देल' और चन्देल्ल' शब्द आए हैं। कीर्तिवर्मन् के देवगढ़ उत्कीर्ण लेख में 'चांदेल्ल' रूप आया है। लक्ष्मीकर्ण कलचुरि के बनारस दानपत्र में 'चन्द्रेल्ल' रूप मिलता है और चाहमान पृथ्वीराज तृतीय के मदनपुर उत्कीर्ण लेख में तथा चरखारी पट्ट (१०५१ ई०) में 'चन्देल' रूप मिलता है। प्रत्यक्ष है कि उपर्युक्त समस्त शब्द संकेत करते हैं कि इस वंश की उत्पत्ति चंद्रमा से हुई है। किन्तु सी० वी० वैद्य ने सुझाव दिया है कि 'चन्द्रात्रेय' नाम गोत्र नाम है, जैसे पाराशर ब्राह्मण वंश पराशर को अपना पूर्वज मानते हैं।

३. चंदेलों का मूलस्थान और जेजाकभुक्ति नाम की उत्पत्ति—अनुश्रुति के अनुसार चंदेलों का मूल निवास-स्थान मनीयगढ़ था। स्मिथ का भी यही मत है कि उनका आदिस्थान गोंड प्रदेश मनीयगढ़ था जहाँ मनीयदेव का मंदिर आज भी खड़ा है। 'महोबा खण्ड' में लिखा है कि चन्द्रमा ने हेमवती से कहा 'शुभ कर्णावती के तीर तुव पुत्र होय सुवीर'....षज्जुरपुर फिर जाय, दियदाय, जज्ञ कराय....करिव जज्ञ खज्जुरपुर बहुधन दीन लुटाय। रानिय चन्द्रावती सहित बस्यो महोबे आया। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रवर्मन् महोबा में आकर रहने लगे और उसको अपनी राजधानी बनाया। इस वंश के परम्परागत संस्थापक चन्द्रवर्मन् ने महोबा में महोत्सव मनाया था। अतः इसका प्राचीन नाम महोत्सवनगर था। खजुराहो, कालिंजर, और अजयगढ़ चंदेल राज्य के धार्मिक केन्द्र थे। खजुराहो अपने भव्य मंदिरों के लिए, कालिंजर अपने दृढ़-किलों के लिए और अजयगढ़ प्रासादों के लिए विख्यात था। ह्वेनसांग ६४१-४२ ई० में 'चिह-चि-त्तो' गया था। विद्वानों ने इसका तादात्म्य जिझोति से किया है। उसने इसकी राजधानी का नाम नहीं लिखा है। सुलतान महमूद ने १०२२ ई० में कालिंजर के विरुद्ध अभियान किया। अबुरिहान ने जो उसके साथ भारत आया था। लिखा है कि जजहोति की राजधानी खंजुराहह है। अलबिरूनी (१०३० ई०) ने इसकी राजधानी खजुराह और इब्नबतूता (१३३५ ई०) ने काजुरा या कजर्रा लिखी है। एक शिला-लेख में खंजुराही का संस्कृत नाम खजुरवाहक आया है।

उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि आदि मध्यकाल में चंदेल राज्य जेजाभुक्ति, जेजाभुक्तिक या जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था। महोबा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि चंदेल राजा जयशक्ति के नाम पर इस प्रदेश का नाम जेजाभुक्ति पड़ा। इस राजा का नाम जेज्जाक और जेजा भी था। चंदेल उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि जिस तरह पृथु के नाम पर पृथ्वी पड़ा उसी तरह जेजा के नाम पर जेजाभुक्ति पड़ा। प्रतीत होता है कि चंदेल प्रदेश एक भुक्ति' के रूप में संगठित किया गया और जयशक्ति के अधीन

रखा गया जो प्रतिहारों का सामन्त बन नया उसके नाम पर भुक्ति का नाम जेजा या जेजाकभुक्ति पड़ा। चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के मदनपुर के दो उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि बारहवीं शती में इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति या जेजाकभुक्ति-मण्डल था।

किसी समय इस प्रदेश का नाम जिझोति, जझोति या जजाहुति था। जझोतिय या जिझोतिय ब्राह्मणों के उपाधि के रूप में यह नाम अब भी प्रचलित है। कनिंघम स्मिथ ने ह्वेनसाग द्वारा उल्लिखित चि-चि-तो को जजहुति का तद्दुरूप माना है।

४. ऐतिहासिक साधन—चंदेल वंश के इतिहास के मुख्य और विश्वसनीय आधार उस समय के शिलालेख और ताम्रपत्र हैं। इतिहास लेखकों ने जनश्रुतियों और दन्तकथाओं का उसी सीमा तक आश्रय लिया है जहाँ तक कि उनकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखों और साहित्यिक ग्रन्थों से हुई है। स्मिथ ने अपने शासकीय सेवाकाल में अनुश्रुतियों और ऐतिहासिक सामग्रियों को एकत्र करने के हरसंभव प्रयत्न किया। इसके लिए उसने अनेक दुर्गम स्थानों की भी यात्रायें कीं। किन्तु इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य जनरल कनिंघम और बेगलर ने किए जिन्होंने जगह-जगह से शिलालेखों और ताम्रपट्टों को एकत्र किया। प्रो० कीलहार्न ने उत्कीर्ण लेखों का सम्पादन तथा अनुवाद किया और उनमें अपनी टिप्पणियाँ जोड़ीं।

चंदेल काल के इतिहास के निम्नलिखित आधार-श्रोत हैं :

१. उत्कीर्ण लेख—अब तक चंदेल वंश के इतिहास से सम्बन्धित ६५ उत्कीर्ण लेखों का पता चला है। यशोवर्मन् का खजुराहो उत्कीर्ण लेख (९५४ ई०), धंग का खजुराहो उत्कीर्ण लेख (१००२), महोबा उत्कीर्ण लेख, परमर्दिदेव के सेमरा पट्ट (११६६ ई०) और बघारि (बटेश्वर) उत्कीर्ण लेख (११९५ ई०) सूचित करते हैं कि चंदेल वंश की उत्पत्ति चन्द्रमा और चंद्रात्रेय से हुई। मऊ उत्कीर्ण लेख (लगभग बारहवीं शती का मध्यकाल) तथा बघारि (बटेश्वर) उत्कीर्ण लेख (११९५ ई० में चंदेल राजाओं के वंशागत मन्त्रियों की सूची ही हुई है। मऊ उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि धंग ने कान्यकुब्ज के राजा को युद्ध में पराजित किया। मदनपुर उत्कीर्ण लेख (११८२ ई०) सूचित करता है कि चाहमान पृथ्वीराज ने परमर्दि के प्रदेश को लूटा और नष्ट किया तथा ११८२ ई० पृथ्वीराज के पुत्र सोमेश्वर ने जेजाकभुक्ति को लूटा। कालिंजर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि मदनवर्मन् का कनिष्ठ भ्राता प्रताप 'निर्बल और पंगु, अस्वस्थ्य और पीड़ित' व्यक्तियों की सेवा करता था। उत्कीर्ण लेखों से चंदेल वंश के राजाओं के नाम, उनका अनुक्रम, तिथियाँ तथा उनके पराक्रमों और उपाधियों की सूचना मिलती है। उत्कीर्ण लेखों से चंदेल वंशकालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा का भी ज्ञान होता है। इनसे यह भी ज्ञात होता है कि चंदेल राजाओं का पड़ोसी

राज्यों से सम्बन्ध था। और चंदेल राज्य का विस्तार कहाँ तक था। इनसे कभी-कभी अनुश्रुतियों तथा ग्रन्थों से प्राप्त सूचनाओं की पुष्टि करने में भी सहायक होते हैं।

डॉ० बाशम ने लिखा है कि उत्कीर्ण लेखों की प्रशस्तियों ने वास्तविक को नहीं बल्कि गौरवान्वित कृत और आदर्शमयकृत व्यक्तियों को प्रस्तुत किया है। वे अतीत के यथार्थ मानवों के प्रतीक मात्र हैं जिनमें मानवीय स्नेह, घृणा, आशा और दुराशा थीं। उनको सजीव करना इतिहासलेखक का काम है।

२. साहित्यिक साधन—साहित्यिक साधनों में 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह एक रूपक है जिसको श्री कृष्ण मिश्र ने लिखा और जो चन्देल राजा कीर्तिवर्मन् के समक्ष अभिनीत किया गया जिन्होंने सपरिषद् इसको देखने में विशेष कुतूहल प्रकट किया। इस नाटक में कीर्तिवर्मन् के 'सहज-सुहृत्' या चचेरे भाई गोपाल द्वारा सामन्त राजाओं की सेनाओं को संगठित किए जाने और चेदि राजा कर्ण के पराजित किए जाने का वर्णन है। इस रूपक से स्पष्ट है कि गोपाल ने चन्देल शक्ति को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। इसकी सत्यता का प्रमाण यही है कि यह चन्देल राजा कीर्तिवर्मन् के समक्ष प्रस्तुत किया गया और उसने इसको बड़े कौतूहल से देखा। इसकी सत्यता का एक प्रमाण यह भी है कि उसने लिखा है कि चन्द्रान्वय—राजाओं को चेदिपति ने उन्मूलित किया जिसकी पुष्टि बिल्हणकृत विक्रमाङ्कदेवचरित से होती है 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' रूपक में कर्ण की सेना की तुलना 'कर्ण सेना-सागरम्' से की गई है। इसी तरह अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख और महोबा उत्कीर्ण लेख में कर्ण की सेना की तुलना 'कर्ण-पयोधि' और 'कर्ण महार्णव' से की गई है। हुल्जे ने महोबा उत्कीर्ण लेख का सम्पादन करते हुए संकेत किया है कि यह साम्यता संभवत: इस कारण है कि उत्कीर्ण लेख के रचयिता को 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' रूपक की जानकारी थी और उसने उससे वह वर्णन ग्रहण किया है।

इस रूपक से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन् अपने अवकाश का समय अपने परिषद् के साथ बौद्धिक और सांस्कृतिक कार्य-क्रमों में व्यतीत करता था। प्रबोन्धचन्द्रोदय ने बौद्ध धर्म के सौगत सम्प्रदाय का उल्लेख किया है और लिखा है कि विवेक के उदय होने से बौद्ध धर्म का प्रभाव जनता पर से जाता रहा। इस रूपक से यह भी मालूम होता है कि उस समय चन्देल राज्य में दिगम्बर जैनी भी थे, तान्त्रिक कौल, और कापालिक या सोमसिद्धान्तिन् भी थे। संक्षेप में दार्शनिक—ऐतिहासिक रूपक है।

जयरथकृत 'पृथ्वीराजविजय' में पृथ्वीराज और चन्देल परमर्दिदेव के बीच में जो युद्ध था उसका वर्णन है। इस युद्ध में पृथ्वीराज विजयी हुआ जिसकी पुष्टि मदनपुर के शिलालेख से होती है। खुजराहो उत्कीर्ण लेख ((९५४ ई०) में लिखा है

कि यशोवर्मन् ने कश्मीर की सेना को पराजित किया। 'नश्यत् कश्मीरवीर':) कल्हण-कृत राजतरंगिणी से उस समय के कश्मीर की राजनीतिक दशा का ज्ञान होता है।

महोबा खण्ड (परमालरासो) में चन्द्रवर्मन् की उत्पत्ति वर्णन की गई है जो चन्देल-वंश का प्रथम शासक था। कवि ने लिखा है कि गहिरवारों के पुरोहित हेमराज की पुत्री हेमवती और चन्द्रमा के संयोग से चन्द्रवर्मन् की उत्पत्ति हुई। इससे प्रतीत होता है कि किस प्रकार राजवंश की उत्पत्ति का महत्व बताने के लिए काल्पनिक तत्वों के आधार पर अनुश्रुतियाँ गढ़ी जाती थीं। जहाँ तक इसके तथ्यों की पुष्टि शिलालेखों तथा अन्य श्रोतों से होती है यह पुस्तक उपादेय है।

चन्दबरदाईकृत 'पृथ्वीराजरासो', कवि जगनिक 'आल्हाखण्ड' से उस समय के हिन्दू जाति के पारस्परिक विद्वेष का चित्र सामने आता है। इनमें पृथ्वीराज-परमर्दिदेव के युद्ध का वर्णन है। समय-समय पर इन पुस्तकों में अनेक क्षेपक जुड़ते गए। अतः अनेक अनैतिहासिक विवरणों से ऐतिहासिक तथ्य छिप गया है। वेणीमाधव-कृत 'बलभद्रविलास' में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के युद्ध का वर्णन है। यह परवर्ती ग्रन्थ है। हिन्दू राजनीति ग्रन्थ 'शुक्रनीति' और 'वीरमित्रोदय' से चन्देल शासन पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

अलबिरूनीकृत 'किताबुल हिन्द', इब्न-उल-अथिर कृत 'अल-तारीख-उल-कामिल किताबे यामिनी', 'ताजुल-म-आथिर,' 'तबकाते नासिरी', किताब जैनुल अख़-बार', 'तबकाते अकबरी और 'तारीखेफिरिश्ता' से मुसलमानों के आक्रमण तथा तत्कालीन चन्देलराजाओं के अवरोधों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है किन्तु उपर्युक्त मुसलमान इतिवृत्त लेखकों के वर्णन अतिरंजित और एकपक्षीय हैं। अतः उनके वर्णन पर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं किया जा सकता।

३. स्थापत्य—चन्देलकालीन मन्दिरों, गढ़ों और सरोवरों से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा का ज्ञान होता है। उनसे चन्देल शासकों के कलाप्रेम तथा चन्देलकालीन शान्ति और अभ्युदय का भी परिचय मिलता है।

४. मुद्राएँ—चन्देल राजाओं की सोने, चाँदी तथा ताँबे की मुद्राएँ पाई गई हैं जिनसे राजाओं के क्रम-निर्धारण में तथा उनकी धातुओं की शुद्धि से तत्कालीन आर्थिक दशा की जानकारी होती है। उन पर उत्कीर्ण हुई मूर्तियों से चन्देलराजाओं के धार्मिक विश्वास का पता चलता है। इन मुद्राओं के प्राप्तिस्थान से राज्य की सीमा तथा प्रभाव क्षेत्र का पता चलता है।

●

अध्याय | २

चंदेल वंश का प्रारम्भिक इतिहास

१. संस्थापक—लोकगाथा काव्यों और अनुश्रुतियों में नन्नुक का नाम नहीं है। उन्होंने चन्द्रवर्मन् को चन्देल वंश का संस्थापक कहा है। महोबा खण्ड या परमाल-रासो में चन्द्रवर्मन् के जन्म तथा उसके पराक्रमों की काल्पनिक कहानियाँ दी हुई हैं जिसकी पुष्टि प्रामाणिक ज्ञात तथ्यों से नहीं होती। अतः विद्वानों ने इन प्राचीन कथाओं को अस्वीकार किया है। डॉ० रे ने अनुश्रुति और उत्कीर्ण लेख में यह संकेत करके सामंजस्य किया है कि चन्द्रवर्मन् नन्नुक का मात्र विरुद था। डॉ० रे ने स्मिथ की इस मान्यता को चन्देलों के पहले बुन्देलखण्ड में परिहार राज्य करते थे यह कहकर काटा है कि नवीं शती ई० के आरम्भ में गुर्जरप्रतिहारों की शक्ति परमोत्कर्ष पर थी। अतः चन्देलों के लिए यह असंभाव्य है कि उन्होंने प्रतिहारों को उखाड़कर अपनी सत्ता जमाई हो।

डॉ० रे प्रतिहार शक्ति का चित्र किंचित बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। नागभट्ट द्वितीय और रामभद्र (७३३-३६ ई०) के समय तक भी गुर्जर-प्रतिहार परम उत्कर्ष पर नहीं थे। उस समय उत्तर भारत में पालवंश का बोलबाला था। इसके अतिरिक्त चन्देलों और गुर्जर-प्रतिहारों के बीच में कोई युद्ध हुआ था। इसकी कोई साक्ष्य उप-लब्ध नहीं है।

कनिंघम को महोबा खण्ड की एक हस्तलिखित प्रति में चन्द्रवर्मन् के राज्या-भिषेक की तिथि संवत् २२५ मिली है : कनिंघम ने इसको हर्ष-संवत् की तिथि माना है अतः चन्देलराज्य के संस्थापक का शासन् लगभग ८३१ ई० से आरम्भ हुआ। जिसका आरम्भ ६०६ ई० से हुआ था। यशोवर्मन् के खुजराहो उत्कीर्ण लेख की तिथि ९५४ ई० है। यशोवर्मन् नन्नुक की छठवीं पीढ़ी में था। हर एक शासन काल की अवधि २० या २५ वर्ष मान कर कनिंघम ने इस वंश के संस्थापक नन्नुक की तिथि नवीं शती ईसवी के आरम्भ में मानी है। दोनों ही साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि चन्देल वंश का इतिहास नवीं शती ई० के प्रथम चरण में आरम्भ हुआ।

२. सामन्त रूप में—नवीं शती के आरंभ में उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति नितान्त अस्थिर थी। इस काल में गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट और बंगाल का

पाल वंश राजनीतिक प्रमुखता के लिए आपस में निरन्तर संघर्ष करते रहते थे। प्रतीत होता है कि इसी उथल-पुथल की अवधि में नन्नुक ने बुन्देलखण्ड में अपना राज्य स्थापित किया। यह आवश्यक नहीं है कि वे किसी के सामन्त बने हों। प्रतिहार उस समय अपने शक्तिशाली शत्रुओं के विरुद्ध सांघातिक युद्ध में फँसे थे। उनकी शक्ति भी उस समय तक पूर्ण उत्कर्ष पर नहीं पहुँची थी। अतः यह अनुमान करना कि चंदेल अवश्य ही प्रतिहारों के सामन्त बने आवश्यक नहीं है। डॉ० मजुमदार ने संकेत किया है कि चंदेलों ने प्रतिहार भोज के विरुद्ध बंगाल के देवपाल की (ल० ८०१-८४० ई०) सहायता की थी उसी के पुरस्कार स्वरूप उनको खजुराहो के समीप के प्रदेश का आधिपत्य मिला। इसके लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है अतः यह नहीं माना जा सकता कि चंदेल शासक बंगाल के पालों के सामन्त थे। इसके अतिरिक्त जयशक्ति और विजयशक्ति देवपाल के समकालीन नहीं हो सकते। उनका दक्षिण अभियान में जाना अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होता है। चंदेल नन्नुक की तीसरे पीढ़ी में विजयशक्ति नामक राजा हुआ। उसके संबंध में उत्कीर्ण लेख में लिखा है 'सुहृद्उपकृति-दक्षो दक्षिणाशां जिगीषुः पुनरधित पयोवेर-बन्ध वैधूयमयैः'। यदि विजयशक्ति गुर्जर प्रतिहार राजा का सामन्त होता तो उसके प्रति सुहृद् शब्द का प्रयोग उचित न होता। इसके अतिरिक्त इस समय दक्खिन में प्रतिहारों के किसी अभियान की सूचना भी नहीं है। चंदेल हर्ष ने गुर्जर प्रतिहारों की संभवतः गृह-कलह में सहायता की थी। गुर्जर प्रतिहारों और चंदेलों में किस प्रकार का संबंध था इसका कोई निश्चित संकेत नहीं है। नवीं शती ईसवी के लगभग मध्य से पाल शक्ति ह्रास पर थी, और राष्ट्रकूटों की ओर से उत्तर भारत पर आक्रमण बन्द थे। इस समय उत्तरी भारत में प्रतिहारों की शक्ति की बराबरी करनेवाली कोई अन्य शक्ति नहीं थी। अतः यह अत्यंत संभाव्य है कि इस समय चंदेलों ने प्रतिहारों की अधीश्वरता स्वीकार की हो, क्योंकि ऐसा करने से उनके वंश को एक मान्य पद मिला, यद्यपि वह सामन्ती पद था। चंदेलवंश के उत्कीर्ण लेखों में जयशक्ति का महत्व स्वीकार किया गया है 'जेजाख्ययाथ नृपतिः स बभूव जेजाभुक्तिः पृथोरिव यतः पृथिवीयम्—आसीत्'। (जेजा से जेजाभुक्ति का नाम पड़ा जैसे पृथु से पृथ्वी का)। चंदेल शासक ने अभिलेखों के आरंभ में जयशक्ति और विजयशक्ति को अपना प्राचीन पूर्वज माना है, 'चन्द्रात्रेय नरेन्द्रानां वंशश्चन्द्र इव-उज्जलः'। नन्नुक मात्र एक स्थानीय जनजातीय राजा था जिसने चंदेल राज्य की मूल केन्द्रविन्दु स्थापित किया। लगभग ५० वर्ष तक उन्होंने देश की राजनीतिक उथल-पुथल का लाभ उठाया और जब प्रतिहारों की सर्वप्रमुखता दृढ़ता से स्थापित्त हो गई तो उन्होंने उनकी अधीश्वरता मान ली क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प न था।

३. नन्नुक—खजुराहो उत्कीर्ण लेखों के साक्ष्य के अनुसार चंदेल वंश का प्राचीनतम राजा नन्नुक था। इन लेखों में उसको नृप या महीपति कहा है। चंदेल-राज्य की स्थापना किस परिस्थिति में हुई इसकी सूचना इन लेखों से नहीं मिलती। उत्कीर्ण लेखों में उसकी अनिश्चित और रूढ़िगत शब्दावलियों में प्रशंसा की गई है। उसको 'क्षत्ररूपी स्वर्ण के मूल्य की परीक्षा करने की कसौटी' और 'यशश्चन्दन—क्रीडालंकृत दिक्-पुरीन्ध्र-वदनः और 'बहु-वैरि-वर्ग-जयिनः' कहा है। कनिंघम ने इसको नवीं शती ईसवी के आरंभ में रखा है और महोबा खण्ड की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर चन्द्रवर्मन् (जो नन्नुक का विरुद माना गया है) का राज्याभिषेक ८३१ ई० के लगभग माना है। प्रतीत होता है कि गुर्जर प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों और पालों के आपसी संघर्षों के समय नन्नुक बुन्देलखण्ड में एक स्थानीय स्वतंत्र राजा बन बैठा हो सकता है कि वह उस समय किसी का सामन्त न रहा हो, क्योंकि उसके संबंध में शिलालेख में कहा गया है कि वह 'क्षत्र-सुवर्ण-सार-निकषग्रावा' था। उसके पौत्र जयशक्ति और विजयशक्ति थे। विजयशक्ति के संबंध में कहा गया है कि 'सुहृद' के उपकार के लिए उसने दक्षिण पर चढ़ाई की। स्पष्ट है कि किसी अधीश्वर के लिए 'सुहृद' शब्द उपयुक्त नहीं है। प्रतीत होता है कि नन्नुक न तो गुर्जर प्रतिहारों का और न बंगला के पालों का सामन्त था।

नन्नुक की 'नृप' या 'महीपति विरुद्धों से डॉ० बोस ने अर्थ निकाला है कि वह गुर्जर प्रतिहारों के अधीन था। डॉ० मजुमदार ने लिखा है कि भोज प्रतिहार के ग्वालियर उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि कुख्यात और निर्दय विदेशी सैनिकों के युग्म से छुटकारा पाने के लिए प्रतिहार रामभद्र ने अपने सामन्तों की सहायता ली। प्रतीत होता है कि ये शत्रुपाल थे और संभवतः नन्नुक ने जो उसका एक सामन्त था इस संकटकाल में रामभद्र की सहायता की। इससे उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी होगी।

४. वाक्पति—नन्नुक का पुत्र और उत्तराधिकारी वाक्पति था जिसको शिलालेखों में 'क्षितिप', 'जनानंद-सुन्दरः श्रीमान्', 'अपने शौर्य से प्रजा को आतंक से मुक्त करने वाला कहा है। खजुराहो उत्कीर्ण लेख (९५४ ई०) में लिखा है कि विन्ध्य-पर्वत वाक्पति का 'क्रीडागिरि' बना। डॉ० रे ने इससे यह आशय निकाला है कि वाक्पति ने अपने छोटे से पैतृक राज्य की सीमा का विस्तार किया। विन्ध्यपर्वत की कुछ श्रेणियाँ उस प्रदेश में थीं जो बाद को जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह अत्यंत संभाव्य है कि ये श्रेणियाँ उस प्रदेश में की हों जिन पर चंदेलों का पहले से राज्य था और उनके प्रदेश की सीमा में वृद्धि न हुई हो। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे प्रमाणित हो कि वह प्रतिहार या पालवंश का सामन्त रहा हो।

५. जयशक्ति और विजयशक्ति—वाक्पति के दो पुत्र थे—जयशक्ति और विजयशक्ति। प्रतीत होता है कि ये दोनों अपनी राजनीतिक स्थिति को दृढ़ करने में लगे थे। नवीं शती के लगभग मध्य से पालों की शक्ति ह्रास पर थी, राष्ट्रकूटों के आक्रमण उस समय नहीं हो रहे थे। अतः उस समय प्रतिहार उत्तर भारत में अधिक शक्तिशाली हो गए थे। हो सकता है कि इसी काल में चंदेलों ने प्रतिहारों को अपना अधीश्वर माना हो क्योंकि प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार कर लेने से जो उस समय उत्तरी भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली सत्ता थी, चंदेलों ने अपने वंश के लिए एक मान्य पद प्राप्त किया। इसीलिए चंदेल शासकों के उत्कीर्ण लेखों में जयशक्ति और विजयशक्ति को अपना प्रारंभिक पूर्वज माना है।

६. राहिल—राहिल विजयशक्ति का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। उसका नाम दो खजुराहो अभिलेखों में आया है जिनमें अनिश्चित अर्थव्यंजक शब्दों में महान् योद्धा के रूप में उसकी प्रशंसा की गई है : जिसकी याद कर शत्रुओं को रात में पूर्ण निद्रा नहीं आती। राहिल ने जनकल्याण के लिए सरोवर, जलाशय और मन्दिरों का निर्माण किया जिनके अवशेष इस समय भी अजयगढ़ और महोबा में हैं। वर्तमान अजयगढ़ के एक मंदिर के कुछ प्रस्तरों पर उसका नाम उत्कीर्ण है, और महोबा के समीप काले पत्थर के एक मंदिर सहित एक प्राचीन सरोवर है जिसको अब भी राहिल्य सागर कहते हैं। परमालरासो में लिखा है कि उसने रासौ नामक एक नगरी की स्थापना की जहाँ केडॅल ने कुछ प्राचीन किलेबन्दी तथा सामान्य चंदेल रूप का एक मंदिर देखा है।

अध्याय | ३

चंदेलों का उत्कर्ष : हर्ष और यशोवर्मन्

१. हर्ष—धंग के नन्यउरा पट्ट से स्पष्ट है कि हर्ष चंदेलवंश का एक महत्व-पूर्ण और शक्तिशाली राजा था। उसके समय में उत्तरी भारत में महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं जिनमें चंदेल शासक ने भी भाग लिया। उस समय गुर्जर प्रतिहार वंश उत्तर भारत का सर्वप्रमुख वंश था। राष्ट्रकूटों और पालो ने उसकी सर्वप्रमुखता छीनने के प्रयास किए। महेन्द्रपाल (ल० ८९३-९०७ ई०) की मृत्यु के बाद भोज द्वितीय और महापाल के बीच में प्रतिहार सिंहासन के लिए संघर्ष हुए। प्रतीत होता है कि भोज द्वितीय ने लगभग ९०८-९१४ ई० तक राज्य किया और उसके बाद लगभग ९१४-९४३ ई० तक महीपाल ने। प्रतिहार साम्राज्य पर आन्तरिक कलह के साथ वाह्य आक्रमण का संकट भी उपस्थित हुआ। राष्ट्रकूट इन्द्रतृतीय (ल० ९१५-९१७ ई०) ने प्रतिहारों पर चढ़ाई, की कन्नौज को विध्वंस किया, और महीपाल प्राण लेकर भागा यह घटना ९१५ ई० के बाद हुई। कन्नड कवि पंप ने लिखा है कि राष्ट्रकूटों के एक चालुक्य सामन्त नरसिंह ने गुर्जर-राज की सेना को छितर-बितर किया और राजा ऐसा भयभीत हुआ कि वह 'भोजन करने या सोने या विश्राम करने को भी नहीं ठहरा।' इस स्थिति का लाभ उठाकर पालों ने भी प्रतिहारों से बिहार का कुछ भाग छीन लिया जिसकी पुष्टि गया जनपद में पाए गए उस समय के उत्कीर्ण लेखों से होती है।

अपने राज्यों को पुन: प्राप्त करने के लिए महीपाल ने अपने सामन्तों की सहायता ली। एक खण्डात्मक खजुराहो उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि एक चंदेल राजा ने क्षितिपाल देव (प्रतिहार महीपाल) को पुनः सिंहासन पर बैठाया 'पुनर् येन श्री-क्षितिपाल देव नृपतिः सिंहासने (स्थापितः)।' जिस चंदेल राजा ने क्षितिपाल की सहायता की थी उसका नाम विलीन हो गया है। कीलहार्न ने इस राजा को हर्षदेव माना है किन्तु होर्नले ने लिखा है कि वह हर्ष का पुत्र और उत्तराधिकारी यशोवर्मन् था। पंक्ति सात में लिखा है कि यशस्वी हर्ष ने अपने बाहुबल से अनेक गर्वीले शत्रुओं को विजय किया। इससे आभास होता है कि वह राजा हर्ष था। इसके अतिरिक्त यशोवर्मन् के पुत्र देवपाल का समकालीन था। महीपाल और उपर्युक्त घटना महीपाल के शासन काल के आरंभिक वर्षों में घटी थी।

डॉ० त्रिपाठी ने लिखा है कि इस उत्कीर्ण लेख के 'पुनः' शब्द का अर्थ है

'और भी', 'अतिरिक्त' या 'अब' और यह शब्द चंदेल राजा के पराक्रमों के सम्बन्ध में कुछ और विवरण प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हर्ष ने क्षितिपाल को फिर से सिंहासन पर बैठाया बल्कि इसका अर्थ यह है कि गृहकलह के समय चंदेल राजा ने उसके राज्यारोहण करने में सहायता दी।

डॉ० त्रिपाठी के अनुसार भोज द्वितीय और महीपाल सौतेले भाई थे। महेन्द्र पाल की मृत्यु के बाद भोज द्वितीय कलचुरि कोक्कल्ल की सहायता से अपने सौतेले भाई महीपाल को हटा कर स्वयं सिंहासन पर बैठा। बाद को चंदेल हर्ष ने महीपाल का पक्ष लिया और उसको सिंहसन पर बैठाने में सफल हुआ। डॉ० त्रिपाठी की धारणा का आधार कलचुरि कर्णदेव का बनारस दानपत्र है जिसमें लिखा है कि कोक्कल्ल ने भोज (प्रतिहार भोज), वल्लभराज (राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय), चित्रकूट भूपाल हर्ष (चंदेल हर्ष), और राजा शंकरगण को भय से मुक्ति प्रदान की। यह विचित्र प्रतीत होता है कि हर्ष ने जो कोक्कल्ल का रक्षित राजा था स्वयं कोक्कल्ल के पिट्ठू से युद्ध किया, अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप में स्वयं कोक्कल्ल से लड़ा। ऐसा होना सम्भाव्य नहीं है। इसके अतिरिक्त चंदेलों और कलचुरियों में वैवाहिक सम्बन्ध और मैत्री थी। कलचुरि कर्णदेव ने चंदेल वंश की राजकुमारी नट्टया नट्टाख्यदेवी से विवाह किया। अतः डॉ० त्रिपाठी की यह धारणा कि हर्ष ने उत्तराधिकार के युद्ध में महीपाल की सहायता की थी स्वीकार नहीं की जा सकती।

प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने कन्नौज को ध्वंस किया, महीपाल सिंहासनाच्युत हुआ और राज्य छोड़कर भागा। बाद को अपने शक्तिशाली सामन्त हर्ष की सहायता से महीपाल अपने सिंहासन को पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर्ष को अपनी शक्ति बढ़ाने के दो अवसर मिले। प्रतिहार वंश की गृहकलह के समय और विशेष रूप से राष्ट्रकूट आक्रमण के बाद हर्ष की शक्ति बहुत बढ़ गई और वह उत्तरी भारत का एक महत्वपूर्ण राजा हो गया। हर्ष ने 'चाहमान कुलोद्भव' कंचुका से विवाह किया और चंदेल वंश की राजकुमारी नट्टया नाटख्यदेवी का विवाह कलचुरि राजा कोक्कल्ल प्रथम से हुआ। कलचुरियों ने इस विवाह को महत्व बहुत दिया, और इस विवाह को शची का इन्द्र के, कमला का उपेन्द्र के और नगेन्द्र कन्या उमा का चन्द्र मौलि के विवाह की तरह आदर्श विवाह माना। इन वैवाहिक सम्बन्धों से हर्ष की शक्ति में वृद्धि हुई। प्रतीत होता है कि कोक्कल्ल ने हर्ष को आश्वासन दिया कि गुर्जर प्रतिहारों से या राष्ट्रकूटों, से चंदेलों के हित को कोई क्षति न पहुँचने पाएगी, क्योंकि उसने प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों दोनों से मित्रता कर रखी है।

चात्सू उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि गुहिलोत राजा भट्ट ने अपने अधीश्वर

प्रतिहार राजा महीपाल की आज्ञा से दक्षिण के राजाओं पर प्रत्यक्षतः राष्ट्रकूटों पर, चढ़ाई की। खजुराहों उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि चंदेल राजा हर्ष ने श्रीक्षितिपालदेव (प्रतिहार महीपाल) को सिंहासन पर पुनः स्थापित किया। प्रतीत होता है कि महीपाल की शक्ति क्षीण थी! अतः सामन्तों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला। इस परिस्थिति में चंदेल वंश वस्तुतः प्रतिहारों से स्वतंत्र हो गया और नाम मात्र के लिए वह अब प्रतिहारों के अधीन था।

९. यशोवर्मन्—यशोवर्मन् हर्ष का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था वह किस समय सिंहासन पर बैठा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यशोवर्मन् का कोई उत्कीर्ण लेख अभी तक नहीं मिला है। प्रतीत होता है कि खजुराहो प्रस्तर उत्कीर्ण लेख (९५४ ई०) उसके समय में तैयार किया गया था किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र धंग ने उसको पूरा करा कर निःसृत किया, क्योंकि इसके अन्तिम भाग में धंग और उसके पराक्रमों की चर्चा है। अतः स्पष्ट है कि यशोवर्मन् ने इस लेख की तिथि (९५४ ई०) के पूर्व राज्य किया।

राजनीतिक स्थिति—जिस समय यशोवर्मन् सिंहासन पर बैठा उस समय प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों दोनों वंशों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। वे एक दूसरे के शत्रु थे। अतः उनकी शक्ति क्षीण हुई। प्रतिहार वंश को अपने सामन्तों—गुहिलोतों और चंदेलों की सहायता लेनी पड़ी। अतः उनके सामन्तों में स्वभावतः स्वतंत्र होने की इच्छा जाग्रत हुई। राष्ट्रकूट वंश गृहकलह के कारण निर्बल हो गया अतः उत्तर भारत की राजनीति में भाग लेना उनके लिए कठिन हो गया। इन दोनों साम्राजिक शक्तियों के निर्बल पड़ जाने से चंदेलों को स्वतंत्र होने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। यशोवर्मन् ने अपने वंश की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ाने के लिए तथा अपने राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध किए किन्तु इस समय भी वह औपचारिक रूप से प्रतिहारों के अधीन था।

कालिंजर पर अधिकार—यशोवर्मन् ने (९५३-५४ ई०) के पूर्व किसी समय सरलता से कालिंजर पहाड़ी पर अधिकार किया (जग्राह क्रीडया)। यह सफलता बहुत ही महत्वपूर्ण थी। इससे इस वंश की प्रतिष्ठा बढ़ी। प्रश्न होता है कि यशोवर्मन् ने किससे कालिंजर छीना? प्रतिहारों के लेख सूचित करते हैं कि कालिंजर मण्डल ८३६ ई० में उनके हाथ में था। इन्द्र तृतीय के अधीन राष्ट्रकूटों ने ९१५ ई० में 'महोदय नगरी को जो कुशस्थल नाम से अतिविख्यात हैं' पूर्ण रूप से विध्वंस किया। किन्तु इन्द्र तृतीय की मृत्यु के बाद गुर्जर-प्रतिहारों ने चंदेलों आदि सामन्तों की सहायता से अपने राज्य का बहुत सा भाग पुनः प्राप्त कर लिया। देवली और कर्हाद पट्टों से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटों ने अपने आक्रमण पुनः आरंभ किए। अतः प्रतिहार अपने राज्य

का शेष भाग प्राप्त न कर सके। कृष्ण तृतीय के कर्हाद पट्टों में लिखा है कि 'यह। सुन कर कि मात्र उसकी वक्र दृष्टि से दक्षिण प्रदेश के समस्त गढ़ विजित हो गए, गुर्जर के हृदय से, कालिंजर और चित्रकूट की आशा जाती रही'। जुरा उत्कीर्ण लेख में भी यही बात कही गई है। कृष्ण तृतीय की अधिकांश विजयें उसके पिता के जीवन काल में ९४९ ई० के पूर्व किसी समय की गई थीं। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् ने कालिंजर को राष्ट्रकूटों से छीना, गुर्जर प्रतिहारों से नहीं, क्योंकि इस समय भी वे प्रतिहार शासक को अपना अधीश्वर मानते थे।

यशोवर्मन् के समय में कलचुरियों के प्रति चंदेलों की दृष्टि बदल गई। यशोवर्मन् के पिता हर्ष के समय कलचुरि राजा कोक्कल्ल ने चंदेलों को से भय से मुक्त रहने का आश्वासन दिया था। उस समय इन दोनों सत्ताओं में राजनीतिक मैत्रीभाव था जो संभवत: कोक्कल्ल का विवाह चंदेल राजकुमारी नट्टा या नट्टख्यदेवी के साथ हो जाने से और भी दृढ़ हो गया था। यशोवर्मन् के राज्यकाल में कलचुरियों का राष्ट्रकूटों से संबंध अधिक दृढ़ हो गया। राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय ने, उनके पुत्र जगत्तुङ्गदेव ने, और इन्द्र तृतीय ने क्रमश: कलचुरि राजा शंकरगण की बहन, पुत्रियों तथा उसके वंश की एक अन्य कन्या से विवाह किए थे। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर बार कन्याएँ कलचुरि वंश की थीं जो,कलचुरियों का राष्ट्रकूटों के प्रति निम्न पद सूचित करता है। यशोवर्मन् ने राष्ट्रकूटों की कृपा प्राप्त करने के कलचुरियो के इस प्रयास को अच्छा नहीं समझा, क्योंकि राष्ट्रकूटों की नीति आक्रामक थी, और| सामरिक दृष्टि से कलचुरियों का राज्य चंदेलों के विरुद्ध राष्ट्रकूटों द्वारा हनुमान-कूद के रूप में उपयोग किया जा सकता था। राष्ट्रकूटों की कुछ विजय-यात्राओं में कलचुरियों ने सचमुच सहायता की थी, और संभवत: कलचुरियों की मैत्री से राष्ट्रकूटों को कालिंजर पर आधिपत्य जमाने में सुगमता हुई थी। अत: चंदेलों का कलचुरियों के प्रति विद्वेष करना स्वाभाविक था। चन्देल यशोवर्मन् का ९५४ ई० का खजुराहो उत्कीर्ण लेख सूचित, करता है कि यशोवर्मन् ने 'सावद्य' (गर्ह्य, निंदनीय) चेदि राजा की असंख्य सेना को विजित किया। कलचुरियों पर आक्रमण करने का एक कारण यह भी था कि यशोवर्मन् की शक्ति में वृद्धि हो गई थी क्योंकि चन्देलों ने क्षितिपाल (प्रतिहार महीपाल) को सिंहासन पर पुन: स्थापित होने में सहायता की थी, चाहमानों से वैवाहिक मैत्री की थी, और कुछ प्रदेशों को भी विजय किया था।

यशोवर्मन् ने राष्ट्रकूटों से कालिंजर छीन लिया जिससे उसके वंश की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ी। यह उसके वंश के लिए युगपरिवर्तनकारी कार्य था। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् चेदि राजा मुग्धतुङ्ग के ज्येष्ठ पुत्र बालहर्ष को युद्ध में पराजित किया और उसका प्राणान्त किया।

यशोवर्मन् के पराक्रमों से सम्बन्धित प्रशस्तियाँ

'गौड-क्लीडालतासिस्-तुलित-खषबल: कोशल: कोशलानां ।
नश्यत्-कश्मीरवीर: शिथिलित-मिथिल: कालवन्-मालवानां ।।
सीदत्-सावद्य चेदि: कुरुतरुसुमरुत्-संज्वरो गुर्ज्जराणां ।
तस्मात्-तस्याम् स यज्ञे नृपकुलतिलक: श्री यशोवर्मराज: ।।

'जो गौडरूपी क्रीडा-लताओं (को काटने के लिए) तलवार था जिसने खषों की सेना की समता की (मजुमदार ने इसका अर्थ लिखा है कि उसने खषों का तिरस्कार किया), कोशलों के कोषों का उपहरण किया; जिसके समक्ष कश्मीरी सैनिक भागे (जैन साहित्य में नश् धातु भागने के अर्थ में प्रयुक्त की गई है); जिसने मिथिलों को निर्बल किया; जो मालवों के लिए काल के समान था; जिसने निंदनीय चेदियों पर विपत्ति ढाई, जो कुरुरूपी वृक्षों के लिए अंधड़ था और गुर्जरों के लिए झुलसाने वाली अग्नि था ।'

निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है कि यह कोरी कविकृत प्रशंसा नहीं है ।

बंगाल-अभियान—गौड शासकों की पराजय का मुख्य कारण उनकी सामरिक निर्बलता थी । यह आक्रमण ९५४ ई० के पूर्व हुआ था जब राज्यपाल (लगभग ९०८-४० ई०) और उसके बाद उसका पुत्र गोपाल द्वितीय (ल० ९४०-६० ई०) पाल-सिंहासन पर थे । वे नि:सन्देह निर्बल शासक थे और निरन्तर अपनी गिरती हुई शक्ति को असफलरूप से पूर्ति करने में लगे थे । अत: चन्देल इन पालों की आकांक्षाओं के प्रति उदासीन नहीं रह सकते थे । अत: यशोवर्मन् ने उनके विरुद्ध अभियान किया जिससे पालवंश और भी निर्बल हो गया और कम्बोजों को उत्तर और पश्चिमी बंगाल पर अधिकार करने और एक अलग राज्य स्थापित करने का अवसर मिला । चन्देलों ने स्वयं गौड पर अधिकार नहीं किया । किन्तु एक नई शक्ति को उस पर अधिकार करने का अवसर प्रस्तुत किया । चन्देलों के आक्रमण से पाल इतने निर्बल हो गए कि वे इस अपहरण को रोकने में सक्षम नहीं थे । महीपाल का बांगड दानपत्र सूचित करता है कि पालों की शक्ति 'विलुप्त' हो गई थी ।

मिथिला पर आक्रमण—गुर्जर प्रतिहार वंश के महेन्द्रपाल ने पालशासक नारायणपाल के शासन काल में बिहार और उत्तर बङ्गाल पर अधिकार कर लिया था । प्रतीत होता है कि मिथिला किसी सामन्त राजा का केन्द्र था या यह एक स्वतंत्र राज्य था । यह पाल साम्राज्य के द्वार पर था । अत: यशोवर्मन् ने इस विजय किया ।

मालवों से संबंध—इस काल में मालवा के सिंहासन पर सियक द्वितीय अपर नाम हर्ष राज्य कर रहा था। उसने मालवा के उत्तर-पश्चिम की ओर के हूण राजा को पराजित किया और संभवतः अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने के लिए उत्सुक था। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् की शक्ति देखकर उसने आगे बढ़ने का प्रयत्न नहीं किया। इसीलिए खुजराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि वह मालवों के लिए काल के समान था।

कोशल पर आक्रमण—प्रत्यक्ष है कि यहाँ कोशल शब्द से 'उत्तर कोशल' (अवध) से तात्पर्य नहीं है जो उस समय प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत था। यह शब्द यहाँ महानदी की ऊपरी घाटी के प्रदेश को सूचित करता है जो उस समय 'दक्षिण कोशल', 'महाकोशल' या 'कोशल' के नाम से विख्यात था। प्रतीत होता है कि 'कोशलाधिपति' चेदि शासकों के प्रभाव में था और दोनों राज्यों के बीच में राजनीतिक गठ-बन्धन था। चन्देलों की चेदियों से शत्रुता थी। संभव है इसी कारण यशोवर्मन् ने कोशल के राजा शिवगुप्त (ल०९५० ई०) पर क्षिप्राक्रमण किया हो और उनके कोषों को छीन लिया हो।

कश्मीर पर आक्रमण—खुजराहो लेख में लिखा है कि यशोवर्मन् ने कश्मीर की सेना को भगाया। उत्पल वंश के कश्मीर के राजा यशस्कर की ९४८ ई० में मृत्यु हुई। उसके बाद वंशीय गृहकलहों और राजप्रसाद के षड्यंत्रों के कारण कश्मीर का राजनीतिक वातावरण दूषित था और किसी भी 'विजीगिषु राजा' के लिए कश्मीर पर आक्रमण करने का स्वर्ण अवसर था। प्रतीत होता है कि खुजराहो लेख के प्रशस्तिकार को वहाँ की स्थिति का ज्ञान था। उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति एवं चन्देल राज्य से कश्मीर की दूरी देखते हुई ऐसा प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् ने उस पर आक्रमण न किया हो। प्रतिहार राज्य और कश्मीर की सीमा उत्तर की ओर मिलती थी हो सकता है कि चन्देलों ने प्रतिहारों के साथ कश्मीरी सेना को भगाया हो।

खषों पर आक्रमण—खष कश्मीर राज्य के सीमान्त पर के लोहरा प्रदेश के शासक थे। इसीलिए प्रशस्तिकार ने खषों का सम्बन्ध यशोवर्मन् की विजय से जोड़ा है और लिखा है कि यशोवर्मन् ने खषों की सेना का तिरस्कार किया।

कुरु प्रदेश पर आक्रमण—कुरु प्रदेश साम्राजिक प्रतिहारों के साम्राज्य के अन्तर्गत था और जब से यशोवर्मन ने कालिंजर पर अधिकार किया था प्रतिहारों और चन्देलों के बीच संभवतः यदाकदा संघर्ष होते रहते थे। प्रतीत होता है इसी प्रकार का कोई संघर्ष कुरु प्रदेश में हुआ था जिसका कि 'कुरु-तरु-मरुत्' अनिश्चित पद में उल्लेख किया गया है। इसके पूर्व चन्देलों ने उन प्रदेशों पर सामरिक अभियान किए

जो पहले प्रतिहारों के आधिपत्य में थे। यशोवर्मन् एक सफल सैनिक नेता था जिसने प्रतिहारों की गिरती हुई साम्राजिक शक्ति का लाभ उठाया और उसने सचमुच दृढ़ आधार पर चन्देल राज्य की नींव रखी।

उसके राज्य का विस्तार—खजुराहो प्रशस्ति में लिखा है कि यशोवर्मन् का आधिपत्य संपूर्ण उत्तर भारत पर था कश्मीर से बंगाल तक, कुरु प्रदेश से दक्षिण कोशल तक था। कविकृत अतिशयोक्ति को छोड़कर यह कहा जा सकता है कि पूरब की ओर बंगाल और बिहार में, और दक्षिण-पश्चिम में चेदियों के विरुद्ध अपने सफल विजय यात्राएँ की थीं। किन्तु यह पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि उसने न तो इन राज्यों को अपने राज्य में मिलाया, और न उनको अपने राज्य के अधीन किया।

खजुराहो लेख से स्पष्ट है कि उसने कालिंजरगढ़ पर अधिकार किया और खजुराहो में एक बैकुण्ठनाथ का मन्दिर बनवाया। इससे स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड प्रत्यक्ष शासन में था। उसमें यह भी लिखा है कि उसके मत्त हाथियों के स्नान करने से यमुना और गंगा का जल पंकलि हो गया। स्पष्टतः इसमें संकेत है कि यशोवर्मन् का राज्य इलाहाबाद के आसपास की भूमि पर था। यशोवर्मन् ने ९३१ ई० के बाद इस पर अधिकार किया, क्योंकि ९३१ ई० में प्रतिहार शासक ने वाराणसी विषय में कुछ भूमि दान की थी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट नहीं है कि यशोवर्मन् ने इस प्रदेश को अपने राज्य के अन्तर्गत किया किन्तु धंग के समय यह अवश्य ही चन्देल राज्य के अन्तर्गत था क्योंकि १००२ ई० के खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि इलाहाबाद के समीप गंगा और यमुना के संगम पर धंग ने स्वेच्छा से जल समाधि ली। ललितपुर जनपद में एक उत्कीर्ण लेख पाया गया है जिसमें देवलब्धि ने अपने को कृष्णप का पुत्र और यशोवर्मन् का पौत्र कहा है। नृप कण्हप (कृष्णप) का एक उत्कीर्ण लेख झाँसी में पाया गया है। प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् ने अपने पुत्र कृष्णप को मालव-चन्देल सीमान्त पर नियुक्त किया था। स्पष्ट है कि दक्षिण-पश्चिम की ओर चन्देल राज्य मालव देश को स्पर्श करता था।

मूल्यांकन—यशोवर्मन् ने एक स्वतन्त्र चन्देल राज्य की नींव रखी। पहले वह प्रतिहारों के एक साधारण अधीन था किन्तु अभेद्य कलिंजर गढ़ पर अधिकार करके तथा अन्य सामरिक अभियानों द्वारा उसने उत्तर भारत में एक शक्तिशाली और प्रभावशाली सत्ता का निर्माण किया जिसका लोहा प्रतिहार तथा उत्तर भारत के अन्य राजा मानते थे। उसने प्रतिहारों को उन प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने में सहायता दी जिन पर राष्ट्रकूटों ने अधिकार कर लिया था। किन्तु उसने कालिंजर गढ़ को राष्ट्रकूटों से छीनकर अपने ही अधिकार में रखा क्योंकि इसका सामरिक महत्व बहुत अधिक था। प्रतिहार शासक निर्बल थे अतः वे इसको हस्तगत करने में असमर्थ थे।

इसीलिए खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि यशोवर्मन् गुर्ज्जरों के लिए झुलसाने वाली अग्नि है। प्रतिहार निर्बल थे अतः यशोवर्मन् को उत्तर भारत की राजनीति में अधिकाधिक महत्वपूर्ण भाग अभिनय करने का अवसर मिला। यह अवश्य ही प्रतिष्ठा की बात थी।

उसके सफल अभियानों से प्रमाणित होता है कि वह असाधारण सामरिक प्रतिभा से युक्त था। उसके प्रशासन के संबंध में थोड़े बहुत जो तथ्य उपलब्ध हैं उससे प्रतीत होता है कि वह एक कुशल शासक था। उसकी राजसभा का कवि माधव था जो वैयाकरिणी देद्दा का पुत्र था।

खजुराहो उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसने एक बृहद् तड़ाग (तड़ागार्णवं) तथा विष्णु के एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया। प्रतीत होता है कि यह मंदिर अत्यंत भव्य और आकर्षक था। इसके संबंध में उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि इस मंदिर की स्वर्णमय शिखरें आकाश को प्रकाशयुक्त करती थीं और ये देवताओं के लिए भी आकर्षणीय वस्तु थीं। कनिंघम ने इस मंदिर का तादात्म्य खजुराहो के वैष्णव मंदिर से किया है जो चतुर्भुज मन्दिर के नाम से भी विख्यात है। इसमें एक अतिमूल्यवान प्रतिमा स्थापित की गई थी। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में इसके संबंध में लिखा है कि इस प्रतिमा को भोटनाथ (तिब्बत) के राजा ने कैलाश से, उससे मैत्री के प्रतीक स्वरूप कीर (कश्मीर के समीप) के राजा साहि ने, बाद को उससे गज और अश्व सेना के बदले हेरम्बपाल ने, और हेरम्बपाल के पुत्र हयपति देवपाल से स्वयं यशोवर्मन् ने प्राप्त किया। यशोवर्मन् उदार धर्मावलम्बी था। उसमें क्षुद्र साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। वह विष्णु, शिव और पार्वती तथा सावित्री के प्रति श्रद्धावान् था। उसके खजुराहो उत्कीर्ण लेख का आरम्भ 'नमो भगवते वासुदेवाय' और अन्त 'नमो सवित्रे' से हुआ है।

यशोवर्मन् लोकप्रिय राजा था। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि राजप्रासादों में, सन्तों के निवासों में, ग्रामों में, श्रेष्ठ पुरुषों तथा क्षुद्र व्यक्तियों के मिलन-स्थानों में, सौदागरों की पंक्तिवद्ध दूकानों में चौराहों पर, तथा झोपड़ियों में सर्वत्र उसके गुणों की प्रशंसा होती थी।

अध्याय | ४

चंदेल शक्ति का चरमोत्कर्ष : धंग और विद्याधर

१. धंग—धंग यशोवर्मन् का पुत्र था। वह ९५३-५४ ई० के कुछ पूर्व सिंहासन पर बैठा, क्योंकि खजुराहो उत्कीर्ण लेख संख्या दो की रचना यशोवर्मन् के जीवनकाल में हुई थी किन्तु उसकी मृत्यु के बाद जब धंग सिंहासन पर था, यह निःसृत किया गया। दुदाहि उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि यशोवर्मन् का एक पुत्र कृष्णप भी था जिसका पुत्र देवलब्धि धंग के शासन काल में मालवा के सीमान्त के रक्षा-कार्य पर नियुक्त था। अतः यह अत्यंत संभाव्य है कि यशोवर्मन् ने उसके पिता कृष्णप को इस महत्वपूर्ण कार्य पर नियुक्त किया हो। पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि यशोवर्मन् 'मालवों के लिए काल सदृश था'। ('कालवन्—मालवानां')। प्रत्यक्षतः यह प्रतीत होता है कि कृष्णप और धंग के बीच में उत्तराधिकार के लिए कलह नहीं हुई।

धंग ने अपने यशस्वी पिता यशोवर्मन् का दृढ़ता और योग्यतापूर्वक अनुसरण किया जिसने चंदेल वंश की महत्ता की नींव रखी थी, और जो अपने पराक्रमों से अपने समय के उत्तर भारत का प्रमुख राजा बना।

राज्य सीमा—खजुराहो उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ९५३-५४ ई० के श्लोक ४५ में उसके राज्य विस्तार का उल्लेख है :

आ—कालंजरं आ-च मालवनदी-तीरस्थिते भास्वतः कालिन्दी सरितस्-तटादित इतोप्या चेदि देशावधेः।
आ—तस्मादपि विषमयैक-निलयाद्-गोपाभिधानगिरेर्यः शास्ति क्षितिमायतोर्ज्जित-भुज—व्यापार लीलार्जितां ॥

धंग अपनी दीर्घ और दृढ़ भुजाओं से लीलावश प्राप्त किए हुए प्रदेश पर शासन करता है जो कालिंजर तक, मालव नदी के तट पर स्थित भास्वत तक, यहाँ से भी कालिन्दी नदी के तट तक, और यहाँ से भी चेदि देश की सीमाओं तक, और उस गिरि तक जो गोप कहलाता है।

ग्वालियर की विजय—ग्वालियर की विजय धंग की प्रमुख सफलता थी।

इसकी विजय से धंग अपने को स्वतंत्र राजा घोषित करने में समर्थ हुआ क्योंकि ग्वालियर विजय करके के बाद चंदेल शासकों ने अपने लेखों में प्रतिहार अधीश्वरता स्वीकृत नहीं की है। प्रतीत होता है कि वज्रदामन ने गौपाद्रि को चंदेल धंग के लिए विजय किया। प्रतीत होता है कि इस विजयोपलक्ष्य में धंग ने उसको अपना सामन्त बनाया। वह कच्छपघात वंश का संस्थापक है।

निम्नलिखित तथ्यों से प्रकट होता है कि वज्रदामन चंदेलों का सामन्त था प्रतीत होता है कि ग्वालियर का किला ९४४ ई० और ९७७ ई० के बीच किसी समय गुर्जर प्रतिहारों के हाथ से निकल कर कच्छपघातों के हाथ में गया। उस समय प्रतिहार वंश में गृहकलह थी और राष्ट्रकूटों के नए आक्रमण हुए। इसी गड़बड़ी की अवधि में ग्वालियर का किला प्रतिहारों के हाथ से निकल गया। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि धंग ने गोपगिरि को जीता। यह लेख ९५४ ई० में उत्कीर्ण किया गया था। अत: स्पष्ट है कि इस तिथि के पहले यह गढ़ चंदेल राज्य में सम्मिलित किया जा चुका था। सासबहू मन्दिर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि १०९३ ई० में ग्वालियर किला किसी कच्छपघात वंश के हाथ में था। उपर्युक्त दोनों ही उत्कीर्ण लेख ही घटना की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि वज्रदामन ने चंदेलों के लिए किले पर अधिकार किया था।

बंगाल पर आक्रमण—यह पहले लिखा जा चुका है कि दसवीं शती के मध्य में यशोवर्मन् ने बंगाल में सफल सैनिक कार्यवाहियाँ की थीं जिसके फलस्वरूप पालशक्ति क्षीण हो गई और उत्तर बंगाल में काम्बोजों का अकस्मात् उदय हुआ। काम्बोजों और पालों का मैत्री-संगठन होने के बाद पाल अपनी स्थिति दृढ़ करने लगे तथा 'परमेश्वर, परमभट्टारक, महाराजाधिराज' की उपाधियाँ धारण करने लगे। अत: चदेल उनकी ओर से सतर्क हो गए और उन्होंने सावधान रहने को सोचा जिससे कि यह नवीन शक्ति आगे चल कर उनके लिए संकट न पैदा करे। प्रतीत होता है कि इसी सन्धि के कारण धंग ने पश्चिमी बंगाल पर चढ़ाई की। इस समय काम्बोज पश्चिमी बंगाल में राज्य कर रहे थे। धंग ने राढ को अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया। किन्तु इस आक्रमण से वहाँ की राजसत्ता कमजोर पड़ गई। उत्कीर्ण लेख में उल्लेख है कि धंग ने अङ्ग के राजा की पत्नी को बन्दी कर लिया। इस तरह प्रतीत होता है कि पाल राज्य भी धंग के आक्रमण का लक्ष्य हुआ।

दक्षिणी अभियान—इस विषय में खजुराहो उत्कीर्ण लेख अतिशयोक्ति पूर्ण हैं। इतना हो सकता है कि धंग ने क्रथ और कोशल पर आक्रमण किया हो। इसके पूर्व भी चंदेलों ने दक्षिण कोशल पर आक्रमण किया था और उसके राजा ने चंदेलों की अधीश्वरता स्वीकार की थी। स्पष्ट है कि महाभव गुप्त उड़ीसा का शासक था। प्रतीत

होता है कि जब चंदेलों ने दक्षिण कोशल पर आक्रमण किया और कोशल ने चंदेलों की अधीस्वरता स्वीकार कर ली तब उनका संघर्ष चेदियों से हुआ जिन्होंने 'कोशल नाथ' पर आक्रमण किया था ।

प्रतीत होता है कि जब धंग कोशल पर आक्रमण करने जा रहा था तो उसके रास्ते में क्रथ लोगों का राज्य पड़ा और उन्होंने धंग की अधीश्वरता स्वीकार की। क्रथ उत्तर बरार के यवतमल जनपद में रहते थे ।

तुरुष्कों का आक्रमण—महोबा में एक खण्डात्मक उत्कीर्ण लेख पाया गया है जिसके एक श्लोक से धंग के कार्यों पर प्रकाश पड़ता है ।

'निर्म्मितवैरिभंग: श्री धंग: इत्यवनि
मङ्गलमाविरासीत् ।
सारेण य: स्वभुजयो—भुवनातिभारं हम्वीरम—
अप्यतिबलं तुलयं चकार ॥'

'पृथ्वी के लिए धंग रूपी मङ्गल प्रकट हुआ जिसने अपने शत्रुओं का विनाश किया, जिसने अपने भुजबल से शक्तिशाली हम्वीर की तुलना की, जो पृथ्वी के लिए अतिभार प्रमाणित हुआ ।'

हम्वीर अरबी शब्द आमीर से निकला है जिसका अर्थ है सेनापति । बाद को यह शब्द मुसलमान राजकुमारों की एक उपाधि मानी जाने लगी । विद्वानों की राय है यामिनी सुलतान आमीर शब्द को उपाधि के रूप में प्रयोग करते थे । हम्वीर या तो सबुक्तगीन को या उसके यशस्वी पुत्र महमूद का संकेत करता है । (Hultzsch) ने महोबा उत्कीर्ण लेख के हम्वीर का तादात्म्य सुबुक्तिगीन से किया है । यह अच्छी तरह ज्ञात है कि महमूद ने भारत प्रदेशों पर यामिनियों के अभियानों में मुख्य भाग लिया था । सबुक्तगीन के जीवनकाल में भी महमूद ने अपने पिता के साथ भारत के आक्रमण के अभियानों में भाग लिया था । तबकाते अकबरी में लिखा है कि जयपाल के विरुद्ध जो युद्ध हुआ था उसमें आमीर मुहम्मद ने बहुत साहस और वीरता दिखलाई, और उसके युद्ध कौशल के फलस्वरूप जयपाल सन्धि करने तथा ५० हाथी और बहुत सा धन देने को विवश हुआ । ईसवी सन् ९९९ में ग़ज़ना के सिंहासन पर बैठने पर महमूद ने प्रतिवर्ष एक 'धर्म' अभियान भारत में ले जाने का प्रण किया और इसका उसने पालन किया । इसका मूर्ति ध्वंसात्मक उत्साह भारतीय राजाओं के लिए एक चिन्ता की बात हो गई । इस भाव को महोबा अभिलेख में 'भुवनातिभारम्' पद से प्रकट किया है । प्रतीत होता है प्रशस्तिकार ने धंग की तुलना हम्वीर (महमूद) से करने में धंग की सर्वोत्कृष्ट प्रशंसा समझा । सबुक्तगीन ने जयपाल को ९७७ ई० में हराया जिसके फलस्वरूप उसके राज्य का लम्घान और पेशावर प्रदेश सुलतान के हाथ

में चला गया। सुलतान महमूद ने १००१ ई० में आनन्दपाल को हराया। प्रतिवर्ष वह भारत पर आक्रमण करता था और एक-एक राज्य से अलग-अलग युद्ध करता था। चंदेलों पर तुरुष्कों के हमले १०१९ ई० तक नहीं हुए। उस समय धंग का पौत्र विद्याधर चंदेल सिंहासन पर था। इसीलिए प्रशस्तिकार ने महोबा उत्कीर्ण लेख में धंग की तुलना हम्वीर से की है क्योंकि उसको तुरुष्कों के हाथ पराजय नहीं सहनी पड़ी थी।

उस समय के उत्तर भारत के राजाओं में धंग का एक महत्वपूर्ण स्थान था। उसने न केवल राज्य को दृढ़ किया बल्कि आस-पास के राज्यों पर अपने प्रभाव की भी वृद्धि की। धंग ने अपने सामरिक पराक्रमों से साम्राजिक प्रतिहारों के बहुत कुछ गौरव का अपहरण किया। नान्यौरा पट्ट से प्रतीत होता है कि धंग ने भट्टयशोधर नामक एक प्रवासी विद्वान् ब्राह्मण को करमुक्त भूमि प्रदान की जिससे कि वह उसकी प्रजा के बीच के झगड़ों को न्यायपूर्वक निबटावे। मऊ उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि उसको राज्य के प्रशासन में सुयोग्य और अनुभवी प्रशासक नियुक्त किए गए थे। वह शिव भक्त था और सौ वर्ष से अधिक समय तक जीने के पश्चात् गंगा और यमुना के पवित्र संगम पर भगवान् रुद्र का स्मरण करते हुए जीवन त्याग किया। उसने मर्कत की बनी हुई मर्कतेश्वर शिवलिङ्ग की मूर्ति स्थापित की। उसके उत्कीर्ण लेखों का आरम्भ और अन्त शिवाराधन से हुआ है। दूसरे धर्मों के प्रति वह अपने पिता की तरह सहिष्णु तथा उदार था। उसके मित्र पहिल्ल ने जीननाथ के मन्दिर को एक उद्यान अर्पण किया। वह दान तथा उपहार देने में उदार था। उसने तुला-पुरुष-दान समारोह किया, अपने पित्रों के पुण्य वृद्धि के लिए वह सूर्यग्रहण आदि अवसरों पर दान दिया करता था। मदनवर्मन् के मऊ उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि वह कुशल शासक था और मन्त्रि परिषद् की सहायता से शासन करता था। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों की योग्यता की परीक्षा किए जाने के बाद उनकी नियुक्ति होती थी। उसका मन्त्री प्रभास अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही मुख्य मन्त्री बनाया गया। वह कुशल राजनीतिज्ञ था। राजतन्त्र चलाने के लिए अधिकारी वर्ग की पूर्ण व्यवस्था थी जिनमें से कर्णिक और कायस्थ के नाम उत्कीर्ण लेख में आए हैं।

२. गण्ड—गण्ड धंग का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। उसका कोई उत्कीर्ण लेख नहीं पाया गया है। प्रतीत होता है कि धंग १००८ ई० तक जीवित रहा और गण्ड का पुत्र विद्याधर १०१९ ई० में राज्य कर रहा था। हो सकता है कि इस तिथि के दो वर्ष पूर्व अर्थात् १०१७ ई० में वह सिंहासन पर बैठा हो। अतः गण्ड ने संभवतः १००८ ई० से लेकर १०१७ ई० तक राज्य किया।

उसकी मृत्यु के सौ वर्ष बाद के कुछ उत्कीर्ण लेखों में उसका नाम आया है जिनमें अनिश्चित और रूढ़िगत पदों में उसकी प्रशंसा की गई है। उनमें ऐतिहासिक

महत्व की कोई बात नहीं है। उनमें उसको 'एक वीरः' (अद्वितीय वीर), 'दर्प-कण्डुग्र-दोर्द्दण्डद्विशत्—खण्डन-पण्डितः' (उन शत्रुओं का विनाश करने में वह दक्ष था जिनकी बृहद् भुजाएँ दर्परूपी कण्डु से भयंकर थीं) कहा है। उसकी सैनिक दक्षता के कोई उदाहरण नहीं मिले हैं किन्तु इतना निश्चय है कि वह अपने राज्य की सीमा को बनाए रखने में समर्थ रहा, क्योंकि उसके पुत्र विद्याधर के समय चंदेल राज्य की सीमा उतनी ही थी जितना कि यशोवर्मन् के समय थी।

फिरिश्ता, निजामउद्दीन तथा अन्य मुसलमान इतिवृत्त लेखकों ने लिखा है कि १०१९ ई० में महमूद भारत में पुनः आया। इस बार वह खजुराहो के 'नन्दा' को दण्ड देने के बहाने आया था जिसने कन्नौज के राजा प्रतिहार राज्यपाल को महमूद के समक्ष समर्पण करने के अपराध में मार डाला था। कनिंघम ने 'नन्दा' का गंड से तादात्म्य किया है और इसको स्मिथ तथा कुछ अन्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु इससे गंड के शासन की अवधि १०१८-१९ ई० तक बढ़ जाती है।

कच्छपघात विक्रमसिंह के तिथ्यंकित ११८८ ई० का दुबकुण्ड उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसके प्रपितामह अर्जुन ने जो विद्याधर देव का सामन्त था राज्यपाल की हत्या की। महोबा उत्कीर्ण लेख में 'कान्यकुब्ज नरेन्द्र' पर विजय प्राप्त करने का श्रेय विद्याधर को दिया है। इब-उल-अथिर ने अपनी अल-तारीख-उल-कामिल में लिखा है कि बिदा (विद्याधर) ने मुसलमानों को अपने प्रदेशों को अर्पण करने और पलायन करने के कारण राज्यपाल की अभ्यर्थना की। विवाद ने संघर्ष का रूप ग्रहण किया। युद्ध हुआ और राज्यपाल मारा गया। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गंड का शासन अवश्य ही १०१८ ई० के पूर्व समाप्त हो चुका था।

धंग का मन्त्रिमुख्य प्रभास गंड के समय में भी मुख्यमन्त्री था, और प्रभास पुत्र शिवनाग प्रत्यक्षतः गंड के उत्तराधिकारी विद्याधर का मन्त्री था।

३. विद्याधर—गंड का पुत्र और उत्तराधिकारी विद्याधर था जिसने ग़ज़नी के लुटेरों के विरुद्ध अपने देश की प्रतिरक्षा में वीरतापूर्वक युद्ध किया। उसकी वीरता की प्रशंसा मुसलमान इतिहास लेखकों ने भी की है। उसके शासनकाल में चंदेल आधिपत्य चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। इब्न-उल-अथिर ने लिखा है कि विद्याधर प्रादेशिक रूप में भारतवर्ष के शासकों में सबसे महान् था और उसकी सेना सबसे बड़ी थी। उसमें ५६,००० अश्वारोही १,८४,००० पदाति और ७४६ हाथी थे। उत्तर भारत की राजनीति में उसका पद अद्वितीय था। उसने उत्तरी भारत की राजनीति का नेतृत्व ग्रहण किया और ग़ज़नियों के आक्रमणों का सामना करने के लिए भारतीय शासकों का एक संघ बनाया। राज्यपाल के पलायन और समर्पण से अन्य भारतीय राजाओं और सामन्तों का साहस टूट गया, क्योंकि भारतीय शासक प्रतिहार शासक

के गौरव युक्त सामाजिक पद को आदर से देखते थे। अतः प्रतिहारों का पतन भारतीय अवरोध शक्ति के पतन का प्रतीक समझा गया। चम्बल के उत्तर के छोटे राज्यों के शासक तथा किलों के सरदारों ने प्रायः बिना विरोध के सुलतान महमूद को समर्पण किया। यह स्थिति बड़ी भयानक थी, क्योंकि इसके परिणाम गम्भीर थे। अतः इस कारण से विद्याधर ने अवश्य ही भारतीय राजाओं में साहस भरने और विदेशी आक्रमणों का अवरोध करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया होगा। इस निर्भीक, साहसपूर्ण और शौर्ययुक्त कार्य से भारतीय शासकों में विद्याधर की प्रतिष्ठा और भी बढ़ी।

प्रतीत होता है कि विद्याधर के संकेत से राज्यपाल की हत्या के बाद त्रिलोचन पाल प्रतिहार सिंहासन पर बैठाया गया। इस समय उसकी शक्ति और प्रभाव बहुत अधिक था। अतः उसने परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज आदि साम्राजिक उपाधियाँ धारण कीं। एक खण्डात्मक महोबा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'कलचुरि-चन्द्र के साथ भोजदेव कान्यकुब्ज भूपाल को विनष्ट कराने वाले समरगुरु की पूजा भयभीत शिष्य की तरह करता था।'

('विहित कान्यकुब्ज-भूपाल भंगं-समर गुरुम—उपास्त प्रौढ़भिष्टलपभाजं सह-कलचुरि चन्द्रः शिष्यवद् भोजदेवः')। भोजदेव का तादात्म्य परमार वंश के भोज से, और कलचुरि-चन्द्र का कोक्कल्ल द्वितीय से किया गया है। पहले परमार और कलचुरि दोनों ही चंदेलों के प्रतिद्वंद्वी थे और उत्तरी भारत की अधीश्वरता के लिए ये तीनों ही शक्तियाँ लड़ती थीं। किन्तु ऐसी परिस्थिति हुई कि अब वे चंदेल शासक विद्याधर की श्रेष्ठता स्वीकार करने लगे। इसीलिए एक चंदेल अभिलेख में कहा गया है कि राजा विद्याधर ने अपने शत्रुओं के यशरूपी पुष्पों को एकत्र किया। मदनवर्मन् के मऊ प्रस्तर उत्कीर्ण लेख में विद्याधर की समता देवराज इन्द्र से की गई है जिसके कमल-चरणों ने अशेष राजाओं के मुकुटों पर विश्राम किया। मुसलमान इतिवृत्त लेखकों के वर्णन से भी इसकी पुष्टि होती है जिन्होंने उसको भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा महान् राजा कहा है। उसने राज्यपाल की अकर्मण्यता तथा कायरता के कारण उसका बध कराया और भारतीय राजाओं का एक संघ बनाया क्योंकि वह जानता था कि तुरुष्कों से और भी युद्ध होना अनिवार्य है। साही वंश का त्रिलोचनपाल भी विद्याधर के संरक्षण में आया जिसने उसकी रक्षा करने और उसके राज्य को पुनः दिलाने का वचन दिया।

महमूद का पुनः आक्रमण—जब महमूद को यह सूचना मिली कि चंदेल राजा विद्याधर विजित प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने के लिए भारतीय राजाओं को संगठित कर रहा है तो वह बहुत चिन्तित हुआ और उसने लड़ने की तैयारियाँ कीं।

अत: स्पष्ट है कि १०१९ ई० का महमूद का भारत पर आक्रमण का कारण मात्र उच्चाकांक्षा और धन की लूट नहीं था।

डॉ० नाजिम ने फ़ारुखी के साक्ष्य से यह आशय निकाला है कि महमूद ने साही वंश के त्रिलोचन पाल को राम गंगा के तट पर असाधारण रूप से हराया, किन्तु उत्बी और इब्न-उल-अथिर ने लिखा है कि त्रिलोचन पाल ने दृढ़तापूर्वक सुलतान को रामगंगा नदी पार करने से रोका किन्तु दुर्धर्ष विरोध होते हुए भी महमूद की एक टुकड़ी नदी पार करने में सफल हुई। उसके बाद उसकी शेष सेना भी नदी के पार आ गई। भयानक युद्ध हुआ जिसमें त्रिलोचनपाल की सेना को बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ी। त्रिलोचनपाल ने सन्धि का प्रस्ताव रखा किन्तु महमूद ने सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार न किया इस तरह हतोत्साहित होकर साही त्रिलोचनपाल ने अपने मित्र विद्याधर की सेना से मिलने के लिए प्रस्थान किया किन्तु रास्ते में कुछ हिन्दुओं ने उसको घेर लिया और मार डाला। ये हिन्दू कौन थे इसके सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है।

इस घटना के बाद सुलतान महमूद ने प्रतिहार राजा त्रिलोचनपाल की नई राजधानी बारी की ओर प्रयाण किया जो सम्भवत: चंदेल विद्याधर का मनोनीत था। महमूद के निकट आगमन की सूचना पाकर त्रिलोचनपाल अपनी राजधानी से निकल भागा, अवसर पाकर तुरुष्कों ने इसको लूटा। इसके बाद महमूद विद्याधर से युद्ध करने चला। उससे उसकी भेंट एक नदी के किनारे हुई। उसकी महती सेना को देख कर सुलतान महमूद भयभीत हुआ और अपने आने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। तबकातेअकबरी ने लिखा है कि विद्याधर भयभीत होकर अपनी सेना और सामान को छोड़ कर कुछ विशिष्ट साथियों के साथ भाग गया। इसका अर्थ यह हुआ कि महमूद की सरलता-पूर्वक विजय हुई। किन्तु इब्न-उल-अथिर ने लिखा है कि प्रत्यक्ष संघर्ष होने के पूर्व महमूद के योद्धाओं ने नदी के बहाव को मोड़ दिया। तभी सुलतान के अश्वारोहियों की एक टुकड़ी उस पार जाने में सफल हुई। विद्याधर ने भी अपने योद्धाओं को उस ओर भेजा। दोनों ओर के युद्धाओं की संख्या बढ़ती रही और अन्त में रात आ गई जिसने दोनों को अलग कर दिया। डॉ० रे ने संकेत किता है कि धारा के मुड़ जाने के कारण उस क्षेत्र का सामरिक महत्व पर्याप्त रूप से कम हो गया होगा, इसीलिए विद्याधर ने एक सुनियोजित रूप से अपनी सेना पीछे कर ली। विद्याधर की इस सामरिक चाल से सुलतान का बड़ा हतोत्साह हुआ। सुलतान ने इस अप्रत्याशित सौभाग्य के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया और यह पता लगाने के बाद कि घात स्थान नहीं बनाए गए हैं उसने शत्रु के शिविर को लूटने का आदेश दिया। इस लूट के सम्बन्ध में मुसलमान इतिवृत्त लेखकों ने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। उन्होंने यह भी लिखा

है कि चंदेल राजा विद्याधर ने पूर्णरूपेण सुलतान को समर्पण कर दिया। चंदेल विद्याधर की शक्ति और प्रतिष्ठा को देखते हुए यह युक्तियुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त चंदेल शक्ति को देख कर भारत पर दूसरा आक्रमण करने के पूर्व महमूद को तीन वर्ष तक तैयारी करनी पड़ी। प्रतीत होता है कि विद्याधर की इस कुशल सामरिक चाल से महमूद को केवल लूट से संतोष करना पड़ा, उसने शत्रु का पीछा करना बुद्धिमानी न समझा और वह ग़ज़नी को लौट गया।

महमूद द्वारा ग्वालियर का घेरा—महमूद ने १०२२ ई० में पुनः चंदेल राज्य पर आक्रमण किया, क्योंकि १०१९ ई० के युद्ध की स्मृति सुलतान को अत्यंत विकल कर रही थी। उसने ग्वालियर के किले पर घेरा डाला जो अभेद्य समझा जाता था और चंदेल साम्राज्य के अन्तर्गत कच्छपघात के अधीन था। घोर प्रयत्न करने के बाद भी महमूद ग्वालियर किले को जीत न सका। 'चार दिन के बाद ग्वालियर के दुर्गपति ने दूत भेजे और कर के रूप में ३५ हाथी भेजे और रक्षा की प्रार्थना की'। घेरा उठा लिया गया और सुलतान कालिंजर की ओर बढ़ा। स्पष्ट है कि महमूद ग्वालियर के किले को जीत न सका और औपचारिक रूप से अधीनता स्वीकार कर लेने पर सुलतान ने घेरा उठा लिया जिसके बाद उपहारों का लेनदेन हुआ। इसी को बाद के मुसलमान इतिवृत्त लेखकों ने 'कर' कहा है।

महमूद द्वारा कालिंजर का घेरा—कालिंजर किला अभेद्य समझा जाता था। इस किले पर महमूद की सेना ने घेरा डाला। निज़ामउद्दीन ने लिखा है कि 'बहुत समय तक घेरा पड़ा रहा। अन्त में इस किले के शासक नन्दा ने कर के रूप में ३०० हाथी प्रदान किये और रक्षा की प्रार्थना की। स्पष्ट है कि घोर परिश्रम करने के बाद भी महमूद ग्वालियर किले की तरह कालिंजर किले को भी जीत न सका। ऊपर लिखा जा चुका है कि विद्याधर को दण्ड देने के निश्चित उद्देश्य से महमूद ने यह अभियान किया था, किन्तु जैसा कि मुसलमान इतिहास लेखकों के कथन से स्पष्ट है उसको इस कार्य में किंचित् ही सफलता मिली। जिस प्रकार से उपहार दिया गया उसमें भी एक ललकार थी। फिरिश्ता ने लिखा है कि 'सुलतान के सैनिकों के साहस की परीक्षा करने के लिए राजा, ने मद्य-मत्त हाथियों को बिना सवार के महमूद के शिविर में छोड़ा। यह कथन नग्न सत्य नहीं है। वास्तविक तथ्य यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्ष तुल्य प्रतिष्ठा सहित युद्ध से विरक्त हुए।

परमारों और कच्छपघातों से संबंध—विद्याधर उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। उसने इस्लाम के भूमिहरण का पर्याप्त सफलतापूर्वक अवरोध किया। उसने प्रतिहार शक्ति के शेष बचे हुए प्रदेश पर अधिकार किया। उत्तर के या मध्यभारत के किसी समकालीन सत्ता से प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ हो ऐसा कोई उल्लेख

नहीं है। सास बहु उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि कच्छपघात राजा कीर्तिराज ने मालवा राजा के असंख्य सैनिकों को ऐसा पराजित किया कि भय के कारण मालव सैनिकों के हाथों से गिरे हुए मालों से ग्रामीणों ने अपने घरों को घेर दिया। यह सेना परमार राजा भोज की थी जो उस समय का एक महत्वपूर्ण राजा था। स्पष्ट है कि कच्छपघात राजा ने यह विजय अपने अधीश्वर चंदेल विद्याधर की सहायता से प्राप्त की होगी। यह अनुमान किया जा सकता है कि भोज ने चंदेल राज्य पर आक्रमण करने की योजना बनाई किन्तु कच्छपघात राजा ने उसके प्रयास को विफल कर दिया। महोबा उत्कीर्ण लेख के कथन से इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि कलचुरियों के चन्द्रमा के साथ भोजदेव ने शिष्यवत् सभय होकर इस समर-गुरु विद्याधर की पूजा की। स्पष्ट है कि यह स्थिति कच्छपघात कीर्तिराज द्वारा भोज की पराजय का परिणाम था।

डॉ० गांगुली ने लिखा है कि भोज ने चंदेल राज्य पर दो बार आक्रमण किए। पहला आक्रमण विद्याधर द्वारा विफल किया गया, और दूसरा कीर्तिराज द्वारा। डॉ० गांगुली के इस विचार की पुष्टि में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मऊ उत्कीर्ण लेख यह संकेत नहीं करता कि परमारों की आक्रामक सेना पर कोई विजय प्राप्त की गई। कच्छपघात कीर्तिराज की विजय का उल्लेख सास बहु उत्कीर्ण लेख में है उसी को मऊ उत्कीर्ण लेख में दुहराया गया है। डॉ० गांगुली ने संकेत किया है कि दुबकुण्ड लेख के अर्जुन का पुत्र कच्छपघात अभिमन्यु ने भोज के उत्तरी अभियान के संन्निकट पूर्व उसके साथ मैत्री गठन किया। डॉ० मित्रा ने लिखा है कि अर्जुन विद्याधर का समकालीन था और उसी के द्वारा उसने १०१८ ई० में प्रतिहार वंश के राज्यपाल को मृत्युदण्ड दिलाया था। ग्वालियर किले पर महमूद ने १०२२ ई० में घेरा डाला। उस समय इसका स्वामी कीर्तिराज था। यह विश्वास करना कठिन है कि १०१८ ई० और १०२२ ई० के बीच में अर्जुन का उत्तराधिकारी अभिमन्यु हुआ और उसने अपने पिता की नीति को पलट दिया तथा परमारों से मैत्री गठन किया। भोज ने भारतीय इतिहास के ऐसे संकट काल में ग्वालियर प्रदेश पर उस समय आक्रमण किया जब किसी भी क्षण तुरुष्कों के आक्रमणों की आशंका थी।

डॉ० रे का विचार है कि भोज परमार ने विद्याधर की मृत्यु के बाद अपना प्रभाव क्षेत्र दुबकुण्ड तक फैलाया तभी अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु उसके अधीन हुआ।

चंदेल राज्य का विस्तार—धंग के समय से चंदेल राज्य का विस्तार उसी रूप में चला आ रहा था। इसके कम होने का कोई साक्ष्य नहीं है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गोपाद्रि और कालिंजर विद्याधर के राज्य के अन्तर्गत थे। दुबकुण्ड लेख से इस बात का साक्ष्य मिलता है कि उत्तर-पश्चिम की ओर चंदेल राज्य का

विस्तार पार्वती नदी के तटों तक था। चंदेल सत्ता का प्रभाव उसके राज्य के बाहर प्राय: समस्त उत्तरी भारत पर, चम्बल से दक्षिण में नर्मदा तक, और पूरब में गंगा-यमुना के मैदान तक था। इसीलिए मुसलमान इतिवृत्त लेखकों ने लिखा है कि 'विद्याधर अपने समय के भारतीय राजाओं में सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था'। उसके वंशजों के उत्कीर्ण लेखों में उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ उसके सामरिक्त नेतृत्व की प्रशंसा की गई है जो उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए मात्र प्रशस्ति नहीं है। मदनवर्मन् के मऊ प्रस्तर उत्कीर्ण लेख ने उसकी तुलना 'वासव' में की है जो असुरों की सेनाओं के विरुद्ध देवताओं का नेता था। महोबा उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि विद्याधर ने अपने शत्रुओं के यशरूपी पुष्पों को एकत्र किया और वह समर-गुरु था जिसके प्रति अन्य समकालीन शासक शिष्यवत् व्यवहार करते थे। कीर्तिवर्मन् के देवगढ़ उत्कीर्ण लेख में उसकी प्रशंसा की गई है। उसने चंदेल राज्य को अपने समय का एक शक्तिशाली राज्य बनाया तथा उसका विस्तार भी किया। शक्तिशाली विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध देश की प्रतिरक्षा करने के लिए उसने जो महान् प्रयत्न किए थे उसकी स्मृति को उसके वंशजों ने कृतज्ञतापूर्वक अभिलिखित किया। वह अकेला भारतीय शासक था जिसने सुलतान महमूद की विजय-यात्रा का सफलतापूर्वक अवरोध किया और उस निर्दय विजेता की स्वच्छन्द विनाश लीला से अपने राज्य को बचाया। गुर्जर-प्रतिहारों पर उसने विनाशकारी सफलता प्राप्त की। चंदेलों से सन्धि कर उन्होंने अपने को संतोष किया।

मदनवर्मन् के मऊ उत्कीर्ण लेख में विद्याधर के मन्त्रिमुख्य का नाम शिवनाग था उसके पूर्वज भी इसी पद पर थे। अत: यह पद वंशागत था। मऊ लेख में लिखा है कि इस सचिव ने अन्य राजाओं को विद्याधर का सामन्त बनाने में सफल हुआ। स्पष्ट है कि वह कूटनीति में दक्ष था।

●

अध्याय | ५

विजयपाल से कीर्तिवर्मन् तक

(ल० १०३०—ल० ११२९ ई०)

१. विजयपाल—विद्याधर की अन्तिम ज्ञात तिथि १०२२ ई० है। अतः स्पष्ट है कि विजयपाल १०२२ ई० के बाद किसी समय सिंहासन पर बैठा। विजयपाल के पुत्र देववर्मन् का नान्यौरा पट्ट लेख १०५१ ई० का है अतः विजयपाल के शासन की समाप्ति अवश्य ही १०५१ के पूर्व हुई होगी।

कलचुरियों का राज्य विस्तार—कलचुरि लेखों से ज्ञात होता है कि गांगेयदेव ने विस्तृत प्रदेशों को विजय किया तथा 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। उसने कीर, अंग, कुंतल और उत्कल के राजाओं पर विजय लाभ की। गांगेयदेव के पिआवाँ लेख से तथा यशःकर्ण के जबलपुर पट्ट से स्पष्ट है कि प्रयाग उसके अधीन था। अतः प्रतीत होता है कि प्रयाग को कलचुरियों ने चंदेलों से छीना क्योंकि विद्याधर के समय दोआब प्रदेश चंदेलों के प्रभाव में था। विद्याधर की सामरिक कुशलता में संदेह नहीं है किन्तु कलाकृतियों के विनाशक तुर्कों के आक्रमणों से चंदेलों के महत्त्व और प्रतिष्ठा पर गहरा धक्का लगा और चंदेल राज्य के संगठन पर भी उसका प्रभाव पड़ा। जब तक विद्याधर जीवित रहा तब तक उसके राज्य का बाहरी रूप उसी प्रकार बना रहा किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी उसकी रक्षा न कर सके। उसकी मृत्यु के बाद कलचुरि गांगेयदेव के रूप में एक उच्चाकांक्षी साम्राज्य-निर्माता सामने आया। उसने चंदेल साम्राज्य के कुछ भागों पर अधिकार किया और जो राज्य चंदेलों के राजनीतिक प्रभाव में थे वे अब कलचुरियों के प्रभाव में आ गए। वैहाकुइ के कथन से इसकी पुष्टि होती है जिसमें लिखा है कि अहमद नियालतिगिन के आक्रमण के समय ल० १०३४ ई० में वाराणसी गांगेय के राज्य के अन्तर्गत था। महोबा लेख में भी लिखा है कि वह 'जितविश्व' (विश्वविजेता) था। स्पष्ट है कि विजयपाल के शासनकाल में उसके पूर्वी क्षेत्र का कुछ प्रदेश चंदेल राज्य से निकल गया। इसी समय कच्छपघात राजा मूलदेव ने कुछ और उपाधियाँ धारण कीं। इससे कुछ विद्वानों का विचार है कि हो सकता है कि वह स्वतंत्र हो गया हो।

चंदेल विजय पाल की सामरिक विजयों का उल्लेख नहीं है किन्तु उसके पवित्र शुभ चरित की प्रशंसा की गई है।

विजयपाल का मन्त्रिमुख्य शिवनाग का पुत्र महीपाल था जो 'सुसचिवों में तुलना का मापदण्ड था'।

२. देववर्मन्—विजयपाल के बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी देववर्मन् सिंहासन पर बैठा, जैसा कि उसके उत्कीर्ण लेखों में लिखा है परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विजयपालदेव-पादानुध्यात। उसने 'कालंजराधिपति' की उपाधि धारण की। कुछ उत्कीर्ण लेखों में उसका नाम नहीं लिखा गया है। इससे संदेह होता है कि गृहकलह हुई होगी किन्तु इसका कुछ साक्ष्य नहीं है।

विद्याधर के शासनकाल से ही चंदेलों की स्थिति संकटापन्न हो रही थी। चेदियों के उत्कर्ष से यह स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई। चेदियों ने चंदेलों को कुछ समय के लिए दबा दिया। प्रबोधचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि 'चेदिपति ने चन्द्रवंश (चंदेलों) को राज्यच्युत किया (चेदिपतिना समुन्मूलितं चन्द्रान्वय-पार्थिवानां) विह्लण के विक्रमांकदेवचरित नामक ग्रन्थ में कलचुरिवंश के लक्ष्मीकर्ण को कालंजर गिरि के पतिका काल कहा है ('कालः कालिंजर-गिरि-पतेर-यः') । चंदेल लेखों से भी इसकी पुष्टि होती है जिनमें लिखा है कीर्तिवर्मन् ने ब्रह्मा की तरह नूतन राज्य की सृष्टि की। स्पष्ट है कि देववर्मन् के समय चन्देलों की शक्ति का ह्रास हुआ। किन्तु यह तथ्य कि 'वह कालंजराधिपत्ति' की उपाधि धारण करता था सूचित करता है कि कालंजर गढ़ पर उसका आधिपत्य बना रहा, यद्यपि वह कलचुरि लक्ष्मी कर्ण द्वारा पराजित किया गया। चरखारी पट्ट से स्पष्ट है कि चन्देल देववर्मन् के राज्य का विस्तार उत्तर-पूरब की ओर यमुना नदी तक था, यद्यपि संभवतः वाराणसी पर चेदियों का आधिपत्य था। स्पष्ट है कि चन्देलों की सार्वभौमिकता का लोप नहीं हुआ और न कलचुरियों उसके राज्य पर अधिकार किया। चरखारी पट्ट से यह भी स्पष्ट है कि उससे सामन्त उसके अधीन बने रहे ('महासामन्त-राजपुत्र-वन्दित-पादः')।

देववर्मन् ने 'परममाहेश्वर' की उपाधि धारण की जिससे प्रकट होता है कि वह कट्टर शैव था।

३. कीर्तिवर्मन्—जिस समय कीर्तिवर्मन् सिंहासन पर बैठा उस समय उत्तरी भारत की राजनीति में कलचुरि लक्ष्मीकर्ण अपनी सामरिक उपलब्धियों के कारण सर्वप्रमुख था। उसने अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की थी और चन्देलों को भी परास्त किया था। हो सकता है कि इस चेदि-चन्देल युद्ध में चन्देल देववर्मन् की मृत्यु हुई हो। उसकी मृत्यु के बाद उसका कनिष्ठ भ्राता कीर्तिवर्मन् सिंहासन पर

बैठा जिससे चन्देल साम्राज्य के नवीन गौरवपूर्ण जीवन का आरंभ हुआ। साहित्यिक ग्रन्थों एवं उत्कीर्ण लेखों में राजा कीर्तिवर्मन् की उपलब्धियों की अत्यंत प्रशंसा की गई है।

चंदेल शक्ति का पुन: उत्कर्ष—कलचुरि लक्ष्मीकर्ण की विजयों के फलस्वरूप चन्देल शक्ति कुछ समय के लिए अंधकार से ढक गई किन्तु कीर्तिवर्मन् ने चन्देल राज्य को कलचुरियों से पुन: छीन लिया। वीरवर्मन् के अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख में कर्ण की सेना पर कीर्त्तिवर्मन के विजय का उल्लेख है :

कुम्भोद्भव: कर्ण पयोधिपाणौ प्रजेश्वरो नूतन-राज्य सृष्टौ।
तत्रास विद्याधर-गीत-कीर्त्त: श्री कीर्त्तिवर्म्म-क्षितिपो जगतयां॥

'उस वंश में पृथ्वी पर एक शासक पैदा हुआ। जो यशस्वी कीर्तिवर्मन् था। जिसकी कीर्ति विद्याधर गाते हैं जो कर्ण रूपी समुद्र को पान करने में कुम्भोद्भव (अगस्त्य), और नूतन राज्य की सृष्टि करने में प्रजेश्वर (ब्रह्मा) था।

'नूतन-राज्य-सृष्टौ' अत्यंत सार्थक है। यह संकेत करता है कि चेदि आक्रमण की धारा में चन्देल राज्य जलमग्न हो गया था किन्तु अब शत्रुओं का पूर्ण दमन किए जाने के बाद राज्य की पुन: नूतन सृष्टि की गई है।

महोबा उत्कीर्ण लेख में कीर्तिवर्मन् के उपलब्धियों की इन शब्दों में प्रशंसा की गई है कि उसने अपनी दृढ़ भुजाओं से धृष्ट लक्ष्मीकर्ण का दलन किया जिसकी सेना ने अनेक राजाओं को विनष्ट किया था। चन्देल वंश की इस वैभवपूर्ण गाथा का वर्णन प्रबोधचन्द्रोदयं नामक नाटक के आमुख में भी किया गया है। उपर्युक्त दोनों उत्कीर्ण लेख तथा प्रबोधचन्द्रोदयं संकेत करते हैं कि लक्ष्मीकर्ण की सेना सागर की तरह बृहद् थी। उत्कीर्ण लेखों में चेदि राजा कर्ण को हराने का श्रेय कीर्तिवर्मन् को दिया गया है किन्तु नाटक में सूत्रधार एवं नटी दोनों ही ने लक्ष्मीकर्ण को दलन करने तथा चन्देल कीर्त्तिवर्मन् को सिंहासन पर पुन: अभिषिक्त करने का श्रेय श्री गोपाल को दिया है। यह नाटक कीर्त्ति के शासन काल में लिखा गया था और सपरिषद् कीर्तिवर्मन् के समक्ष अभिनीत किया गया था। स्पष्ट है कि इसमें श्री गोपाल की विजयों की जो प्रशंसा की गई है वह झूठी नहीं है। दूसरी ओर उत्कीर्ण लेख लगभग पचास वर्ष बाद लिखे गए थे और कीर्तिवर्मन् के वंशजों द्वारा वे नि:सृत किए गए थे जिनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपने पूर्वज कीर्तिवर्मन् को विजय का श्रेय देते।

प्रबोधचन्द्रोदयम् नाटक से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन् की राजसभा में श्री गोपाल की बड़ी प्रतिष्ठा थी। सामन्त चक्र उसके पैरों को पूजते थे ('अदिष्टोऽस्मि सकल-सामन्त-चक्र-चूडामणि मरीचि-मंजरीनिराजित-चरण-कमलेन ...श्रीमता गोपा-

लेन')। इसका अर्थ है कि यह नाटक श्री गोपाल की आज्ञा से अभिनीत किया जा रहा है। इस नाटक में लिखा है कि श्री गोपाल कीर्तिवर्मन् की दिग्विजय का मुख्य निर्माता था। अकेले तलवार के बल गोपाल ने शत्रुओं का उन्मीलन किया, 'स्त्री-बाल-वृद्धों' को भी नहीं छोड़ा। उसने चन्देल वंश को फिर से सिंहासन पर बैठाया जिसको चेदिपति ने सिंहासनच्युत कर दिया था जो सकल भूपालकुल के लिए प्रलयकालाग्नि था। श्री गोपाल की तुलना विष्णु, नृसिंह, महावराह और परशुराम के अवतारों से की गई है। इन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि श्री गोपाल ने सैनिक नेता के रूप में या अभियानों के संगठित करने वाले सेनापति के रूप में अवश्य ही अद्वितीय दक्षता दिखलाई होगी। इसकी पुष्टि निश्चित रूप से प्रबोधचन्द्रोदयम् नाटक से होती है। वह कीर्तिवर्मन् का सहज-सुहृत्' था जिसका अर्थ महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने 'मातुल-पैतृ स्वसेयादिरूपं अपरं सहज-मित्र लिखा है। श्री गोपाल कीर्तिवर्मन् का 'माता-पितृ-संबंध' भाई था। सामन्त राजाओं की सेना को संगठित करने, चेदिराजा कर्ण को पराजित करने, और चन्देलशक्ति को पुनः जीवित करने का श्रेय श्री गोपाल को है।

कीर्तिवर्मन् के समय में चन्देल शक्ति के पुनः स्थापन के संबंध में नाटक और उत्कीर्ण लेखों के वर्णन एक से हैं। नाटक में दिग्विजय का श्रेय कीर्तिवर्मन् को दिया गया है केवल इसका नेतृत्व श्री गोपाल के हाथ में था जिसने अवश्य ही चन्देल राज्य के सामन्तों का संघ बनाने में ख्याति पाई। चन्देलों ने कर्ण को किस समय हराया इसकी निश्चित तिथि के संबंध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है किन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि यह विजय १०७० ई० के लगभग हुई।

प्रतीत होता है कि कीर्तिवर्मन् के प्रशासन में अत्यंत कुशल सचिव तथा पदाधिकारी थे। सामन्त राजाओं और उनकी सेनाओं का प्रभार श्री गोपाल पर था। उसने बड़ी कुशलता से सामरिक अभियान किए और कलचुरि राजा कर्ण के विरुद्ध अद्वितीय सफलताएँ प्राप्त कीं। वत्सराज अमात्य मन्त्रीन्द्र था परामर्श देने में जिसकी तुलना वाचस्पति से की गई है। अनन्त उसका वंशागत मन्त्री था। उसका पिता महीपाल कीर्तिवर्मन् के पिता विजयपाल का मन्त्री था। अनन्त ने अनेक पदों पर प्रतिष्ठापूर्वक कार्य किए थे—हस्त्यश्वनेता, पुरबलाध्यक्ष, एकस्व गोप्ता अधिमत सचिव पदों पर वह काम कर चुका था। प्रशासन के विभिन्न व्यवहार संबंधी तथा सैनिक विभागों का उसको ज्ञान और अनुभव था। अन्त में राजा कीर्तिवर्मन् ने उसको मन्त्रि-मंत्रणाधिकार पद पर नियुक्त किया। विशिष्ट सेवाओं के लिए राजा कर्मचारियों को 'विशिष' उपाधि प्रदान करता था। स्मिथ ने लिखा है कि कीर्तिवर्मन् ने महोबा के पश्चिम में ग्यारह मील घेरे का एक सरोवर बनवाया है जो अब तक वर्तमान है।

उसी समय का बनवाया हुआ कीरत सागर चन्देरी में है। कालिंजर किले में एक बुधिया ताल है ।,अनुश्रुति जिसको कीर्तिवर्मन् का बनवाया हुआ कहती है । कीर्तिवर्मन् ने अजयगढ़ और कालिंजर में कुछ भवन बनवाए थे । कीर्तिवर्मन् साहित्य और कलाओं का महान् संरक्षक था । उसके संरक्षण में प्रबोधचन्द्रोदयं नामक नाटक लिखा तथा अभिनीत किया गया । राजा ने सपरिपद् इस नाटक के खेल को देखा । इससे प्रतीत होता है कि राजा अपने अवकाश का समय अपने मन्त्रियों के साथ इस प्रकार के बौद्धिक और सांस्कृतिक मनोरंजनों में सपरिषद् व्यतीत करता था । वह निश्चित ही शैव था किन्तु दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णु था और उनको यदा कदा सहायता भी देता था । दर्बात शान्तिनाथ प्रतिमा उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि राजा ने जैन धर्मावलम्बियों को संरक्षण दिया । कीर्तिवर्मन् की सभा में व्यापारी वर्ग की ओर से उनका एक प्रतिनिधि श्रेष्ठिन् चन्देल शासक की राजसभा को सुशोभित करता था । प्रशासन संबंधी नियुक्तियों में धर्म या सम्प्रदाय संबंधी कोई अड़चन नहीं थी ।

अध्याय | ६

सल्लक्षणवर्मन् से मदनवर्मन् तक

१. सल्लक्षणवर्मन्—उसके समय में उसके राज्य में शान्ति थी। अतः वह शान्तिमय कार्यों में अपना समय लगा सका। मऊ लेख में लिखा है कि सल्लक्षण अपने कुशल सचिवों की सहायता से अपने राज्य में 'कंटक-शोधन' कार्य (भ्रष्टाचार उन्मूलन कार्य) किया। इस तरह उसने अपने राज्य में न केवल शान्ति और व्यवस्था की बल्कि राजकीय कोष की भी वृद्धि की। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि :

'धौरेयः श्रुतशालिनां-गुणवतां वन्धुः कलानां निधिः,
सद्वृत्तस्य च सद्म कल्प-विटपी निःशेष-पुष्ट्यर्थिनां।'

वह श्रुत ज्ञाताओं का नेता, गुणी पुरुषों का बन्धु, कलाओं का निधि, सद्वृत्तियों का गृह, आश्रय के समस्त अभिलाषियों का कल्पतरु था। सामन्त चक्र अपने आश्रितों के सहित उसको सेवा में रहते थे। वीरवर्मन् के अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि सल्लक्षण ने मालवों और चेदियों की लक्ष्मी को अपहृत किया। उसके समय में कलचुरियों की अवस्था संकटपूर्ण थी। लक्ष्मीकर्ण के उत्तराधिकारी यशःकर्ण के दो प्रबल शत्रु थे—परमार और चालुक्य। परमार नरवर्मन् (१०९७-११११ ई०) के नागपुर प्रशस्ति में लिखा है कि उसके ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मदेव ने त्रिपुरी पर आक्रमण किया और युद्धप्रिय और उत्साही शत्रुओं को विनष्ट किया। विक्रमादित्य छठें के बेलगामी उत्कीर्ण लेख (तिथ्यंकित १०८१ ई०) में यशःकर्ण पर चालुक्य राजा की विजय का उल्लेख है। हो सकता है कि चंदेल राजा सल्लक्षण ने भी चेदि देश पर आक्रमण किए हों, विशेष रूप से जब कि स्थिति चंदेल राजा के इतने अनुकूल थी, यद्यपि इस प्रकार के अभियानों का कोई स्थायी राजनीतिक मूल्य नहीं है।

भोज की दुःखपूर्ण मृत्यु के बाद से परमार शक्ति का निरंतर ह्रास हो रहा था। लक्ष्मदेव ने पुनः शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु उसकी सफलताएँ अल्पकालीन थीं क्योंकि चालुक्यों की शक्ति बढ़ रही थी और उन्होंने नरवर्मन् को पराजित किया और उसका वध किया। इस काल में परमार राज्य में उथल-पुथल थी अतः चंदेल शासकों के लिए क्षिप्राक्रमण करना संभव था। स्पष्ट है कि सल्लक्षण ने कीर्तिवर्मन् से पाए हुए चंदेल राज्य को सुरक्षित रखा। गुर्जर प्रतिहार राजा राज्य-

पाल की पराजय और वध के बाद चंदेल विद्याधर ने गंगा और यमुना के दोआब (अन्तर्वेदि विषय) पर अपना प्रभाव फैलाया। यहाँ राष्ट्रकूट राज्य कर रहे थे और संभवत: वे चंदेलों के सामन्त थे। सम्भव है कि महमूद के आक्रमण के फलस्वरूप और चंदेल शक्ति के ह्रास के कारण कन्नौज के सामन्त स्वतंत्र हुए।

सल्लक्षण के राज्य प्रशासन में योग्य सचिव और पदाधिकारी सहायता करते थे। इनका प्रमुख अनन्त था जिसकी कुशलता और नीति के कारण अन्तर्वेदि प्रदेश में चंदेलों को सफलता मिली। ऐसा विश्वास किया जाता है कि श्री गोपाल ने देश को असामाजिक तत्त्वों से मुक्त किया अर्थात् कंटक शोधन किया। अनन्त के पुत्रों की उनकी सम्यक् परीक्षा के बाद प्रशासन में नियुक्ति की गई।

२. जयवर्मन्—सल्लक्षण का पुत्र और उत्तराधिकारी जयवर्मन् चन्देल सिंहासन पर बैठा। प्रतीत होता है कि वह १११७ ई० के पूर्व सिंहासन पर बैठा। हो सकता है कि १११० ई० में सिंहासन पर बैठा हो। जयवर्मन् एक शौर्य पूर्ण वीर था। वह उदारता, सत्यता, नीति और शौर्य का गृह था जिसके सूर्यरूपी उत्कर्ष के सामने दूसरे राजाओं की द्युति फीकी पड़ गई। पिछली दो पीढ़ियों का सर्वाधिक प्रभावशाली सचिव अनन्त था जिसने गंगा और यमुना के संगम पर जल समाधि ली। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र गदाधर को जयवर्मन् ने अपना निजी प्रतिहार बनाया।

३. पृथ्वीवर्मन्—जयवर्मन् के बाद उसका चाचा पृथ्वीवर्मन् सिंहासन पर बैठा। कालिंजर उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि जयवर्मन् नारायण का भक्त था और राज्य से ऊब कर उसने इसको 'पृथ्वी' वर्मन् को दे दिया। इसके बाद उसने पवित्र नदी में अपने पापों को धोने के लिए प्रस्थान किया। उस समय चन्देलों के अतिरिक्त तीन और शक्तिशाली शक्तियाँ थीं—परमार, चेदि, और चालुक्य। वे सब प्रमुखता के लिए एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी थे। उसने अपनी राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखा किन्तु दूसरी शक्तियों के विरुद्ध आक्रामक नीति नहीं अपनाई। मऊ लेख में लिखा है कि वह वैध धन को ग्रहण करता था और उसके बाद उसको पवित्र कार्यों में व्यय करता था। गदाधर को उसने मंत्रि मुख्य बनाया जो जयवर्मन् के समय प्रतिहार था। उसके समय में सब ओर समृद्धि थी।

४. मदनवर्मन्—पृथ्वीवर्मन् का पुत्र मदनवर्मन् ११२९ के लगभग सिंहासन पर बैठा और ११६३ ई० तक राज्य किया। उसके समय में उत्तर भारत की राजनीति में चन्देल एक महत्त्वपूर्ण सत्ता थी। आरंभ से ही उसने चन्देल शक्ति को दृढ़ एवं संगठित करने और समकालीन शक्तियों के बीच में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। मऊ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसका नाम सुनते ही चेदि राजा घमासान युद्ध में पराजित होकर तीव्रगति से भागता है, उसके भय से काशी का राजा मित्रवत

अपना समय व्यतीत करता है। दर्पयुक्त मालव के राजा का तीव्र गति से उन्मूलन किया। अन्य राजे जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है परम आश्वस्त हैं। बारहवीं शती ई० के प्रथम चरण में काशी राज, मालवेश और चेदि इतने शक्तिशाली नहीं थे कि चन्देलवंश के शक्तिशाली राजा के आक्रमण का सामना कर सकें। स्पष्ट है कि मदनवर्मन् का प्रभाव इन राजाओं पर था। हो सकता है कि वे चन्देल राजा मदनवर्म्मदेव की सैनिक शक्ति के सामने झुके हों। यह पहले लिखा जा चुका है कि ग्यारहवीं शती ई० के अन्त में सल्लक्षण ने चेदियों को पराजित किया। सम्भवतः मदनवर्मन् ने चेदि राजा गयाकर्ण को पराजित किया। कलचुरियों का गंगा के मैदान का कुछ प्रदेश यशःकर्ण (१०७३-११२५ ई०) के समय में गाहडवालों ने छीन लिया। मदनवर्मन् ने भी कलचुरियों का कुछ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। हो सकता है कि कलचुरियों पर चन्देलों ने उत्तर बुन्देलखण्ड में विजय प्राप्त की हो और अवश्य ही चन्देलों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर चेदियों ने परमारों से वैवाहिक मैत्री गठन किया।

सेमरा पट्टों से संकेत होता है कि दक्षिण-पश्चिम में चंदेलों का राज्य बेतवा के उस पार पहुँच गया था और उसमें मालवा प्रदेश का अधिक भाग सम्मिलित था। मऊ लेख में अनिश्चित रूप से यह लिखा गया है कि दर्पयुक्त मालवा का राजा तीव्रगति से उन्मूलित किया गया। परमारों का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि नारायणवर्मन् (१०९७-११११ ई०) और यशोवर्मन् (११३४-४२ ई०) के शासनकाल में परमार राज्य की सैनिक शक्ति गुजरात के चालुक्यों से दीर्घकाल तक संघर्ष करने के कारण क्षीण हो गई थी। गुजरात के शासकों ने मालवा के राजाओं को भयंकर रूप से पराजित किया और अन्त में यशोवर्मन् पराजित हुआ पकड़ा गया। सुकृतसंकीर्तन, सुरथोत्सव, कीर्तिकौमुदी और वसंतविलास में लिखा है कि गुजरात के राजा ने धारा को लूटा और संपूर्ण अवन्ति देश को अपने राज्य में सम्मिलित किया।

अतः यह अत्यंत संभाव्य है कि मालवा राजा यशोवर्मन् के शासन के आरंभिक वर्षों में जब वह चालुक्यों से दुर्धर्ष संघर्ष में फँसा था चंदेल राजा मदनवर्मन् ने अपने राज्य से सटे हुए मालव प्रदेश के कुछ भागों को प्राप्त कर लिया हो। एक ओर गुजरात के राजा ने मालव राजा को पराजित किया, और दूसरी ओर चंदेलों ने उसके राज्य के कुछ प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया। इस तरह मालव राजा के पास काली सिन्धु नदी के निचले मैदान का कुछ भाग बचा। अतः चंदेलों का यह दावा करना कि उन्होंने मालव राजा का उन्मीलन किया है न्यायसंगत नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि मालवराजा पर सिद्धराज की विजय क्षिप्राक्रमण मात्र न थी। विभिन्न तिथियों के अनेक चालुक्य दानपत्रों में सिद्धराज को 'अवन्तिनाथ' लिखा

है। चालुक्य राज्य में मालवा के सम्मिलित किए जाने के बाद चंदेल राज्य से संघर्ष होना अनिवार्य था क्योंकि दोनों की सीमाएँ एक दूसरे से मिलती थीं। कुमारपाल चरित में लिखा है कि जयसिंह ने महोबा के पति मदनवर्मन् को पराजित किया लेकिन बाद को उससे सन्धि कर ली। प्रत्यक्ष है कि चालुक्य शासक को चंदेलों से युद्ध करने पर कुछ लाभ नहीं हुआ और विवश होकर उसने कालिंजर से अपनी सेना हटा ली। चंदेलों ने गुजरात आक्रामकों को पीछे ढकेला। अतः मदनवर्मन् का गर्व करना न्याय-संगत है।

चंदेल राज्य के उत्तर-पश्चिम की ओर गाहड़वालों की शक्ति उत्कर्ष पर थी जिससे कि चंदेलों की सुरक्षा संकट में थी। किन्तु मऊ लेख में लिखा है कि दोनों शक्तियों के बीच में अच्छे संबंध थे। संभवतः स्थिति यह थी कि दोनों ही शक्तियाँ एक दूसरे की शक्ति को पहचानती थीं। और उन्होंने एक प्रकार का मैत्रीबंधन कर रखा था जिससे कि वे समकालीन राजनीति में महत्वपूर्ण भाग अभिनीत कर सकें।

राज्य विस्तार—मदनवर्मन् ने कम-से-कम ३४ वर्ष तक राज्य किया। उसके शासनकाल के प्राचीनतम लेख की तिथि ११२९ ई० है और नवीनतम लेख की तिथि ११६३ है। इस बीच में उसने चंदेलशक्ति को पुनः जीवित किया, अपने राज्य को दृढ़ और संगठित किया, और अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। उसके उत्कीर्ण लेखों और मुद्राओं के प्राप्य स्थानों से संकेत होता है कि दक्षिण में चंदेल राज्य, पूरब में भानरेर पहाड़ी से लेकर पश्चिम में विन्ध्यपर्वत श्रेणियों की कैमूर पहाड़ी तक फैली थी। पूर्वी सीमा यमुना के बहाव के साथ-साथ चली थी जिसके उस पार गाहड़वाल राज्य था; पश्चिम में बेतवा नदी चंदेल राज्य को मालवा देश से अलग करती थी जो उस समय चालुक्यों के हाथ में था। इस तरह संपूर्ण मध्यवर्ती त्रिकोण भाग मदनवर्मन् के हाथ में था जिसके अन्तर्गत कालिंजर और अजयगढ़ के महत्वपूर्ण गढ़ और खजुराहो और महोबा के नगर थे।

●

अध्याय | ७

चाहमान-चन्देल प्रतिद्वंद्विता : महोबा का पतन

१. यशोवर्मन् द्वितीय—बटेश्वर लेख से स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि मदनवर्मन् के पश्चात् परिमर्दि का पिता यशोवर्मन् चंदेल सिंहासन पर बैठा। उसका शासन अल्पकालीन था।

२. परिमर्दि—परमर्दिदेव चंदेलवंश का अन्तिम महत्वपूर्ण राजा था। पाँच वर्ष की अवस्था में ११६६ ई० के लगभग वह सिंहासन पर बैठा। उसने ३५ वर्ष तक राज्य किया। उसका प्राचीनतम लेख ११६५-६६ ई० तिथ्यंकित है और उसका नवीनतम लेख १२०१—२ का है। उसके उत्कीर्ण लेखों में उसकी संपूर्ण साम्राजिक उपाधियाँ दी हुई हैं—'परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वरपरम् माहेश्वर श्री कालिंजराधिपति—श्रीमन्मत्-परमर्दिदेव'। उसके अभिलेखों के प्राप्त स्थान से प्रतीत होता है कि उसने संपूर्ण राज्य पर शान्तिपूर्वक राज्य किया। उसके शासन के प्रारंभिक वर्षों में कोई युद्ध या संकट उपस्थित नहीं हुआ।

चाहमानों से युद्ध—उसके शासन के दूसरे काल में दिल्ली के चाहमानों से दीर्घकालिक संघर्ष हुए जिसमें परिमर्दि की पराजय और महोबा का पतन हुआ। चंदेलों के उत्कीर्ण लेख इस संबंध में बिल्कुल मौन हैं। संभवतः चंदेल प्रशस्तिकार अपने स्वामी की अपमानजनक पराजय का उल्लेख नहीं करना चाहते थे। अतः भाटों के वर्णन के आधार पर यहाँ संक्षेप में उस घटना का उल्लेख किया जा रहा है। पृथ्वीराज रासो, महोबा खण्ड (परमालरासो) और आल्हारासो में चौहान पृथ्वीराज और चंदेल परमाल के घमासान युद्धों का वर्णन है। इसमें बहुत से वर्णन बाद को जोड़े गए हैं। फिर भी मानना पड़ेगा कि इनमें सत्य का बीज है क्योंकि दो मदनपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेखों से प्रमाणित है कि पृथ्वीराज ने परिमर्दि को हराया और ११८२-८३ ई० में जेजामुक्ति लूटा।

युद्ध का कारण—पृथ्वीराज चौहान पद्मसेन की पुत्री से विवाह करने के बाद दिल्ली लौट रहा था। रास्ते में तुर्की दलों ने उस पर आक्रमण किया किन्तु वे पीछे खदेड़ दिए गए। पृथ्वीराज का दल जिसमें आहत सैनिक भी थे रास्ता भूल गया और चंदेलों की राजधानी महोबा में आ पहुँचा। उस समय वर्षा हो रही थी। इस

दल ने राजउद्यान में डेरा डाला किन्तु उनको यह पता नहीं था कि यह राजउद्यान है। उद्यान के संरक्षक से उस दल से कहा सुनी हुई और संरक्षक पीटा गया। जब इसकी सूचना परमार चंदेल (परमर्दिदेव) के पास पहुँची तो उसने इसको अपना अपमान समझा, और उस दल के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अपने सैनिकों को भेजा। युद्ध हुआ जिसमें चंदेलों को गहरी क्षति उठानी पड़ी। चौहानों के ३० आदमी मारे गए और १७ आहत हुए। इसके बाद परमाल ने बनाफर जाति के अपने नेता सेनापति ऊदल को आहत सैनिकों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। ऊदल ने चंदेल राजा को समझाया कि आहत सैनिकों पर आक्रमण करना वीरता का काम नहीं है। इसके अतिरिक्त बैठे बैठाए पृथ्वीराज के समान शक्तिशाली राजा से शत्रुता हो जायगी। किन्तु परमलि माहिल परिहार के कुप्रभाव में था जो उसका सामन्त था किन्तु उसके प्रति दुष्टभावना रखता था। वह चंदेलों को अनुचित परामर्श देता था या गुप्त संदेश भेज कर शत्रुओं की सहायता करता था। उसके उसकाने पर परमाल ने बनाफर को अनुचित आक्रमण करने को भेजा। किन्तु उसका परिणाम पूर्ववत् ही रहा। अस्तु, पृथ्वीराज ने घेरा उठा लिया और वह दिल्ली चला गया।

इसके बाद बनाफर सरदार ऊदल और उसका भाई आल्हा माहिल परिहार के कुचक्रों से ऊब कर महोबा से चले गए और कन्नौज के राजा जयचंद के यहाँ शरण ली।

माहिल परिहार ने चन्देल पृथ्वीराज को सूचित किया कि चन्देलों के उत्कृष्ट सैनिक महोबा से चले गए हैं और चन्देलों पर आक्रमण करने का यही सुअवसर है। पृथ्वीराज ने एक बड़ी सेना लेकर महोबा पर आक्रमण किया। महोबा खण्ड में पृथ्वीराज के यात्रा पथ तथा उसके विश्राम स्थलों का पूर्ण विवरण दिया है। रास्ते में सिसरगढ़ था जिसका गढ़पति मलखान परमाल का एक वीर सामन्त था। वह बनाफर और आल्हा और ऊदल का चचेरा भाई था। मलखान ने लगभग आठ दिन तक किले की दृढ़ता से रक्षा की। पृथ्वीराज ने उसको अपनी ओर करने का प्रलोभन दिया किन्तु वह अपने स्वामिधर्म पर टिका रहा और आठ दिन तक लड़ता रहा। इस युद्ध में चौहान सेना के आठ स्वामिभक्त सेनापति काम आए। अन्त में स्वयं पृथ्वीराज युद्ध-क्षेत्र में उतरा। इस युद्ध में अपने श्रेष्ठ वीरों के साथ मलखान ने वीरतापूर्वक अपने प्राण युद्ध क्षेत्र में छोड़े। सिरसा के पतन के बाद पृथ्वीराज ने महोबा की ओर प्रयाण किया और रास्ते में वेत्रवती के तट पर शिविर डाला। सिर पर मडराते हुए संकट को देख कर महाराज्ञी मल्हान देवी ने यह सुझाव दिया कि दो महीने की विराम सन्धि की जाय और कन्नौज से आल्हा ऊदल को बुलाया जाय।

पृथ्वीराज ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और विस्तृतः शहर को घेर कर

नदी के किनारे ठहरा रहा। आल्हा-ऊदल की माता ने स्वामिधर्म पालन करने पर जोर दिया। जयचन्द ने अपने कुछ अनुभवी सेनापतियों, दो पुत्रों और सैनिकों की एक शक्तिशाली टुकड़ी के साथ आल्हा ऊदल को भेजा। मऊ लेख में लिखा है कि परमाल के प्रपिता चन्देलराजा मदनवर्मन् और गाहड़वालों में मित्रता थी। राजा परिमर्दि ने 'श्री वाराणसी' के 'मणिकर्णिका घट्ट' से एक पट्ट निःसृत किया जो गाहड़-वाल राज्य में था। इससे भी चन्देल और गाहड़वालों की मित्रता प्रमाणित होती है। महोबा में बनाफर सरदारों के पहुँचने पर चन्देलों में बड़ा उत्साह हुआ और घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में परमाल का पुत्र ब्रह्मजीत् ऊदल, जयचन्द के पुत्र तथा चन्देल पक्ष के राजा और समस्त वीर सेनापति काम आए। आल्हा आहत हुआ किन्तु बच गया। परमाल कुछ सैनिकों के साथ कालिंजर चला गया। पृथ्वीराज ने महोबा को लूटा जिसकी पुष्टि मदनपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेखों से भी होती है।

चौहान सेनापति चावन्दराय ने कालिंजर को घेर कर उस पर अधिकार कर लिया और परमाल को बन्दी बना कर दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। सेनापति पज्जुनराय को महोबा का राज्यपाल नियुक्त कर पृथ्वीराज दिल्ली चला गया। आल्हा के पुत्र इन्दलकुमार ने चौहानों पर आक्रमण कर चंदेल राजा परमाल को छुड़ा लिया। परमाल रासो के अनुसार परमाल ने बन्दी बनाए जाने के शोक में गजराज के मंदिर में आत्महत्या कर ली किन्तु चन्दबरदाई ने लिखा है कि परमाल गया चला गया और वहाँ उसकी मृत्यु हुई।

भाटों के इन वर्णनों में इतनी अनैतिहासिक बातें जुड़ती गई हैं कि ऐतिहासिक तथ्य का पता लगाना कठिन है। पृथ्वीराज द्वारा पराजित होने के बाद भी परमाल जीता रहा इसका साक्ष्य स्वयं परिमर्दिदेव के कालिंजर उत्कीर्ण लेख, महोबा उत्कीर्ण लेख (११८४ ई०), अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख (११८७ ई०), बघारी (बटेश्वर) उत्कीर्ण लेख (११९५ ई०), और कालिंजर उत्कीर्ण लेख (१२०१ ई०) में उपलब्ध है। हसन निजामी और फिरिश्ता के वर्णनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि ११८२ ई० के चौहान-चंदेल युद्ध के बाद परमर्दि लगभग बीस वर्ष तक जीवित रहा। परमर्दि देव ने कालिंजर और महोबा से ११८४ ई० में उत्कीर्ण लेख निःसृत किए अर्थात् चौहानों द्वारा उन पर अधिकार किए जाने के दो वर्ष के अन्दर ही ये उत्कीर्ण लेख निःसृत किए गए। हो सकता है कि कालिंजर किले पर चंदेलों का अधिकार बना ही रहा और चौहानों ने उनसे छीना नहीं। यह विश्वास किया जा सकता है कि आल्हा के पुत्र इन्दलकुमार के नेतृत्व में बनाफरों ने चौहानों से परमाल को छुड़ा लिया और चौहानों को महोबा छोड़ने के लिए विवश किया। पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि परमाल के पुत्र समरजित ने जयचन्द्र के एक पदाधिकारी नरसिंह की सहायता से

पृथ्वीराज के थानापति पज्जुनराय से महोबा छीना, और कालिंजर और गया के बीच के संपूर्ण प्रदेश पर राज्य किया। किन्तु इसके नाम का उल्लेख चन्देल लेखों में नहीं है।

प्रतीत होता है भाटों ने चौहानों द्वारा चन्देल राज्य पर अधिकार करने की कथा गढ़ ली है, और यदि उस पर चौहानों का आधिपत्य हुआ भी हो तो वह बहुत ही अल्पकाल तक था। परमिद के उत्कीर्ण लेखों में जो ११८४ ई० में तथा उसके बाद निःसृत किए गए परमिद की समस्त साम्राजिक उपाधियाँ दी हुई हैं। उनसे यह पता नहीं चलता कि उसने अधीनता स्वीकार की। बटेश्वर उत्कीर्ण लेख (११९५ ई०) में परमिद की प्रशंसा में कहा गया है कि राजाओं के मुकुटमणियों के द्युति से परमिद का पाद-पीठ रक्ताभ है। इसके अतिरिक्त कालिंजर लेख (१२०१ ई०) में उसको 'दशार्णाधिनाथ' कहा है। अनुमान होता है कि महोबा को लूटने के बाद चौहानों ने महोबा पर घेरा उठा लिया और दिल्ली चले गए। प्रतीत होता है कि वे चंदेलों को निर्बल करना चाहते थे, और उनके राज्य को अपने राज्य में मिलाने का उनका कोई विचार नहीं था।

चौहानों ने चन्देल राज्य को जो क्षति पहुँचाई उसको वे पूरा भी न कर पाए थे कि कुतुबुद्दीन ने एक वृहत् सेना लेकर १२०२ ई० में कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर के 'राय' 'परमार' ने दृढ़ता से मुसलमान सेना का सामना किया किन्तु अन्त में समर्पण करने को विवश हुआ। राजनिष्ठ होने तथा कर देने का वचन देकर वह वहाँ का 'राय' बना रहा। किन्तु जब वह कर चुकता करने की तैयारी कर रहा था। उसकी मृत्यु हो गई। उसके दीवान अजदेव ने सैनिकों को पुनः संगठित कर मुसलमानों को बहुत कष्ट दिया किन्तु प्रचण्ड सूखा पड़ जाने के कारण किले के तालाब सूख गए, और विवश होकर चन्देल सेना को समर्पण करना पड़ा। आक्रामकों ने इस पर अधिकार कर लिया, मन्दिरों को तोड़ा, उनको मस्जिदों का रूप दिया, और पर्याप्त लूट का माल एकत्र किया।

कालिंजर पर अधिकार करने के बाद कुतुबुद्दीन ने महोबा की ओर प्रयाण किया और इस पर अधिकार किया।

परमर्दिदेव के जीवन में बहुत ही उतार चढ़ाव रहा। उसके शासनकाल में चन्देल शक्ति का उत्कर्ष हुआ किन्तु गहरी पराजयों के कारण चन्देल शक्ति सदा के लिए निर्बल पड़ गई।

अध्याय | ८

त्रैलोक्यवर्मन् द्वारा राज्य की पुनः प्राप्ति

१. त्रैलोक्यवर्मन्—त्रैलोक्यवर्मन् ने लगभग ३६ वर्ष तक राज्य किया। प्रतीत होता है कि परमर्दि के शासन काल में जो आक्रमण हुए थे उनसे चन्देलों की शक्ति पूर्ण रूप से लोप नहीं हुई। त्रैलोक्यवर्मन् ने चन्देल राज्य को एक नया जीवन दिया। उसने तुरुष्कों से शीघ्र ही कालिंजर छीना और वह पुनः 'कालंजराधिपति' हुआ। इसका स्पष्ट संकेत त्रैलोक्यवर्मन् के गार्रा पट्टों में तथा वीरवर्मन् के अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख में है। अजयगढ़ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि त्रैलोक्यवर्मन् सचमुच विष्णु का बराह अवतार था जिसने तुरुष्क आक्रमण के जलप्लावन से अपनी अपौरुषेय शक्ति के बल पर चन्देल राज्य को पुनः प्राप्त किया।

कुछ समय तक तुरुष्क आक्रामकों ने चन्देल शक्ति को ग्रस रखा क्योंकि उनका अधिकार कालिंजरगढ़ पर था। त्रैलोक्यवर्मन् ने अपनी शक्ति इतनी दृढ़ की कि उसने तुरुष्कों से कालिंजर छीन लिया। यह सफलता प्राप्त करने में उसको मूल्यवान् प्राणों का बलिदान करना पड़ा। जिस मृत सैनिक के बलिदान से चन्देलों को विजय मिली थी उसके परिवार के निर्वाह के लिए त्रैलोक्यवर्मन् ने 'मृत्युक वृत्ति' प्रदान की।

तबकाते नासिरी ने लिखा है कि मलिक नसरतउद्दीन तैशी ने ग्वालियर से एक सेना के साथ ग्वालियर की ओर प्रयाण किया, कालिंजर का 'राय' भाग खड़ा हुआ, और मुसलमान सेना ने कल्पनातीत लूट का माल प्राप्त किया। इस विवरण से स्पष्ट है कि १२३३ ई० तक यह किला हिन्दुओं के हाथ में रही। प्रतीत होता है कि इसको पुनः प्राप्त करने के बाद त्रैलोक्यवर्मन् ने इसकी प्रतिरक्षा के लिए और प्रति-रक्षात्मक स्थान बनवाए ('दुर्ग-प्रविधान—वेदः)। मुसलमान इतिहासलेखक ने लिखा है कि कालिंजर का राय बिना युद्ध किए भाग गया। किन्तु मुसलमानलेखक की सत्यता पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता।

ककड़दह की विजय से जो तुरुष्कों के हाथ में था त्रैलोक्यवर्मन् की ख्याति बढ़ी उसने यह विजय १२०५ ई० के लगभग प्राप्त की इस विजय के बाद उसने बाघेल खण्ड के उत्तर का प्रदेश जीता जो कलचुरियों के हाथ में था। यह घटना अवश्य ही १२०५ और १२४० ई० के बीच हुई होगी। महाराणक वंश के रेवा दान-

पत्रों (१२४०-४१ ई०) तथा धुरेटी ताम्रपट्ट से प्रमाणित होता है कि चन्देलों का राज्य उत्तरी बाघेल खण्ड में सोन नदी के ऊपरी बहाव तक था, और उस समय भी इस प्रदेश पर चन्देलों का राज्य बना रहा जब मुसलमानों ने कालिंजरगढ़ पर अधिकार किया। अजयगढ़ से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि त्रैलोक्यवर्मन् के समय भिल्लों, शाबरों और पुलिन्दों पर विजय प्राप्त की गई। त्रैलोक्यवर्मन् ने दुर्धर्ष भोजुक को पराजित किया जो प्रतीत होता है एक शक्तिशाक्ति और प्रभावशाली विद्रोही था।

मूल्यांकन—त्रैलोक्यवर्मन् ने चन्देल शक्ति को विनाश होने से बचाया और अत्यंत संकट काल में भी इसका विस्तार किया। वह उस समय सिंहासन पर बैठा जब राज्य अन्धकार से ग्रसित था और उसने विष्णु की तरह तुरुष्क दलों के समुद्र से पृथ्वी का उद्धार किया। जिस समय उसने राज्यारोहण किया। उस समय चन्देलों की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। कालिंजर पर मुसलमानों का अधिकार था और राजधानी महोबा से अजयगढ़ को स्थानान्तरित कर दी गई थी। उसने चन्देलगढ़ों को फिर से जीता और पश्चिम में बेतवा से लेकर पूरब में सोन नदी तक, और उत्तर में बाँदा और हमीरपुर जनपदों से लेकर दक्षिण में पन्ना तक चन्देल सत्ता स्थापित की। इन सफलताओं का श्रेय उसके संगठन-शक्ति को है। वह अपने समय का महत्त्वपूर्ण राजा था उसके सामन्तों में ककरेडिक के महाराणक भी थे और वे उसको अपना अधीश्वर मानते थे।

तबकातेनासिरी के एक उद्धरण के आधार पर कनिंघम ने यह आशय निकाला है कि कालिंजर पर त्रैलोक्यवर्मन् का अधिकार १२४७ ई० तक था। यह ज्ञात है कि कलिंजर त्रैलोक्यवर्मन् के पुत्र और उत्तराधिकारी वीरवर्मन् के अधिकार में था। इससे प्रतीत होता है कि मुसलमान आक्रमक ताइशी ने किले को लूटा किन्तु उस पर उसकी पूर्ण विजय नहीं हुई और यह गढ़ सोलहवीं शती तक चन्देलों के हाथ में बना रहा यद्यपि इस पर बारंबार आक्रमण होते रहे।

वीरवर्मन्—त्रैलोक्यवर्मन् के बाद वीरवर्मन् सिंहासन पर बैठा किन्तु उसके राज्यारोहण की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। मुसलमान इतिवृत्त लेखकों ने वीरवर्मन् के समय में किसी मुसलमान आक्रमण का उल्लेख नहीं किया है। प्रतीत होता है कि उसने शान्तिपूर्वक राज्य का भोग किया तथा उसके पैतृक राज्य के अधिक भाग पर उसका प्रत्यक्ष नियंत्रण था। खजुराहो पर भी उसका अधिकार था जहाँ एक अपूर्व द्रम्भ पाया गया है। उसके उत्कीर्ण लेखों के प्राप्ति-स्थान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसके राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर बेतवा नदी या उसके आगे तक भी था। उत्तर-पश्चिम में उसके प्रदेश की सीमा नलपुर (नर्वर) और गोपगिरि (ग्वालियर) और उत्तर में मधुबन (मथुरा) थी। प्रतीत होता है कि वीरवर्मन् ने

यज्वपाल गोपाल के राज्य पर आक्रमण किया और नलपुर तक धँसता चला गया। किन्तु बाद को वह पीछे ढकेल दिया गया। चन्देलों का राज्य बहुत बड़े क्षेत्र पर फैला हुआ था। मुसलमान वर्णनों में लिखा है कि सुलतान नासिरउद्दीन ने १२५१ ई० में बुन्देल खण्ड को अपने अधीन किया जिसमें ग्वालियर, चंदेरी और मालवा के प्रदेश सम्मिलित थे। प्रतीत होता है कि मुसलमान इन स्थानों से स्थानीय राजाओं को हटा न सके क्योंकि उनका राज्य वहाँ बना रहा यद्यपि उनकी शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी। अजयगढ़ लेख से प्रतीत होता है कि उसने दृढ़ता से राज्य किया और उपद्रवी तत्त्वों का दमन किया। उसकी महाराज्ञी कल्याणदेवी ने एक गहरा कुँआ और एक सरोवर निर्माण किया।

३. भोजवर्मन्—भोजवर्मन् १२८६ ई० और १२८८ ई० के बीच सिंहासन पर बैठा। संभाव्यतः वह वीरवर्मन् का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था।

यद्यपि चंदेलों की शक्ति का ह्रास हो गया था किन्तु उनका प्रशासनिक संगठन उनके योग्य सचिवों और पदाधिकारियों की सहायता से सुचारु रूप से चल रहा था। उत्कीर्ण लेखों से प्रतीत होता है कि इस समय भी अजयगढ़ चंदेलों के हाथ में था। कालंजरगढ़ भी उनके स्वत्व में था जैसा कि १२८६ ई० के चरखारी लेख से स्पष्ट है। भोजवर्मन् ने अधिक समय तक राज्य नहीं किया और १२८६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

४. हम्मीरवर्मन्—हम्मीरवर्मन् चंदेलवंश का अन्तिम ज्ञात राजा था। वह १२९८ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसके उत्कीर्ण लेखों के प्राप्तिस्थान से ज्ञात होता है कि चन्देलों के पैतृक राज्य पर उसका आधिपत्य था जिसमें अजयगढ़ और महोबा प्रदेश भी सम्मिलित थे। दमोह और जबलपुर जनपद के कुछ भाग भी उसके राज्य में थे। उसने कम-से-कम २० वर्ष (१२८९-१३०८) तक राज्य किया। अलाउद्दीन ने १३०९ ई० में बुन्देलखण्ड पर अधिकार किया और इस तरह स्वतंत्र चन्देल वंश का अन्त हुआ और चन्देलों के वैभव कहानी मात्र रह गए। इस वंश ने ३०० वर्ष तक राज्य किया और राजनीति, साहित्य, कला, और वास्तुविद्या के क्षेत्रों में गौरवपूर्ण अभिनय किया। किन्तु अन्त में क्रूर काल के चपेटों से बच न सका और इसके शासन का अन्त हो गया।

खण्ड ६

चौहान वंश

अध्याय | १

चौहानों की उत्पत्ति और मूलस्थान

१. उत्पत्ति—चंदबरदाई और राजस्थानी भाट और इतिवृत्त लेखक चौहानों की उत्पत्ति अग्निकुल से बताते हैं। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा उनको सूर्यवंश का राजपूत और रत्नपाल उनको इन्द्र से उत्पन्न मानते हैं। चौहानों के गोत्रोच्चार में उनको सोमवंशी क्षत्रिय कहा जाता है। टॉड, स्मिथ, क्रूक और डॉ० डी० आर० भण्डारकर चौहानों को विदेशी मानते हैं।

अग्निकुल की कथा बहुत पुरानी नहीं है। यह कवियों की कल्पनामात्र उपज है, और रामायण और नवसाहसाङ्कचरित की कथा पर आधारित है जिसमें लिखा है कि वशिष्ठ ने अपनी कामधेनु चुराने वाले विश्वामित्र से युद्ध करने के लिए शक, पह्लवा, काम्बोज तथा कुछ अन्य अनार्य जातियों को उत्पन्न किया। सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र से उत्पत्ति की कथाएँ बारहवीं, तेरहवीं शती ईसवीं से पूर्व की नहीं हैं। शिलालेखों तथा काव्यों में कहा गया है कि कलयुग आरम्भ हो जाने पर बौद्धावतार के बाद और म्लेच्छों द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने के उपरान्त प्रथम चौहान उत्पन्न किया गया। उपर्युक्त किसी भी साक्ष्य में चौहानों को इक्ष्वाकु का वंशज नहीं कहा गया है। उपर्युक्त पुराकथा से दो बातें स्पष्ट हैं: (१) जाति रूप में चौहानों का प्राचीन सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों से संबंध नहीं था। (२) चौहानों ने हिन्दू धर्म-संस्कृति की रक्षा के लिए अहिन्दुओं से युद्ध किया। संभाव्यतः इसी कारण वे क्षत्रिय माने गए। जो विद्वान् उनको विदेशी मानते हैं उन्होंने कथाकथित अग्निकुल वंशों के शिलालेखों के साक्ष्य की नितान्त उपेक्षा की है जिनमें लिखा है कि मण्डोर के प्रतिहार हरिचन्द्र ब्राह्मण और उसकी पत्नी क्षत्रिया भद्रा के वंशज थे; परमार अर्बुदाचल के ब्राह्मण संभवतः वशिष्ठ से उत्पन्न परमार नामक व्यक्ति के वंशज हैं; और चौहान एक वत्स-गोत्री ब्राह्मण की सन्तान हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि चौहानों की ब्राह्मण उत्पत्ति है। सोमेश्वर के बिजोलिया उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११७० में स्पष्ट लिखा है कि 'विप्रः श्रीवत्सगोत्रेभूत्'। इसकी पुष्टि मुसलमान चौहान ग्रन्थकार जान के 'क्याम खाँ रासो से होती है, और कुछ अंश तक जालोर के चौहानों के सून्धा उत्कीर्ण लेख से और चन्द्रावती के चौहानों के

अचलेश्वर उत्कीर्ण लेख से होती है। जान कवि ने लिखा है कि 'चाहुवांन हैं जगत में, ते सब बछ सगोत'। चौहानों के गोत्रोच्चार में उनको 'वत्स गोत्रिन्' और 'विप्र' कहा है संभाव्यतः पल्लवों, कादम्बों, और गुहिलों की तरह वे भी अपने विप्र-कर्म को छोड़कर क्षत्रिय वर्ग में चले गए।

२. चौहानों का मूल-स्थान—प्राचीन इतिवृत्त तथा उत्कीर्ण लेख जांगल-देश और सपादलक्ष से उनका संबंध जोड़ते हैं। उनकी उत्पत्ति न तो अर्बुदाचल पर, और न किसी बाहरी देश में हुई। हर्ष उत्कीर्ण लेख (९७३ ई०) सूचित करता है कि चौहानों की सत्ता का पुराना केन्द्र अनन्त प्रदेश था जो राजस्थान के सीकर के समीप है। यहीं उनके कुलदेवता हर्षदेव का मंदिर था। पृथ्वीराजविजय, सुर्जन-चरित, और हम्मीरमहाकाव्य ने चाहमानों की जन्मभूमि पुष्कर बताई है। डॉ० दशरथ शर्मा ने उपर्युक्त तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर यह परिणाम निकाला है कि चौहानों का मूलस्थान प्रायः उत्तर में हर्ष से लेकर दक्षिण में पुष्कर तक था। उन्होंने लिखा है कि यह जांगलदेश कहा जा सकता है, क्योंकि इस प्रदेश में शमी, करीर, अर्क, पीलू, आदि अधिकता से उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त यह उस प्रदेश के अन्तर्गत है जिसको स्कन्द पुराण में शाकम्भर-सपादलक्ष और मिनहाज-उस-सिराज ने शिवालिख कहा है। चौहान शाकम्भर-सपादलक्ष प्रदेश में रहते थे जिसमें (स-पाद-लक्ष) सवा लाख गांव थे। वस्साफ ने लिखा है कि शिवालिक में सवा लाख कस्बे और गाँव हैं। डॉ० शर्मा ने लिखा है कि हर्ष उत्कीर्ण लेख में इस प्रदेश को चौहान-भूमि लिखा है। सर्वप्रथम चौहान शासक का संबंध साम्भर झील से था और अहिच्छत्र-पुर के सामन्त का उत्तराधिकारी नृप या नरदेव पूर्णतल्ल या पून्तला में राज्य करता था जो राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र में है। संभवतः अहिच्छत्रपुर पून्तला और साम्भर के बीच में किसी स्थान पर या उनके आस-पास था।

अध्याय | २

प्राचीन चौहान वंश

जुनैद ने जो खलीफा हिशाम (७२४-७४३ ई०) के अधीन सिन्ध का राज्यपाल था ७३६ और ७३८ ई० के बीच में किसी समय भड़ौच पर आक्रमण किया और वहाँ के गुर्जर राज्य पर अधिकार किया। उसकी सेनाएँ सैन्धव, सौराष्ट्र, चवोटक, मौर्य, राज्यों को उखाड़ती हुई नवसारिका पहुँचीं जो चालुक्यों के राज्य में ताप्ती नदी के उस पार बसा था। लाट प्रदेश के राजा अवनि जनाश्रय पुलकेशिन ने उनको खदेड़ा और ताजिकों या अरबों द्वारा जीते हुए प्रदेशों का एकीकरण किया। भड़ौच के गुर्जर राज्य का स्थान चौहान भर्तृवद्ध द्वितीय ने लिया। प्रतीत होता है कि गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् नागभट प्रथम की सहायता से उसने यह पद प्राप्त किया। नागभट प्रथम के वंशज भोज देव के सगरतल (ग्वालियर) प्रशस्ति में नागभट की प्रशंसा में कहा गया है कि उसने 'सुकृत का नाश करने वाली म्लेच्छ राजा की शक्तिशाली अरब सेना को पददलित किया और चतुर्भुज होकर वह चमका।' चौहान भर्तृवद्ध द्वितीय के हंसोत पट्टों (तिथ्यंकित ७५६ ई०) में संकेत किया गया है कि भर्तृवद्ध द्वितीय प्रतिहार वंश के श्री नागावलोक (नागभट प्रथम) का मण्डलिक है। उसके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। प्रतीत होता है कि ७५७ ई० में या इसके कुछ पूर्व उसकी मृत्यु हुई और भड़ौच राष्ट्रकूट राज्यपाल कक्क के हाथ में चला गया।

लगभग ४०० वर्ष बाद हम देखते हैं कि भड़ौच और केम्बे में एक चौहान वंश राज्य कर रहा है। १२२२ ई० के कुछ पूर्व धोल्का के बाघेला लावण्य प्रसाद ने केम्बे पर अधिकार किया। इस घटना के बाद ही देवगिति के यादव शासक सिंहन ने चौहान शासक सिन्धुराज को मार डाला और उसके पुत्र शंख को कारागार में डाला। यादव सिंहन की शक्ति की वृद्धि देखकर लावण्यप्रसाद ने भृगुकक्ष (भड़ौच) के शासक की सहायता कर उसके प्रदेश को यादवों के हाथ में जाने से बचाया। देवगिरि के यादव राजा सिंहन ने चौहानसिंह को बन्धन से मुक्त किया। उसने लावण्यप्रसाद के विरुद्ध एक संघ बनाया जिसमें वह स्वयं, मालवा का शासक देवपाल, और देवगिरि का

यादव शासक सिंहन सम्मिलित हुए। किन्तु लावण्यप्रसाद के जैन राज्यपाल वस्तुपाल ने इन मित्र शक्तियों में ऐसे भेदभाव पैदा किए कि वे आपस में ही लड़ने लगे। अतः शंख ने अकेले ही केम्बे पर आक्रमण किया। प्रतीत होता है कि उसकी पराजय हुई, क्योंकि इसके बाद भड़ौच के चौहान वंश का नाम सुनाई नहीं पड़ा।

चौहानों की एक शाखा धवल पुरी (धोलपुर) में ८४२ ई० में राज्य करती थी। उसका राजा चण्डमहासेन था। उसने चम्बल के दोनों ओर के तटों पर बसे हुए म्लेच्छों (भीलों) को अपने अधीन किया। वह संभवतः प्रतिहार राजा नागभट द्वितीय की सेना के साथ इस प्रदेश में आया और कई किलों को जीता।

प्रतापगढ़ (राजस्थान) में चौहानों का एक वंश था जो 'श्री भोजदेव के लिए उच्चसुख का कारण था।' इस वंश में गोविन्दराज, दुर्लभराज और इन्द्रराज सामन्त हुए जो भोज' महेन्द्रपाल और नागभट द्वितीय के प्रति राजनिष्ठ थे। हर्ष उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि नागभट द्वितीय की राज सभा में शाकम्भरी के गूवक प्रथम का सम्मानीय स्थान था। गूवक द्वितीय ने अपनी पुत्री का विवाह कन्नौज के अधीश्वर के साथ किया। डॉ० दशरथ शर्मा का कुछ ऐसा विचार है कि हो सकता है कि इन्द्रराज के पूर्वज शाकम्भरी वंश के रहे हों। इन्द्रराज के बाद इस वंश का क्या हुआ कुछ ज्ञात नहीं है।

जैन ग्रन्थ 'अणुरत्नप्रदीप' और धनपाल का अपभ्रंश काव्य 'बाहुबलिचरित' से सूचना मिलती है कि चंद्वार में जो गाहडवाल साम्राज्य के अन्तर्गत था और जहाँ ११९४ ई० में जयचन्द गाहडवाल और मुहम्मद घोरी के बीच में युद्ध हुआ था एक चौहान वंश राज्य कर रहा था जो प्रत्यक्षतः गाहडवाल का मण्डलिक था। इस वंश का एक शासक आह्वमल्ल था जो रायबद्दीय में १२५६ ई० में राज्य कर रहा था। उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि वह म्लेच्छों के विरुद्ध युद्ध में 'मल्ल' था और हम्मीर (दिल्ली का नासिरउद्दीन महमूद) के हृदय में तीर के फल को चुभाने वाला था। नासिरउद्दीन महमूद ने हिन्दुओं के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने के लिए १२४६ ई० यमुना को पार लिया। 'बाहुबलिचरित' से ज्ञात है कि १२९३ ई० में के लगभग असवम्भु चंद्वार में राज्य कर रहा था और संभवतः वह आह्वमल्ल का उत्तराधिकारी था। इस वंश का अन्तिम शासक रामचन्द्र १३९७ ई० में राज्य कर रहा था।

अध्याय | ३

सपादलक्ष या जांगल देश के चौहानों की शाखा

सपादलक्ष का प्राचीनतम ज्ञात शासक वासुदेव था। उसका एक वंशज सामन्त था। विजोलिया उत्कीर्ण लेख में उसको अनन्त (शेखावाटी में हर्ष के समीप का प्रदेश) का वत्सगोत्री ब्राह्मण कहा है 'विप्रः श्रीवत्सगोत्रेभूत्।' उशने संभाव्यतः ६१८ ई० तक राज्य किला। उसका पुत्र नैप या नरदेव था। उसकी राजधानी पूर्णतल्ल (संभवतः जोधपुर राज्य का पून्तला गाँव) थी। नृप या नरदेव का वंशज दुर्लभराज प्रसिद्ध शासक था।

१. दुर्लभराज प्रथम—वह कन्नौज के राज वत्सराज का मण्डलिक था और उसके साथ बंगाल की चढ़ाई पर गया था जिसमें बंगाल के राजा धर्मपाल की हार हुई। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि दुर्लभराज ने अपनी तलवार को गंगा और समुद्र के संगम पर डुबो कर और गौड-भूमि का आस्वादन कराकर पवित्र किया। इस युद्ध में प्रतिहार राजा वत्सराज ने न केवल 'गौडीय शरद्-इन्दु-पाद-धवल छत्र-द्वयं' छीना, बल्कि सरलता से गौड राज्य की अधीश्वरता भी छीनी। डा० आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि पृथ्वीराज विजय के श्लोक पर विश्वास न करना चाहिए क्योंकि इन घटनाओं के लगभग चार सौ वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना की गई। उन्होंने लिखा है कि वत्सराज ने कोई विस्तृत प्रादेशिक विजय नहीं की। अतः राधनपुर पट्टों में गौडदेश में वत्सराज की सफलता का जो उल्लेख है उसका साक्षिक मूल्य कम है। डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि चौहान इतिहास के एक स्रोत के रूप में पृथ्वीराजविजय का बहुत अधिक महत्व है। इसको तथा राधनपुर पट्टों को मिलाकर पढ़ने से यह स्पष्ट है कि वत्सराज गौड तक गया था। इसके अतिरिक्त इसको असत्य ठहराने का कोई साक्ष्य भी नहीं है। इसके अतिरिक्त उसकी प्रादेशिक विजएँ भी विस्तृत थीं जैसा कि सगरतल (ग्वालियर) उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि उसने बलपूर्वक साम्राज्य की स्थापना की। इसके अतिरिक्त मध्य देश को विजय करने के बाद कोई ऐसा भौतिक या राजनीतिक अवरोध नहीं था जो उसके बंगाल जाने में अड़चन डाले। वत्सराज के पास मालवा, राजस्थान, और संभवतः उत्तर प्रदेश के विशाल समृद्धशाली क्षेत्र थे। डॉ० पुरी ने लिखा है कि वत्सराज ने बंगाल में संभवतः दूर तक प्रवेश कर धर्मपाल को हराया

तथा अंग और मगध के राजाओं को स्वतंत्रता प्रदान की जो राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय के आक्रमण के पूर्व तक स्वतंत्र बने रहे। डॉ० सिन्हा के अनुसार यह युद्ध संभवत: ७८५-७८६ ई० में हुआ।

२. गूवक प्रथम—प्रतिहार सम्राट् नागावलोक या नागभट द्वितीय की राजसभा में गूवक प्रथम या गोविन्दराज का आदरणीय स्थान था। वह यशस्वी योद्धा था। उसके बाद चन्द्रराज द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसको उत्कीर्ण लेखों में कोई महत्वपूर्ण कार्य करने का श्रेय नहीं दिया गया है। हर्ष उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसका उत्तराधिकारी गूवक द्वितीय गूवक प्रथम के समान विख्यात योद्धा था। उसने अपनी बहन कलावती का विवाह कान्यकुब्ज के सार्वभौमिक सम्राट के साथ किया। संभवत: यह सम्राट प्रतिहार भोज प्रथम (ल० ८३६-८९३ ई०) था। इन्द्रराज के प्रतापगढ़ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि चाहमान वंश की सहायता से भोज प्रथम ने उच्चपद प्राप्त किया।

गूवक द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी चन्दनराज था जिसने रुद्र नामक एक शक्तिशाली तोमर राजा की हत्या की जो संभवत: तोमर शक्ति का केन्द्र दिल्ली क्षेत्र का राजा था।

३. वाक्पतिराज प्रथम—उसके समय में दक्खिन के राष्ट्रकूट प्रयाग तक या उसके आगे तक भी चढ़ आते थे। अत: प्रतिहारों की संपूर्ण शक्ति उनके विरुद्ध लगी हुई थी। वाक्पतिराज चौहान तथा हर्ष चंदेल (ल० ९१०-३० ई०) ने इस अवसर का लाभ उठाया और अपनी शक्ति बढ़ाई। राष्ट्रकूट संकट समाप्त होने पर प्रतिहारों ने संभवत: अपनी शक्ति के पुन:स्थापन का प्रयास किया। उन्होंने तंत्रपाल क्षमापाल को वाक्पतिराज को दबाने के लिए भेजा लेकिन वाक्पतिराज के द्रुत अश्वों के सामने क्षमापाल की गजसेना की एक न चली और उसको खिन्न होकर लौटना पड़ा। हर्ष उत्कीर्ण लेख ने वाक्पति को 'महाराज' कहा है। उसका उत्तराधिकारी विन्ध्यनृपति (विन्ध्यराज) था उसका भाई और उत्तराधिकारी सिंहराज था जिसने तोमर राजा सलवण का वध किया और उसके मित्र-राजाओं को परास्त किया। वह संभवत: प्रतिहार राजा विजयपाल देव का मण्डलिक था—इस प्रतिहार राजा के समय में कन्नौज वंश के कई सामन्त राज्य स्वतंत्र हो गए। चंदेल शासक धंग ने प्रतिहार वंश की निर्बलता का लाभ उठाया। कच्छपघात नरेश वज्रदमन ने ग्वालियर पर अधिकार किया और मदनवर्मन् ने कन्नौज के सम्राट् को पराजित कर 'उत्कृष्ट साम्राज्य' प्राप्त किया। इसी प्रकार शाकम्भरी के चाहमान तथा अन्य सामन्त गुर्जर-प्रतिहार से अलग हो गए।

प्रतीत होता है कि उसके अनेकानेक शत्रुओं ने मिलकर उसका दमन किया

और उसकी कुल-लक्ष्मी को अपहृत किया।

४. विग्रहराज द्वितीय—सिंहराज का पुत्र और उत्तराधिकारी विग्रहराज द्वितीय था। हर्ष उत्कीर्ण लेख (तिथ्यंकित ९७३ ई०) में लिखा है कि उसने कुल-लक्ष्मी तथा विजय-देवी को विपत्ति से उभारा। इससे प्रतीत होता है कि उसके समय में उसके वंश को विपत्ति से छुटकारा मिला तथा उसने कुछ नए प्रदेश विजित किए। उसने चालुक्य मूलराज को हराया, जो उसकी सबसे बड़ी विजित थी, और जिसकी प्रशंसा उनके लेखकों ने की है। यह विजय संभवतः ९७३ ई० के बाद हुई।

प्रतीत होता है कि विग्रहराज पहिले लाट की ओर गया और उसके शासक के साथ मैत्री की, और तब इस मित्र-सेना को लेकर उसने चालुक्य मूलराज पर आक्रमण किया जिससे विवश होकर मूलराज ने कन्था के किले में शरण ली। प्रतीत होता है कि मूलराज और विग्रहराज में सन्धि हुई। ऐसा अनुमान किया जाय कि विग्रहराज द्वितीय ने गोग्गिराज को सहायता दी जिसने विष्णु की तरह राक्षस रूपी बलवान् शत्रुओं के हाथ से राज्य को उबारा।

विग्रहराज द्वितीय की उपाधि 'खुररजोन्धकार' थी। अर्थात् वह अश्वारोही दल का महान् नेता और कुशल सेनापति था। उसने मूलराज के दर्प को भंग किया और अनेक राजाओं से कर उगाहा। वह सपादलक्ष का एक महान् चौहान शासक था। उसने अपने वंश के गत वैभव को पुनः प्राप्त किया और उसकी श्रीवृद्धि की।

५. दुर्लभराज द्वितीय—एक उत्कीर्ण लेख में दुर्लभराज द्वितीय 'महाराजाधिराज' और दूसरे लेख में 'दुर्लध्यमेरु' कहा गया है, क्योंकि उसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता था। प्रतीत होता है कि ९७३ ई० में वह युवराज स्वीकार किया गया। राष्ट्रकूट धवल के उत्कीर्ण लेख में उसकी प्रशंसा में कहा गया है कि उसने नाडोल के चौहान महेन्द्र को वंश में किया और पृथ्वी पर उसका अखण्ड राज्य था। प्रतीत होता है कि महेन्द्र ने दुर्लभराज द्वितीय के प्रतिद्वंद्वी अणहिल्लपट्टन के चालुक्यों से मैत्री की। अतः दुर्लभराज ने उस पर आक्रमण किया।

दुर्लभराज द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी 'वैरिघरट्ट' (शत्रुओं को दलने वाला) गोविन्दराज तृतीय था। प्रतीत होता है कि उसने महमूद ग़ज़ना के पथ का एक बड़ी सेना द्वारा अवरोध किया जिससे उसको सिन्ध के रास्ते से ग़ज़ना जाना पड़ा। उसके पुत्र वाक्पतिराज द्वितीय ने आघाट (मेवाड़ की राजधानी) के शासक अम्बाप्रसाद को युद्ध में मार डाला। वाक्पतिराज द्वितीय के पुत्र वीरराम के शासन-काल में परमार सेनाओं ने शाकम्भरी पर अधिकार किया बाद को वीरराम के उत्तराधिकारी और भाई चामुण्डराज ने नाडोल के चौहान अणहिल्ल की सहायता से शाकम्भरी को परमारों के हाथ से पुनः मुक्त किया।

६. दुर्लभराज तृतीय—फिरिश्ता ने लिखा है कि १०७९ ई० में ग़ज़ना के इब्राहीम ने भारत पर आक्रमण किया और उसके पश्चिमी तट तक वह घुसता चला गया। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि मातङ्गों (तुरुष्कों) से युद्ध करते हुए दुर्लभ-राज ने प्राणोत्सर्ग किया। दान पत्रों में लिखा है कि नाडोल के पृथ्वीपाल और पृथ्वीपाल के भाई आशाराज के साले हरिपाल ने तुरुष्कों से युद्ध किया।

७. विग्रहराज तृतीय—दुर्लभराज तृतीय का उत्तराधिकारी उसका भाई विग्रहराज तृतीय था जो बीसल या वीसल नाम से विख्यात है। इसने गुजरात के चालुक्य कर्ण को पराजित करने में मालवपति उदयादित्य की सहायता की।

८. पृथ्वीराज प्रथम—पृथ्वीराज प्रथम विग्रहराज तृतीय का पुत्र था। शेखा-वाटी के जीर्णमाता के सभामण्डप के स्तम्भ पर एक लेख उत्कीर्ण है जिसमें उसको 'परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर' कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि वह एक शक्तिशाली स्वतंत्र राजा था। विजयसिंह सूरि के उपदेशामलावृत्ति और चन्द्रसूरि के मुनि-सुव्रत-चरित में लिखा है कि उसने रणथम्भोर के जैन मन्दिर में कनक-कलश चढ़ाए। इससे प्रतीत होता है कि रणथम्भोर पर उसका अधिकार था। वह जयसिंह सिद्धराज का समकालीन था। प्रबंधकोष वंशावली में लिखा है कि उसने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध किया। सोमनाथ को जाने वाले रास्ते पर उसने नि:शुल्क भोजन बटवाया। स्पष्ट है कि वह जैन तथा शैव दोनों धर्मों के प्रति उदार था।

९. अजयराज—पृथ्वीराज प्रथम का पुत्र अजयराज था। उसने अवन्ति की सीमा पर मालवा के परमार राजा नरवर्मन् को हराया और उसके दण्डनायक सोल्लण को जीवित पकड़ा। उसने 'गर्जन मतङ्गों' (ग़ज़ना के मुसलमानों) को हराया। प्रतीत होता है कि अजयराज ने मुसलमानों के एक प्रबल आक्रमण को पीछे हटाया। उसने अजयमेरु (अजमेर) नामक एक भव्य नगर की स्थापना की। वह वैष्णव और जैन सम्प्रदायों के अनुयायियों के प्रति उतनी ही श्रद्धा रखता था जितनी कि शैव धर्मानु-यायियों के प्रति। उसने जैनों को अजयमेरु में जैन मंदिरों को बनाने की अनुज्ञा दी। उसने पार्श्वनाथ के मन्दिर में एक स्वर्णकलश अर्पण किया। श्वेताम्बर गुरु धर्मघोष सूरि और उसके दिगम्बर विपक्षी गुणचन्द्र के धार्मिक वादाविवाद में वह निर्णायक था। एक चौहान प्रशस्ति के अनुसार राजसिंहासन पर अपने पुत्र अर्णोराज को बैठा कर वह पवित्र पुष्कर सरोवर के समीप के जंगल में चला गया।

१०. अर्णोराज—अर्णोराज ने ११३३ से ११५१ ई० तक राज्य किया। अर्णोराज के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद लाहौर और ग़ज़ना के यामीनियों (तुरुष्कों) ने अजमेर पर आक्रमण किया। नगर के बाहर मैदान में युद्ध हुआ जिसमें तुरुष्क पूर्णतया पराजित किए गये और चौहानों ने उनका पीछा किया। बहुत से

मुसलमान सैनिक अपने भारी कवच के बोझ से थक कर और कुछ जलरहित मरुस्थल में प्यास के मारे मरे। कितने राजस्थान के उड़ते हुए बालुकाकरण में दब गए और शेष सड़ती हुई शवों को ग्रामीणों ने जला दिया। बहुत से घोड़े और अन्य सामान अर्णोराज के सैनिकों के हाथ लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो अजमेर की भूमि ने अपने स्वामी के विजय-उत्सव को मनाने के लिए तुरुष्कों के खून में डूबा हुआ गहरे लाल रंग का वस्त्र धारण कर लिया है। जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ था उस स्थान पर आना सागर सरोवर बनाया गया और उसमें चन्द्रा नदी का जल प्रवाहित किया गया जिससे कि मुसलमान रक्त के धब्बे धुल जाँय।

अर्णोराज ने मालवा के शासक नरवर्मन् को हराकर नीचा दिखाया और मालवेश के हाथियों को बलपूर्वक छीना।

अर्णोराज ने पूर्वी पंजाब की ओर विजय-यात्रा की और सिन्धु और सरस्वती नदियों के तट पर अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी की। इस अभियान में पूर्वी मद्र के शासक तथा वाहिक देश के नगरों ने उसकी सहायता की। हेमचन्द्र के द्वयाश्रयमहाकाव्य ने लिखा है कि अर्णोराज की उपाधि उदीच्यराट् थी। इससे प्रतीत होता है कि उसने पूर्वी पंजाब का कुछ भाग अपने राज्य में सम्मिलित किया।

अर्णोराज और ढिल्लिका (दिल्ली) के तोमरों से युद्ध हुआ जिसमें तोमर परास्त हुए किन्तु उनके राज्य का अर्णोराज ने अपने राज्य में नहीं मिलाया। इसके बाद अर्णोराज ने वारण (बुलन्दशहर) को अपने अधीन किया।

द्वयाश्रय महाकाव्य और सोमेश्वरकृत सुरथोत्सव में लिखा है कि शाकम्भरी के चौहानों के बीच में घमासान युद्ध हुआ और अर्णोराज ने जयसिंह सिद्धराज की अधीश्वरता स्वीकार की। संभवतः इस युद्ध का कारण मालवा था जिस पर दोनों की आँखें लगी थीं। अन्ततः जयसिह ने अर्णोराज के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके अर्णोराज को अपनी ओर मिला लिया और इस तरह मालवा पर आक्रमण करने का जयसिंह का मार्ग निष्कंटक हुआ। किन्तु जयसिंह सिद्धराज की मृत्यु के बाद कुमारपाल के सिंहासनारूढ़ होने पर, अर्णोराज ने कुछ उत्तरी राजाओं तथा कुमारपाल के एक असंतुष्ट संबंधी चाहड से मिलकर गुजरात पर आक्रमण किया। अर्णोराज के मित्र बल्लाल ने अर्णोराज द्वारा कुमारपाल पर आक्रमण किए जाने पर पृष्ठ भाग से गुजरातियों पर आक्रमण करने का वचन दिया। अर्णोराज ने गुजरात पर इसलिए आक्रमण किया कि वह समझता था कि कुमारपाल जयसिंह सिद्धराज की अपेक्षा निर्बल शासक है और सरलतापूर्वक हराया जा सकता है। दूसरा कारण यह था कि चाहड नामक एक राजकुमार जिसको सिद्धराज अपना पुत्र मानते थे अधिकांश कुलीनों के साथ अर्णोराज से मिल गया था। चाहड शिविरूप प्रदेश के कन्था नामक

स्थान का शासक था। स्पष्ट है कि अर्णोराज की महत्त्वाकांक्षा तथा चालुक्य सिंहासन के लिए उत्तराधिकार का झगड़ा इस युद्ध के कारण थे। आबू पर्वत के समीप किसी स्थान पर चौहानों और चालुक्यों में युद्ध हुआ जिसमें अर्णोराज की हार हुई। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि आबू पर्वत के परमार शासक विक्रमसिंह से उसका राज्य छीन लिया गया और यशोधवल को दिया तथा नाडोल में चौहान आल्हण नियुक्त किया, क्योंकि वह चालुक्यों के पक्ष में था। चालुक्यों की सेनाएँ अजमेर तक गई किन्तु बिना युद्ध के लौट आईं।

इस पराजय के बाद अर्णोराज तीन या चार वर्ष तक चुप रहा और अपनी स्थिति को दृढ़ करता रहा। इसके बाद सर्वप्रथम उसने नाडोल के राजा आल्हण पर आक्रमण किया और उसको भगा दिया, और साथ ही उसने मालवा के राजा बल्लाल को चालुक्यों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उत्तेजित किया। कुमारपाल ने भी युद्ध के लिए अच्छी तैयारियाँ की थीं। उसने नाडोल पर अधिकार किया और अजमेर की ओर प्रयाण किया। चाहड के गुप्त अभिकर्त्ताओं ने चालुक्य सम्राट् के महावत चौलिग को और केल्हण आदि कुछ सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया। कुमारपाल को अपने महावत पर संदेह हुआ अतः महावत ने नौकरी छोड़ दी। इसके बाद युद्ध हुआ जिसमें चाहड पकड़ा गया और अर्णोराज आहत और अचेत होकर गिर पड़ा। उसकी सेना उसको लेकर मैदान से भाग गई। उसकी सेना की गहरी हार हुई जिसके फल-स्वरूप उसको अपनी पुत्री जल्हणा का विवाह चालुक्य सम्राट् कुमारपाल के साथ करना पड़ा और दहेज में बहुसंख्यक घोड़े और हाथियाँ देना पड़ा। उसको एक अप-मान यह भी सहना पड़ा कि अपनी कन्या को विवाह के लिए अणहिल्ल पट्टन भेजना पड़ा। अर्णोराज की पराजय के आसपास किसी समय अर्णोराज के मित्र 'मालवेश' बल्लाल की हत्या की गई।

इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि अर्णोराज की प्रतिष्ठा भंग हुई और उसको आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी। चौहानों की पराजय हुई किन्तु वे पददलित नहीं किए गए और संभवतः उनके राज्य के प्रदेश में कमी नहीं नहीं हुई। चालुक्यों की अधीश्वरता मालवा में और दक्षिण-पश्चिमी राजपूताना में दृढ़ता से स्थापित हुई और कुमारपाल की कीर्ति फैली। अर्णोराज के मित्र बल्लाल को न केवल मालवा के सिंहासन से बल्कि अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा।

मूल्यांकन—अर्णोराज चौहान वंश का एक महान् शासक था। वह शैव था किन्तु सनातन धर्म के सभी देवताओं को मानता था। उसने पुष्कर में वराह का मन्दिर बनवाया और अजमेर में एक मन्दिर बनवाने के लिए खरतर-गच्छ के अनु-यायियों को विस्तृत भूमि-क्षेत्र दिया। उसने अपनी राजसभा में भागवत धर्म के

उपदेशक देवबोध का आदर किया। उसने श्वेताम्बर गुरु धर्मघोष सूरि को एक जय-पत्र प्रदान किया, जब उसने दिगम्बर प्रतिद्वंद्वी गुणचन्द्र को एक धार्मिक वाद-विवाद में हराया। वह एक वीर योद्धा था। उसने मालवा, हरियाणा तथा अपने राज्य की सीमा से सटे हुए प्रदेशों को जीता। उसने तुरुष्कों को ऐसा परास्त किया कि बीस वर्ष तक उन्होंने सपादलक्ष पर दृष्टि डालने का साहस न किया। मुसलमानों ने गुजरात तथा अन्य राज्यों पर आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वहाँ जाने का रास्ता सपादलक्ष से होकर पड़ता था। पृथ्वीराज विजय के लेखक जयनाग ने लिखा है कि यदि वह मुसलमानों को हराये न होता तो मन्दिरों का अस्तित्व ही मिट जाता।

११. विग्रहराज चतुर्थ—जगद्देव ने अपने पिता अर्णोराज की हत्या की किन्तु वह बहुत दिनों तक राज्य न कर सका क्योंकि उसके छोटे भाई विग्रहराज चतुर्थ के नेतृत्व में विद्रोह हुआ और वह युद्ध में मार डाला गया। विग्रहराज चतुर्थ बीसलदेव के नाम से भी विख्यात है। संभवतः वह ११५१ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसने चित्तौर पर चढ़ाई की, सज्जन नामक उसके दण्डाधीश का वध किया और उसकी गज-सेना पर अधिकार किया। उसने नाडोल के चाहमान कुन्तपाल (राज्यपाल) को हराया; नाडोल को सरकंडे के खेत में परिवर्तित किया, जालोर को ज्वालाओं का नगर बनाया और पल्लिका या पाली को एक छोटे गाँव में परिणत किया, क्योंकि ये सब चालुक्य मण्डलिक थे, और वे विग्रहराज के पिता अर्णोराज के विरुद्ध चालुक्य कुमारपाल के साथ लड़े थे। इसके बदले में कुमारपाल ने नागोर को घेरा किन्तु बाद को घेरा उठा लिया; अन्ततः जीत विग्रहराज की ही रही। चौहान प्रशस्ति में लिखा है कि विग्रह-राज ने कुमारपाल को 'करवालपाल' बना दिया। प्रतीत होता है कि करवालपाल पद खड्गपाल, खड्गग्राह, और कुन्तपाल के बराबर का पद था। प्रतीत होता है कि इन प्रतिशोधात्मक अभियानों में विग्रहराज को लूट का बहुत-सा सामान मिला और उसने मेवाड़ के अधिकांश भाग को भी अपने राज्य में मिलाया, विग्रहराज ने भादानकों को भी हराया जो संभाव्यतः उत्तरी शेखावाटी (वर्तमान अहीरवाटी) से मिले हुए प्रदेश में रहते थे। संभाव्यतः इसका शासक अहीर था।

विग्रहराज ने दिल्ली और हाँसी पर अधिकार किया जो तोमरों के हाथ में था। संभवतः यह घटना ११५२ ई० में हुई। मुसलमानों, गाहडवालों, और चौहानों के निरंतर आक्रमण से तोमर राज्य निर्बल हो गया। अतः उसने शाकम्भरी चौहानों का आधिपत्य स्वीकार करना श्रेयस्कर समझा। चौहानों के लिए दिल्ली की विजय बहुत महत्त्वपूर्ण थी। अब उनकी अखिल भारतीय शक्तियों में गिनती होने लगी साथ ही उनके कन्धे पर भारत की रक्षा का भार भी आ पड़ा, क्योंकि वे मध्यदेश के द्वार पर थे। विग्रहराज ने यह कार्य सफलतापूर्वक किया। उसने सगर्व कहा कि म्लेच्छों

का उच्छेदन कर उसने आर्यावर्त को आर्यावर्त बना दिया है। हम्मीर जयपुर के अन्तर्गत वव्वेरा नामक स्थान तक चढ़ आया और विग्रहराज को लिखा कि वह उसकी अधीनता स्वीकार करे। किन्तु विग्रहराज ब्राह्मणों, तीर्थस्थानों, और मन्दिरों की रक्षा करने को कृतसंकल्प था। प्रतीत होता है कि इस संघर्ष में हम्मीर परास्त किया गया और वह पीछे हटने को विवश हुआ; और ११६३ ई० तक विग्रहराज चतुर्थ ने अधिकांश हिन्दू प्रदेशों को ग़ज़नवियों के हाथ से छुड़ा लिया। ११६३ ई० के बाद केवल पंजाब मुसलमानों के हाथ में बचा। उत्तर में उसका राज्य हिमालय की तलहटी तक था। दक्षिण में संभवतः मालवा पर उसका आधिपत्य था चाहे नाम मात्र के लिए ही रहा हो। वह मुसलमानों से निरंतर लड़ता रहा और उन पर विजय भी प्राप्त की। हो सकता है कि उत्तरी भारत के अन्य राज्यों ने साहाय्य भेजा हो जिससे कि वह मुसलमानों के विरुद्ध सफलतापूर्वक लड़ सके। गाहडवाल उत्कीर्ण लेखों में तुरुष्क दण्ड नामक आदाय या कर की चर्चा है। डॉ० रोमा नियोगी ने लिखा है कि सम्भवतः तुरुष्कों के आक्रमण के विरुद्ध एक स्थायी सेना खड़ी करने के लिए यह आदाय गाहडवाल साम्राज्य के समस्त भागों से एकत्र किया जाता था। यह आदाय चन्द्रदेव के समय से जयचन्द के शासन के आरंभ तक लिया जाता रहा है।

मूल्यांकन—विग्रहराज ने अजयमेरु में सरस्वती मन्दिर नामक एक विद्यालय का निर्माण किया। मुसलमानों ने इस विद्यालय को मस्जिद का रूप दे दिया है और यह अब अढ़ाई-दिन-का-झोंपड़ा के नाम से विख्यात है। हिन्दू निर्माण-कला के सभी चिह्न इसमें वर्तमान हैं और जैसा कि टॉड ने लिखा है यह हिन्दू वास्तुकला का एक पूर्णतम तथा प्राचीनतम स्मृति चिह्न है। कनिंघम ने लिखा है कि अलंकरण की चाकचिक्यपूर्ण वादान्यता में, नक्काशी की भव्य प्रचुरता में, कोमल सूक्ष्म सौष्ठव में, कारीगरी की परिश्रमपूर्ण यथार्थता में, अनन्त रूप के अलंकरण में....यह भवन संसार के उत्कृष्ट भवनों से जिनका अब तक संसार में निर्माण हुआ है यथार्थतः होड़ कर सकता है। विग्रहराज के निर्माणों में एक बीसल सर नामक सागर बचा है जिसका घेरा लगभग ढाई मील है। इसके बीच में दो द्वीप थे जिन पर विग्रहराज के भव्य प्रसाद बने हुए थे। इनके तटों पर प्रतिमाएँ बनी हुई थीं जिनमें से जलधाराएँ निकलती थीं जब जल उनके ओंठों तक पहुँचता था। डॉ० शर्मा ने लिखा है कि विग्रहराज ने बीसलपुर नामक कई नगरों की स्थापना की थी जिनमें से एक नगर गिरवर पर्वत की संकीर्ण गहरी घाटी के मुहाने पर है। यह संकीर्ण दर्रा आगे जाने पर चौड़ा हो जाता है जिसमें आना सागर नामक एक बड़ा सरोवर है जिसमें वर्षा ऋतु में बनास नदी का जल गिरता है। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि विग्रहराज चतुर्थ ने उतने ही भवनों का निर्माण किया जितने गढ़ों पर उसने अधिकार किया था। डॉ० शर्मा ने लिखा है कि

मुसलमानों ने विग्रहराज के सरस्वती मन्दिर और परमार राजा भोज के सरस्वती-कण्ठाभरणविद्यालय को मस्जिद में बदल दिया। इस तरह के अन्य अनेक और भवन भी मस्जिद के रूप में परिवर्तित किए गए होंगे। मुसलमान आक्रामकों ने अपने प्रतिमा-भंजक उत्साह के कारण बहुत से भवनों को नष्ट किया और कुछ को मस्जिद के रूप में परिवर्तित किया।

वह शिव का परम भक्त था किन्तु हिन्दू धर्म के अन्य देवी-देवताओं के प्रति वह कम श्रद्धावान् नहीं था। अपने पूर्वजों की तरह वह जैनियों के प्रति भी सहिष्णु था। उसने एकादशी के दिन पशु-वध की मनाही की। जैनियों के लिए विहारों का निर्माण किया, और उनके धार्मिक कृत्यों में भाग लिया।

विग्रहराज एक महान् विजेता तथा सेनापति था। उसने उन राजाओं से बदला लिया जिन्होंने उसके पिता के विरुद्ध युद्ध किया था। उसने चालुक्यों के हाथ से चित्तौर छीना। नाडोल, जालोर और पल्लिका को विजय किया और मालवा का अधिकांश भाग अपने राज्य में मिलाया। उसने भादानकों को पराजित किया, तोमरों से दिल्ली और उनके कुछ अधिकृत भाग को विजित किया। पृथ्वीराजविजय ने उसको 'कवि-बान्धव' कहा है। स्वयं वह कवि था। उसके शासन काल में साहित्य और कला की वृद्धि हुई। वह एक महान् भवन-निर्माणक भी था। उसकी राजसभा में अनेक कवि थे। उसकी राजसभा के कवि सोमदेव ने ललितविग्रहराज नामक एक उच्चकोटि का ऐतिहासिक नाटक लिखा है। चौहान प्रशस्ति की तथा अढ़ाई-दिन-का-झोंपड़ा मस्जिद के एक पत्थर पर उत्कीर्ण विभिन्न हिन्दू देवताओं की स्तुति की अच्छे काव्य में गिनती है। स्वयं विग्रहराज ने हरकेलि नामक एक नाटक की रचना की है जिसकी प्रशंसा में कीलहार्न ने लिखा है कि यह नाटक यथार्थतः और असंदिग्धरूप से प्रमाणित करता है कि अतीत के हिन्दू शासक काव्य-कीर्ति में भवभूति और कालिदास से होड़ करने को आतुर थे। वह प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति सहिष्णु था और उसके समय में प्रत्येक सम्प्रदाय फले फूले। सचमुच में उसका शासनकाल सपादलक्ष का स्वर्ण युग था।

१२. पृथ्वीभट या पृथ्वीराज द्वितीय—विग्रहराज चतुर्थ के बाद अपर-गांगेय या अमरगांगेय सिंहासन पर बैठा किन्तु उसके चचेरे भाई पृथ्वीराज ने उसकी हत्या कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया किन्तु दोहड उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसने अपर गांगेय को युद्ध में पराजित किया। उसने पंचपुर के राजा को हराया जिसने एक मूल्यवान् मुक्ताहार देकर और उसकी अधीश्वरता मान कर अपने राज्य को बचाया। मुसलमानों के आक्रमणों को रोकने के लिए उसने हाँसी किले को प्रति-

रक्षात्मक दृष्टि से दृढ़ किया। प्रतीत होता है कि मुसलमानों के आक्रमणों को रोकने के लिए सीमा पर उसके पास और भी किले थे।

अन्य शाकम्भरी राजाओं की तरह वह भी अन्य सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णु था। वह ब्राह्मण धर्म के प्रति श्रद्धालु था तथा विजोलिया के पार्श्वनाथ जैनमन्दिर को एक ग्राम प्रदान किया। उसके मरने पर मन्त्रियों ने उसके चाचा सोमेश्वर को सिंहासन अर्पण किया जो अर्णोराज का एक मात्र जीवित पुत्र था और उस समय गुजरात में रह रहा था।

अध्याय | ४

सोमेश्वर और पृथ्वीराज तृतीय और उसके उत्तराधिकारी

१. सोमेश्वर—सोमेश्वर का लालन-पालन चालुक्य सम्राट् जयसिंह सिद्धराज ने किया। जयसिंह का पुत्र कुमारपाल उससे स्नेह करता था। इसके बदले में सोमेश्वर ने चालुक्यराज की मूल्यवान् सेवायें कीं। पृथ्वीराजविजय में लिखा है कि कुमारपाल 'राजपितामह' (राजाओं का पितामह) को कोंकण नरेश मल्लिकार्जुन से युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में एक बलवान हाथी पर से दूसरे पर छलांग मारते हुए सोमेश्वर ने कोंकण नरेश से उसकी छोटी तलवार छीन ली और उससे उसको शिर विहीन किया। यह घटना अवश्य ही ११६० और ११६२ ई० के बीच किसी समय हुई होगी। आबू शाखा के परमार राजा यशोधवल ने भी इस युद्ध में भाग लिया। अबुर्दाचल के तेज:पाल प्रशस्ति में लिखा है कि 'जब क्रोधाक्रान्त होकर यशोधवल युद्ध-क्षेत्र में निश्चल हुआ तो कोंकणाधीश, की पत्नियों के नेत्रोत्पल से जलकण गिरे। प्रतीत होता है कि इस युद्ध का सेनापति अम्बड था जो कुमारपाल के मन्त्री वाग्भट का भाई था। भीमदेव द्वितीय का पाटन उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि चालुक्य सम्राट् अजयपाल ने सपादलक्ष के शासक (सोमेश्वर) से कर उगाहा। इसकी पुष्टि गुजराती कवि सोमेश्वर के कीर्तिकौमुदी से भी होती है जिसमें लिखा है कि अजयपाल ने जांगल प्रदेश (सपादलक्ष) के शासक (सोमेश्वर) से एक स्वर्ण मण्डपिका को तथा मत्त गजों को बलात् छीना।

सोमेश्वर ने प्रतापलंकेश्वर की उपाधि धारण की और अपने नाम की मुद्रायें चालू कीं। वह अपने पूर्वजों की तरह शैव था किन्तु दूसरे सम्प्रदायों के प्रति उन्हीं की तरह उदार तथा सहिष्णु था। उसने विन्ध्यवल्ली (विजोलिया) के पार्श्वनाथ मन्दिर को एक गाँव दान किया। उसने एक मन्दिर वैद्यनाथ का, एक मन्दिर त्रिपुरुष का तथा अन्य अनेक मन्दिरों का निर्माण किया। उसने अपने पिता की एक मूर्ति बनवाई जिसमें वह एक घोड़े पर बैठे हुए हैं और सोमेश्वर उनके सामने खड़ा है। अपने पिता के नाम पर उसने एक नगर भी बनवाया।

२. पृथ्वीराज तृतीय—जिस समय उसके पिता सोमेश्वर की ११७७ ई० में मृत्यु हुई, पृथ्वीराज ग्यारह वर्ष का था। उसकी कुमारावस्था में उसकी माता राज्ञी कर्पूरदेवी ने शासन कार्य चलाया। उस समय मुख्य मन्त्री मण्डलेश्वर कदम्बवास था जिसने दो जैन विद्वानों—पद्मप्रभ और जिनपति सूरि के धार्मिक वादाविवाद में सभापति का पद ग्रहण किया। पृथ्वीराजविजय के लेखक ने पृथ्वीराज की आरंभिक विजयों का पूर्ण श्रेय कदम्बवास को दिया है, और उसकी राजनिष्ठा की तथा प्रशासन की बहुत प्रशंसा की है। लगभग चौदह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने प्रशासन को सँभाला और शीघ्र ही उसको अनेक युद्ध करने पड़े।

उत्तराधिकार के लिए युद्ध—पहला युद्ध उत्तराधिकार के प्रश्न से संबंधित था और यह एक गंभीरतम युद्ध था। पृथ्वीराज की कुमारावस्था को देखकर विग्रहराज के पुत्र नागार्जुन ने उसके विरुद्ध विद्रोह करने और गुडपुर नामक नगर पर अधिकार करने की धृष्टता की। अश्वों, गजों, उष्ट्रों और पदातियों की एक बड़ी सेना लेकर पृथ्वीराज ने गुडपुर किले को घेरा। नागार्जुन किले से भागने में सफल हुआ किन्तु उसकी माता, पत्नी और अनुयायी जो किले में रह गए थे पकड़े गए। वहाँ बहुत-सा लूट का सामान भी मिला। जो सिपाही पृथ्वीराज के विरुद्ध युद्ध करते रहे वे सब मार डाले गए। उनमें से एक भी जीवित नहीं छोड़ा गया। उनके शिरों की एक माला पृथ्वीराज की राजधानी अजयमेरु के फाटक पर लटकाई गई।

विजयें—पृथ्वीराज ने भादानकों को हराया और पूर्णतया कुचला। भादानक प्रदेश में संभवतः वर्तमान गुरुगाँव जनपद, अलवर राज्य का कुछ भाग और पंजाब के हिसार जनपद की भिवानी तहसील सम्मिलित थी। इस पराजय के बाद भादानकों का नाम सुनने में नहीं आया। पृथ्वीराज ने ११८२ ई० में जेजाकभुक्ति को उजाड़ा। पृथ्वीराज ने चंदेल सम्राट् परमर्दिन को पूर्णतया हराया। किन्तु प्रतीत होता है कि उसने बुन्देलखण्ड को पूर्णरूप से विजय नहीं किया क्योंकि परमर्दिन के उत्कीर्ण लेख कालिंजर और महोबा में मिले हैं। जो इस आक्रमण के एक वर्ष बाद के हैं उसने जेजाकभुक्ति को केवल उजाड़ा था उसपर अधिकार नहीं किया। उसने ११८७ ई० के पूर्व गुजरात पर चढ़ाई की। और अर्बुदाचल के धारावर्ष परमार पर एक रात्रि आक्रमण किया। प्रतीत होता है कि यह आक्रमण असफल रहा।

प्रतीत होता है कि जगद्देव प्रतिहार और चौहानों में ११८७ ई० के लगभग एक युद्ध हुआ। प्रत्यक्षतः इस युद्ध का अन्त पृथ्वीराज के पक्ष में रहा और जगद्देव प्रतिहार और पृथ्वीराज में एक सन्धि हुई।

कन्नौज के जयचन्द्र और पृथ्वीराज में प्रतिद्वंद्विता चल रही थी। दोनों ही अन्तर्वेदि में अपनी प्रमुखता चाहते थे, और दोनों ही महत्वाकांक्षी और प्रबल थे।

पृथ्वीराज ने अहीरवाटी के भादानकों पर और जेजाकभुक्ति के चंदेलों पर विजय प्राप्त की। अत: जयचन्द्र के मन में पृथ्वीराज के प्रति ईर्ष्या होना स्वाभाविक था, और वह नहीं चाहता था कि उसके प्रतिद्वंद्वी की शक्ति बढ़े। दोनों प्रबल राजाओं में मनमुटाव था ही। पृथ्वीराज द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का साहसपूर्ण हरण ने अग्नि में घी की आहुति का काम दिया। प्रतीत होता है कि जयचन्द्र और पृथ्वीराज के संघर्षों का यह तात्कालिक कारण था।

संयोगिता-हरण—कुछ विद्वानों ने संयोगिता-हरण की कथा को मात्र कवि-कल्पना माना है। उनका तर्क है कि :—

पृथ्वीराजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोश, और हम्मीरमहाकाव्य में इस हरण-कथा का वर्णन नहीं है, यद्यपि वीर पृथ्वीराज की उन्होंने अपने ग्रन्थों में चर्चा की है। इसके अतिरिक्त नयचन्द्र सूरि (लगभग १४०३ ई०) कृत रम्भामंजरी नाटक में संयोगिता के नाम का उल्लेख नहीं है, यद्यपि इस नाटक का नायक कन्नौज का गाहडवाल राजा जयचन्द्र है। नयचन्द्र सूरि के हम्मीर महाकाव्य में भी संयोगिता का नाम नहीं है। इसमें रणथम्भोर के वीर चौहान हम्मीर और उसके पूर्वजों का वर्णन है।

उपर्युक्त पुस्तकें पृथ्वीराज के चार मुख्य पराक्रमों के संबंध में भी मौन हैं : गुडपुर पर अधिकार, भादानकों के विरुद्ध युद्ध, चन्द्रावती के धारावर्ष परमार के राज्य पर रात्रि-आक्रमण और चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध। इन पुस्तकों के मौन के आधार पर पृथ्वीराज के युद्ध और विजयें अनैतिहासिक नहीं मानी जा सकतीं। तब कौन-सा ऐसा पुष्ट कारण है कि प्राचीन परम्परा को अमान्य ठहराने के लिए इस मौन के कारण माना जाता है। इस कथा का बीज समकालीन काव्य पृथ्वीराज विजय में है। इसके अतिरिक्त यह कथा कम से कम तीन भाषाओं में है—संस्कृत, फारसी और पुरानी राजस्थानी। बंगाली कवि चन्द्रशेखर ने सुर्जनहाडा की सफलताओं और विजयों की स्मृति में सुर्जनचरित नामक एक ग्रन्थ की रचना की। इसमें भी स्वयंवर की कथा दी हुई है जो पृथ्वीराज रासो से मिलती-जुलती है। जयचन्द्र के राजसूय यज्ञ, संयोगिता का स्वयंवर, पृथ्वीराज की प्रतिमा को द्वारपाल के स्थान पर रखना, पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता का हरण, पृथ्वीराज के पलायन के सहायतार्थ उसके सामन्तों का जयचन्द्र के सिपाहियों से लड़ना कि वे पृथ्वीराज का पीछा न कर सकें आदि पूरी कथा अबुल फ़ज़्ल ने वर्णन की है। अबुल फ़ज़्ल के ऊपर यह लाँछना नहीं लगाई जा सकती कि वह कहानियाँ गढ़ता है, और न यह अभियोग बंगाली कवि चन्द्रशेखर पर लगाया जा सकता है। पृथ्वीराजविजय और पृथ्वीराज रासो में भी संयोगिता का तिलोत्तमा और अप्सरा के रूप में संकेत है। संयोगिता-हरण की कथा पृथ्वीराजरासो में है जो

संभवत: मूल रूप से बारहवीं शती ई० के मध्य में अपभ्रंश में लिखा गया था। रम्भामन्जरी नाटक सचमुच में विश्वसनीय नहीं है—इसमें लिखा है कि चौहान वंश इक्ष्वाकु वंश का वंशज है, जबकि तथ्य यह है कि इसके पूर्वज वत्सगोत्र के विप्र थे, और इसके वंशज अपने को चंद्रवंशी राजपूत कहते हैं। इसमें लिखा है कि कन्नौज के जयचंद्र की भुजाबाहुओं ने मदनवर्मन् की भाग्य-देवी के लिए हाथी के स्तम्भ का काम दिया। किन्तु तथ्य यह है कि जयचन्द्र ११७० ई० में सिंहासन पर बैठा। और इस तिथि के पाँच वर्ष पूर्व ११६५ ई० में चंदेल मदनवर्मन् की मृत्यु हो चुकी थी। गाहडवाल अभिलेखों में लिखा है कि जयचन्द्र विजयचन्द्र का पुत्र था किन्तु रम्भामंजरी के लेखक ने लिखा है कि जयचन्द्र के पिता का नाम मल्लदेव था जो गलत है। यदि यह माना जाय कि यह विजयचन्द्र की उपाधि है तो प्रश्न उठता है कि विजयचन्द्र की यह उपाधि किसी गाहडवाल उत्कीर्ण लेख में नहीं है, यह उपाधि रम्भामंजरी के लेखक को किस प्रकार मालूम हुई जिसने जयचन्द्र की मृत्यु के लगभग २०० वर्ष बाद रम्भामन्जरी की रचना की थी।

डॉ० शर्मा ने लिखा है कि इसमें संदेह नहीं है कि प्रणय-कथा स्वच्छन्द और भावुक है किन्तु स्वच्छन्दता और भावुकता जीवन का अंग है तथा ऐसी घटनाएँ सत्य और वास्तविक भी हो सकती हैं। ऐसी घटनाएँ इतिहास में पहले भी हुई हैं। पुराणों में भी ऐसी अनेक घटनाएँ दी हुई हैं। राष्ट्रकूट इन्द्र ने राजकुमारी भवनागा को बलपूर्वक विवाह पण्डाल से अपहृत किया था। डॉ० शर्मा के अनुसार पृथ्वीराज के मण्डलिक योद्धा नहीं थे बल्कि पृथ्वीराज के अश्वारोही दलों के नेता थे। जिन्होंने जयचन्द की राजधानी पर अकस्मात् आक्रमण किया जिस समय वह किसी धार्मिक कृत्य में लगा हुआ था। दूसरे उद्देश्य से इस प्रकार के हमले पृथ्वीराज ने चन्द्रावती पर तथा जेजाकभुक्ति पर किए थे। उसके लिए ऐसा करना असम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त जयचन्द्र और पृथ्वीराज में घोर शत्रुता थी।

यह अपहरण नीति-विरुद्ध था। इसके अतिरिक्त इस कृत्य से उसको पर्याप्त सैनिक क्षति उठानी पड़ी। उसके बहुत से मण्डलिक इस युद्ध में काम आए जिससे उसकी सैनिक शक्ति निर्बल हुई। उसने अपने पड़ोसी से सदैव के लिए शत्रुता ठान ली जो अति शक्तिशाली और प्रतिशोधात्मक प्रकृति का था।

मुहम्मद घोरी का आक्रमण—भारतवर्ष पर मुहम्मद घोरी का पहला आक्रमण ११७३ ई० में हुआ। उसने करमिटह से मुलतान छीना और उच्छा के राजा को उसकी राज्ञी से विष दिलाकर उच्छा पर अधिकार किया। उसने गुजरात के विरुद्ध ११७८ ई० में प्रयाण किया और किराडु और नाडोल पर अधिकार किया। इसी समय मुहम्मद घोरी ने पृथ्वीराज के पास सन्देशा भेजा कि वह उसकी अधीश्व-

रता स्वीकार कर ले या कुछ सम्पत्ति अर्पण करे। इस समय पृथ्वीराज के लिए यह उचित था कि वह भारत के राजाओं के समान शत्रु का सामना करता तथा गुजरातियों की सहायता करता, क्योंकि उनको सहायता की आवश्यकता थी। किन्तु अपने मुख्य मंत्री कदम्बवास की सलाह पर कि गुजराती और मुसलमान दोनों ही उसके शत्रु हैं और उन्हें आपस में लड़ने और एक दूसरे को नष्ट करने दिया जाय, उसने गुजरातियों की सहायता नहीं की। भाग्यवश कासह्रद के युद्ध में गुजरातियों ने मुहम्मद घोरी को गम्भीर रूप से परास्त किया। चौहानों का यह दृष्किोण खेदनीय है क्योंकि कुछ ही वर्ष बाद गुजरातियों को सहायता न देने की पृथ्वीराज की नीति का फल न केवल चौहानों को बल्कि संपूर्ण हिन्दू राज्य को भोगना पड़ा। पृथ्वीराज के उदाहरणों का और लोगों ने भी अनुकरण किया, और जब मुसलमान सेनाओं ने ११९१ और ११९५ ई० के बीच पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तो भारत के अन्य राजाओं ने उसकी सहायता न की। पृथ्वीराज समझता था कि मुसलमानों का विनाश करने के लिए वह संसार में पैदा हुआ है। इस दावे के प्रति भी हिन्दू राजाओं ने सहानुभूति नहीं दिखाई।

प्रतीत होता है कि घोरी ने अपने पंजाब केन्द्र से पृथ्वीराज के राज्य पर सात बार क्षिप्राक्रमण किए। किन्तु आँचलिक गढ़ों में स्थित चौहान सैनिकों ने मुसलमान आक्रामकों को पीछे खदेड़ा। मुहम्मद घोरी ११९०-९१ ई० में पृथ्वीराज की ओर बढ़ा और तबरहिन्दह किले पर अधिकार किया। अतः पृथ्वीराज अश्वारोहियों और गजारोहियों की एक बड़ी सेना तथा दिल्ली के मण्डलिक शासक गोविन्दराज को साथ लेकर आगे बढ़ा। पृथ्वीराज और घोरी की मुठभेड़ तराइन स्थान पर हुई जो कर्नाल जनपद में है।

चौहान सेना ने मुसलमान सेना के दाहिने और बाएँ पार्श्वों पर आक्रमण किए जिससे घबरा कर मुसलमान सैनिक भागे। अग्रिम भाग की सेना ने भी उनका अनुकरण किया किन्तु शेष सैनिकों को एकत्र कर सुलतान साहसपूर्वक चौहान सेना पर टूटा। लेकिन पृथ्वीराज के सैनिकों के सामने मुसलमान सेना ठहर न सकी। मुसलमान अश्वारोही शिर पर पैर रखकर भागे और तब तक उन्होंने घोड़े की लगाम नहीं खींची जब तक कि वे सुरक्षित स्थान पर न पहुँच गए। बाद को सब छितरे-बितरे सैनिक पुनः एकत्र हुए और वे सुव्यवस्थित रूप में अपने राज्य को लौट गए।

पृथ्वीराज ने भागते हुए शत्रुओं का पीछा नहीं किया। शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप यह भले ही हो किन्तु यह विवेकता और आधुनिक रणकौशल के सिद्धान्तों के पूर्णतया विपरीत है। यदि पृथ्वीराज उनका पीछा करता तो वह पराजित शत्रु को पूर्णतया विनष्ट कर सकता था। शत्रु-सेना के छितरे हुए सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र से थोड़े

ही दूर पर व्यूह रचना करने और उनको बिना कष्ट जाने दिया गया। डॉ० शर्मा ने लिखा है कि हिन्दू स्वतंत्रता की अर्थी में यह वास्तव में द्वितीय कील थी और इसका उत्तरदायित्व पृथ्वीराज पर है।

कहा जाता है कि पृथ्वीराज ने इस विजय और अपनी अन्तिम पराजय के अन्तराल में गाहडवालों से युद्ध करने, और अपनी नवविवाहिता पत्नी संयोगिता के साथ रहने में अपना समय नष्ट किया। किन्तु मुहम्मद घोरी ने इसके विपरीत अपनी पराजय का बदला लेने के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति लगा दी। निद्रा और विश्राम को उसने अपने लिए पाप समझा। उसने चुने हुए तुर्क, ताजिक और अफ़गान अश्वारोहियों की एक बड़ी सेना खड़ी की। जिसमें एक लाख बीस हजार सैनिक थे जो अस्त्र-शस्त्रों से और कवच से सुसज्जित थे। कहा जाता है कि जम्मू के विजयराज ने तथा पृथ्वीराज के अन्य शत्रुओं ने चौहानों के विरुद्ध मुहम्मद घोरी की सहायता की जब उसने भारत में प्रवेश किया। मुहम्मद घोरी तराईन के मैदान में पहुँचा जहाँ पृथ्वीराज तीन लाख अश्वारोहियों, तीन हजार गजारोहियों और प्रचुर पदातियों की सेना के साथ उपस्थित था। उसके झण्डे के नीचे डेढ़ सौ मण्डलिक राजे थे। उन्होंने गंगाजल लेकर शपथ ली कि वे या तो विजयी होंगे या मरेंगे। उन्होंने सुलतान के पास यह लिखकर भेजा कि वह अपने देश को लौटने की बुद्धिमानी करे, नहीं तो युद्ध करने पर उसका पूर्ण विनाश होगा। मुहम्मद घोरी राजपूतों के शौर्य से परिचित था। अतः स्वभाववश उसने छल-बल का आश्रय लेने का निश्चय किया और यह लिख कर भेजा कि अपने भाई की आज्ञा से मैंने भारत पर चढ़ाई की है। मैं उसका सेनानायक हूँ। प्रतिष्ठा और कर्त्तव्यवश मुझे अधिकतम प्रयास करना है जब तक कि उसको स्थिति की सूचना न मिल जाय और उसका उत्तर मेरे पास न आ जाय, तब तक के लिए मैं युद्ध-विराम चाहता हूँ। हिन्दुओं ने सुलतान की पिछली चालाकियों की उपेक्षा की। उन्होंने सहज में उसका विश्वास किया। उनको अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक विश्वास था अतः उन्होंने इस युद्ध-विराम को सुलतान की निर्बलता समझा और विजयोल्लास में रात भर आनंदोत्सव मनाया और प्रतिरक्षा की ओर उन्होंने ढील दे दी। इस अविवेकपूर्ण ढिलाई का दुःखद परिणाम उन्हें उषाकाल में ही भोगना पड़ा।

मुहम्मद ऊफी ने लिखा है कि घोरी ने उस जगह जहाँ दिन में उसकी सेना ठहरी थी रात भर जगह-जगह आग जलाये रखा और अपनी शेष समस्त सेना को लेकर दूसरी दिशा में प्रयाण किया। उसने अपनी मध्य सेना। यात्रा-सामग्री, निजी साज-सामान, और हाथियों को कई मील आगे छोड़ा और शेष सेना को उसने चार भागों में बाँटा और हर एक भाग में उसने दस हजार बाण चलाने वाले रखे। उसने यह योजना बनाई कि हिन्दुओं की सेना के दाहिने और बाँए, अग्रिम और पृष्ठ भागों

पर उसकी सेना आक्रमण करे, और भागने का बहाना कर पीछे हटा जाय।

पौ फटने भी न पाई थी कि सुलतान के सैनिक दलों ने चौहान शिविर पर आक्रमण किया। एकादशी व्रत का पारायण करने के बाद पृथ्वीराज निद्रा ले रहे थे, राजपूत सैनिक प्रातः कृत्य तथा स्नानादि के लिए निकले ही थे, तभी अकस्मात् उनके ऊपर आक्रमण हुआ जिससे उन्हें अवश्य ही बड़ी क्षति उठानी पड़ी। इसके अतिरिक्त वे अव्यवस्थित रूप में उनका पीछा करने को दौड़े जिससे उनकी सेना अस्त-व्यस्त हो गई। व्यूह-रचना न करने का फल उनको भोगना पड़ा। जब अपराह्न में तीन बजे के लगभग घोरी की आरक्षित सेना दल ने पूर्णतया थके हुए हिन्दुओं पर अन्तिम चोट की। हसन निजामी ने लिखा है कि लगभग एक लाख हिन्दू सैनिक मारे गए। हिन्दुओं की असाधारण हार हुई। प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज बहुत बाद को युद्ध करने आए और अपनी सेना की पराजय देखकर एक घोड़े पर चढ़ कर भागे। उनका पीछा किया गया और वे सरस्वती (पंजाब के हिसार जनपद के अन्तर्गत सिरसा नामक स्थान) के समीप पकड़े गए। सुलतान उनको लेकर अजमेर गया वहाँ के हजारों वीर प्रतिरक्षकों का वध किया, और शेष को दास बनाने के लिए रोका। विरुद्ध-विधि-विध्वंस के लेखक लक्ष्मीधर ने लिखा है कि इस युद्ध में पृथ्वीराज तुरुष्कों द्वारा मारा गया, क्योंकि निद्रा-व्यसन से उसकी बुद्धि धूमिल हो गई थी और वह जीवित होने पर भी मृत के समान था। फिरिश्ता ने लिखा है कि राजपूतों ने आनन्द मनाने में रात व्यतीत की, अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस समय आक्रमण हुआ पृथ्वीराज सो रहा था। अजमेर के मन्दिरों के खम्भे और नींव नष्ट की गईं और अजमेर के वैभवकाल में जो धन वहाँ एकत्र था उसका अधिकांश भाग लूटा गया। इसके बाद घोरी ने सपादलक्ष का अधिकांश भाग जीता जिसमें हाँसी, सरस्वती, समाना और कोहराम किले सम्मिलित थे।

टॉमस ने अपनी पुस्तक 'क्रॉनिकिल्स आव-द-पठान किंग्स आव देल्ही' में एक मुद्रा का उल्लेख किया है जो दिल्ली टकसाल से प्रचलित किया गया था और जिस पर पृथ्वीराज और मुहम्मद बिन साम दोनों के नाम अंकित हैं। प्रतीत होता है कि अपनी पराजय के बाद पृथ्वीराज सुलतान के अधीन राज्य करने को सहमत था। हसन निजामी ने लिखा है कि एक षड्यन्त्र के आरोप में सुलतान ने पृथ्वीराज के शिर को काटने की आज्ञा दी। पृथ्वीराजप्रबंध में लिखा है कि जहाँ पृथ्वीराज ठहराया गया था उसके सामने के स्थान पर सुलतान का दरबार लगता था इससे पृथ्वीराज को पीड़ा होती थी। राजा का मुख्य मंत्री विश्वासघाती था किन्तु पृथ्वीराज को यह ज्ञात नहीं था। मुख्य मंत्री ने राजा से कहा कि स्वामी भाग्य में ऐसा ही बदा था अब क्या किया जाय। राजा ने उत्तर दिया यदि तुम मेरा धनुष-बाण दे दो तो मैं

सुलतान को मार डालूँ। वह राजी हो गया किन्तु सुलतान के पास जाकर सब बातें बता दीं। सुलतान ने उस जगह पर अपनी एक धातु-निर्मित मूर्ति रखा दी। उसके बाद मंत्री ने जाकर पृथ्वीराज को धनुष-बाण दिया। राजा ने बाण चलाया और मूर्त्ति दो टुकड़े होकर गिरी। राजा ने यह कहते हुए धनुष को फेंक दिया कि मेरा काम पूरा नहीं हुआ। सुलतान के बदले कोई दूसरा मारा गया है। उसके बाद सुलतान ने उसको एक गढे में फेंकवा दिया और उस पर पत्थरों की अविराम वर्षा की गई। पृथ्वीराज रासो, सुरजनचरित और आईने-अकबरी में इससे भी अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण कहानियाँ दी हुई हैं।

मूल्यांकन—पृथ्वीराज में कूटनीति की कमी थी। वह समय को नहीं पहचान सका कि युद्ध-नीतियाँ बदल गई हैं और शत्रु छल-बल से काम लेते हैं। उसमें आत्मदर्प था। उसने शत्रु के उन्मूलन करने की अपेक्षा शत्रु के प्रति सहानुभूति दिखाई और उसको शक्ति-बल का प्रयोग करने का अवसर दिया यह समझ कर कि शत्रु की शक्ति कम है। उसने उनको पराजित करने का यत्न नहीं किया। बल्कि आनन्द मनाने में लग गया। उसने अपने शत्रु मुहम्मद घोरी के शब्दों पर विश्वास किया और इस ओर ध्यान नहीं दिया कि मुहम्मद घोरी ने उच्छ में उसके शासक को उसकी राज्ञी द्वारा विष दिलवाया और ग़ज़नी के कुर्त्रव मालिक को सुरक्षापूर्वक भेजने का वचन देकर कारागार में डाला। इसके अतिरिक्त उसने इस ओर भी ध्यान नहीं दिया कि अन्य अनेक मुसलमान सुलतानों और सेनापतियों ने छल-कपट का सहारा लिया है। उसको अपने दिग्विजयिन् होने का गर्व था और मुसलमान आक्रामकों के विरुद्ध हिन्दू राजाओं का संघ बनाने के स्थान पर उसने उनको अपना शत्रु बनाने की नीति अपनाई। उसने जेजाकभुक्ति, कन्नौज और गुजरात के साम्राज्य पर आक्रमण किए। यही कारण है कि जब तराईन के द्वितीय युद्ध में उसकी पराजय हुई तो लड़खड़ाते हुए सपादलक्ष के राज्य की सहायता करने के लिए एक भी हिन्दू राजा आगे न बढ़ा। पृथ्वीराज ने गाहडवालों को अपना शत्रु बना लिया था और जब पृथ्वीराज की हार हुई तो जयचन्द्र ने हर्ष मनाया। जिस समय मुसलमान सेना ११७८ ई० में गुजरात के चालुक्यों पर आक्रमण कर रही थी, पृथ्वीराज ने दोनों को अपना समान शत्रु मानकर गुजरात के चालुक्यों की सहायता नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि जब मुहम्मद घोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तो गुजरात के चालुक्य तटस्थ रहे। पृथ्वीराज की शक्ति कम न थी उसने ११९१ ई० में तराईन के युद्ध में मुहम्मद घोरी को अकेले हराया था। गुजरात के भीमदेव द्वितीय ने केवल अपने बल पर ११७८ ई० में कासह्रद युद्ध क्षेत्र में मुहम्मद घोरी को परास्त किया था। ये

दोनों इतने शक्तिशाली थे कि वे एक होकर न केवल मुसलमान आक्रमण की बाढ़ को रोक सकते थे बल्कि उनको उत्तर पंजाब से भी खदेड़ सकते थे।

तराईन के प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज ने मुसलमानों पर विजय पाई थी, किन्तु उनका पीछा करके उनकी शक्ति को उसने नहीं तोड़ा। तराईन के द्वितीय युद्ध के अवसर पर उसने आनन्द मनाने में रात बिताई। उसने शत्रु की गति पर दृष्टि नहीं रखी और जब दूसरे दिन उसकी सेना पर आक्रमण हुआ तो वह गहरी निद्रा में सो रहा था। दोपहर के बाद वह युद्ध-क्षेत्र में उस समय पहुँचा जब उसकी सेना भाग रही थी। स्पष्ट है कि उसमें जागरूकता की कमी थी। उसने महत्वपूर्ण अवसरों पर आलस्य तथा विलासिता का परिचय दिया।

पृथ्वीराज वाण-विद्या में पारंगत था। वह वीरता और शौर्यता का साकार रूप था। उसने अनेक युद्ध किए और चालुक्यों, भादानकों, चंदेलों तथा नागार्जुन पर विजयें प्राप्त कीं। वह विद्वानों का महान् संरक्षक था उसकी राजसभा में 'पृथ्वीराज-विजय' का लेखक जयनाग, विद्यापति गौड, वागीश्वर जनार्दन, कवि विश्वरूप और चन्दबरदाई के समान कवि और विद्वान् थे। इसके अतिरिक्त उसका सचिव पद्मनाभ विद्वानों की सभा बुलाकर उनका यथारूप सम्मान करता था।

३. गोविन्दराज और हरिराज—ताजुल मआसिर ने लिखा है कि पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गोविन्द भारी कर देने की शर्त पर अजमेर का शासक बनाया गया। उसी से रणथम्भोर के चौहान शासकों का वंश चला। वह कुशल और वीर योद्धा था वह चाहता था कि मुसलमान लुटेरों से देश की रक्षा हो। अतः उसने कुतुबुद्दीन को इस बात पर सहमत किया कि वह दिल्ली पर आक्रमण न करे जो उसके एक चौहान सामन्त के अधीन था। इस हेतु उसने कुतुबुद्दीन को मूल्यवान् उपहार दिए। प्रचुर धन के अतिरिक्त उसने उसको तीन सोने के नगाड़े दिए जिसमें से केवल एक के मूल्य से हेरात में एक बड़ी मस्जिद बनाई गई। चौहानों ने इसकी नीति को कायरता-पूर्ण, देश द्रोहात्मक और अपमानजनक समझा। वे इतनी सरलता से मुसलमानों के सामने घुटना टेकने को तैयार न थे। अतः उन्होंने पृथ्वीराज के कनिष्ठ भ्राता हरिराज के नेतृत्व में ११९२ ई० में अजमेर पर अधिकार कर लिया और गोविन्द को वहाँ से भगा दिया। अन्य स्थानों पर भी चौहान मुसलमानों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। हाँसी के समीप एक चौहान राजा ने मुसलमानों से विद्रोह किया कुतुबुद्दीन ने उसको पराजित किया और मार डाला। दिल्ली में भी विद्रोह हुआ। बहुत दिनों तक इस पर घेरा डाले रहने के बाद मुसलमान इस पर अधिकार करने में सफल हुए। राजा भाग गया किन्तु बाद को एक युद्ध में कुतुबुद्दीन ने इसको परास्त किया और मार डाला। पृथ्वीराज के कनिष्ठ भ्राता हरिराज से पराजित होने के बाद गोविन्दराज

अजमेर से रणथम्भोर के किले में आ गया था । हरिराज ने उस पर आक्रमण किया किन्तु इसके पूर्व कि वह रणथम्भोर पर अधिकार कर सके मुसलमान सेना ने उसको वहाँ से खदेड़ दिया । डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि हरिराज की यह चूक हुई कि उसने मुसलमानों पर उस समय आक्रमण नहीं किया जब वे दिल्ली को घेरे हुए थे और हरिराज के पक्षपातियों को एक-एक कर परास्त कर रहे थे। जब वे उसके पक्षपातियों को हरा चुके और उनको उससे लड़ने का अवकाश मिला तो उन्होंने हरिराज को सरलता से हरा दिया ।

हरिराज ने ११९४ ई० में अपने सेनापति जैत्र को दिल्ली की ओर भेजा, क्योंकि इस समय मुसलमान सेना कन्नौज, वाराणसी, असनी और कौल या कोइल विजय करने में लगी थी । कुतुबुद्दीन ने इस संकट का शीघ्र ही सामना करने का निश्चय किया । इस समय तक वह जयचन्द्र को परास्त कर चुका था और मुसलमान सेना पूरी शक्ति से जैत्र का सामना करने के लिए खाली थी । अतः उसने जैत्र के विरुद्ध प्रयाण किया । जैत्र अजमेर लौट आया और वहाँ हरिराज और जैत्र दोनों ने मिलकर मुसलमानों से युद्ध किया किन्तु उनकी पराजय हुई और वे मारे गए । हम्मीर महाकाव्य में लिखा है कि जब हरिराज ने देखा कि वह मुसलमान सेना का सफलतापूर्वक अवरोध नहीं कर सकता तो वह जलकर मर गया और उसके बाद किला मुसलमानों के हाथ में चला गया । ताजुल-मआसिर में लिखा है कि जैत्र ने किले के पतन के ठीक पूर्व अग्निशिखाओं में अपने को भस्म कर दिया । इस तरह सपादलक्ष से राज्य का अन्त हुआ जिसने लगभग ५०० वर्ष तक राज्य किया था इसके शक्तिशाली बीसलदेव के यशस्वी पराक्रमों की तथा पृथ्वीराज के शौर्य की मात्र स्मृति शेष रह गई है ।

●

अध्याय | ५

रणथम्भोर के चौहान : गोविन्द से हम्मीर तक

(११९२—१३०१ ई०)

१. गोविन्द—पृथ्वीराज तृतीय का पुत्र गोविन्द रणथम्भोर के चौहानों की शाखा का संस्थापक था। तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद वह अजमेर के सिंहासन पर बैठाया गया। उसने भारी कर देने का वचन दिया क्योंकि उसने यह अनुभव किया कि वह सफलतापूर्वक मुसलमान सेना का अवरोध नहीं कर सकता। उसको एक खिलअत दी गई जिसके बदले में उसने कुतुबुद्दीन को बहुत-सा धन तथा सोने के तीन नगाड़े दिए। चौहानों ने उसके समर्पण को अपना अपमान समझा। वे मुसलमानों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। पृथ्वीराज के कनिष्ठ भ्राता हरिराज ने उसको अजमेर से भगा दिया और वह रणथम्भोर किले को चला गया। हरिराज ने उस पर भी घेरा डाला किन्तु तब तक मुसलमान सेना हरिराज के पक्ष के राजाओं को एक-एक कर समाप्त कर चुकी थी और हरिराज पर आक्रमण करने के लिए खाली थी जिसको उसने सरलता से भगा दिया।

२. वीरनारायण—कुछ समय बाद गोविन्द का पुत्र वाल्हण रणथम्भोर के सिंहासन पर बैठा। उसके मङ्गलाना उत्कीर्ण लेख में उसकी उपाधि गढ़पति दी हुई है। इसमें उसने दिल्ली के सुलतान को अपना अधीश्वर माना है। वल्हण के बाद उसका पुत्र प्रहलादन और प्रहलादन के बाद वीर नारायण सिंहासन पर बैठा। उसने एक मुसलमान आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया। यह देख कर कि केवल शक्ति से काम नहीं चलेगा इलतुतमिश ने कूटनीति का सहारा लिया। जीवन की सुरक्षा का आश्वासन देकर उसने वीरनारायण को दिल्ली बुलाया। उसके चाचा वाग्भट ने उसको दिल्ली जाने से मना किया किन्तु मूर्खतावश वह वहाँ गया और विष देकर मार डाला गया। इसके बाद मुसलमान सेना ने १२२६ ई० में रणथम्भोर पर सरलतापूर्वक अधिकार किया।

३. वाग्भट—वीरनारायण ने अपने चाचा वाग्भट की बात नहीं माना इसलिए वाग्भट मालवा चला गया। वहाँ उसने मालवराजा की हत्या कर दी और

उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया क्योंकि इलतुतमिश के उकसाने पर वह वाग्भट की हत्या करना चाहता था। इसके बाद इलतुतमिश की मृत्यु हुई और उसके उत्तराधिकारी फिरोज़शाह के शासनकाल में चारों ओर विद्रोह हुए। अतः इसका लाभ उठाकर वाग्भट ने रणथम्भोर को कड़ाई से घेरा। किले में भोजन और जल की कमी के कारण मुसलमान सेना ने किले को खाली कर दिया। वाग्भट ने अपनी शक्ति बढ़ाई। मिनहाज़ ने उसको हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा राय लिखा है। उलुग़खाँ (जो बाद को बलबन के नाम से दिल्ली का सुलतान बना) ने १२४८ ई० में वाग्भट के प्रदेश को लूटा किन्तु असफल होकर उसको दिल्ली लौटना पड़ा। उलुग़खाँ ने १२५३ में एक बड़ी सेना लेकर रणथम्भोर तथा अन्य महत्त्वपूर्ण हिन्दू किलों पर आक्रमण किया। वाग्भट की सेना युद्ध करने के लिए पूर्णरूप से तैयार थी। अतः उलुग़खाँ को अपने केन्द्रस्थान नागोर को लौटना पड़ा। मुसलमानों के हाथ कुछ घोड़े तथा बन्दी लगे और वे अपनी लूट के साथ 'सुरक्षापूर्वक लौट आएँ'। स्पष्ट है कि उनको सफलता नहीं मिली।

तबकाते नासिरी में लिखा है कि वाग्भट 'सबसे बड़ा राजा था, वह हिन्दुस्तान के सब राजाओं में सर्वाधिक श्रेष्ठ और यशस्वी था।' विपक्षी दल की ओर से वाग्भट की जो प्रशंसा की गई है उसकी पुष्टि १२३६, १२४८ और १२५३ के घेरे तथा युद्ध से होती है। प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु उलुग़खाँ द्वारा किए गए १२५३ ई० के आक्रमण के कुछ ही समय बाद हुई।

४. जैत्रसिंह—वाग्भट के बाद उसका पुत्र जैत्रसिंह सिंहासन पर बैठा। बल्वन उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि नवोदित सूर्य के समान उसने परमार जयसिंह द्वितीय को जो मण्डप (मण्डोर नगरी) में बैठा था झुलसा दिया, कूर्म शासक के गले पर अपने कुठार की धार को तेज किया, कर्करालगिरि (वर्तमान तहनगढ़) के शासक के कपाल पर तलवार चला कर वैभव प्राप्त किया और झम्फैथघट्ट (वर्तमान नाम झपैत घाट) पर मालव राजा के सैकड़ों सैनिकों को बन्दी बनाया और उनको रणस्तम्भपुर के कारागार में डाला। तबकाते नासिरी में लिखा है कि मुसलमान सेना ने १२५९ ई० में रणथम्भोर पर आक्रमण किया। इसका क्या परिणाम हुआ इसके सम्बन्ध में तबकाते नासिरी मौन है। स्पष्ट है कि यह आक्रमण असफल रहा।

जैत्रसिंह के तीन पुत्र थे—सुरत्राण, वीरम और हम्मीर। जैत्रसिंह ने अपने सबसे छोटे पुत्र हम्मीर का अपने हाथों से १२८२ ई० में राज्याभिषेक किया।

५. हम्मीर—हम्मीरमहाकाव्य में लिखा है कि १२८२ ई० में सिंहासन पर बैठने के बाद हम्मीर दिग्विजय पर निकला। उसने भीमरस के शासक अर्जुन को पराजित किया, मण्डलगढ़ के किले से कर उगाहा, उज्जैन के परमार शासक भोज

को परास्त किया; और चित्तौर, आबू, वर्धनपुर, चंगा, पुष्कर, महाराष्ट्र, खण्डिल्ल, चम्पा, और कर्कराला होते हुए वह रणथम्भोर लौट आया। त्रिभुवनगिरि के शासक ने अपनी राजनिष्ठा प्रकट की। उसने एक कोटि-यज्ञ किया। यह दिग्विजय मात्र लूट के छापे थे जो १२८८ ई० के पूर्व हम्मीर ने किए। उस समय मालवा गृहकलह के कारण दो भागों में बँट गया था और वहाँ अशान्ति तथा अव्यवस्था थी। अतः सभी ओर से पास-पड़ोस के शासकों ने उस पर आक्रमण करने आरंभ किए। हम्मीर भी इसको प्रतिवर्ष लूटता था और बहुत-सा सामान और धन, और बन्दी तथा मूल्यवान् कपड़े ले जाता था। प्रतीत होता है कि मालवा का शासक अर्जुन जिसको हम्मीर ने हराया जयसिंह द्वितीय का उत्तराधिकारी था। इस समय दिल्ली के सुलतानों में रणथम्भोर पर आक्रमण करने की शक्ति न थी। किन्तु १२९० ई० में सुलतान जलालुद्दीन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने झैंन पर आक्रमण किया और हम्मीर की सेना से युद्ध किया। इसके बाद खलजी सेनाओं ने रणथम्भोर घेरा। सुलतान ने 'मंजनिकों', और 'सबातों' को बनाने की आज्ञा दी फिर भी वह रणथम्भोर को नहीं जीत सका और अन्त में दिल्ली लौट गया। हम्मीर ने झैंन पर पुनः अधिकार कर लिया। अतः जलालुद्दीन को १२९२ ई० में पुनः इस किले पर आक्रमण करना पड़ा लेकिन इस बार भी उसको कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

सुलतान जलालुद्दीन की हत्या कर १२९६ ई० में अलाउद्दीन खलजी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने रणथम्भोर, चंदेरी, धार, और उज्जैन पर आक्रमण किया। रणथम्भोर पर आक्रमण करने का कारण यह था कि अलाउद्दीन के सेनापति सैनिकों से गुजरात की लूट का पंचमांश बलात् चाहते थे। अतः उनके नेता मुहम्मद-शाह तथा उसके भाई और अनुयायियों ने विद्रोह किया और रणथम्भोर में शरण ली। अलाउद्दीन के बारंबार प्रार्थना करने पर भी हम्मीर ने उनको अलाउद्दीन के हाथों में नहीं सौंपा। ये घटनाएँ १२९९-१३०० ई० में हुईं। इसका बदला लेने के लिए खलजी सेना ने रणथम्भोर पर आक्रमण किया। जिस समय यह आक्रमण हुआ उस समय हम्मीर कोई धार्मिक कृत्य कर रहा था। अतः खलजी सेनापति बिना विरोध के बनास नदी तक बढ़ता चला गया। हम्मीर के सेनापति भीमसेन ने बिना उनकी शक्ति की थाह लिए और बिना बिचारे उन पर आक्रमण किया। संभवतः उसको कुछ प्रारंभिक विजय प्राप्त हुई और यह समझ कर कि उसने मुसलमानों को परास्त कर दिया है उसने उनसे छीने हुए नगाड़े को बजाते हुए राजधानी की ओर प्रयाण किया। नगाड़े की ध्वनि सुनकर मुसलमान सैनिक पुनः एकत्र हुए और चौहान सेना को घेर लिया। भीमसेन वीरतापूर्वक लड़ा किन्तु उसकी पराजय हुई और वह मारा गया, क्योंकि मुसलमान सेना संख्या में अधिक थी तथा उनका संचालन कुशलता

से किया गया। भीमसेन की गलती यह थी कि रणथम्भोर को जाने वाले दर्रे को छोड़ कर वह मैदान में आ गया था। भीमसेन ने मंत्री धर्मसिंह के परामर्श में ऐसा किया था, अतः हम्मीर ने उसको बधिया तथा अन्धा किया, क्योंकि उसने मुसलमान सामरिक स्थान की शक्ति को नहीं देखा और भीमसिंह को अकेले मरने दिया। उसको उसने कोई सहायता नहीं पहुँचाई। धर्मसिंह के बाद हम्मीर ने अपने अवैध भ्राता खड्गवाहिक भोज को अपना मुख्य परामर्श दाता नियुक्त किया। भोज सेना व्यय के लिए धन देने में असमर्थ था, क्योंकि उस समय रणथम्भोर पर मुसलमानों के आक्रमण की आशंका मँडरा रही थी और वह रणथम्भोर छोड़ कर धन संग्रह के लिए मालवा नहीं जा सकता था। मालवा के कुछ भागों पर दूसरी शक्तियों ने अधिकार कर लिया था। उन भागों को तथा अन्य प्रदेशों को लूटने के लिए भी वह नहीं जा सकता था। अतः एक नई सेना खड़ी करने के लिए उसके पास धन नहीं था। यही उसकी असफलता का कारण हुआ।

भूतपूर्व मंत्री धर्मसिह अपनी ताक में था उसने धारा नामक नर्तक से हम्मीर के पास संदेशा भेजा कि वह आवश्यकतानुसार अश्वारोहियों को एकत्र कर सकता है। हम्मीर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और यह स्वीकारोक्ति उसकी मृत्यु का कारण बनी।

धर्मसिंह ने जनता पर भारी कर लादा जिससे प्रजा हम्मीर से असंतुष्ट हो गई। धर्मसिंह के परामर्श पर हम्मीर ने भोज से अपने मंत्रित्वकाल का पूरा-पूरा हिसाब देने को कहा अन्य ढंग से भी हम्मीर ने भोज को इतना तंग किया कि हम्मीर से बदला लेने की दृष्टि से वह अपने भाई पीठसिंह के साथ सुलतान अलाउद्दीन खलज़ी की राज सभा में चला गया। भोज ने फसल कटने के पूर्व रणथम्भोर पर आक्रमण करने की सलाह अलाउद्दीन को दी। अलाउद्दीन ने शीघ्र ही एक बड़ी सेना जिसमें लगभग एक लाख सैनिक थे, रणथम्भोर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। यह सेना रास्ते में पड़ने वाले समस्त हिन्दू प्रदेशों को लूटती, कुचलती और पद दलित करती हुई आगे बढ़ी। जब यह मुसलमान सेना हिन्दुवाट दर्रे पर पहुँची तो हम्मीर की सेना ने उस पर अकस्मात् धावा किया और खलज़ी सेना को असाधारण रूप से हराया। उनका बहुत-सा सामान चौहान सेना के हाथ लगा। इस युद्ध में हम्मीर के भाई वीरम, सेनापति रतिपाल, जाजदेव और रणभल्ल नव मुस्लिम नेता मुहम्मदशाह, उसका भाई गर्भरूक तथा दो अन्य व्यक्ति तिचर और वैचर ने भाग लिया। इसके उपरान्त हम्मीर की सेना ने भोज की जागीर जगरा पर आक्रमण किया और उसके परिवार को बन्दी बनाया नयचन्द्र ने लिखा है कि जब सुलतान को यह सूचना मिली तो वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने हिन्दुस्तान के समस्त भागों से सैनिकों को भरती

किया और उल्लूखाँ (उलूगखाँ) के नेतृत्व में रणथम्भोर पर घेरा डालने के लिए एक बृहद् सेना भेजी। नसरत खाँ भी अपनी सेना सहित उसकी सहायता के लिए भेजा गया।

उलूग खाँ ने हिन्दुवाट दर्रे को पार करने के लिए छल-बल का आश्रय लिया। उसने कहा कि वह हम्मीर से सन्धि तय करने के लिए जा रहा है। उसने हम्मीर के सामने दो विकल्प रखे—या तो हम्मीर चार लाख मुहर, चार हाथी दे और अपनी कन्या का विवाह अलाउद्दीन से करे; या उन चार मुगल सरदारों को समर्पित करे जिन्होंने अलाउद्दीन के आधिपत्य को अस्वीकार कर रणथम्भोर में शरण ली है। हम्मीर ने इन प्रस्तावों को घृणापूर्वक अस्वीकार किया। मुसलमानों ने किले के नीचे सुरंगें खोदीं और इसकी दीवालों पर चढ़ने के प्रयत्न किए। जिस समय नसरतखाँ एक पाशिब बनाने और गर्गज उठाने लगा था कि किले के एक मग्रबी से एक गोला आकर उसको लगा और वह तीन या चार दिन में मर गया। फिरिश्ता ने लिखा है कि हम्मीर इसका लाभ उठा कर किले से निकल आया और मुसलमानों से युद्ध करने लगा। इस युद्ध में मुसलमान हार गए, उनकी सेना को बड़ी क्षति पहुँची और वे झैन को लौटने के लिए विवश किए गए। अब स्वयं अलाउद्दीन ने सेना का नेतृत्व ग्रहण किया और रणथम्भोर पहुँचकर बड़े उत्साह से इस पर घेरा डाला। हम्मीर ने बाहर जाने वाले दो दलों का नेतृत्व किया। लेकिन इस बार हम्मीर को कम सफलता मिली। अलाउद्दीन ने रस्सों को बोरों के रूप में सिलवा लिया और उनको बालू से भरने के बाद किले की खाईं में फेंका। बालू के बोरों पर रख कर मुसलमानों ने एक पाशिब बनाई, और जब यह इतनी ऊँची हो गई कि यह किले के पश्चिमी बुर्ज को छू सके तब इस पर मगरिबें रख दी गईं और उन पर से किले के अन्दर मिट्टी के बड़े-बड़े गेंद फेंके गए। उसी समय एक सुरंग भी खोदी गई। चौहानों ने अपने ही मगरिबों से फेंके गए पत्थरों द्वारा पाशिब को नष्ट किया, और उन सैनिकों पर राल मिले हुए तेल छोड़कर मार डाला जो सुरंग खोदने में लगे हुए थे। अलाउद्दीन की विशाल सेना थकान अनुभव कर रही थी और बार-बार की असफलताओं से हताश हो गई। वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई इससे सैनिकों का कष्ट और भी बढ़ गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अलाउद्दीन सन्धि करने के लिए उत्सुक है। अलाउद्दीन ने सेनापति रतिपाल को सन्धि की बातचीत करने के लिए अपने शिविर में बुला भेजा। रतिपाल का हर तरह से सम्मानपूर्वक स्वागत किया गया। उसको अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन और पेय पदार्थों से संतुष्ट किया गया और उसको पूर्णतया विश्वास दिलाया गया कि यदि यह किला मुसलमानों के हाथ में आ जायेगा तो यह इसको दे दिया जायगा। रतिपाल वहाँ से एक दृढ़प्रतिज्ञ और भयानक देशद्रोही के रूप में लौटा।

उसने हम्मीर से कहा कि अलाउद्दीन राजा की पुत्री से विवाह करना चाहता है। उसने एक ऐसी चाल चली कि रणमल्ल नामक सेनापति हम्मीर से विरुद्ध हो गया। सूर्यास्त होते ही ये दोनों विश्वासघाती किले के बाहर चले आए और शत्रुदल में मिल गए।

इस समय मुसलमानों की दशा खराब थी, किन्तु उनको विश्वासघातियों से पता चला कि किले की दशा और भी खराब है। अब तक हम्मीर वीरता प्रदर्शित कर रहा था लेकिन अब वास्तविकता ज्ञात हो चुकी थी और झूठा आडम्बर करना व्यर्थ था। बिना आहार मृत्यु सामने खड़ी थी, अत्यंत विश्वस्त सेवक साथ छोड़ चुके थे, और चारों ओर वह भावी विश्वासघातियों और शत्रुओं से घिरा हुआ था। अतः हम्मीर ने जौहर मनाने का निश्चय किया और मुगल नेताओं को सुरक्षित स्थान में भेजने का प्रयत्न किया किन्तु अन्त तक लड़ने का उन्होंने निश्चय किया। हम्मीर की राज्ञियाँ और उसकी पुत्री देवल्लदेवी चिता पर चढ़ गईं। शत्रु मुसलमानों ने उन लपकों को देखा और वे समझ गए कि इसका क्या अर्थ है। हम्मीर ने मूल्यवान् वस्तुओं को पद्मसर में फेंक दिया और चौहान जाजा को अपने उत्तराधिकारी के रूप में अभिषिक्त किया। हम्मीर अपने भाई वीरम तथा अन्य अनुयायियों के साथ पाशीब के मुहाने की ओर बढ़ा। वीरम साहसपूर्वक लड़ता हुआ मरा, हम्मीर ने जब देखा कि वह शत्रु के हाथ में पड़ जायगा तो स्वयं अपने हाथ से अपनी हत्या कर ली। अलाउद्दीन ने वीर मुहम्मदशाह को घायल रूप में देखा और उसने उससे कहा कि यदि मैं तुम्हारी घाव-पट्टी कराकर तुमको बचा लूँ तो तुम किस तरह व्यवहार करोगे। उसने जवाब दिया कि मैं तुमको मरवा डालूँगा और हम्मीरदेव के पुत्र को सिंहासन पर बैठाऊँगा। इस प्रतिउत्तर से अलाउद्दीन को बड़ा क्रोध आया और उसने उसको हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया। किन्तु अलाउद्दीन ने उसकी राजनिष्ठा की प्रशंसा की और उसको ससम्मान गड़वा दिया। अलाउद्दीन ने रतिपाल की जीते जी त्वचा उधेड़ दी। अलाउद्दीन ने यह कहते हुए रणमल्ल तथा उनके साथियों को मरवा डाला कि 'जिन्होंने अपने ही सम्राट् के साथ विश्वासघात किया है वे दूसरों के प्रति निष्ठावान् नहीं रह सकते'। चौहान जाजा ने दो दिन और किले की रक्षा की और उसके बाद किले को खाली कर दिया। मुसलमान सेना ने रणथम्भोर शहर को लूटा, बाहरदेव के भव्य मंदिर तथा अन्य अनेक सुन्दर भवनों को ध्वंस किया।

मूल्यांकन—हम्मीर कवि बीजादित्य का संरक्षक तथा महाविद्वान् एवं कवि राघवदेव का शिष्य था। वह एक वीर और कुशल योद्धा था किन्तु उसने अपने पड़ोसियों से युद्ध करके अपनी शक्ति नष्ट की और इस पर विचार न किया कि मुसलमान आक्रमण का संकट उसके सिर पर मँडरा रहा है। सेना का व्यय सँभालने के

लिए उसने जनता पर कर लगाया। इस कारण वह अप्रिय हो गया। किन्तु अपने राज्य की प्रतिरक्षा के लिए, अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए, और उन नव-मुसलिम सरदारों की रक्षा के लिए जिन्होंने उसकी शरण ली थी, उसने जो दृढ़तर और शौर्य दिखलाया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उसकी प्रशंसा में यह दोहा कहा जाता है :

'सिंह-सवन सत्पुरुष-वचन कदलन फलत इक बार।
तिरिया-तेल हम्मीर-हठ चढ़ै न दूजी बार॥'

शेरनी केवल एक बार बच्चा जनती है; अच्छे पुरुष केवल एक ही बार कहते हैं; केला एक ही बार फलता है; स्त्री विवाह के लिए केवल एक ही बार तेल से अभिषिक्त की जाती है; और हम्मीर ने केवल एक ही बार प्रण किया। हम्मीर महाकाव्य में लिखा है कि जब हम्मीर के समस्त पराक्रमी सेनापति वीरतापूर्वक लड़ते हुए सद्गति को प्राप्त हुए तो अन्त में सौ बाणों से विद्ध शक्तिशाली हम्मीर गिरा। किन्तु जीवन रहते विपक्षियों के हाथों में पड़ना गर्ह्य मानते हुए उसने एक ही झटके में अपने ही हाथों से अपने सिर को अपने शरीर से अलग कर दिया। हम्मीर का हठ विख्यात है। नव-मुसलिम सेनापतियों को रक्षा का वचन देने के बाद अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वह अपने वचन पर डटा रहा; यद्यपि उन लोगों ने उसका साथ छोड़ा जिन पर वह विश्वास करता था। युद्ध करने के लिए जब वह अन्तिम बार रणथम्भोर के किले के बाहर निकला तो उसके साथ केवल नौ योद्धा थे जिनमें से चार मुसलमान थे। उसकी दृढ़ता और शौर्य ने उसका यशः गीत गाने के लिए संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा राजस्थानी के अनेक कवियों को प्रेरित किया।

६. जाजदेव (जाजा)—हम्मीर के उपर्युक्त नौ वीर योद्धाओं के अतिरिक्त कम से कम एक योद्धा ऐसा था जिसकी राजनिष्ठा संदेह के परे थी। वह था जाज, जाजा, या जज्जल। वह चाहमान वंश का वीरपुरुष था जिसने अन्तिम घड़ी तक रणथम्भोर की रक्षा की। उसकी प्रशंसा में कहा गया है कि वह हम्मीर की मंत्री-परिषद का 'मन्त्रिवर' (श्रेष्ठ मंत्री) था। आज वह जनता की स्मृति में एक मंत्री के रूप में नही बल्कि एक वीर पराक्रमी योद्धा के रूप में जीवित है। हिन्दुवाट दर्रे में खिलज़ी सेना पर आक्रमण करने तथा उसको परास्त करने वाले आठ सेनापतियों में से वह एक था।

इस आक्रमण की अत्यंत कुशलता पूर्वक रचना की गई थी। अँधेरा होते ही मुसलमानों पर सब दिशाओं से राजपूत टूट पड़े जिससे अनेक शिविर में अत्यंत खलबली फैल गई। हम्मीर के भाई वीरम ने पूरब की ओर से, मुहम्मदशाह ने पश्चिम से जाजदेव ने दक्षिण से, और गर्भरूक ने उत्तर की ओर से आक्रमण किया। दक्षिण पूरब, उत्तर पूरब, दक्षिण पश्चिम और उत्तर पश्चिम से क्रमशः रतिपाल, रणमल्ल,

तिचर और वैचर ने आक्रमण किए। यह युद्ध-कौशल पूर्णतया सफल रहा 'हम्मीर', 'हम्मीर' की जयघोष करते हुए राजपूत मुसलमान शिविर के चारों ओर खोदी हुई खाइयों में कूद पड़े, तख्तों और लकड़ियों को खड़ा करके बनाए गए मोर्चों को जला दिया, खेमों की रस्सियों को काट डाला, और ऐसी हाहाकार मची कि उलूग खाँ की सेना भागती दिखाई पड़ी, उनकी युद्ध सामग्री, शिविर का सामान, और महिलाएँ भी वहीं की वहीं रह गईं।

जब रणथम्भोर को बचाने की सब आशा जाती रही तब भी उसने कहा कि कवच धारण कर अपने संबंधियों से विदाई लेकर, और अपने स्वामी हम्मीर की आज्ञा पाकर मैं युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करूँगा और तलवार चलाते हुए मैं उसको शत्रु के सिर पर चोट करूँगा, अपनी तलवार से सुलतान के सिर पर आघात कर और अपने इस शरीर को यहाँ छोड़कर स्वर्ग जाऊँगा। ('सुलताण-सीस करवाल दइ, तज्जि कलेवर, दिग्र चलौ') हम्मीर जानता था कि इस वीर योद्धा के लिए मृत्यु का भय नहीं है। हम्मीर ने जौहर का काम उसको सौंपा जहाँ कठोर से कठोर योद्धाओं के छक्के छूट जाते हैं। जब हम्मीर के राजप्रसाद की रानियाँ, उसकी पुत्रियाँ, उसकी संबंधिनियाँ तथा अन्य अनेक सुन्दर महिलाएँ जौहर की अग्नि में भस्म हो गईं तब वह नौ हाथियों के मुंडों को लिए हुए हम्मीर के पास आया और कहा कि मैं इन मुंडों को तुम्हें अर्पण कर रहा हूँ दसवाँ शिर मेरा होगा। मैं तुम्हें इन्हें अर्पण करता हूँ जिस तरह रावण ने अपने दस शिरों को शिवजी को अर्पण किया था। हम्मीर ने दो बार उससे कहा कि किला छोड़कर सुरक्षा के स्थान पर चले जाओ किन्तु उसने अन्तिम क्षण तक किले में रहने का निश्चय किया और अन्तिम क्षण तक उसने किले की रक्षा की। नयचन्द ने हम्मीरमहाकाव्य में लिखा है कि 'इस संसार में केवल जाजा सचमुच वंदनीय है जिसमें प्रकृत्या स्नेह और राजनिष्ठा थी, क्योंकि हम्मीर की मृत्यु के बाद भी उसने दो दिनों तक किले की प्रतिरक्षा की—'स जयतु चिरं, चाहमानः स जाजा'।

●

अध्याय ६

नाडोल के चौहान : लक्ष्मण से आह्लण तक

१. लक्ष्मण—नाडोल के चौहानवंश का संस्थापक रावल लक्ष्मण या लखण या लाखा। उसके पिता का नाम सिन्धुराज था जैसा कि अचलेश्वर मंदिर के उत्कीर्ण लेख में लिखा है। किसी-किसी उत्कीर्ण लेख में उसके पिता का नाम शाकम्भरी का वाक्पति दिया हुआ है। केल्हण के उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि उसका समय ९८२ ई० था। कहा जाता है कि उसने नाडोल के किले का निर्माण किया। उसने नाडोल में विष्णु का एक मंदिर बनवाया।

पुरातनप्रबंधसंग्रह और नयणसी की ख्यात के वर्णनों से यह आशय निकलता है कि लक्ष्मण ने अपने भुजबल से तथा अविचल दृढ़ता से एक नया राज्य स्थापित किया। उसने मेदों के लूटमार से जनता की रक्षा की। किसी कारवाँ के अश्वों को छीना, और आसपास के प्रदेशों को लूटा जिनमें मेवार और गुजरात की सीमान्तें भी थीं। इसमें संदेह नहीं कि वह वीर और साहसी था।

२. शोभित—लक्ष्मण का उत्तराधिकारी उसका पुत्र शोभित था। उसके समय में चौहानों, चालुक्यों और परमारों के बीच में संघर्ष चल रहे थे, और राजपूताना, मालवा और गुजरात उसके त्रिकोण संघर्ष की रणस्थली थी। प्रतीत होता है कि नाडोल के चौहानों ने पहले गुजरात के चालुक्यों का साथ दिया। और जब गुजरात के मूलराज प्रथम ने आबू के नृपति 'दर्पान्ध' धरणीवराह को उन्मूलित किया, तब शोभित ने उसके वैभव को अपहृत किया। जिस समय मूलराज ने मालवा के परमारों पर आक्रमण किया शोभित ने धारा पर अधिकार कर लिया, किन्तु डॉ० गांगुली ने टिप्पणी की है, सेवदी ताम्रपत्र उत्कीर्ण कर्ता ने 'थारा' के स्थान पर 'धारा' शब्द उत्कीर्ण कर दिया है। थारा बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में मारवाड़ का सर्वाधिक विख्यात नगर था।

३. बलिराज—बलिराज शोभित का पुत्र और उत्तराधिकारी था। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि बलिराज ने मुंज की सेना को पराजित किया। किन्तु कल्याणी के विक्रमादित्य षष्ठ के कौथेम दानपत्र में तथा परमारों के राज्यकवि

परिमल ने चालुक्य मूलराज की दुर्दशा का वर्णन किया है जो युद्ध क्षेत्र से हरिण की तरह डरकर अपना प्राण लेकर भागा। मुंज ने उसको आघाट के समीप असाधारण रूप से पराजित किया। युद्धक्षेत्र से भाग कर उसकी सेना ने हस्तिकुण्डी (मारवार के हस्तिकुण्डी) में शरण ली और मूलराज ने नाडोल के राज्य में शरण ली जो उसका मित्र राज्य था। परिमल ने वर्णन किया है :

आहारं न करोति नांबु पिबति स्त्रैणं न संसेवते
शेतेयत् सिकतासु मुक्त-विषयश् चंडातपं सेवते
तत् पाद्-आब्ज-रज:-प्रसाद-करिणका-लभोन्मुखस् तन्मरौ
मन्ये मालव-सिंह गूर्जर-प्रतिस् तीव्रं तपस् तप्यते ॥

'वह न तो भोजन करता है और न जलग्रहण करता है; वह स्त्री समाज से दूर रहता है, वह बालू पर लेटता है; समस्त सांसारिक आमोद-प्रमोदों से वह मुक्त है, और वह प्रचंडतम आतप का सेवन करता है। हे मालवसिंह मुझे प्रतीत होता है कि यह गूर्ज्जरपति मारवार के जंगलों में इसलिए तपस्या कर रहा है, क्योंकि वह आपके पदरजरूपी प्रसाद-करिणका को प्राप्त करने के लिए उत्सुक है'।

बलिराज के बाद उसका चाचा विग्रहपाल सिंहासन पर बैठा। विग्रहपाल के बाद उसका पुत्र ९९६ ई० के पूर्व किसी समय सिंहासनारूढ़ हुआ। हो सकता है कि विग्रहपाल की मृत्यु किसी युद्ध में हुई हो। इस समय नाडोल के चौहानों को न तो परमारों की ओर से और न गुजरात के चालुक्यों की ओर से भय था। इस समय शाकम्भरी के चौहानों की शक्ति वृद्धि पर थी उनके राजा विग्रहराज द्वितीय ने नर्मदा के मुहाने पर स्थित भृगुकच्छ तक विजय अभियान किया था। उसके कनिष्ठ भ्राता और उत्तराधिकारी दुर्लभराज ने महेन्द्र पर आक्रमण किया और संभवत: नादोल राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। महेन्द्र ने अपनी बहनों दुर्लभदेवी और लक्ष्मी का विवाह क्रमश: गुजरात के चालुक्य राजा दुर्लभराज और उसके कनिष्ठ भ्राता नागराज से किया और इस तरह चालुक्यों से वैवाहिक मैत्री स्थापित की। महेन्द्र का उत्तराधिकारी उसका पुत्र अश्वपाल था। अश्वपाल के पुत्र अहिल के राज्य-काल में चौलुक्य भीमदेव की सेनाओं ने नाडोल पर आक्रमण किया। प्रतीत होता है कि इस समय गुजरात और नाडोल के मैत्री संबंध टूट गए थे। अहिल ने चौलुक्यों की सेना पर विजय प्राप्त की।

४. अणहिल—अहिल के बाद उसके चाचा अणहिल गद्दी पर बैठा। उसने गुजरात के चालुक्य भीमदेव द्वितीय को प्रतिष्ठान नामक स्थान पर हराया। वह नाडोल शाखा का अत्यंत सफल और ऊर्जस्वी शासक था। उसने शाकम्भरी पर अधिकार किया, मालवा के परमार भोज के सेनापति साढ का बध किया, और किसी

भयंकर तुरुष्क को पराजित किया। उस समय उत्तरी भारत में परमार भोज शक्तिशाली शासक गिना जाता था। उसके सेनापति साढ को परास्त करने और शाकम्भरी को हस्तगत करने से अरणहिल की कीर्ति वीर नेता के रूप में फैली। जिस समय महमूद गुजरात पर आक्रमरण करने जा रहा था उस समय वह नाडोल के प्रदेश से होकर गया। वहाँ के राजा ने महमूद से युद्ध किया। संभवत: घमासान युद्ध हुआ क्योंकि लौटते समय महमूद ने उस रास्ते को नहीं पकड़ा। अरणहिल ने देशी तथा विदेशी बलवान् शासकों का सफलतापूर्वक सामना किया और ख्याति प्राप्त की।

५. बालाप्रसाद—अरणहिल का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाप्रसाद था। जिस समय सिंहासन पर बैठा उस समय उसकी आयु बहुत कम रही होगी। संभवत: इसी कारण उसने गुजरात के चालुक्य भीमदेव प्रथम को समर्पण किया जिसने उसकी प्रार्थना पर आबू के परमार शासक कृष्णराज द्वितीय को कारावास से मुक्त किया।

६. जेन्दुराज—बाला प्रसाद के बाद उसका कनिष्ठ भ्राता जेन्दुराज सिंहासन पर बैठा। जेन्दुराज ने गुजरात के प्रति बालाप्रसाद की नीति बदल दी। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि सान्डेरा में वह अपने शत्रुओं के समूह को चीर कर इस तरह निकला जैसे अन्धेरे को फाड़ कर सूर्य निकलता है। इस शत्रु समूह का नेता नाडोल शाखा के चौहानों का पुराना शत्रु गुजरात का भीम था। जेन्दुराज दानी एवं धर्मात्मा था।

७. पृथ्वीपाल—जेन्दुराज का ज्येष्ठ पुत्र तथा उत्तराधिकारी पृथ्वीपाल गुजरात के विमुख था। उसने चालुक्य भीम प्रथम के पुत्र कर्ण त्रैलोक्यमल्ल की सेना को नष्ट किया। एक दानपत्र में लिखा है कि पृथ्वीपाल के सैनिकों ने वागड के परमार मण्डलिक की प्रजाओं को भालों से ऐसा मारा कि वे अपनी लज्जा, पुत्रों, पत्नियों तथा सामान को छोड़ छोड़ कर सब दिशाओं में भागे। इसी दानपत्र में लिखा हुआ है कि एक बार तुरुष्कों ने पृथ्वीपाल को घेर लिया जब वह अकेला था किन्तु पृथ्वीपाल के कष्ठि भ्राता आसराज ने एक बहुत ही छोटी टुकड़ी लेकर उसके प्राण बचाए। हो सकता है कि ग़ज़ना के इब्राहिम ने उसको घेर लिया हो, क्योंकि १०७९ ई० के लगभग इब्राहिम ने पाकपट्टन, रुदपाल तथा भारत के पश्चिमी तट के कुछ स्थानों को विजय किया। इब्राहिम के अतिरिक्त कोई अन्य विजेता इस समय के लगभग इधर के प्रदेश में नहीं आया। पृथ्वीपाल प्रजा का बड़ा ध्यान रखता था। उसने कुछ करों को बन्द कर दिया।

८. जोजलदेव—जोजलदेव पृथ्वीपाल का कनिष्ठ भ्राता था। उसने अपने बाहुबल से अरणहिल्लपुर में अपने वैभव को बढ़ाने वाले श्वेतछत्र का आनन्द लिया

अर्थात् कुछ समय के लिए गुजरात उसके आधिपत्य में था। हो सकता है कि उस समय गुजरात के सिंहासन पर कर्ण रहा हो जिसको कई एक शत्रुओं ने अलग-अलग परास्त किया, या उसका अवयस्क पुत्र जयसिंह रहा हो जो अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में शक्तिशाली नहीं था। प्रतीत होता है कि जोजलदेव पुराण-पन्थी था, क्योंकि उसने लक्ष्मण स्वामिन् देव के पर्व के अवसर पर नर्तकियों को भाग लेने दिया, यद्यपि जनता का एक समुदाय इस प्राचीन प्रथा के अत्यंत विरुद्ध था। उस समय विधिचैत्य आन्दोलन' चल रहा था जो जैन मन्दिरों में नर्तकियों के नृत्य के विरुद्ध था। अलबेरुनी ने लिखा है कि राजस्थान में भी अधिकांश ब्राह्मण इस प्रथा के विरोधी थे।

९. आसराज (अश्वराज)—आसराज जलदेव का कठिष्क भ्राता था। उसके उत्कीर्ण लेखों में गुजराज के जयसिंह सिद्धराज का नामोल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि वह स्वतंत्र राजा था। प्रतीत होता है कि उसने अधिक समय तक राज्य नहीं किया, और बाद को उसने सिद्धराज जयसिंह की सेवा ग्रहण की। प्रतीत होता है कि वह १११६ और १११९ ई० के बीच किसी समय में पृथ्वीपाल के पुत्र रत्नपाल ने उसको सिंहासनाच्युत किया, क्योंकि वह (रत्नपाल) इस सिंहासन का वैध उत्तराधिकारी था।

आसराज ने चण्डलेश्वर का मन्दिर निर्माण किया, त्रिपुरुष मन्दिर के निर्वाह के लिए एक गाँव दान में दिया, सैकड़ों निःशुल्क भोजनालय, सरोवर, उद्यान, शिव-अर्पित मन्दिर, सीढ़ीयुक्त कूप, कूप, प्रपास, और धार्मिक गृह बनवाए।

१०. रत्नपाल—ओझा दानपत्र संख्या चार में लिखा है कि आसराज ने मन्धोर को विजित किया। उसने त्रिपुरुष मन्दिर को एक गाँव अर्पित किया।

११. रायपाल—रामपाल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी रायपाल था। उसने महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की। उसने धालोप में एकत्र ब्राह्मणों से वचन लिया कि वे पुलिस चौकियों द्वारा यात्रियों, व्यापारियों, और राजकर्मचारियों के पुत्रों से खोए हुए सामानों का पता लगावेंगे। यदि कोई वस्तु उनके गाँवों या कार्य-क्षेत्र के भीतर खोयेगी तो उन्हें उसकी पूर्ति करना पड़ेगा।

प्रतीत होता है कि ११४१ और १२४३ ई० के बीच में किसी समय आसाराज के वंशजों ने चालुक्य जयसिंह सिद्धराज की सहायता से नाडोल पर अधिकार किया। किन्तु रायपाल चुप बैठनेवाला व्यक्ति नहीं था। उसने जयसिंह सिद्धराज के मरते ही अपने पैतृक उत्तराधिकार के कुछ भाग पर अधिकार किया।

१२. सहजपाल—सहजपाल रायपाल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। प्रतीत होता है कि शाकम्भरी के अर्णोराज और गुजरात के कुमारपाल के युद्ध के फलस्वरूप आसराज के पुत्र आल्हण ने ११४५ और ११४८ ई० के बीच में किसी

समय नाडोल के सिंहासन पर अधिकार किया और महाराजाधिराज की उपाधि धारण की ।

१३. आल्हण—आल्हण के शासनकाल में बहुत उतार चढ़ाव हुआ । उसने ११४८ ई० के पूर्व किसी समय नाडोल पर अधिकार किया । किन्तु ११५२ ई० में वह नाडोल पर नहीं बल्कि किराटकूप, राटह्रद और शिवा नामक नगरों पर राज्य कर रहा था जिसको कुमारपाल चालुक्य ने उसको दिया था । इसका यह कारण प्रतीत होता है कि अर्णोराज ने ११४९ ई० के लगभग चालुक्य सामन्त आल्हण से उसका पैतृक राज्य नाडोल छीना । बाद को चालुक्य कुमारपाल ने अर्णोराज से नाडोल छीन कर उसको अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में ले लिया और उस पर दण्डाधीश वैजल्लदेव चौहान को नियुक्त किया ।

१४. आल्हण की सेवाएँ—आल्हण ने कई चालुक्य समर यात्राओं में भाग लिया । उसने आभीर नेता सौमसर को मार कर कुमारपाल की सेना को पूर्ण संहार से बचाया । यह घटना संभवत: ११५२ और ११५४ ई० के बीच किसी समय हुई । नाडोल का दण्डाधीश वैजल्लदेव चौहान शाकम्भरी के विग्रहराज चतुर्थ का सफलता-पूर्वक सामना न कर सका जिसने पाली को पल्ली (छोटा पुरवा) और नाडोल को नड्वल (सरकण्डा का खेत) कर दिया । अत: वैजल्लदेव वहाँ से स्थानान्तरित कर दिया गया और नाडोल आल्हण को लौटा दिया गया जो उसका वंशागत राज्य था और जिसने चालुक्यों की अनेक संकटों के समय आसाधारण सेवाएँ की थीं । इसीलिए आल्हण के पुत्र कीर्तिपाल ने गर्व किया है कि आल्हण ने अपने ही शौर्य से महाराज का वैभव प्राप्त किया । चालुक्य कुमारपाल ने किराटकूप, लाटह्रद और शिवा की जागीरों को इसके वंशागत स्वामी परमार सोमेश्वर को लौटा दिया जिसने कई समर यात्राओं में कुमारपाल की अच्छी सेवाएँ की थीं ।

आल्हण ने शिव, चण्डलेश्वर, त्रिपुरुष महावीर और गौरी के मंदिरों को वृत्तियाँ दान कीं । उसने पशुवध की मनाही कर दी ।

१५. केल्हण—केल्हण आल्हण का ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था । उसका कनिष्ठ भ्राता गजसिंह मन्डोर के प्रशासन की देखभाल करता था जिसको आल्हण ने सहजपाल से छीना था । आल्हण ने केल्हण को युवराज नियुक्त किया और वह कम से कम ११५२ ई० से राज संचालन में हाथ बटाता था । बाम्नेरा उत्कीर्ण लेख आल्हण और उसके पुत्र केल्हण के नाम से ११६३ ई० में नि:सृत किया गया था । स्पष्ट है कि राजकाज में उसका प्रमुख भाग था । जिनमण्डल के कथन से प्रतीत होता है कि ११५२ ई० के लगभग शाकम्भरी के अर्णोराज और गुजरात के चालुक्य कुमारपाल के बीच जो युद्ध हुआ उसमें उसने प्रमुखता प्राप्त की । केल्हण ने ११६४

और ११९३ ई० के बीच पन्द्रह उत्कीर्ण लेख निःसृत किए। भम्बेरा उत्कीर्ण लेख में उसकी उपाधि महाराजाधिराज परमेश्वर दी हुई है। वह अवश्य ही शक्तिशाली राजा रहा होगा क्योंकि यह उपाधि साधारणतया स्वतंत्र सम्राट् धारण करते हैं। किन्तु ११७१ ई० के नाड्लै उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि वह चालुक्य कुमारपाल को अपना अधीश्वर मानता था। मुहम्मद घोरी ने जब ११७८ ई० में गुजरात पर आक्रमण किया तब मुसलमान सेना ने नाडोल के किले पर अधिकार किया।

१६. राज्य विस्तार—उसके राज्य का विस्तार दक्षिण में कम से कम पालड़ी तक; उत्तर में माडव्यपुर तक; पश्चिम में सन्डेरक तक था। उसने अपने राज्य की प्रतिरक्षा के निमित्त पालडी में अपने पुत्र जयतसिंह माडव्यपुर में सिंहविक्रम और उसके बाद सोढलदेव को नियुक्त किया। सन्डेरक राज्ञी जाल्हणदेवी के भुक्ति में था और गोड्वाड स्वयं केल्हण के प्रशासन में था। पालडी और मांडव्यपुर में एक-एक महामात्य नियुक्त किया गया जो वहाँ के प्रशासन में केल्हण के पुत्र की सहायता करता था।

१७. देवगिरि के शासक से, और मुहम्मद घोरी से युद्ध—देवगिरि के शासक यादव भिल्लिम ने ११८७ और ११८९ ई० के बीच किसी समय गुर्जर राज्य पर आक्रमण किया। प्रतीत होता है कि यह युद्ध निर्णायक नहीं था, क्योंकि दोनों ही पक्ष विजय का दावा करते हैं। मुहम्मद घोरी ने ११७८ ई० में नाडोल पर अधिकार किया। जब मुसलमान सेना आबू के समीप पहुँची तब केल्हण के कनिष्ठ भ्राता कीर्तिपाल, आबू के परमार शासक धारावर्ष, और उनके अधीश्वर चालुक्य भीमदेव द्वितीय की सम्मिलित सेनाओं ने उनको घेर लिया। यह युद्ध कासह्रद स्थान पर हुआ। इस युद्ध में गुर्जर सेना ने मुहम्मद घोरी को घायल किया। इस युद्ध में मुसलमानों की गहरी हार हुई। लगभग तेरह वर्षों तक फिर उन्होंने भारत पर आक्रमण नहीं किया।

केल्हण ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अन्य राज्यों से मैत्री-गठन किया। उसकी एक पुत्री आबू के परमार शासक धारावर्ष से, और दूसरी पुत्री ग्वालियर के प्रतिहार राजा विग्रह से ब्याही गई। केल्हण की मृत्यु ११९४ ई० के पूर्व हुई।

१८. जयत सिंह—जयत सिंह केल्हण का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। मेरों ने ११९६ ई० में मुसलमानों से अजमेर छीनने का प्रयत्न किया। कुतुबुद्दीन ऐबक अजमेर के किले के मुसलमानों की सहायता करने को आया। किन्तु मेरों और गुजरात के चालुक्यों की सम्मिलित सेनाओं ने उसको परास्त किया और वह अजमेर के किले में शरण लेने को बाध्य हुआ। गजना से अधिक बल आ पहुँचने से मुसलमानों की शक्ति बढ़ गई और उन्होंने चालुक्य

सामन्त जयतसिंह के पाली और नाडोल किलों पर धावा किया। जयतसिंह ने किले को खाली कर दिया और आबू के परमार धारावर्ष और उसके युद्ध-कुशल भाई प्रह्लादन से मिल कर आबू के समीप एक दर्रे में मुसलमानों का सामना किया। इसी स्थान पर ११७८ ई० में जैसा कि तारीख-ए-फिरिश्ता में लिखा है कि आबू के शासक धारावर्ष ने मुसलमानों को दर्रे के अन्दर सरलता से प्रवेश करने दिया, और बाद को पीछे की ओर से उनको घेर लिया और सामने से गुर्जरों ने मुसलमान सेना पर आक्र-किया। किन्तु इस बार मुसलमान सेना दर्रे के भीतर जाने से हिचकिचाती थी; क्योंकि तेरह वर्ष पूर्व इसी स्थान पर उनकी गहरी पराजय हुई थी। उनकी इस हिचकिचाहट को उनकी कमजोरी मानकर हिन्दुओं ने अपने दृढ स्थान को छोड़ दिया और मैदान में चले आए। वहाँ उषःकाल से मध्याह्न तक घमासान युद्ध हुआ जिसमें हिन्दुओं की हार हुई। उनके अनेक सेनापति मोरया बन्दी बनाए गए। संभवतः जयतसिंह भी उनमें से एक था, क्योंकि ११९६ ई० के युद्ध के बाद उसका नाम सुनने में नहीं आया।

१९. सामन्त सिंह—महाराज सामन्तसिंह के पाँच उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं जिनकी तिथियाँ ११९९ और १२०१ के बीच की हैं। जालोर के उदयसिंह ने १२०५ और १२५७ ई० के बीच किसी समय नाडोल पर अधिकार किया।

●

अध्याय ७

जालोर के चौहान : कीर्तिपाल से कान्हडदेव तक

१. कीर्तिपाल—कीर्तिपाल आल्हण का सबसे छोटा पुत्र था। वह चौहानों की जालोर शाखा का संस्थापक था। सून्धा उत्कीर्ण लेख में उसके संबंध में लिखा है कि वह 'नड्डूल-राजेश्वर' है। इसका अर्थ यह है कि वह नाडोल शाखा का राजकुमार था। संभव है कि इसमें यह भी संकेत हो कि किसी समय वह अपने पिता के साथ राजकाज में भाग लेता था, क्योंकि महाराजपुत्र कुमार सी के पुत्र अजय सी द्वारा दिए गए एक दानपत्र पर उसका अनुमोदन तथा हस्ताक्षर है। इस दानपत्र की तिथि ११६३ ई० है। राजा आल्हण और युवराज केल्हण ने ११६१ ई० में या उसके पूर्व उसको १२ गाँव दिए। जिसमें नड्डूलाई भी सम्मिलित था।

नाडोल के सिंहासन पर महाराजाधिराज केल्हण के बैठने के बाद कोई ऐसा लेख नहीं मिला है जिसमें उसका अनुमोदन या हस्ताक्षर जुड़ा हो। यह भी सूचना नहीं है कि उस समय वह किसी पद को सुशोभित करता रहा हो। इसके अतिरिक्त उसके जागीर का सोनाना ग्राम कुछ समय के लिए अनसीह नामक एक ठाकुर को दे दिया गया था। अतः प्रतीत होता है कि कीर्तिपाल और उनके भ्राता केल्हण के संबंध सुचारु नहीं थे। अतः कीर्तिपाल ऐसे उच्चाकांक्षी और निर्भीक व्यक्ति के लिए आवश्यक था कि वह एक नए राज्य की स्थापना करे। इस समय मेवार के क्षेत्र में राज्य-स्थापन करने का अवसर था, क्योंकि इसके शासक सामन्तसिंह ने अपने राज्य में तथा उसके बाहर अनेक शत्रु पैदा कर लिए थे। उसके राज्य के कुलीन जिनकी जागीरें उसने अपहृत कर ली थीं उसके विरुद्ध थे। गुजरात का चालुक्य अजयपाल उसका शत्रु था। अतः कीर्तिपाल ने जो नाडोल में अपनी स्थिति से असंतुष्ट था मेवार पर आक्रमण किया और सामन्त सिंह को भगा दिया। हो सकता है कि इसमें गुजरात के चालुक्यों की भी सहायता रही हो। मेवार के कुलीन सामन्तसिंह से असंतुष्ट तो थे किन्तु वे नहीं चाहते थे कि उनपर कोई बाहरी व्यक्ति आकर राज्य करे। अतः उन्होंने सामन्तसिंह के कनिष्ठ भ्राता कुमारसिंह को अपना नेता चुना और सिंहासन पर बैठने को कहा। कुमारसिंह कुशलराजनीतिज्ञ था। उसने चालुक्यों को

अपनी ओर मिला लिया और उनकी सहायता से कीर्तिपाल को मेवार की भूमि से बाहर किया।

इस घटना के पूर्व कीर्तिपाल चालुक्यों का मित्र तथा सहायक था। उसने ११७८ ई० में कासह्रद युद्ध में मुहम्मद घोरी की सेनाओं के विरुद्ध चालुक्यों की सहायता की थी। चालुक्य अपने शत्रु सामन्तसिंह की पराजय चाहते थे और उनकी यह आकांक्षा पूरी हो गई, किन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि कीर्तिपाल के समान उत्साही और उच्चाकांक्षी व्यक्ति मेवार का राजा हो। अतः उन्होंने कीर्तिपाल की सेवाओं को भुलाकर सामन्तसिंह के कनिष्ठ भ्राता कुमारसिंह को मेवार के सिंहासन पर बैठाया। अतः स्वाभाविक था कि कीर्तिपाल उसके विरुद्ध कार्य करे। कीर्तिपाल ने किराड़ु (किरात-कूट) पर अपना आधिपत्य जमाया जो चालुक्यों के अधीन एक राज्य था। उसने जाबालिपुर (जालोर) को विजय कर उसको अपने नए राज्य की राजधानी बनाया। चालुक्यों के अधीन इस पर परमार कुन्तपाल राज्य कर रहा था। परमार वीरनारायण सिवाना पर राज्य कर रहा था। नैणसी ने लिखा है कि दहियों ने जो परमारों के सेवक थे विश्वासघातपूर्वक जालोर और सिवाना को कीर्तिपाल के हाथों में समर्पण किया।

मूल्यांकन—कीर्तिपाल उत्साही, उच्चाकांक्षी, और अत्यंत सूझ-बूझ का व्यक्ति था। वह मेवार के पहाड़ी प्रदेश में राज्य स्थापित करने में सफल हुआ जो एक महान् उपलब्धि थी। परिस्थितिवश मेवार राज्य को छोड़ने के बाद उसने एक नए राज्य की स्थापना की जो महान् चालुक्य सत्ता के अधीन था। इसमें संदेह नहीं कि कीर्तिपाल अपने समय का एक सर्वोत्कृष्ट सेनापति था। उसने कासह्रद के घनघोर युद्ध में चालुक्यों के साथ मुहम्मद घोरी की सेनाओं का सफलतापूर्वक सामना किया। उसने मेवार, किराड़ु, जालोर और सिवाना पर सफलतापूर्वक आक्रमण कर उनको अपने अधिकार में किया। वह एक धर्मनिष्ठ हिन्दू था किन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति भी उदार था। उसने महावीर के जैनमंदिर के लिए वृत्तिदान की। उसकी मृत्यु ११८२ ई० के लगभग हुई। किन्तु उसकी कीर्ति बहुत दिनों बाद तक बनी रही। नैणसी ने जो सत्रहवीं शती के मध्य में था अपने ख्यात में लिखा है कि 'वह एक महान् राजपूत था।'

समरसिंह—समरसिंह कीर्तिपाल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। उसके समय में पील्वाहिका के लुटेरे दलों ने उपद्रव किए तथा 'विधिचैत्य आन्दोलन' ने जोर पकड़ा। विधिचैत्य आन्दोलन का उद्देश्य मंदिरों के आगन्तुकों में आचार-विचार संबंधी सुधार करना था। उदाहरणार्थ इन मंदिरों में सूत्रों के विरुद्ध आचरण करने वालों के कर्मकाण्ड नहीं किए जाते; मन्दिर साधुओं की सम्पत्ति नहीं है; रात्रि में मन्दिरों में

स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है; किसी जात-पांत का विशेषाधिकार स्वीकार नहीं किया जाता; मन्दिरों में पूजा करने वालों को ताम्बूल नहीं दिया जाता। समरसिंह इस आन्दोलन का समर्थक था।

समरसिंह विद्वानों का संरक्षक, दान, भवननिर्माणक, धर्मनिष्ट तथा प्रतिरक्षा के प्रति जागरूक था। उसने जालोर के सुवर्णगिरि (कनकाचल) पर विस्तृत प्रकोटों का निर्माण किया तथा उनमें अनेक प्रकार के यंत्र लगवाए, और उनमें भण्डार गृह और विद्याधरी प्रकार के दाँतेदार मोर्चे की दीवारों का निर्माण कराया। उसने समर-पुर नामक नगर का निर्माण कराया और अनेक उद्यान लगाए। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी उदयसिंह के सर्वप्रथम उत्कीर्ण लेख की तिथि १२०५ ई० है। अतः मृत्यु अवश्य ही १२०५ के पूर्व हुई होगी। उसकी राजधानी जालोर के संबंध में ताजुल म-आसिर के लेखक हसननिज़ामी ने लिखा है कि 'इस अत्यंत दृढ़ किले के फाटकों को आज तक कोई विजेता खोल नहीं सका।'

उदयसिंह— समरसिंह का पुत्र तथा उत्तराधिकारी उदयसिंह था। जिनपाल कृत खरतरगच्छपट्टावलि और स्वयं उदयसिंह के उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है कि उसने लगभग ५२ वर्ष राज्य किया। सून्धा उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उदयसिंह नड्डूल, जाबालिपुर मांडव्यपुर, वाग्भटमेरु, सूराचन्द, राटह्लद, खेड, रामसैन्य, श्रीमाल, रत्नपुर, सत्यपुर आदि जनपदों का स्वामी था। ये समस्त स्थान पहले गुजरात के चालुक्यों के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकांश जनपद उस समय चालुक्यों के हाथ से निकल गए जिस समय यादव सिंहन ताप्ती को पार कर भड़ौच के समीप की गुर्जर भूमि को विनष्ट कर रहा था। इसी समय उदयसिंह ने मेवार के गुहिलों, चन्द्रावती के परमारों, गोद्रहा और लाट के शासकों तथा स्वयं का एक शक्तिशाली संघ बना कर पछाड़ी से लवण्यप्रसाद के प्रदेश पर आक्रमण किया। लवणप्रसाद ने भड़ौच के सिंह और देवगिरि के सिंहन यादव से सन्धि की, और मारवाड़ संघ से युद्ध करने के लिए उसने तुरन्त उत्तर की ओर प्रयाण किया। युद्ध में लवण-प्रसाद ने उदयसिंह के सिर में घाव किया। किन्तु अन्ततः उदयसिंह और उसके मित्र-राज विजयी हुए। कीर्तिकौमुदी ने लिखा है कि लवणप्रसाद ने यह संधि इसलिए की कि इस युद्ध से उसके संबंधियों और जनता को बड़ा कष्ट हो रहा था। लवणप्रसाद के पुत्र वीरधवल ने इस संधि का पूर्ण पालन किया और उदयसिंह ने वीरधवल के ज्येष्ठपुत्र वीरम के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। इस मैत्री का परिणाम यह हुआ कि जब इलतुतमिश ने मेवार के कुछ भागों को लूटते और जलाते हुए गुजरात में प्रवेश करने का प्रयत्न किया तब उदयसिंह और उसके मित्र राज्यों ने वीरधवल की सहायता की। यह मैत्रीपूर्ण संबंध लगभग सोलह वर्ष तक बना रहा। वीरधवल की

मृत्यु के बाद जो १२३८ ई० में हुई उसके पुत्रों वीरम और वीसल में सिंहासन के गृह कलह हुई। इस संघर्ष में उदयसिंह ने अपने दामाद वीरम की सहायता नहीं की बल्कि वीसल का पक्ष ग्रहण किया और अपने पुत्र चाचिगदेव से उसकी हत्या करा दी। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने गरजते हुए गुर्जरपति वीरम की हत्या करा दी। प्रबंधकोश में लिखा है कि वीसल के मंत्री वस्तुपाल की सहायता से यह अचिन्त्य कार्य किया गया किन्तु यह सत्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि वस्तुपाल की मृत्यु के बाद कम से कम तीन वर्ष और वीरम जीवित रहा। इसके अतिरिक्त उदयसिंह और वीसल से अनिर्णायक युद्ध हुआ। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि गुर्जर राज्य के राजे अन्त तक उदयसिंह के लिए अजेय रहे।

उदयसिंह ने तुरुष्कों के दर्प का दलन किया। अपने शासन काल के आरंभिक वर्षों में उसने दिल्ली के कुछ प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाया उस समय आरामशाह, संभवत: इलतुतमिश दिल्ली पर राज्य कर रहा था। उसने नाडोल और मण्डोर पर अधिकार करके अपना पराक्रम दिखाया तथा मुसलमानों को जालोर के समीप परास्त किया। एक प्राचीन अपभ्रंश कविता में लिखा है कि असुरों (मुसलमानों) ने सुन्दर सरोवर से जो जल पिया था वह उनके (शोकग्रस्त) पत्नियों के नेत्रों से उदयसिंह द्वारा निकाला हुआ जल था। किन्तु इलतुतमिश इस पराजय का बदला लेने के लिए तुला हुआ था। जब वह दृढ़ता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया तो वह जालोर तक पहुँचना कोई हँसी खेल नहीं था। भोजन तथा जल के अभाव से सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा किन्तु इलतुतमिश बढ़ता गया और अन्तत: मरुस्थल राजधानी जालोर पहुँचा। उदयसिंह ने सन्धि की वार्ता चलाई और कर स्वरूप एक सौ ऊँट और दो सौ घोड़े भेजे। सुलतान ने इनको ग्रहण कर उदयसिंह के राज्याधिकार की पुष्टि की पुरातनप्रबंधसंग्रह के लेखक ने उदयसिंह की उपलब्धियों का अवमूल्यन करने की दृष्टि से लिखा है कि सुलतान के चले जाने के बाद उदयसिंह ने सुवर्णगिरि की दीवारों के पुन: निर्माण के लिए जो सुरंगों द्वारा क्षतिग्रस्त हो गई थीं ब्राह्मणों और मंदिरों से रुपया एकत्र किया।

इस सन्धि के लगभग पाँच वर्ष बाद इलतुतमिश ने राजस्थान पर पुन: आक्रमण किया और नागडा को लूटने के बाद गुजरात पर धावा बोला। धोल्का के वीरधवल बाघेल और उसके मंत्री वस्तुपाल ने एक संघ का संगठन किया जिसका सदस्य उदयसिंह भी था। मारवार के राजाओं—उदयसिंह, सोमसिंह, और धारावर्ष की तथा गुजरात की सम्मिलित सेनाओं का सामना करने का इलतुतमिश को साहस न हुआ और वह पीछे हट गया। इसके अतिरिक्त उसके सीमान्त पर खप्परखाँन के आक्रमण का संकट उपस्थित हुआ जो संभवत: ख्वारिज़मी जलालुद्दीन मंघबर्नी था।

इलतुतमिश ने १२२६ ई० में मन्डोर पर अधिकार किया किन्तु १२५७ ई० के पूर्व किसी समय उदयसिंह ने इस पर पुनः अधिकार कर लिया।

प्रतीत होता है कि उन दिनों की राजनीतिक उथल-पुथल में उदयसिंह ने कई युद्ध किए। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उदयसिंह ने सिन्धुराज का बध किया जो संभवतः सिन्धु का कोई साधारण राजा था उदयसिंह ने मेवाड़ के जैत्रसिंह को हराया, क्योंकि १२६९ ई० में गोडवाड तथा मेदपाट के कुछ भाग पर चौहानों का राज्य था।

मूल्यांकन—उदयसिंह जालोर शाखा का सबसे महान् चौहान राजा था। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा घोरियों और उनके सेनापतियों के भयंकर आक्रमण के सामने ठहरने में हिन्दू राज्य असमर्थ थे। सपादलक्ष का चौहान साम्राज्य और जालोर शाखा की मूल शाखा नाडोल राज्य समाप्त हो गए और कुतुबुद्दीन के आक्रमण और लूट के फलस्वरूप गुजरात के चालुक्य भीमदेव द्वितीय की शक्ति क्षीण हो गई। ऐसे अनुकूल समय में उदयसिंह ने सावधानी और विवेक से काम लिया। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के संभवतः थोड़े ही समय बाद उसने मारवार की पूर्वी और उत्तरी भागों में स्थित मुसलमान सैनिक अड्डों पर धावा करना आरंभ किया। मुसलमानों ने हिन्दुओं का जो लोहू बहाया था उसका उसने भयानक रूप से बदला लिया। उसने नादोल राज्य के अधिकांश अपहृत भाग पर पुनः अधिकार किया। उसके साहस और उत्साह के सामने इलतुतमिश की एक भी न चली। गुर्जर राजाओं तथा मेवार ने उससे मैत्री करना ही श्रेयस्कर और लाभदायक समझा। उस समय उत्तरी भारत में उससे अधिक शक्तिशाली राजा संभवतः और कोई न था।

उसका योग्य मंत्री यशोवीर—दुसाज उदय का पुत्र यशोवीर अत्यंत कुशल मंत्री था। संभवतः ११८८ ई० से १२२१ ई० तक वह इस पद पर रहा। उदयसिंह और धोलका के वघेला वीरधवल में जो सन्धि हुई उसमें भी इसका प्रमुख हाथ था। वह विद्वान्, सुसंस्कृत तथा जालोर की राजसभा का शिरोमणि था। सोमेश्वर ने उसके कवि-शक्ति की तुलना अभिनन्द, माघ और कालिदास से की है। वह पंडितों और कवियों का संरक्षक एवं स्वयं एक उत्कृष्ट कवि था। विद्वानों ने उसको 'सरस्वती-कण्ठाभरण' और 'कवीन्द्र बन्धु' कहा है। स्वयं उदयसिंह 'न्याय-हेतु-भरतमुख-महा-ग्रन्थतत्वार्थवेत्ता' था। डॉ० दशरथशर्मा ने 'भरत' शब्द से महाभारत का, और कीलहार्न ने भरत कृत नाट्यशास्त्र का अर्थ लिया है। सून्धा उत्कीर्ण लेख में उदयसिंह के वैभव का यशोगान किया गया है। उसके शासनकाल में जालोर की शक्ति अपने शीर्ष बिन्दु तक पहुँची। हिन्दू भारत के लिए उसने जो दीर्घकालीन पराक्रमपूर्ण और घनघोर युद्ध किए उनका प्रभाव जन-जन पर पड़ा।

चाचिगदेव—चाचिगदेव उदयसिंह का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। सून्धा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने धोल्का के वाघेल वीरधवल का बध किया; प्रताप सिंह को परास्त किया; संघ के रंग का अपहरण किया (संगस्य रंगापहः); वह भयंकर नहर रूपी पर्वत के लिए वज्र था। हो सकता है कि नहर कोई मुसलमान सेनापति रहा हो जिसको चाचिगदेव ने परास्त किया।

उसकी उपाधियाँ 'महाराजाधिराज' और 'महाराजकुल' थीं; रतनपुर उत्कीर्ण लेख में उसको 'महामण्डलेश्वर' राजा कहा गया है। वह स्वतंत्र राजा था जिसका सम्मान गुर्जरों ने किया। सुलतान नासिरउद्दीन महमूद और बलबन ने उसके साथ छेड़खानी नहीं की। स्पष्ट है कि वह एक शक्तिशाली राजा था।

चाचिगदेव उदार, दानी तथा धर्मनिष्ठ राजा था। वह दूसरे सम्प्रदायों के प्रति भी सहिष्णु था। अपने वंश की प्रशस्ति रचना के लिए उसने एक जैन यति को नियुक्त किया और देवपार्श्वनाथ के मंदिर निर्वाह के लिए एक गाँव दान किया। उसने श्रीमाल के ब्राह्मणों से लिए जाने वाले करों की छूट दी। अघटेश्वरि देवी के मंदिर के लिए एक मण्डप का निर्माण किया और अपराजितेष के मंदिर के लिए एक स्वर्ण-मय छत्री और ध्वजदंड तथा विग्रहादित्य की पूजा के लिए द्रव्य अर्पण किया।

उसके उत्तराधिकारी सामन्तसिंह के सर्वप्रथम ज्ञात उत्कीर्ण लेख की तिथि १२८२ ई० है। अतः चाचिगदेव की मृत्यु अवश्य ही उस तिथि के पूर्व हुई होगी।

सामन्तसिंह और कान्हडदेव—सामन्तसिंह के समय में दिल्ली के सुलतानों की शक्ति वृद्धि पर थी। फीरोज़ खलजी के समय १२९१ ई० में मुसलमान सेना जालोर राज्य के साञ्चोर नगर तक आ गई किन्तु चौहानों के सहायतार्थ सारंगदेव बाघेल के आ जाने से वह पीछे हट गई। फीरोज़ का हत्यारा अलाउद्दीन खलजी १२९६ ई० में दिल्ली के सिंहासन पर था। उसके जीवन की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी हिन्दू राज्यों को नष्ट करना। उसके विश्वस्त धर्मगुरुओं ने उसको परामर्श दिया कि वह हिन्दुओं के प्रति दास का व्यवहार करे। बयाना का काज़ी मुघिसुद्दीन हिन्दुओं के प्रति किए गए अत्याचारों को वैध और अल्प कठोर मानता था। उसकी धारणा थी कि मुसलमान स्वामियों के थूक को भी ग्रहण करने के लिए हिन्दुओं को अपना पूरा मुँह खोले रखना चाहिए। सामन्तसिंह ऐसे दुर्धर्ष शत्रु का सामना करने के लिए कान्हडदेव के हाथों में राज-काज सौंपा जो इस समय लगभग २५ वर्ष का नवयुवक था। संभवतः यह कार्य उसने जनता के परामर्श से किया।

अलाउद्दीन का आक्रमण—अलाउद्दीन ने १२९८ ई० में गुजरात को विजय करने और सोमनाथ के मंदिर को नष्ट करने की योजना बनाई। उसने कान्हड-देव के पास एक खिलअत भेजी, और अपनी इच्छा प्रकट की कि कान्हडदेव अपने

प्रदेश से खलजी सेनाओं को जाने दे। वीर कान्हडदेव के लिए स्वधर्म, सांसारिक सुख, राज्य, अपने प्राण से भी बढ़ कर था। अतः उसने अलाउद्दीन के दूत के द्वारा यह उत्तर भेजा कि 'तुम्हारी सेना प्रयाण करते समय गाँवों को लूटेगी; जनता को बन्दी बनाएगी; स्त्रियों का अपमान, ब्राह्मणों पर अत्याचार, और गौओं का बध करेगी, यह सब हमारे धर्म के विरुद्ध है। हम तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकते। अतः खलजी सेना ने उसके राज्य से होकर नहीं बल्कि मेवार से होकर प्रणय किया। अत्यंत भयंकर अंधड़ के समान इसने अपने रास्ते में पड़ने वाले प्रत्येक राज्य को, छोटे या बड़े, अधीन या स्वतंत्र सबको नीचा दिखाते हुए, संपूर्ण गुजरात और काठियावार को विजय किया, और जेठव, वला, बाजा और चूडासामा राजपूत के शौर्यपूर्ण विरोध के होते हुए भी सोमनाथ के मंदिर को नष्ट किया। लौटते समय अलाउद्दीन की विजयी सेना ने बिना आज्ञा और बिना कहे जालोर प्रदेश में यह कहते हुए घुस आई कि कान्हडदेव अपनी सामर्थ भर जो कर सकता हो करे। अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान की रक्षा के लिए इस ललकार को स्वीकार कर कान्हडदेव युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ। खलजी सेना जालोर से १८ मील दूर सकराना गाँव तक पहुँच गई। कान्हडदेव के मुख्यमंत्री जैत देवड़ा दूत बनकर खलजी सेनापति उलूग के पास गया और कहा कि इतने हिन्दुओं की हत्या और सोमनाथ की मूर्ति का अपहरण करने के बाद मेरे गढ़ के नीचे पड़ाव डालकर तुमने अच्छा नहीं किया है। क्या तुम नहीं जानते कि मैं राजपूत हूँ। जैत के प्रति दूतोचित सम्मान किया गया। उसने मुसलमान शिविर के निपुण निरीक्षण के अवसर को हाथ से जाने न दिया, और लौटते समय असन्तुष्ट नव-मुसलमान नेताओं—मुहम्मदशाह और उसके भ्राताओं से संपर्क स्थापित किया। इसके दो दिन बाद जैतदेवड़ा ने एक सुनियोजित धावा किया और दूसरी ओर नव-मुसलमानों द्वारा प्रेरित तथा उनके नेतृत्व में मुसलमान सेना में विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का मूल कारण यह था कि खलजी सेनापतियों ने सैनिकों से लूट का पाँचवाँ भाग वसूल करने के लिए लात, घूँसे तथा अन्य अनेक अत्याचार किए। वे उनसे सुवर्ण, रत्न तथा अन्य मूल्यवान् चीजें छीनने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। ये नव-मुसलमान न तो वंशागत मुसलमान थे और न दिल्ली सिंहासन के प्रति उनकी वंशागत निष्ठा ही थी। वे मात्र भाड़े के टट्टू थे, किन्तु उनमें अन्य सैनिकों और सेनापतियों की अपेक्षा अधिक आत्मसम्मान था। अतः अत्याचारों के कारण निराश होकर वे विद्रोह करने के लिए उद्यत हुए।

जैतदेवडा की टुकड़ी ने नसरतखाँ के भाई मलिक ऐजुद्दीन और अलाउद्दीन के एक भतीजे को मार डाला। उलूग खाँ प्राण लेकर भागा। संभवतः गुजरात के लूट का माल भी कान्हडदेव के राजपूतों के हाथ लगा, उन्होंने हजारों हिन्दू बन्दियों को

बन्धन मुक्त किया और सोमनाथ की मूर्ति को छुड़ाया जो 'धर्मनिष्ठ मुसलमानों से पद दलित किए जाने के लिए' दिल्ली ले जाई जा रही थी। यह मूर्ति पाँच टुकड़ों में थी। कान्हड़देव ने एक-एक टुकड़े प्रभास, वागड, आबू, जालोर तथा अपने उद्यान में प्रतिष्ठित किया।

यह पराजय अलाउद्दीन को बहुत खटकी। रणथम्भोर, चित्तौर, उज्जैन, माण्डू, धारा और चंदेरी के किलों को विजय करने के बाद खलजी सेना ने १३०५ ई० में पुनः जालोर पर घेरा डाला। इस समय सामन्तसिंह की संभवतः मृत्यु हो चुकी थी। कान्हडदेव किंकर्त्तव्यविमूढ़ था कि खलजी सेनापति एनुलमुल्क मुल्तानी ने कान्हडदेव को समझा-बुझा कर दिल्ली जाने और अपना नाम मित्र राज्यों की सूची में लिखाने के लिए तैयार किया। अतः वह यह देखने के लिए दिल्ली गया कि क्या वहाँ वह प्रतिष्ठापूर्वक शान्ति से रह सकता है। किन्तु उसको शीघ्र ही प्रतीत हुआ कि ससम्मान शान्ति असंभव है। अलाउद्दीन ने अपनी राजसभा में गर्व किया कि कोई भी भारतीय शासक उसकी सेना के सामने ठहर न सका। कान्हडदेव की रजपूती के लिए यह एक ललकार थी। वह तुरन्त जालोर से यह कहता हुआ चला आया कि वह ललकारेगा और यदि उसकी विजय न हुई तो कम से कम वह यह बतायेगा कि किस प्रकार मरना होता है।

खलजी सेना ने जालोर के विरुद्ध पुनः प्रयाण किया। पहले उसने सिवाना पर अधिकार किया जो जालोर से लगभग तीस मील दूर था। कान्हडदेव का भतीजा सातलदेव वहाँ का राज्यपाल था। उसने तथा कान्हडदेव की एक चौहान टुकड़ी ने खलजी सेना में भगदड़ मचा दी, जिसमें उसके सेनापति नाहर मलिक और खाण्डाधर भोज मारे गए और उनका बहुत-सा सामान पीछे छूट गया। मास प्रति मास वर्ष प्रति वर्ष अलाउद्दीन मुसलमान सेनाओं को भेजता रहा। किन्तु 'किले की आधी ईंट भी खिसक न सकीं। अन्त में जून १३१० ई० में स्वयं अलाउद्दीन ने बड़ी से बड़ी सेना जो उसने अब तक एकत्र की थी लेकर उसने सिवाना के विरुद्ध प्रयाण किया। सातलदेव ने अपनी जन्मजात उर्जा और साहस से अलाउद्दीन का सामना किया। उसने घिरी हुई अपनी सेना के सैन्य दलों को बारंबार शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए भेजा, किले में लगे हुए यंत्रों द्वारा खलजी सेना पर पत्थरों से मार की, और उन सीढ़ियों को गिरा दिया जो खलजी सेना किले पर चढ़ने के लिए लगाती थीं। अलाउद्दीन छल-बल या शक्ति से सिवाना किले को विजय करने पर तुला था। उसने किले के शीर्ष विन्दु तक पहुँचने के लिए पाशिब बनाई और उस पर से भायला नामक विश्वासघाती के निर्देश पर सिवाना किले के मुख्य सरोवर को गो-रक्त से अपवित्र किया। पानी के अभाव में राजपूत स्त्रियों ने भयानक जौहर कृत्य किया, और अपने

प्राणों की चिन्ता न कर राजपूत सैनिकों ने खलज़ी सैनिकों को एकत्र होने दिया। वे मारने और मरने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने अपने माथों पर चन्दन लगाए, गलों में तुलसी की मालाएँ धारण कीं और अपने कुलदेवताओं की पूजा कर और अन्तिम युद्ध करने के लिए वे वेग से किले के बाहर आए। उनकी वीरता और साहस के संबंध में अमीर खुशरो ने लिखा है कि 'उनके सिर टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए किन्तु वे भागे नहीं। एक टुकड़ी सिवाना से जालोर जाने के लिए चली किन्तु रास्ते में छिपे खिलजी सैनिकों ने उसको मार डाला। सातलदेव का शव युद्ध-क्षेत्र में पड़ा मिला।

अलाउद्दीन ने मारवाड़ देश को लूटने, नष्ट और अधीन करने के लिए आदेश दिए। सेना ने निष्ठापूर्वक तथा पूर्णरूपेण इस काम को करने का प्रयास किया। एक टुकड़ी ने बाहडमेर को लूटा और नष्ट किया और सांचोर या सत्यपुर के महान् महावीर मंदिर को विनष्ट किया। इस टुकड़ी ने भीनमाल नगर में आग लगा दी जो वैदिक विद्या और संस्कृति का मुख्य केन्द्र था और बन्दी रूप में हजारों ब्राह्मणों का अपहरण किया। पद्मनाभ ने लिखा है कि यह नगर मारवाड़ के चौहानों की ब्रह्मपुरी थी। मुसलमानों के इन घोर अत्याचारों से दूर-दूर तक हाहाकार और असंतोष व्याप्त हुआ। अतः राजस्थान तथा बाहर के बाघेल, सोलंकी, राठोर, परमार आदि वंश अपने घोड़ों, साज-सामानों और हथियारों सहित अपने देश, धर्म, संस्कृति, प्राणों एवं गृहस्थियों की रक्षा के लिए कान्हडदेव के आह्वान पर जालोर में एकत्र हुए और कान्हड देव की आज्ञा से जहाँ-तहाँ मुसलमान सैनिकों को नष्ट करने के लिए वे रेवन्ती और धाणसा के रास्ते से तेजी से आगे बढ़े और खुडाला में उनकी शत्रु से मुठभेड़ हुई। उन्होंने मुसलमान सेना पर चोट की और अस्त-व्यस्त रूप में मुसलमान सेना के दल के दल भागे और पीछे अपने-साज सामान, हाथी तथा भीनमाल, सत्यपुर, तथा अन्य स्थानों पर बन्दी किए गए शत्रुओं को छोड़ते गए।

किन्तु यह विजय पराजय में परिणत हो गई, क्योंकि उन्होंने मुसलमान सेना का पीछा न किया और इस सेना के दो प्रमुख सेनापति देवडा सरादर जैत और महीप कान्हडदेव को विजय की सूचना देने के लिए अपनी लूट तथा सैनिकों के साथ जालोर भागे और कुछ अन्य प्रमुख कुलीन व्यक्ति अमावस्या होने के कारण अपने चार हजार राजपूत सैनिकों के साथ कवच आदि उतार कर समीप के एक सरोवर में नहाने लगे। किसी ने हर्षातिरेक में मुसलमानों से छीने हुए नगाड़े को पीटना शुरू किया। मलिक नायब के नेतृत्व में एक टुकड़ी शिकार खेलने के लिए जंगल में गई हुई थी और जब वह लौट रही थी नगाड़े की आवाज सुन कर उसने यह समझा कि उसके बुलाने के लिए यह नगाड़ा पीटा जा रहा है। जब वे युद्ध-क्षेत्र में आए तो देखा कि मुसलमान शिविर का पता नहीं है और उसके स्थान पर वहाँ मुसलमान सैनिकों के शव पड़े हुए

हैं उनके खुशी का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि समीप के सरोवर में हजारों हिन्दु सैनिक आनन्द से स्नान कर रहे हैं। मुसलमान सेना उन पर टूट पड़ी एक भी सैनिक युद्ध क्षेत्र से नहीं भागा और किसी भी सैनिक को सुरक्षा प्राप्त न हुई। चार हजार राजपूत अपने नेताओं समेत मारे गए। कान्हडदेव को सूचना देने के लिए एक भी व्यक्ति न बचा।

इसके बाद मुसलमान सेना ने जालोर पर घेरा डाला। लगातार सात दिनों तक रात्रि में वीरमदेव और मालदेव घिरे हुए किले से बाहर आकर मुसलमान सेना पर धावा बोलते रहे, खाईंयों को मारते रहे, और मुसलमान शिविर की रक्षा के लिए एकत्र किए हुए काष्ठ अम्बारों को जलाते रहे। आठवें दिन संभवत: भयंकर अंधड़ के कारण बड़े जोरों से आग भड़की। अत: खलजी सेना की स्थिति डाँवाडोल हुई और वह दिल्ली को लौट गई। कान्हडदेव के राजपूतों ने एक मुसलमानी टुकड़ी पर आठ दिशाओं से आक्रमण किया और उसके सेनापति शम्स खाँ तथा उसकी पत्नी को जो अलाउद्दीन की लड़की थी बन्दी बना लिया। अत: अलाउद्दीन ने एक सुसज्जित और महती सेना लेकर जालोर के विरुद्ध प्रयाण किया। कान्हडदेव ने अलाउद्दीन की सेना का अवरोध करने के लिए दो राजपूत सेनाओं को भेजा। एक का सेनापति मालदेव था और दूसरे का वीरम देव।

इस बार अपने आवागमन की सुरक्षा की दृष्टि से मुसलमान सेना ने उन प्रदेशों को भलीभाँति रौंदा। जिधर से उनकी सेना प्रयाण कर रही थी और अन्त में उनकी सेना जालोर किले की दीवार तक पहुँच गई। उन्होंने किले में आने जाने के सब रास्तों को रोक दिया जिससे कि किले के सैनिक क्षुधा से पीड़ित होकर समर्पण करने को लाचार हों। मालदेव ने दिल्ली से आती हुई अधिक बलनों को पीड़ित करने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु अधिक बलन आते रहे और अन्त में अलाउद्दीन ने उसको पीछे हट कर वनाद्रा जाने को विवश किया।

किले के अन्दर की दशा पर्याप्त खराब थी। इसके जलाशयों का जल सूख रहा था। खाद्य पदार्थों की कमी हो रही थी किन्तु समय से जल वृष्टि होंने के कारण तथा महाजनों द्वारा भण्डारों को भर दिये जाने के कारण संकट टल गया। अलाउद्दीन की शक्ति असफल रही। अत: उसने विश्वासघात का सहारा लिया। उसने बीका नामक एक दहिया राजपूत को जालोर का राजा बना देने का प्रलोभन दिया। उसने मुसलमानों को एक कठिन और अप्रचलित रास्ते से ले गया, जिसको कि प्रीत रक्षकों ने बिना प्रतिरक्षा किए यह ख्याल कर छोड़ दिया था कि शत्रु को यह रास्ता कभी ज्ञात न होगी और वे इधर से नहीं आवेंगे। विश्वासघाती को अपने विश्वासघात का फल शीघ्र हो उठाना पड़ा। उसकी ही पत्नी हीरा देवी ने उसको मार डाला और तुरन्त

कान्हडदेव के पास सूचना भेजी। किन्तु अब किले का भंग होना अवश्यंभावी था। जैतदेवडा, अर्जुनबडवाल जैतउलीचा, लूण'करण'मोलहण आदि कान्हडदेव के सामन्तों ने दुश्मन को स्थानच्युत करने के लिए अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। किन्तु वे शत्रु को स्थानच्युत नहीं कर सके। पाँचवें दिन मुसलमान कान्ह स्वामी के मन्दिर तक पहुँच गए। कान्हडदेव की वीर राज्ञियाँ पहले ही जौहर की शिखाओं में अपने को भस्म कर चुकी थीं। अब स्वयं ही कान्हडदेव अपने वीर सामन्तों के साथ पूर्ण राजपूती आन, बान, और शान के साथ अन्तिम युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए। ५० सामन्तों ने अपने अधीश्वर के प्राणों की रक्षा करते हुए युद्ध क्षेत्र में अपने प्राणों को अर्पण किया और अन्त में वीर कान्हडदेव की मृत्यु हुई।

मूल्यांकन—कान्हडदेव चौहान अपने वंश का अन्तिम स्वतंत्र शासक था। वह चरित्रवान् व्यक्ति था। उसमें नेतृत्व का गुण था। उसके राज्य की प्रजा ने संकट काल में उसका साथ दिया जबकि यह ज्ञात था कि प्रतिरक्षा व्यर्थ है। सब जाति की महिलाओं ने जौहर में अपने को भस्म किया। मात्र एक दिन में १५८४ अग्नि चिताएँ जलाई गईं। वह अलाउद्दीन के विशाल साधनों के सामने भी अन्त तक टिका रहा। राजपूती शौर्य और साहस उसमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। अपनी मृत्यु के बाद वह विष्णु का अवतार, दुष्टों का संहारक और नैतिक व्यवस्था का संरक्षक माना गया। उस समय के समाज में राजनीतिक एकता का अभाव था जिसके कारण मुसलमानों ने एक एक करके समस्त स्वतंत्र भारत को निगल लिया।

इस पराजय के फलस्वरूप हजारों चौहानों ने देवड़ा वंश के लावण्यकर्ण के राज्य में शरण ली। अचलेश्वर उत्कीर्ण लेख (१३२० ई०) सूचित करता है कि जब असुरों (मुसलमानों) ने क्षत्रियों का नाश किया तो वह अपने गोत्रियों तथा उनकी भूमि की रक्षा में तत्पर हुआ ('नीते क्षयं क्षत्रवरेऽसुरैर्यः स्वगोत्रगोपाल परायणोऽभूत्)।

खण्ड ७

चालुक्य वंश

अध्याय | १

चालुक्य वंश की उत्पत्ति

गुजरात के मूलराज के राजवंश का नाम चालुक्य था। बादामी, वेंगी और कल्याणी के राजवंश चालुक्य या चलुक्य के नाम से विख्यात् थे। इनके अतिरिक्त लगभग बीस अन्य राजवंश भी थे, जो अपने को चालुक्य, चुलिक या चालुक्य कहते थे। उपर्युक्त राजवंशों की सामान्य उत्पत्ति थी या नहीं इसके संबंध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि निश्चित परिणाम पहुँचने के लिए पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं।

साधरणतया चालुक्य एक राजवंश का नाम था किन्तु पृथ्वीराज विजय में चुलुक्य शब्द का एक उपजाति के अर्थ में प्रयोग हुआ है। टीकाकार ने चलुक्यान्तम् का अर्थ जनविशेषाणाम् लिखा है, और इसकी पुष्टि कुछ अन्य स्रोतों से होती है।

उपाख्यान—कुमारपाल के शासन के दो उत्कीर्ण लेखों में वर्णन है कि चालुक्यों की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक (जल-पात्र) से हुई। इनमें से वदनगर-प्रशस्ति का कथन है कि दनु के पुत्रों से रक्षा के पाने के लिए देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। उस समय ब्रह्मा संध्या करने के लिए आसन पर बैठे हुए थे। उन्होंने गंगाजल से भरे हुए चुलुक (पात्र) में चालुक्य नामक वीर की उत्पत्ति की, जिसने अपने कीर्त्ति-प्रवाह से त्रिलोक को पवित्र किया। वह एक जाति का प्रवर्तक हुआ जो चालुक्य नाम से विख्यात हुई।

मेरुतुंग ने प्रबन्ध चिन्तामणि में द्वयाश्रयकाव्य के व्याख्याकार अभयतिलक गणि के उद्धृत किए हुए पद को दोहराया है जिसका सारांश है कि चालुक्यवंश संध्या-कृत्य के समय किए हुए आचमन से उत्पन्न हुआ है। बालचन्द्र सूरि ने अपने वसन्त-विलास में लिखा है कि प्रथम चालुक्य की उत्पत्ति राक्षसों का विनाश करने के लिए की गई थी। उपर्युक्त ग्रन्थकारों के बाद जयसिंह सूरि हुआ जिसने अपने कुमारपाल भूपाल चरित्र में लिखा है कि चालुक्य चुलुक्य के वंशज हैं जिसने अगणित शत्रुओं का विनाश कर मधुपद्म को अपनी राजधानी बनाई।

बिह्लण ने अपने विक्रमांक देव चरित में वर्णन किया है कि एक बार इन्द्र ने

ब्रह्मा से प्रार्थना की कि एक योद्धा की उत्पत्ति कीजिये । उस समय ब्रह्मा संध्यानुष्ठान में लगे हुए थे उन्होंने अपने चुलुक के जल से उसे उत्पन्न किया जिससे एक राजवंश चला जिसमें हारीत और मानव प्रसिद्ध राजा हुये ।

इस तरह हम देखते हैं कि जयसिंह सूरि के अतिरिक्त अन्य सब ग्रंथकारों ने पौराणिक कहानियों का अभिकथन किया है, क्योंकि उस युग में राजवंशों की उत्पत्ति किसी पौराणिक या महाकाव्य के वीर पुरुष से मानने की सामान्य प्रथा थी जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

चारण कथाएँ—चालुक्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चारणों ने जो कथायें कहीं हैं वे भी कल्पनात्मक हैं । चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो में वर्णन है कि वशिष्ट ने राक्षसों के संहार के लिये प्रतिहार, चालुक्य, परमार और अन्ततः चाहमान की उत्पत्ति की, जिन्होंने राक्षसों का बध किया । ये चारण कथायें अग्निकुल कथा के नाम से विख्यात् हैं जिसको जैक्शन, कैम्पबेल, इन्द्रजी, और डी० आर० भंडारकर ने स्वीकार किया है । किन्तु बूलर, श्यामल दास, ओझा, और हलधर ने अनेक प्रमाणों से पृथ्वीराज रासो की इस कथा को अतैतिहासिक माना है, क्योंकि रासो का यह कथन कि अनंगपाल तोमर पृथ्वीराज का पितामह था गलत है; इसी तरह रासो का यह कथन है कि मेवाड़ के राणा समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहन से विवाह किया और मुइजुद्दीन से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त किया बिलकुल असत्य है । रासो का यह लिखना कि पृथ्वीराज ने भीम द्वितीय का बध किया तथ्य नहीं है । चालुक्य अभिलेखों और गुजरात के इतिवृत्त लेखकों ने अग्निकुल की कथा नहीं लिखी है । बीकानेर फोर्ट लाइब्रेरी के रासो में उपर्युक्त असत्य बातों की चर्चा नहीं है । यह रासो रासो का लघुतम एवं प्राचीनतम संस्करण है उसमें अग्निकुल उत्पत्ति की भी चर्चा नहीं है । रासो के इस संस्करण में चाहमानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि 'ब्रह्मा के यज्ञ से आदि वीर पुरुष चौहान मनिकराय उत्पन्न हुआ' ।

चालुक्य और गूर्जर—डा० भण्डारकर एक अन्य लम्बे लेख में इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि चालुक्य गूर्जर थे जो विदेश से आये थे । भोज, दण्डिन और दण्डिन के टीकाकार तरुण वाचस्पति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चालुक्यों के आगमन के बहुत पूर्व काल से गुजरात में गूर्जर अपभ्रंश का प्रचलन था । सबन-वेलगोला जैत्यलेख में लिखा है कि राष्ट्रकूट राजाकृष्ण तृतीय ने गुजरात के उत्तरी प्रदेश को जीतने के बाद गूर्जरपति का विरुद धारण किया । स्पष्ट है कि चालुक्य राजे गूर्जरपति इसलिए कहलाते थे कि वे गूर्जर प्रदेश गुजरात पर राज्य करते थे ।

सोमेश्वर ने अपने सुरथोत्सव नामक ग्रन्थ में मूलराज को 'चालुक्य-भूपाल-कुल' और 'गूर्जरक्षिति-भुज' कहा है । स्पष्ट है कि मूलराज चालुक्य वंश का था और

गूर्जर प्रदेश पर राज्य कर रहा था। स्पष्ट है कि गुजरात नाम इसलिए नहीं पड़ा कि इसका दीर्घकालीन सम्पर्क मूलराज के वंश से था।

गूर्जरत्रा और गुजरात—द्व्याश्रय के एक श्लोक की टीका करते हुए अभयतिलक गणि ने गूर्जरत्रा के 'अत्र' शब्द का अर्थ देश लिखा है जो सपादलक्ष के दक्षिण पश्चिम की ओर का पश्चिमी प्रदेश है। अब्दुलफिदा ने १०३७ ई० में लिखा था कि सोमनाथ गुजरात में है। इससे स्पष्ट है कि गुर्जरत्रा गुजरात का एक भाग था।

मूलराज के पूर्वज—मेरुतुंग ने अपने प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि मूलराज राजि का पौत्र और मुंजल देव का पौत्र था जो भूयराज का वंशज था। भूयराज कान्यकुब्ज के कल्याणकटक का रहने वाला था। किन्तु जयसिंह सूरी का कथन अधिक विश्वसनीय है जिसकी कुछ पुष्टि एक उत्कीर्ण लेख से होती है। उसमें लिखा है कि चालुक्य वंश का प्रवर्तक चालुक्य नामक एक योद्धा था जिसने अनेक शत्रुओं को नष्ट कर मधुपद्म में अपनी राजधानी स्थापित की। उससे चालुक्य नाम का वंश चला जिसमें सिंह विक्रम नामक राजा उत्पन्न हुआ जिसने समस्त विश्व को ऋणमुक्त किया और अपना सम्वत् चलाया। उसी वंश में मूलराज का पिता राजि हुआ। महामहोपाध्याय मिराशी का विचार है कि मधुपद्म मधुवेणि नदी पर स्थित था किन्तु डॉक्टर मजुमदार ने मधुपद्म को मथुरा मान कर यह लिखा है कि राजि गुजरात के बाहर सम्भवतः मथुरा से आया था।

●

अध्याय | २

मूलराज प्रथम
(९४१-९९६ ई०)

राज्यारोहण—मूलराज गुजरात के चालुक्य वंश का संस्थापक था। वह 'नवोदित सूर्य के समान देदीप्यमान था' उसने अपने शौर्य से मामा चापोत्कट राजा सामन्तसिंह के प्रभुत्व का विस्तार किया। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि वह अपने मद्यप मामा सामन्तसिंह की हत्या कर सिंहासन पर बैठा। मूलराज के एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने सरस्वती नदी से प्रच्छालित प्रदेश को अपने बाहुबल से जीता। इससे प्रतीत होता है कि राज्य हस्तांतरण शान्तिपूर्ण नहीं था। हेमचन्द्र ने मूलराज के पराक्रमों का छः सर्गों में वर्णन किया है। किन्तु वह तथा कीर्तिकौमुदी का ग्रन्थकार सोमेश्वर मूलराज के पूर्वजों के तथा उसके राज्यारोहण के संबंध में मौन हैं। ये दोनों ही मूलराज की सभा के राज कवि थे। स्पष्ट है कि वे अपनी प्रशस्तियों में इस अरुचिपूर्ण तथ्य का उद्घाटन करना नहीं चाहते थे कि मूलराज अपने मामा की हत्या करके सिंहासन पर बैठा है। वड़नगर प्रशस्ति में लिखा है कि 'श्री मूलराज ने अत्यंत हल्के करों से जनता का स्नेह प्राप्त किया। उसने चापोत्कट राजकुमारों की लक्ष्मी को अपने सम्बन्धियों, ब्राह्मणों, भाटों और सेवकों के समूह के लिए भोग्य वस्तु बनाया तथा चापोत्कट राजकुमारों को इच्छानुसार बन्दी बनाया। सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ सुरथोत्सव में लिखा है कि राजशक्ति प्राप्त करने के बाद मूलराज ने सोल को अपना कुलपुरोहित बनाया। नये राज्यधुरोहित की नियुक्ति, प्रजा पर करों का लघु भार, चापोत्कटों की लक्ष्मी का ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, भाटों और सेवकों में वितरण प्रकट करता है कि वह राजसिंहासन का अपहर्ता था, विजेता नहीं।

राज्य विस्तार—प्रतीत होता है कि जब मूलराज सिंहासन पर बैठा तब विस्तार उसके अधीन सारस्वत-मण्डल था किन्तु उसकी मृत्यु के समय उसके राज्य का लाट से लेकर अर्बुदाचल तक था और यह शक्तिशाली तथा सुगठित था।

सौराष्ट्र और कच्छ पर आक्रमण—हेमचन्द्र के वर्णन से प्रतीत होता है कि सौराष्ट्र का राजा ग्राहरिपु मूलराज का मण्डलिक था जिस पर मूलराज ने नाम मात्र के कारण की आड़ में आक्रमण किया और उसको नष्ट किया। कीर्तिकौमुदी,

वसंत विलास और सुकृत संकीर्त्तन में उल्लेख है कि मूलराज ने कच्छ-भूपाल लक्ष को पराजित किया। यह नहीं कहा जा सकता कि इन विषयों के फलस्वरूप मूलराज ने सौराष्ट्र और कच्छ को स्थायीरूप से अपने राज्य में मिला लिया। क्योंकि आगे चलकर मूलराज के वंशजों को सौराष्ट्र और कच्छ के राजाओं से युद्ध करना पड़ा। स्वयं मूलराज ने कच्छ के एक किले में शरण ली। प्रतीत होता है कि वह कुछ दिनों के लिए सोमनाथ के समीप किसी स्थान पर ठहरा था, क्योंकि मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि प्रति सोमवार को सोमनाथ के दर्शन के लिए जाता था। संभव है कि वह सौराष्ट्र और कच्छ की शक्ति को पददलित करने में सफल हुआ हो, और उनके कुछ भागों पर अधिकार किया हो।

शाकम्भरी के चाहमानों का आक्रमण—मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि सपादलक्ष के राजा तथा लाट के राजा बारप ने एक ही समय में मूलराज पर आक्रमण किया। उसके मन्त्रियों ने उसको कन्था दुर्ग में शरण लेने की सम्मति दी। उसने उस किले में शरण ली। इस किले का तादात्म्य कच्छ के कन्थकोट किले से किया गया है। विद्वानों ने शाकम्भरी के चाहमान राजा का तादात्म्य विग्रहराज द्वितीय से किया है। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि विग्रहराज भृगुकच्छ तक बढ़ता गया और वहाँ उसने देवी आशा पुरि का एक मंदिर बनवाया। प्रतीत होता है कि मूलराज ने चाहमान राजा को खरीद लिया। यह भी सम्भव है कि विग्रहराज ने बारप के विरुद्ध मूलराज के अभियान में साथ दिया हो। जिससे कि बारप के पराजय के बाद विग्रहराज भृगुकच्छ तक सरलता से चला गया।

लाट प्रदेश की विजय—मेरुतुङ्ग के अनुसार बारप तिलिङ्ग राजा का सेनापति था। प्रतीत होता है कि ९७३ ई० में राष्ट्रकूट कोक्कल को पराजित करने के बाद पश्चिमी चालुक्य राजा तैल द्वितीय ने बारप को अपना मण्डलिक बनाया और उसके प्रभार में लाट प्रदेश को रखा। समकालीन इतिवृत्त लेखकों ने लिखा है कि मूलराज ने बारप को पराजित किया और उसके प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित किया।

मालवा के परमारों से युद्ध—उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि मुंज ने लाट-निवासियों पर विजय प्राप्त की। प्रतीत होता है कि लाट प्रदेश को विजय करने के बाद मूलराज की मुठभेड़ परमार राजा वाक्पति से हुई। मुंज के राजकवि पद्मगुप्त ने लिखा है कि मालव राजा की चरण-धूलि के एक कण को प्राप्त करने के लिए गूर्जर राजा मारवाड़ के जंगल में अनेक प्रकार की तपस्याएँ कर रहा है—उसने भोजन, जल और स्त्रियों का संग छोड़ दिया है तथा अन्य अनेक तपस्याएँ कर रहा है।

राष्ट्रकूट राजा धवल के बीजापुर उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि धवल ने

एक गूर्जर राजा की सेना को शरण दी, जब मुंजराज ने मेदापट के आघाट को नष्ट किया। डॉ० अशोक कुमार मजुमदार ने लिखा है कि ९४६ ई० तक उज्जैन गूर्जर—प्रतिहारों के हाथ में था। किन्तु ९७३-९७४ ई० में वह परमारों के हाथ में था। क्योंकि उसी वर्ष मुंज ने उज्जैन से एक दानपत्र निःसृत किया। मुंज की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए पद्मगुप्त ने मुंज को 'उज्जयिनी-भुजङ्ग' कहा है। अतः प्रतीत होता है कि मुंज ने चालुक्य मूलराज का नहीं बल्कि, उज्जैन के किसी गूर्जर प्रतिहार राजा का बध किया।

आबू पर विजय—धवल के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने धरणीवराह राजा को आश्रय दिया जब मूलराज ने उसको उसके राज्य के बाहर खदेड़ा। यह उत्कीर्ण लेख ९९७ ई० में निःश्रृत किया गया था। अतः स्पष्ट है कि मूलराज ने आबू से धरणीवराह को उस तिथि के पूर्व खदेड़ा होगा। सम्भव है कि बाद को मूलराज ने उसको अपना मण्डलिक बनाया हो क्योंकि धरणीवराह का पौत्र मूलराज के पौत्र का मण्डलिक था।

कलचुरियों से युद्ध—बिल्हरी चेदि उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि कलचुरि राजा युवराज ने लाट की नारियों के ललाटों को अलंकृत किया। सम्भवतः इसका आशय है कि युवराज ने लाट प्रदेश पर धावा किया था। इसी उत्कीर्ण लेख में यह भी लिखा है कि युवराज के पुत्र लक्ष्मणराज ने समुद्र में स्नान करके सोमेश्वर की पूजा की। कलचुरी राजा लक्ष्मीकर्ण के गोहर्वा दानपत्र में उसको लाट और गूर्जर के राजाओं को विजय करने का श्रेय दिया गया है। सम्भाव्यतः लक्ष्मणराज मूलराज का समकालीन था। सम्भव है कि सोमनाथ जाने के पूर्व उसने मूलराज को हराया हो।

राज्यविस्तार—उत्कीर्ण लेखों से प्रतीत होता है कि ,उसके राज्य में वीरम ग्राम, चनसन, पटन और मेहसन तालुका सम्मिलित थे। बलेरा पट्टों से स्पष्ट है कि सानचर उसके राज्य में सम्मिलित था। दक्षिण में संभवतः नर्मदा तक संपूर्ण लाट प्रदेश उसने विजित किया था। प्रतीत होता है कि उसका राज्य उत्तर में सानचर से दक्षिण में नर्मदा तक था। संभवतः सौराष्ट्र और कच्छ के कुछ भाग उसके राज्य में थे। अणहिलपाटक उसकी राजधानी थी।

मूल्यांकन—मूलराज ने जनहित के अनेक कार्य किए। श्रीधर के देवपट्टन-प्रशस्ति में लिखा है कि उसने शरणार्थी-गहों, विद्यालयों मंदिरों, अन्न-सत्रों, बाजारों, नगरों, ग्रामों, प्याऊशालाओं, विशाल कक्षों, चौकोर और गोल जलाशयों और कूपों का निर्माण किया तथा मूलराज द्वारा की हुई दान वस्तुओं और उनकी देख-रेख करने के लिए अधिकारी नियुक्त किए। उसने जनता के कष्टों को दूर करने के लिए अनेक

उपाय किए। उसने भूमि कर को कम तथा स्थायी किया जिससे कि कृषकों की आर्थिक दशा की उन्नति हुई। उसने सोल को अपना कुल पुरोहित नियुक्त किया। उसका एक मंत्री वीर नामक एक चापोत्कट था। स्पष्ट है कि वह कुशल प्रशासक था। रत्नमाला के लेखक के अनुसार मूलराज छली दृढ़प्रतिज्ञ किन्तु कामी और कंजूस था। उसने चामुण्डराज को ९७६ ई० में युवराज नियुक्त किया और बाद को उसका अभिषेक कर तथा उसके हाथों में संपूर्ण राजसत्ता सौंपकर मूलराज ने सरस्वती के तट पर श्री स्थल या सिद्धपुर में एक चिता पर बैठकर अपने जीवन को समाप्त किया।

२. चामुण्डराज—मूलराज का पुत्र चामुण्डराज संभवत् ९९६-९७ ई० में गद्दी पर बैठा। प्रतीत होता है जिस समय वह सिंहासन पर बैठा उसकी आयु पर्याप्त थी। क्योंकि युवराज के रूप में वह ९७६ ई० से भूमिदान पत्रों को निःसृत कर रहा था। हेमचन्द्र ने मूलराज के शासन काल में बारप को हराने का श्रेय चामुण्ड को दिया है। प्रतीत है कि उसने अपने पिता के शासनकाल में इस युद्ध का नेतृत्व किया।

सिन्धुराज से युद्ध—मालवा का परमार सिन्धुराज चामुण्डराज का समकालीन था। सिन्धुराज के राजकवि पद्मगुप्त ने लिखा है कि सिन्धुराज ने हूणों और केरलों को हराया और वागड, लाट, और मुरल के निवासियों पर विजय प्राप्त की। दक्षिणी गुजरात लाट कहलाता था। वादनगर-प्रशस्ति ने वर्णन किया है कि चामुण्डराज की सेनाओं को दूर से ही देखकर सिन्धुराज अपनी गज सेनाओं के साथ ऐसे कायरतापूर्ण ढंग से पीछे हटा कि उसने अपनी समस्त सुप्रतिष्ठित कीर्ति खो दी। सिन्धुराज की इस असाधारण पराजय से आबू और मेवाड़ में परमारों के प्रभाव में क्षति पहुँची।

लाट—प्रतीत होता है कि जब सिन्धुराज के आक्रमण के फलस्वरूप चामुण्ड ने लाट से अपनी सेना हटा ली तो पश्चिमी चालुक्यों ने लाट पर अधिकार कर लिया और बारप के पुत्र गोग्गिराज को वहाँ के सिंहासन पर बैठाया। गोग्गिराज के पुत्र कीर्तिपाल ने अपने उत्कीर्ण लेख में अपने को महामण्डलेश्वर कहा है। स्पष्ट है कि गोग्गिराज तथा उसका पुत्र कीर्तिपाल पश्चिमी चालुक्यों का मण्डलिक था। त्रिलोचनपाल का सूरत पट्ट सूचित करता है कि गोग्गिराज ने 'महाविष्णु की तरह अपने प्रदेश को मुक्त किया जिस पर दानवरूपी शक्तिशाली शत्रुओं ने अधिकार कर लिया था।' स्पष्ट है कि 'दानवरूपी शक्तिशाली शत्रु' चालुक्य थे जिन्होंने बारप को हरा कर लाट पर अधिकार कर लिया था।

राजच्युत—हेमचन्द्र ने लिखा है कि चामुण्ड ने अपने पुत्र बल्लभ से एक

'कंटक' उखाड़ फेंकने के लिए कहा । अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वल्लभ ने सेना सहित प्रस्थान किया । इस पर टीका करते हुए अभयतिलकगणि ने लिखा है कि 'चामुण्डराजः किल्-आति-कामात् विकलीऽभूतः सन् भगिन्या वाचिनिदेव्या राज्यात् स्फेतयित्वा तत् पुत्रो वल्लभो राज्ये प्रतिष्ठितः' प्रतीत होता है कि चामुण्डराज की भगिनी वाचिनिदेवी ने अपने नैतिक प्रभाव से अपने विलासी भ्राता चामुण्डराज को पदच्युत कर उसके पुत्र वल्लभ को सिंहासन पर बैठाया । इससे चामुण्डराज के गर्व को ठेस लगी और उसने वाराणसी के लिए प्रस्थान किया । जब वह मालवप्रदेश से होकर जा रहा था मालवराजा ने लिखा है कि इसी कारण से चामुण्ड ने अपने पुत्र वल्लभ को शत्रु को उखाड़ने की आज्ञा दी । मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि सिंहासन त्यागने के बाद जब दुर्लभ मालव प्रदेश से होकर जा रहा था तो मालव नरेश ने उसका छत्र छीन लिया । इस घटना के बाद दुर्लभ लौट आया और अपने उत्तराधिकारी भीम को मालवा पर आक्रमण करने को कहा । मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि गुजरात और मालवा की शत्रुता का यही मूल कारण था किन्तु उसने यह भी लिखा है कि वल्लभ की उस समय मृत्यु हुई जब वह धारा पर घेरा डाले हुए था । स्पष्ट है कि दुर्लभ के सिंहासन पर बैठने के पूर्व से शत्रुता चली आ रही थी और यह अत्यंत असाधारण एवं अविवेकपूर्ण मालूम पड़ता है कि मालवा से शत्रुता होने पर भी दुर्लभ राज ने मालवा प्रदेश से होकर जाने का प्रयत्न किया जिसकी राजधानी धारा पर उसके ज्येष्ठ भ्राता वल्लभ ने एक दशकपूर्व घेरा डाला था । इसी तरह यह भी असंभाव्य प्रतीत होता है कि चामुण्डराज ने मालव से होकर प्रस्थान करने की चेष्टा की जबकि कुछ समय पूर्व परमार सिन्धुराज से उसका युद्ध हुआ था । इसके अतिरिक्त न तो अभयतिलकगणि ने और न मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि राजत्यक्त राजा ने राज छत्र का प्रयोग क्यों किया । डॉ॰ अशोक कुमार मजुमदार ने लिखा है कि मेरुतुङ्ग की कथा की अपेक्षा अभयतिलकगणि की कथा कई कारणों से अधिक ग्राह्य है, किन्तु उन्होंने इन कारणों का उल्लेख नहीं किया है ।

वल्लभ का राज्यारोहण—वडनगर-प्रशस्ति की चालुक्य राजाओं की सूची में वल्लभ का नाम है । यद्यपि कुछ चालुक्य उत्कीर्ण लेखों में उसका नाम सम्मिलित नहीं किया गया है । हेमचन्द्र कृत सिद्ध-हेमचन्द्र में वल्लभ की प्रशस्ति दी हुई है । इससे प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र उसको राजा मानता था, क्योंकि इस पुस्तक में केवल चालुक्य राजाओं की प्रशस्तियाँ दी हुई हैं । बुहलर ने सुझाव दिया है कि उसने केवल अल्प काल तक राज्य किया, हो सकता है कि इसी कारण कुछ उत्कीर्ण लेखों में उसका नाम दिया गया है । इसके अतिरिक्त उसकी मृत्यु उसके पिता चामुण्डराज के जीवन में हुई । चामुण्डराज के सिंहासन त्याग ने के बाद वल्लभ का राज्याभिषेक हुआ ।

वल्लभ ने केवल छः महीने राज्य किया। प्रतीत होता है कि उसका अधिकांश समय अपने शत्रुओं के विरुद्ध अभियान करने में बीता।

विजयें—अभयतिलक गणि ने लिखा है कि वल्लभ ने मालव पर आक्रमण किया और मेरुतुंग ने लिखा है कि वल्लभ ने धारा को घेरा। किन्तु हेमचन्द्र तथा वडनगर-प्रशस्ति ने यह नहीं लिखा है कि "वल्लभ ने मालव पर आक्रमण किया"। हेमचन्द्र सिद्धराज का समकालीन था। और वडनगर-प्रशस्ति हेमचन्द्र के समय में लिखी गई थी। अतः बाद के इतिवृत्त लेखक और टीकाकार की अपेक्षा हेमचन्द्र का साक्ष्य अधिक प्रामाणिक माननीय है। द्व्याश्रय के वर्णन से स्पष्ट है कि युद्ध होने के पहले ही वल्लभ की मृत्यु हो गई। हेमचन्द्र के वर्णन से प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र को माता निकल आई थीं। उसने सेनापति को अपनी मृत्यु शैया के पास बुलाकर कहा कि वह उसकी मृत्यु को गुप्त रखे और सेनासहित तुरंत अणहिल पाटक लौट जाय। उसकी मृत्यु का समाचार छिपा न रह सका किन्तु सेना सुरक्षापूर्वक अणहिल पाटक को लौट आई।

अपने ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु के बाद चामुण्डराज ने अपने द्वितीय पुत्र दुर्लभ को सिंहासन पर बैठाया और नर्मदा के तट पर स्थित शुक्लतीर्थ को लौट गया जहाँ कुछ दिनों के बाद उसकी मृत्यु हुई।

दुर्लभराज (ल० १००६ ई०-१०२३ ई०)—दुर्लभराज १००६ ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। उसने १०१८ और १०२४ ई० के बीच किसी समय लाट प्रदेश को विजय किया। त्रिलोचनपाल के सूरत दानपत्र में लिखा है कि गोग्गिराज के पुत्र कीर्तिपाल के हाथ से उसका राज्य लाट प्रदेश निकल गया। कीर्तिपाल कल्याणी के पश्चिमी चालुक्यों का महामण्डलेश्वर था। जिस अवधि में दुर्लभराज ने लाट प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित किया संभवतः उस समय पश्चिमी चालुक्य राजा जयसिंह जगदेकमल्ल चोलों से युद्ध करने में व्यस्त था, क्योंकि यह ज्ञात है कि १०१९ से १०२४ ई० तक जयसिंह जगदेकमल्ल कोंकण के राजा को परास्त करने में लगा था।

वैवाहिक मैत्री संबंध—हेमचन्द्र ने लिखा है कि नड्डूल के चाहमान राजा महेन्द्र ने अपनी बहन दुर्लभादेवी की स्वयंवर सभा में दुर्लभ को आमंत्रित किया। इस सभा में अङ्ग, काशी, अवन्ती, चेदी, कुरु, हूण, मथुरा, विन्ध्य, अन्ध्र, और गूर्जर के राजाओं ने भाग लिया दुर्लभा ने दुर्लभ को चुन कर उसके गले में जयमाल डाल दी। उसके विवाह के बाद महेन्द्र ने अपनी छोटी बहन लक्ष्मी का विवाह दुर्लभ के छोटे भाई नागराज से किया। अस्वीकृत राजाओं ने दुर्लभ पर आक्रमण किया जब वह विवाह के पश्चात् गुजरात लौट रहा था। हो सकता है कि नागराज का विवाह

लक्ष्मी से हुआ हो। प्रतीत होता है कि इस तथ्य के आधार पर हेमचन्द्र ने एक वीर रस पूर्ण कथा गढ़ ली और इस तरह कालिदास के इन्दुमती के स्वयंवर के वर्णन के अनुकरण पर अपने महाकाव्य में एक स्वयंवर प्रस्तुत किया तथा दुर्लभराज को गौरवान्वित भी किया, क्योंकि यह पूरा वर्णन ऐतिहासिक तथ्य नहीं प्रतीत होता। उस समय उत्तरी भारत सुलतान महमूद के निर्दय आक्रमणों से पीड़ित था और यह असाधारण प्रतीत होता है कि ऐसे संकट के समय उत्तर भारत के इतने राजा एक तुच्छ नड्डूल राजा के बहन के स्वयंवर सभा में उपस्थित हुए हों। यह सारी कथा इसलिए और भी अधिक काल्पनिक प्रतीत होती है कि दुर्लभ ने समस्त उपस्थित राजाओं को हराया।

खरतरगच्छ—ज्ञानविमल ने महेश्वरकवि कृत शब्द-भेद प्रकाश की टीका के अन्त में खरतरसंप्रदाय या गच्छ की गुरु—वंशावली दी है। जिसका आरम्भ १०२४ ई० से हुआ, जब राज-संरक्षण में जैनयति वर्धमान सूरि और उसके शिष्य जिनेश्वर ने चैत्य वासिनों को शास्त्रार्थ में परास्त किया, और दुर्लभ राज ने जिनेश्वर को खरतर की उपाधि प्रदान की। अभयतिलक गणि ने द्वयाश्रय के एक श्लोक पर टीका करते हुए लिखा है कि जिनेश्वर सूरि ने दुर्लभ को जैन धर्म की शिक्षा दी। हो सकता है कि दुर्लभ ने इस यति से जैन-धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा प्राप्त की हो, क्योंकि यह धर्म उसके राज्य में वृद्धि पर था, किन्तु वह अन्त तक कट्टर हिन्दू बना रहा।

भवन-निर्माण—मेरुतुंग ने लिखा है कि दुर्लभ ने अणहिल पाटक में एक सत मंजिला प्रासाद का निर्माण किया जिसमें एक उसने अपने भ्राता वल्लभराज की आत्मा के कल्याणार्थ मदनशंकर नामक मंदिर बनाया, और दुर्लभ नामक सागर उत्खनन किया। खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार दुर्लभ १०२३ ई० में राज्य कर रहा था। सुलतान महमूद ने १०२४ ई० में वल्लभ के उत्तराधिकारी भीम के शासनकाल में गुजरात पर आक्रमण किया। अत: स्पष्ट है कि उसने १०२३ ई० तक राज्य किया और उसके शासन के बाद उसका पुत्र भीम सिंहासन पर बैठा।

दुर्लभ के राज्य का विस्तार—दुर्लभ के उत्तराधिकारी भीम प्रथम के १०२६ ई० के दान पत्र से स्पष्ट है कि कच्छ में चालुक्यों का राज्य था। भीम ने सोमनाथ के मंदिर की प्रतिरक्षा करने का भी प्रयत्न किया। स्पष्ट है कि मूलराज के समय से कच्छ और सोमनाथ पर चालुक्यों का शासन चला आ रहा था, क्योंकि ऐसी सूचना नहीं है कि भीम ने कच्छ को विजित किया हो।

●

अध्याय | ३

भीम और कर्ण

भीम (ल० १०२३-१०६५ ई०)—हेमचन्द्र के अनुसार संतानहीन दुर्लभ अपने छोटे भाई नागराज के पुत्र भीम को बहुत चाहता था और उसके वयस्क होने पर उसका राज्याभिषेक किया। इसके कुछ ही दिनों बाद संभवत: १०२४ ई० में दुर्लभराज और नागराज दोनों की मृत्यु हुई।

सुलतान महमूद का आक्रमण—अपने राज्यारोहण के एक वर्ष के अन्दर ही भीम को सुलतान महमूद के आक्रमण का सामना करना पड़ा। इस आक्रमण की योजना सुलतान महमूद ने बड़ी कुशलता और सावधानी से बनाई थी। प्राचीन तथा अर्वाचीन मुसलमान लेखकों ने अन्य क्षिप्राक्रमणों की अपेक्षा इस आक्रमण के लिए सुलतान महमूद को अधिक सम्मान दिया है और इसका विवरण भी विस्तार से प्रस्तुत किया है। यह सुविदित है कि हिन्दू स्रोतो से सुलतान महमूद के क्षिप्राक्रमणों के संबंध में कोई सूचना नहीं मिलती। अत: आधुनिक लेखक मात्र मुसलमान ग्रन्थकारों का सहारा लेते हैं।

आक्रमण के कारण—अलबेरूनी ने लिखा है कि सोमनाथ एक बन्दरगाह है जहाँ समुद्र मार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारी और नाविक एकत्र होते हैं। प्रतीत होता है कि महमूद को इसकी ख्याति और समृद्धि की जानकारी व्यापारियों से हुई। गर्दिजी ने लिखा है कि पुण्य प्राप्त करने के लिए महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया, क्योंकि उसने सुन रखा था कि हिन्दू इसका उतना ही आदर करते हैं, जितना कि मुसलमान मक्का का। मनत नामक मूर्ति जिसको रसूल ने काबा से हटा दिया था अदन होते हुए यहाँ आ गई । हिन्दू इस मूर्ति को यहाँ ले आए हैं। सोमनाथ के मंदिर में सोना, चाँदी, मूल्यवान माणिक्य तथा और भी बहुत-सा सामान है। अत: महमूद ने उस नगर को जाने और मूर्तियों के भंजन करने की योजना बनाई। इब्नुल अथीर ने महमूद द्वारा सोमनाथ के आक्रमण के दो कारण लिखे हैं : महमूद के मूर्ति-भंजनों और विजयों को देखकर हिन्दुओं ने कहा कि सोमनाथ इन मूर्तियों से असंतुष्ट थे और यदि वे अप्रसन्न न होते तो कोई भी इन प्रतिमाओं को न तो नष्ट कर सकता था और न क्षति पहुँचा सकता था। जब महमूद के कानों में यह बात

पड़ी तो उसने इस प्रतिमा को तोड़ने का निश्चय किया। उसका विश्वास था कि जब हिन्दू अपनी देव-स्तुतियों और शापों को निष्फल होते देखेंगे तो वे इस्लाम धर्म ग्रहण करेंगे।

सर उल्सले हेग तथा कुछ आधुनिक मुसलमान लेखकों ने इब्नुल अथीर के कथन को बिना आलोचना किए हुए स्वीकार किया है। इस कथन का आशय है कि अपनी देव-मूर्तियों की शक्ति के सम्बन्ध में झूठा गर्व करने के कारण हिन्दुओं के मंदिर नष्ट किए गए। इस तरह उनके नष्ट किए जाने में वे भी कुछ सीमा तक दोषी हैं किन्तु बदौनी, निजामउद्दीन, फिरिश्ता ने इस प्रकार की किसी कहानी का उल्लेख नहीं किया है। अतः ऐसी कहानियाँ त्याज्य हैं। वास्तव में ये मूर्तिभंजक आक्रामक जनता का मनोबल तोड़ने के लिए उनके धर्म और संस्कृति के प्रतीक मंदिर, मूर्ति, विद्यालय तथा भव्य-भवन आदि को नष्ट करते थे।

महमूद ने अपनी सेना के साथ १८ अक्टूबर, १०२५ ई० को ग़जनी से प्रस्थान किया और ९ नवम्बर के लगभग मुलतान पहुँच कर अपने प्रयाण-पथ का निश्चय करने तथा गुजरात की यात्रा का अंतिम प्रबन्ध करने के लिए वहाँ ठहरा। मुलतान से गुजरात का पथ जन और अन्न विहीन बंजर मरुस्थल से होकर जाता था। उसके साथ अन्न और जल से लदे हुए ३० हजार ऊँट थे। इसके अतिरिक्त उसने अपने सैनिकों को अपने तथा अपने घोड़ों के लिए कई दिन का जल और खाद्य सामग्रियों को ले चलने के लिए आज्ञा दी। २०,००० ऊँटों पर भी सामग्रियाँ लदी हुई थीं। अपनी तैयारियों को पूरी करने के लिए महमूद ने एक पक्ष से कुछ अधिक समय तक मुलतान में ठहरने के बाद २६ नवम्बर को वहाँ से गुजरात के लिए प्रस्थान किया।

महमूद लोदोरवा किला, जयसलमेर राज्य, मल्लानी तथा चिकलोदर मत पहाड़ी के समीप से होते हुए एक महीने बाद दिसम्बर के अन्त में अणहिल पाटक पहुँचा किन्तु वहाँ जाने पर उसको पता चला कि वहाँ का राजा राजधानी छोड़ कर कहीं चला गया है। फर्रुखी ने जो इस अभियान में सुलतान महमूद के साथ था तथा इब्नुल अथीर ने लिखा है कि इस समय अणहिल पाटक या नहर्वाल का राजा भीम था किन्तु फिरिश्ता ने लिखा है कि उस समय नहर्वाल का राजा 'परमदेव' था। गर्दिजी, निज़ामुद्दीन, बदौनी और फिरिश्ता ने लिखा है परमदेव नामक एक राजा महमूद की वापसी यात्रा में उसका रास्ता रोकने का प्रयत्न किया। प्रतीत होता है कि 'परम-देव' भीम प्रथम था। कुछ विद्वानों का विचार है कि परमदेव आबू का राजा था जिसने सुलतान महमूद का विरोध किया। इस समय आबू का राजा परमार धंधुक था जो एक अमहत्वपूर्ण राजा था। प्रतीत होता है कि मुसलमान इतिहास लेखकों ने 'भीम' के स्थान पर 'परम' लिख दिया है। यह अत्यन्त संभाव्य है कि महमूद के

आक्रमण के समय आबू चालुक्यों के अधीन था क्योंकि भीम के दण्डपति विमल ने आबू पर्वत के मंदिर को १०३२ ई० में पूर्ण किया । जिसके निर्माण में कम से कम ५ वर्ष लगे होंगे ।

मुसलमान इतिहास लेखकों ने लिखा है कि महमूद ने बिना विरोध के अणहिल पाटक में प्रवेश किया । अणहिल पाटक एक समतल बलुए प्रदेश में स्थित था जहाँ कोई दृढ़ प्राकृतिक प्रतिरक्षा नहीं थी । सरस्वती नदी का कोई प्रतिरक्षात्मक महत्त्व नहीं था क्योंकि यह सुगमता से पार की जा सकती थी और उसके उस पार का प्रदेश अश्वारोहियों के आक्रमणों के लिए अत्यन्त उपयुक्त था । इसके अतिरिक्त महमूद का आक्रमण अकस्मात् हुआ । प्रतीत होता है कि ऐसी परिस्थिति में अणहिल पाटक की प्रतिरक्षा नहीं की जा सकती थी । अतः भीम ने अपनी सेना को बचाने के लिए उसको दूसरे स्थान पर हटा लिया । हो सकता है कि इसी समय भीम ने अपने राज्य परिवार को कन्थकोट में हटा लिया । प्रतीत होता है इस तथ्य से इब्नुल अथीर ने यह तथ्य निकाला कि भीम भाग गया है । इसमें भीम की कायरता नहीं थी प्रतीत होता है कि उस समय अणहिल पाटक बड़ा नगर नहीं था क्योंकि किसी मुसलमान इतिहास लेखक ने यहाँ के जन-संहार और लूट का वर्णन नहीं किया है । जल और खाद्य सामग्रियाँ एकत्र करने के लिए महमूद यहाँ कुछेक दिन ठहरा और उसके बाद सोमनाथ के लिए प्रयाण किया । प्रतीत होता है कि अणहिल पाटक में ठहरने का एक कारण यह भी था कि अणहिल पाटक से १८ मील दूर दक्षिण में मोधेरा नामक स्थान पर भारतीयों ने मुसलमान प्रगति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया । किन्तु भयंकर अवरोध करने के बाद भी वे असफल रहे । सम्भवतः इस शौर्यपूर्ण कार्य की स्मृति में बाद को मोधेरा नामक स्थान पर १०२६-२७ ई० में एक विख्यात् मन्दिर का निर्माण किया गया । फर्रुखी ने लिखा है कि मोधेरा में एक सरोवर था जिसके मात्र विचार से आँख चका-चौंध हो जाती है। इस सरोवर के किनारे एक हजार मन्दिर बने हुए थे ।

मोधेरा के बाद महमूद ने 'उन' के समीप देलवद पर आक्रमण किया । बिना संघर्ष किए इस नगर ने समर्पण कर दिया । किन्तु महमूद ने इसके समस्त निवासियों का संहार किया । वहाँ से वह सोमनाथ की ओर प्रयाण किया और वहाँ ६ जनवरी को पहुँचा । सोमनाथ की प्रतिरक्षा के लिए एक किला था । महमूद ने इस पर घेरा डाला । वहाँ का सेनापति अपने परिवार के साथ समीप के एक द्वीप में चला गया । जो भी हो सोमनाथ के प्रतिरक्षकों ने वीरतापूर्वक सोमनाथ की प्रतिरक्षा की । वाणों की भयंकर वर्षा से विवश होकर प्रतिरक्षक दीवालों पर से हट गए और मुसलमान ७ जनवरी १०२६ ई० के मध्याह्न तक सीढ़ी लगाकर किले पर चढ़ गए । किन्तु भारतीयों के प्रत्याक्रमण से उनको यह जगह छोड़नी पड़ी । दूसरे दिन प्रातः

(८ जनवरी) मुसलमानों ने अपना आक्रमण पुनः आरम्भ किया और प्रतिरक्षणों पर अधिकार कर भारतीयों को मंदिर के फाटकों तक पीछे हटने को विवश किया। संभवतः भीम ने घिरे हुए सैनिकों को निकालने का प्रयत्न किया। किन्तु एक गहरे संघर्ष के बाद उसको पीछे हटना पड़ा। तब भारतीयों ने दृढ़तापूर्वक अपने देवता की रक्षा में अपने प्राणों को अर्पण कर अपनी अविचल भक्ति प्रदर्शित की। कहा जाता है ५०,००० प्रतिरक्षकों ने मंदिर की रक्षा में अपने जीवन का होम किया। किन्तु वे मंदिर की रक्षा करने में असफल रहे। कुछ बचे हुए व्यक्तियों ने एक नाव द्वारा भागने का प्रयत्न किया। किन्तु समुद्र के किनारे पर नियुक्त किए गए सैनिकों ने मार डाला या डुबो दिया। यह संभावना नहीं है कि सुलतान महमूद के मध्य एशियावासी सैनिक नाविक—कार्य जानते थे। यह कथा मन गढ़ंत प्रतीत होती है कि सुलतान महमूद के सैनिकों ने भारतीयों का समुद्र में पीछा किया और उनको डुबोया। गर्दिजी ने वर्णन किया है कि सुलतान महमूद ने शिवजी की पत्थर की मूर्ति नींव से खोद कर निकाल ली और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उसके कुछ टुकड़े ग़ज़नी ले जाए गए और वहाँ की मस्जिद की सीढ़ियों पर रखे गए। उस मूर्ति के नीचे कुछ धनराशि थी। सब धन निकाल लिया गया। जिसमें चाँदी की मूर्तियाँ, रत्न तथा अनेक प्रकार के धन थे। यह कपोल कथा यह दिखाने के लिए गढ़ी गई है कि मुसलमानों ने इस अपार धन के प्रलोभन से सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण किया। किन्तु सुलतान महमूद का समकालीन विद्वान् यात्री अलबेरूनी ने जो सुलतान महमूद के साथ भारत आया था लिखा है कि वृहत्-संहिता के अनुसार यह पूर्णरूप से आवश्यक है कि लिङ्ग का पत्थर दोष रहित हो।

प्रतीत होता है कि अणहिल पाटक से आने के बाद भीम ने सुलतान महमूद से युद्ध करने की पूर्ण तैयारियाँ कीं। जिसके कारण सुलतान महमूद शीघ्रतापूर्वक सोमनाथ को छोड़ कर अपने देश को लौटा। गर्दिली ने लिखा है कि सुलतान महमूद ने सुना कि परमदेव उसका रास्ता रोके खड़ा है। अतः वह मंसुरा होते हुए मुलतान गया। पानी की कमी से तथा जाटों के आक्रमणों से उसके सैनिकों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा और बहुत से मुसलमान सैनिकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। अन्त में मुलतान दिखाई पड़ा और महमूद ग़ज़ना की ओर चलता चला गया।

कहा जाता है कि जब महमूद सोमनाथ से मंसूरा चला तो रास्ते में उसने एक किले को विजय किया जिसमें भीम छिपा हुआ था। किन्तु खोन्दमीर ने वास्तविक तथ्यों का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि सोमनाथ विजय करने के बाद महमूद ने एक किले को जीता जिसमें नहँवाल या अणहिल पाटक के राज्यपाल ने शरण ले रखी थी। प्रतीत होता है कि भीम की सेना के आक्रमण से बचने के लिए महमूद ने

कच्छ का रास्ता पकड़ा और भीम की सेना के एक टुकड़ी को हराया जो उसके प्रत्या-गमन के रास्ते को रोकने के लिए भेजी गई थी । कहा जाता है कि सोमनाथ-ध्वंश का बदला लेने के लिए एक भारतीय ने महमूद को जलरहित मरुस्थल की ओर ले गया । किन्तु भयानक कष्ट सहने के बाद महमूद ने उस संकट से अपनी सेना को बाहर किया । इस सेना के पिछाड़ी भाग को जाट रास्ते भर तंग करते रहे । जब तक कि यह सेना मुलतान न पहुँची ।

इस अभियान में महमूद को ६ महीने लगे । यह नहीं कहा जा सकता कि भीम को महमूद के प्रयाण की पूर्ण सूचना न मिली हो । प्रतीत होता है मोधेरा की पराजय के बाद भीम के पास सोमनाथ की प्रतिरक्षा करने के लिए पर्याप्त सेना न बची । हो सकता है कि उसने यह अनुमान कर कि महमूद इसी रास्ते से लौटेगा जिस रास्ते से वह गया है । उसने जैसलमेर के समीप अपनी अधिकांश सेना एकत्र की हो । फिरिश्ता के इस कथन में कुछ सत्यांश हो सकता है कि भीम ने सोमनाथ के किले की सेना को अधिक बल न भेजने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रहा । प्रतीत होता है कि इस तरह महमूद ने चालुक्यों की मुख्य सेना से मुठभेड़ बचाया । जैसलमेर के समीप जिस स्थान को भीम ने युद्ध के लिए चुना था । वह सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था ।

सिन्ध के राजा की पराजय—प्रतीत होता है कि सुलतान महमूद के प्रत्या-गमन के बाद भीम ने हम्मुक नामक राजा को परास्त किया । हेमचन्द्र ने लिखा है कि भीम की सेना ने सिन्धु नदी के आर-पार एक पुल निर्माण कर उस पार गई और युद्ध में सिन्ध के राजा को परास्त किया जिसने भीम की अधीनता स्वीकार की । मेरुतुङ्ग ने भी सिन्ध में भीम की विजय का उल्लेख किया है । सिद्ध-हेमचन्द्र का एक श्लोक सूचित करता है कि श्री भीम ने अब फिर से महाभारत लिखा है क्योंकि उसने कर्ण को और सिन्धुराज को भी जो युद्ध में दुर्धर्ष था जीत लिया है । इस श्लोक में श्लेष है कि महाभारत में अर्जुन ने सिन्धुराज (जयद्रथ) और कर्ण को मारा था और अब भीम ने उनको मारा । हेमचन्द्र ने हम्मुक के विरुद्ध भीम के अभियान का वर्णन करते हुए 'सैन्धव' शब्द का प्रयोग किया है । द्वयश्रय में हेमचन्द्र ने सैन्धवों और कच्छों का उल्लेख एक साथ किया है । इससे प्रतीत होता है कि यह दोनों जातियाँ एक दूसरे के पड़ोस में रहती थीं । सैन्धवों के पट्टों से जो कुछ समय पूर्व पाए गए हैं प्रमा-णित है कि पश्चिमी कथिवाड में सैन्धव वंश राज्य कर रहा था जिसका संस्थापक पौराणिक वीर जयद्रथ और जिसकी राजधानी घुमली थी । हम्मुक संभवतः सैन्धव राजा था जिसका नाम रनक, जैक, अग्गुक आदि सैन्धव राजाओं के नाम से मिलता जुलता है ।

आबू पर विजय—पहले लिखा जा चुका है कि मूलराज ने धरणी वराह को उसके राज्य के बाहर खदेड़ा। धरणी वराह का पौत्र धंधुक मूलराज के पौत्र दुर्लभ का मण्डलिक था। किन्तु उसने विद्रोह किया और वह परास्त किया गया। इस घटना के बाद भीम ने विमल को आबू का दण्डपति नियुक्त किया। प्रतीत होता है बाद को विमल के कहने से भीम ने धंधुक को पुन:स्थापित किया। प्रतीत होता है कि धंधुक ने एक बार फिर विद्रोह किया। क्योंकि धंधुक के पुत्र पूर्णपाल के एक उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित १०४२ ई० में उसको 'महाराजाधिराज' कहा है और वह अर्बुद मंडल पर राज्य कर रहा था।

किन्तु आबू के परमारों का यह पुन: स्थापन अल्पकालीन था क्योंकि विमल के उत्कीर्ण लेखों तिथ्यंकित १०६२ ई० से प्रतीत होता है कि उस समय आबू पुन: भीम के राज्य के अन्तर्गत था और यह तेरहवीं शती के अन्त तक चालुक्य राज्य का एक भाग था। प्रतीत होता है कि भीम को दूसरी बार आबू विजय करने में सरलता हुई क्योंकि उस समय तक परमार भोज का पतन तथा मृत्यु हो चुकी थी।

भीनमाल के परमार—आबू विजय करने के बाद भीम ने परमारों की भिनमाल शाखा से युद्ध किया। सून्धा पर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि परमारों के भीनमाल शाखा का कृष्णदेव उस समय तक भीम का बन्दी था, और नड्डूल चाहमान अणहिल द्वारा छुड़ाया गया जिसने भीम को परास्त किया। इसके बाद कृष्णराज एक स्वतंत्र राजा की तरह राज्य किया, उसके उत्कीर्ण लेखों में उसको महाराजाधिराज कहा है।

नड्डूल के चाहमान—भीम के शासन काल में चालुक्यों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण नड्डूल चाहमानों और भीम में संघर्ष आरम्भ हुआ जो भीम के पुत्र कर्ण के शासनकाल तक चलता रहा। चाचिगदेव का सून्धापर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि अहिल्ल ने गूर्जरराजा भीम की सेना को परास्त किया। अहिल्ल के चाचा अणहिल्ल ने भी जो अहिल्ल के बाद सिंहासन पर बैठा भीम को हराया। सून्धा पर्वत उत्कीर्ण लेख यह भी सूचित करता है कि अणहिल्ल के पुत्र बाला प्रसाद ने भिनमाल के परमार राजा कृष्णराज को कारावास से छोड़ने को विवश किया। बाला प्रसाद के कनिष्ठ भ्राता जिन्दुराज या जेन्द्रराज ने सन्डेराव और शन्डेरक नामक स्थानों पर भीम की सेना को हराया। जिसके लिए जेन्द्रराज 'वड़वानल' था। जिन स्थानों पर ये युद्ध हुए उनसे प्रतीत होता है कि भीम आक्रामक था और चाहमानों ने दृढ़ता से उसका सामना किया।

मालवा के परमार—मालवा के परमार राजा के पतन में भीम का महत्त्वपूर्ण भाग था जिससे कि कुछ समय के लिए परमार वंश अशक्त हो गया। महान्

परमार सम्राट् की पराजय भीम के वैभव की चरम सीमा थी और सभी इतिवृत्त लेखकों ने इस विजय के उपलक्ष में प्रशस्तियाँ लिखी हैं। वडनगर प्रशस्ति का कथन है कि 'श्री भीमदेव जो अपने शत्रुओं के लिए भीम था। अपने मित्रों को सदा आनन्द देता था·········इसमें क्या आश्चर्य है कि उसके अश्वों ने जो 'धारा पंचक' (धारा नामक ५ पग) साधन करने में चतुर थे सत्वर मालव-चक्रवर्ति-नगरी धारा को विजय किया'। सोमेश्वर ने लिखा है कि जिस तरह चन्द्रमा के उदय होने पर कमल मुर्झा जाता है उसी तरह भीम के उत्कर्ष से भोज सूख गया। 'जिसने एक-धारा पति को द्विधारा से जीत लिया है तो इसमें क्या आश्चर्य है कि उसने (भीम ने) सैकड़ों धारा को विजय किया। जिसके दृढ़ धनुष की गुणी (डोरी) से यद्यपि वह उसके कण्ठ तक पहुँच गयी थी जब वह भाग रहा था अपने घोड़े से गिराया गया मानो वह गुणी (डोरी) था। वस्तुपाल-तेज:पाल-प्रशस्ति में लिखा है कि यह उचित था कि यह आक्रमण होने पर लक्ष्मी ने भोज के हृदय को, सरस्वती ने उसके मुख को, और तलवार ने उसके हाथों को छोड़ा। अरिसिंह और बालचन्द्र ने वर्णन किया है कि इस तरह भीम ने भोज को हराया। मेरुतुङ्ग ने भीम और भोज के संबंध में अत्यंत विवरणात्मक सूचना प्रस्तुत की है, यद्यपि उसने इन दो ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंधित अनेकानेक रोचक कथाओं को गढ़ा है जिससे कि तथ्य और कल्पना में भेद करना कठिन हो जाता है।

मेरुतुङ्ग के अनुसार कथा इस प्रकार है :

भीम और भोज समकालीन थे और उनमें मैत्री-गठन था। भोज इन शान्तपूर्ण संबंधों को समाप्त करना चाहता था किन्तु भीम इन संबंधों को बनाए रखना चाहता था। उसी वर्ष गुजरात में अकाल का प्रकोप हुआ और भीम को सूचना मिली कि इसी कारण से भोज गुजरात पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। अत: भीम ने अपने कूटनीतिक अभिकर्ता डामर को आज्ञा दी कि चाहे जो खर्च पड़े भोज इस वर्ष गुजरात पर आक्रमण करने से रोका जाय। डामर ने राजा भोज को एक नाटक देखने को आमंत्रित किया जिसमें यह प्रदर्शित किया गया था कि किस तरह तैलप ने मुंज के शिर को एक लकड़ी पर गाड़ दिया। इस नाटक से भोज का ध्यान तिलिङ्ग की ओर गया। इसी समय डामर ने आकर भोज को एक जाली राजपत्र दिखलाया जिसमें लिखा था कि भीम भोगपुर पहुँच गया है। भोज ने इस सूचना को महत्त्व दिया और डामर से निवेदन किया कि वह किसी भी तरह भीम के प्रयाण को आगे बढ़ने से रोके।

बाद को जब भीम सिन्ध विजय करने में व्यस्त था भोज ने कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर को गुजरात के विरुद्ध भेजा। कुलचन्द्र ने अणहिल पाटक को लूटा और

नष्ट किया और राजप्रासाद के एक फाटक पर कौड़ियाँ बो दीं। इससे भोज को अशान्ति हुई कि इसका आशय यह है कि मालव से धन का बहाव गुजरात की ओर होगा। इसके बाद इन दोनों प्रदेशों में कूट संबंध हुए। प्रतीत होता है कि भीम का प्रभाव मालवा में बढ़ा क्योंकि एक दिन कुछ गुजराती सैनिकों ने भोज को घेर लिया जब वह अपने इष्टदेव की पूजा करके लौट रहा था।

मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि डाहल के कलचुरि कर्ण ने अपने १३६ मंडलिकों के साथ मालवा पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया और साथ ही भीम को मालवा पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया और उसको वचन दिया कि भोज के राज्य को आधा-आधा बाँट लेंगे। इन दोनों राजाओं द्वारा आक्रमण किए जाने पर भोज का गर्व भंग हो गया और उसको एक रोग लग गया जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई। भोज की मृत्यु का समाचार सुनकर कर्ण ने किला तोड़ डाला और परमार राजा के संपूर्णधन का अपहरण किया। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भोज आक्रमक था। पहले वह अकाल पीड़ित गुजरात पर आक्रमण करना चाहता था और बाद को सचमुच उसने गुजरात पर आक्रमण किया जब वह सिन्ध को विजय करने में व्यस्त था। प्रतीत होता है कि उस समय भीम ने भोज के विरुद्ध मैत्री संगठन करने के लिए डामर को लक्ष्मीकर्ण की राजसभा में भेजा। इसी बीच पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम ने भयंकर रूप से भोज को परास्त कर उसकी विख्यात् राजधानी धारा एवं उज्जैन को जलाया। तब भोज की निर्बलता का लाभ उठा कर भीम और लक्ष्मी कर्ण ने उस पर आक्रमण किया। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि धारा की लूट के समय भीम वहाँ नहीं था किन्तु अन्य इतिवृत्त लेखकों ने तथा वडनगर प्रशस्ति ने भी निश्चितरूप से लिखा है कि भीम ने धारा नगरी में प्रवेश किया। प्रतीत होता है भोज की मृत्यु के बाद उसने धारा में प्रवेश किया। हो सकता है कि भीम स्वयं धारा में न गया हो और वहाँ अपनी एक टुकड़ी भेजी हो।

उदयपुर प्रशस्ति और परमार मण्डलिक यशोवर्मन् के कल्यान पट्टों से ज्ञात् होता है कि भोज ने चालुक्य भीम को, चेदिराजा को तथा कर्णाट, लाट, गूर्जर और कोंकण को पराजित किया। परमार जयसिंह के मान्धाता पट्टो में लिखा है कि किसी सत्यराज ने गूर्जरों के विरुद्ध युद्ध किया और भोज से लक्ष्मी प्राप्त की। यह उत्कीर्ण लेख १०५५ ई० में निःसृत किया गया था। स्पष्ट है कि इस समय परमार राजधानी शत्रुविहीन थी।

भोज को परास्त करने के लिए भीम ने लक्ष्मीकर्ण से सहायता लेकर उच्चकोटि की राजनीतिज्ञता और कूटनीतिक कुशलता प्रदर्शित की। लक्ष्मीकर्ण उस समय के भारतीय राजाओं में सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। उसने लक्ष्मीकर्ण की सहा-

यता इसलिए ली, कि भोज भी एक शक्तिशाली सम्राट् था । बाद को भीम ने कलचुरियों से युद्ध किया ।

भीम और लक्ष्मी कर्ण—मेरुतुंग ने लिखा है कि धारा के पतन के बाद कलचुरि राजा ने भोज की संपूर्ण सम्पत्ति अपहरण कर लिया और पूर्व निश्चय के अनुसार भीम को भोज के राज्य का आधा भाग नहीं दिया । अतः भीम ने भोज के राज्य का अर्द्धभाग प्राप्त करने के लिए अपने दूत डामर के पास संदेशा भेजा । अतः अपने सम्राट् की आज्ञा का पालन करने को इच्छुक डामर बत्तीस पदातियों के सहित राजमण्डप में प्रवेश किया और कर्ण को बन्दी बनाया जब वह मध्याह्न में सो रहा था । डामर ने लक्ष्मीकर्ण से देवताओं का एक स्वर्ण मन्दिर जिसमें शिव प्रमुख थे, शालग्राम (चिन्तामणि) पत्थर, और गणेश लेकर भीम को संतुष्ट किया । मेरुतुंग की कथा के अन्तिम भाग की पुष्टि हेमचन्द्र के वर्णन से होती है जिसमें लिखा है कि कर्ण ने भोज की स्वर्ण-मण्डपिका देकर भीम को संतुष्ट किया । हो सकता है कि भीम ने लक्ष्मी कर्ण के द्रुत पतन का लाभ उठाया हो । मेरुतुंग और हेमचन्द्र ने जिन घटनाओं का वर्णन किया है उनमें नाममात्र की वास्तविकता है । हेमचन्द्र के वर्णन से यह आशय निकलना प्रतीत होता है कि लूट के सम्बन्ध में भोज और भीम में झगड़ा हुआ और अन्ततः लक्ष्मीकर्ण ने भीम को भोज की स्वर्ण मण्डपिका देकर संतुष्ट किया ।

मेरुतुंग ने संभवतः भीम-भोज-प्रबन्ध के लिए कुछ सामग्री द्वयाश्रय से, और कुछ कीर्तिकौमुदी से ग्रहण की, और उसमें संभवतः कुछ उन अनेक कथाओं को जोड़ा जो भोज के संबंध में उसके संबंध में प्रचलित थीं । हो सकता है कि कुछ कथाएँ उसने स्वयं गढ़ ली हों । चेदिराजा लक्ष्मीकर्ण और गूर्जर राजा भीम से युद्ध हुआ था । इसकी पुष्टि लक्ष्मी कर्ण के रीवा प्रस्तर उत्कीर्ण लेख से होती है जिसमें लिखा है कि गूर्जरदेश में लक्ष्मी कर्ण के पहुँचने पर अंजनमिश्रित अश्रु गूर्जरनारियों के कपोलों पर बहे और उनके अ-वैधव्य सूचक सिन्दूर उनके माथों से गिरे । यह घटना संभवतः भोज की पराजय के बाद हुई जैसा कि इतिवृत्त लेखकों ने लिखा है । जब तक भोज जीवित था चालुक्य और चेदि राजों के बीच में परमार राज्य था । जिससे कि दोनों राज्यों के बीच संघर्ष होने के अवसर बहुत दूर थे । विह्लण ने लिखा है कि पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम ने कर्ण की शक्ति को चूर-चूर किया, संभव है कि भीम ने चेदि राजा की शक्ति के ह्रास होने पर अपनी माँगे भेजी हों ।

भीम के अन्तिम दिन—मेरुतुंग ने लिखा है कि भीम बकुलादेवी नामक एक रूपवती वेश्या पर अत्यंत मोहित था, जिसको उसने अपने अन्तःपुर में रखा । उसके शासन काल में आबू का दिलवारा मन्दिर बनाया गया जो उस समय के बचे

मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ है। दो और महत्वपूर्ण मन्दिरों के अवशेष बचे हैं जिनका उसके शासन काल में निर्माण हुआ था और जिनको बाद को मुसलमानों ने विध्वंस किया। उसके शासन काल में उसके राज्य के अन्तर्गत १०३५ ई० में एक मस्जिद अहमदाबाद में बनाई गई। यह भारत में सर्वप्रथम ज्ञात मस्जिद है। उसकी राज्ञी उदयमती ने 'रानी की वाव' नामक कूप अणहिल पाटक में बनवाया जो इस समय ध्वंसावस्था में है किन्तु इसके सूक्ष्म अलंकरण अब भी कलाकारों को मोहित करते हैं। उसने राजधानी में एक नए जलाशय का निर्माण किया जो सहस्रलिंग सरोवर से अधिक उत्कृष्ट है। उसका शासन संभवतः १०६५ ई० के लगभग समाप्त हुआ।

कर्ण—भीम का कनिष्ठ पुत्र कर्ण १०६६-६७ ई० में सिंहासन पर बैठा। हेमचन्द्र ने लिखा है कि भीम की मृत्यु के तुरन्त बाद उसका मात्र अन्य जीवित पुत्र क्षेमराज सार्वजनिक जीवन से निवृत्त होकर दधिस्थली चला गया। कर्ण ने उसके पुत्र देव प्रसाद को उसकी सेवा करने के लिए भेज दिया। संभवतः सिंहासन के इन दोनों संभाव्य (pretenders) छुटकारा पाने के लिए कर्ण ने उनको दधिस्थली भेजा। राजकवि हेमचन्द्र के वर्णन से संदेह होता है कि भीम की मृत्यु के बाद वैध पुत्र कर्ण ने बलात् सिंहासन पर अधिकार कर अपने सौतेले भाई और भतीजे को निष्कासित किया। द्व्याश्रय में कर्ण के सम्बन्ध में विशेष वर्णन नहीं है किन्तु अन्य इतिवृत्त लेखकों के साक्ष्य से तथा अन्य वंशों के लेखों से ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र का वर्णन ठीक नहीं है। वास्तविकता यह है कि अपने पिता और पुत्र की तरह कर्ण भी आक्रामक था। हेमचन्द्र ने अपने द्व्याश्रय में कर्ण के पराक्रमों का वर्णन संभवतः इसलिए नहीं किया है क्योंकि वह अपने संरक्षक कर्ण के पुत्र सिद्धराज जयसिंह के पराक्रमों को महत्त्व देना चाहता था।

मालवा के परमार—प्रतीत होता है कि परमार सम्राट् भोज की पराजय और मृत्यु के बाद मालवा कलचुरि राजा लक्ष्मी कर्ण के स्वत्त्व में रहा। इसी बीच लक्ष्मीकर्ण के शत्रुओं ने डाहल से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया। चंदेल राजा कीर्तिवर्मन् और बंगाल के विग्रहपाल ने लक्ष्मीकर्ण को पराजित किया। संभवतः सबसे भयंकर पराजय उसकी उस समय हुई जब पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम ने डाहल पर आक्रमण किया और लक्ष्मीकर्ण को पददलित किया। संभवतः लक्ष्मीकर्ण के पतन का लाभ उठा कर भीम ने लक्ष्मीकर्ण को अपमानपूर्वक लूट का माल देने के लिए विवश किया।

प्रतीत होता है कि भोज की मृत्यु के बाद परमार राजकुमारों में सिंहासन के लिये गृह कलह हुई। कहा जाता है कि एक (Claimant) चालुक्य सोमेश्वर प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य से सहायता की याचना की। विक्रमादित्य ने परमार राजकुमार के

शत्रुओं का दमन कर उसको मालव सिंहासन पर बैठाया यह मालवपति परमार जयसिंह था जैसा कि दो उत्कीर्ण लेखों से प्रमाणित है। उसका उत्तराधिकारी उसका भ्राता उदयादित्य था। परमार के उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि इस सिंहासन पर बैठने से पूर्व उदयादित्य को तीन राजाओं को हराना पड़ा जिसमें से एक राजा गुजरात का चालुक्य कर्ण था, और अन्य दो राजे जिनको उदयादित्य ने परास्त किया सम्भवत: सोमेश्वर द्वितीय और एक कलचुरि राजा थे। कुमारपाल के एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि कर्ण ने मालव राजा को सूदकूप दर्रे में परास्त किया। अरिसिंह ने लिखा है कि कर्ण ने मालव राजा को परास्त कर नीलकण्ठ की एक मूर्ति लाया। प्रतीत होता है कि पहले कर्ण ने मालव राजा को हराया किन्तु बाद को वह स्वयं पराजित हुआ। चाहमानों के इतिवृत्त लेखक के कथन से यह आशय निकलता है कि चाहमान विग्रहराज ने मालवराजा उदयादित्य को सहायता दी जिससे उसने कर्ण को पराजित किया। उदयादित्य के पुत्र जगद्देव के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि जगद्देव ने आबू के समीप गूर्जरों को तथा राजा कर्ण को हराया। हो सकता है कि जगद्देव ने अपने पिता के साथ युद्ध में भाग लिया हो जब उसने कर्ण को परास्त किया। यह भी हो सकता है कि उदयादित्य की मृत्यु के बाद कर्ण ने मालवा पर पुन: आक्रमण किया हो और जगद्देव ने उसको हराया हो। यह भी सुझाव दिया गया है कि सोमेश्वर द्वितीय ने जयसिंह पर आक्रमण किया जो विक्रमादित्य की सहायता से सिंहासन पर बैठा था कर्ण की सहायता से उसको हराया और मार डाला। उसके बाद उदयादित्य ने सोमेश्वर द्वितीय और कर्ण को पराजित किया। इस सुझाव में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है कि उदयादित्य ने तीन राजाओं को हराया। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि चाहमानों की सहायता से उदयादित्य को मालवा राज्य का सिंहासन प्राप्त हुआ। अवश्य ही ऐसे राजा से यह आशा नहीं की जा सकती कि उसने इन शक्तिशाली सत्ताओं के मैत्री गठन को परास्त किया होगा जिनमें से दो ने भोज को हराया था। संभव है कि ये तीनों राजे मालवा के विभाजन के लिए आपस में लड़ते रहे हों और उनको मालवा के बाहर खदेड़ने में अधिक कठिनता न हुई हो।

'राज्ये च कुल्याकुले' से प्रतीत होता है कि भोज की मृत्यु के बाद जयसिंह उदयादित्य तथा अन्य अनेक परमार राजकुमार सिंहासन के लिए गृह-कलह करते रहे हों। इस गृह-कलह में पश्चिमी चालुक्यों, शाकम्भरी चाहमानों, चालुक्यों और कलचुरियों का हाथ था, क्योंकि वे किसी न किसी राजकुमारों की सहायता कर रहे थे।

कलचुरि—इस त्रि-दल युद्ध का एक अप्रत्यक्ष परिणाम संभवत: यह हुआ कि गुजरात ने लाट प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित किया। गोआ के कदम्बवंश के

लेखों से ज्ञात होता है कि शरठ द्वितीय पश्चिमी चालुक्यों का महामण्डलेश्वर था। प्रतीत होता है कि कलचुरि सेनापति ने इस राजा को हराया। शरठ के पुत्र और उत्तराधिकारी जयकेशी की कन्या मयणल्लदेवी से कर्ण ने विवाह किया। प्रतीत होता है कि कर्ण ने कलचुरियों को खदेड़कर लाट पर अधिकार कर लिया। यह नहीं कहा जा सकता कि इस कार्य में कर्ण को कदम्बों से कहाँ तक सहायता मिली। प्रतीत होता है कि इस समय लाट पर कलचुरि यशःकर्ण राज्य कर रहा था और यह विजय १०७४ ई० के कुछ पूर्व हुई। तीन वर्ष के अन्दर ही त्रिविक्रमपाल ने लाट को कर्ण से छीन लिया। बाद को सिद्धराज ने स्थायी रूप से इसको गुजरात में मिला लिया।

नड्डूल के चाहमान—प्रतीत होता है कि जब कर्ण दूसरी जगह व्यस्त था नड्डूल के चाहमान जिन्दुराज के पुत्र पृथ्वीपाल ने गूर्जर राजा कर्ण की एक सेना को हराया; और कहा जाता है कि पृथ्वीपाल के भ्राता और उत्तराधिकारी ने अणहिल्लपुर पर बलात् अधिकार किया।

भील—भाटों के कथनानुसार कर्ण ने घुमक्कड़ जनजाति भीलों के राजा आशा को कर्ण की एक असंख्य धनुर्धारी सेना ने हराया और मार डाला। यह भील मुख्य रूप से कच्छ से सावरमती नदी तक फैला हुआ था।

मयणल्लदेवी से विवाह—हेमचन्द्र, मेरुतुङ्ग और विल्हण ने मयणल्लदेवी से कर्ण के विवाह के संबंध में लिखा है। विल्हण ने इस राजकुमारी का नाम कर्ण सुन्दरी लिखा है जो प्रत्यक्षतः मयणल्लदेवी है। इन तीनों लेखकों ने इस विवाह कथा को अपने-अपने काल्पनिक ढंग से प्रस्तुत किया है। मयणल्लदेवी चन्द्रपुर के कदम्ब राजा जयकेशी (ल० १०५०-८० ई०) की पुत्री थी। यह विवाह १०७० ई० में हुआ होगा। जयकेशी के पिता और प्रपिता दोनों ही सोमनाथ के श्रद्धालु भक्त थे। उसके प्रपिता गुहिल्लदेव द्वितीय जब समुद्र द्वारा सोमनाथ जा रहा था उसकी जहाज नष्ट हो गई और उसको गोआ के एक धनी मुसलमान व्यापारी के यहाँ शरण लेनी पड़ी। हो सकता है कि इस कारण जयकेशी ने गुजरात के राजा से वैवाहिक संबंध किया हो जिससे कि वह थल मार्ग से सोमनाथ जा सके। संभवतः विवाह निश्चय किए जाने के बाद जयकेशी ने उपयुक्त उपहारों के साथ मयणल्लदेवी को कर्ण के पास भेजा। कर्ण उसको स्वीकार करना नहीं चाहता था किन्तु अपनी माता के हस्तक्षेप करने से उसने उसको स्वीकार किया जिससे उसको जयसिंह सिद्धराज नामक पुत्र हुआ जो अपने समय का उत्तर भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था।

मूल्यांकन—मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि भीलराजा आशा को हराने के बाद कर्ण ने कोद्दर्बा देवी का मंदिर बनवाया उसने कर्णावती नामक एक नगर की स्थापना की। जिसमें उसने कर्णेश्वर नामक एक वृहद् मंदिर का और कर्णसागर नामक एक बड़े

सरोवर का निर्माण किया। अणहिल पाटक में उसने कर्णमेरु नामक मंदिर बनवाया। फोर्ब्स के अनुसार कर्ण ने रूपिन नदी के जल प्रवाह को रोक कर उसके जल को कर्ण सागर की ओर मोड़ा जो १८१४ ई० में घनघोर वर्षा के कारण टूट गया। अपने पूर्वजों की तरह कर्ण भी शैव था किन्तु जैनियों का भी सम्मान करता था। पीटरसन का यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता कि वह वर्धमान सूरि का शिष्य था क्योंकि वर्धमानसूरि ने विमल मंदिर के अभिषेक के बाद निराहार रख कर अपना प्राणान्त किया। कुमारपाल के एक उत्कीर्ण लेख में उसके सौंदर्य का वर्णन 'रूप श्री जितन्-मन्मथ' और भीम द्वितीय के उत्कीर्ण लेख में उसका वर्णन, 'कामिनी-कंदर्प' पद से किया गया है। पृथ्वीराज विजय के अनुसार कर्ण दुर्लभराज की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा। उसकी मृत्यु संभवतः १०६३ ई० में हुई। 'त्रैलोकमल्ल' उसका विरुद था।

●

अध्याय | ५

जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल

जयसिंह सिद्धराज (ल० १०९३-११४३ ई०)—कर्ण और मयणल्लदेवी के पुत्र जयसिंह का विरुद सिद्धराज था। वह अपने वंश का सर्वाधिक विख्यात् राजा था। मेरुतुङ्ग के वर्णन के अनुसार कर्ण ने जयसिंह का जब वह तीन वर्ष का था पौष वदी तृतीया, शनिवार, श्रावण नक्षत्र, तुलालग्न में तदनुसार ७ जनवरी १०९४ ई० में राज्याभिषेक किया अतः इस वर्णन के अनुसार सिद्धराज १०९१ ई० में पैदा हुआ। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि सिद्धराज का राज्याभिषेक हो जाने के बाद कर्ण ने भील राजा आशा को पराजित किया। हेमचन्द्र ने लिखा है कि कर्ण को कोई पुत्र न था इसलिए उसने लक्ष्मी की आराधना की। इससे संकेत होता है कि कर्ण की अधिक आयु हो जाने पर उसको पुत्र लाभ हुआ। हेमचन्द्र ने लिखा है कि कर्ण की मृत्यु हो जाने पर देवप्रसाद राजधानी को आया और कर्ण के शव के साथ उसकी चिता में प्रवेश कर अपने जीवन का अन्त किया। प्रतीत होता है कि कर्ण और सिद्धराज के राजपण्डित हेमचन्द्र ने सत्य को छिपाया है। हो सकता है कि कर्ण की मृत्यु के बाद निष्कासित देवप्रसाद ने सिंहासन का अपहरण करने का प्रयत्न किया हो। किन्तु मयणल्लदेवी ने मंत्री शान्तु की सहायता से उसकी योजना को निष्फल कर उसको मरवा डाला और त्रिभुवनपाल को अणहिल पाटक लाकर कठोर निरीक्षण में रखा। मंत्री शान्तु ने भीम की राज्ञी उदयमती के भ्राता मदनपाल को भी मरवा डाला। प्रतीत होता है कि कर्ण की मृत्यु के बाद उसके संबंधियों ने नए राजा की अल्पवयस्कता का लाभ उठा कर उसके विरुद्ध षड्यंत्र किया या विधि दुरपयोग करने का प्रयत्न किया। मयणल्लदेवी अपने पुत्र की अल्पवयस्कता काल में राजप थी और अपने पति के मंत्रियों की सहायता से राज्य कार्य संचालन किया।

खंगार की पराजय—सिद्धराज एक महान् विजेता था। किन्तु उसकी विजयों का तिथिक्रम ज्ञात नहीं है। हो सकता है कि उसने पहले सौराष्ट्र की ओर ध्यान दिया हो और वहाँ के राजा को पराजित किया हो। मेरुतुङ्ग ने उसको 'आभीर-राणक' कहा है। प्रत्यक्षतः वह, वह सौराष्ट्र राजा है जिसको सिद्धराज ने कारावास में रखा। सोमेश्वर ने भी लिखा है कि सिद्धराज ने सौराष्ट्र के धृष्ट राजा खंगार को

पददलित किया। जिनप्रभासूरि ने लिखा है कि सिद्धराज ने सज्जन नामक एक व्यक्ति को अपना राजप्रतिनिधि बना कर सौराष्ट्र में नियुक्त किया जो ११२० ई० में वहाँ राज्य कर रहा था। प्रतीत होता है सिद्धराज के प्रयास पूर्णतया सफल नहीं हुए। जयसिंह सिद्धराज के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि अमीरों के विरुद्ध कुमारपाल को एक दूसरा अभियान भेजना पड़ा। मेरुतुङ्ग के अनुसार खंगार ने सिद्धराज को ग्यारह बार पराजित किया। बारहवें मुठभेड़ में सिद्धराज स्वयं गया। खंगार ने वर्धमान तथा अन्य नगरों के चारों ओर Ramparts बना रखा था। खंगार ने अपने भतीजे को आदेश दिया कि यदि शत्रु दीवारों पर चढ़ने में सफल हो तो वह उसको द्रव्यों से भरे हुए संदूकों से मार डाले, अन्ततः खंगार द्रव्यों से भरे हुए सन्दूकों से मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद सिद्धराज ने सौराष्ट्र की देखभाल के लिए दण्डनायक सज्जन को नियुक्त किया।

भाटों की एक अनुश्रुति के अनुसार खंगार ने एक सुन्दरी से विवाह किया जिस पर सिद्धराज की आँखें लगी थीं। इसीलिए चालुक्य राजा ने खंगार पर आक्रमण कर उसको नष्ट किया और उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। किन्तु वह लड़की अपने मृत पति के प्रति निष्ठावान बनी रही। यह कथा अविश्वसनीय प्रतीत होती है। १२ का अंक जैन धर्म में पवित्र माना गया है। इस अभियान की महत्ता दिखलाने के लिए इसके साथ १२ का अंक जोड़ा गया है। जिसके फलस्वरूप गिरनार नामक पुण्यस्थली चालुक्यों के आधिपत्य में आई।

नड्डूल के चाहमान—सून्धा पर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि नड्डूल के चाहमान जिन्दुराज के पुत्र आशाराज ने मालवा के युद्ध में सिद्धराज की सहायता कर उसको प्रसन्न किया। प्रतीत होता है कि मालवा के परमारों पर आक्रमण करने के पूर्व सिद्धराज ने अवश्य ही नड्डूल के चाहमानों को अपना मण्डलिक बनाया होगा। बाद को सिद्धराज और आशाराज के सम्बन्ध कटु हुए। किन्तु आशाराज के ११४३ ई० के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि आशाराज महाराजाधिराज जयसिंह के कमलचरणों पर जीवित है। सून्धा पर्वत और किराडु उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि सिद्धराज ने नड्डूल के चाहमानों पर कस कर नियन्त्रण कर रखा था। नड्डूल चाहमान रत्नपाल के दो उत्कीर्ण लेख सूचित करते हैं कि ११२० और ११३५ ई० में नड्डूल उनके अधिकार में था। आशाराज के दो उत्कीर्ण लेख नड्डूल से प्राप्त हुए हैं जिनकी तिथियाँ १११० ई० और १११६ ई० हैं। इन दोनों में से किसी में भी सिद्धराज के नाम का उल्लेख नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि रत्नपाल ने १११६-१९ ई० के बीच में आशाराज को नड्डूल से भगा दिया था जिससे कि आशाराज को अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए सिद्धराज की सहायता लेनी पड़ी। प्रतीत

होता है कि आशाराज को इसमें सफलता नहीं मिली। क्योंकि रायपाल ने ११३२ ई० और ११४५ ई० की अवधि में नड्डूल से ८ उत्कीर्ण लेख निस्सृत किए। आशाराज के बली उत्कीर्ण लेख में जिसकी तिथि ११४३ ई० है घोषित किया गया है कि आशाराज जयसिंह का मण्डलिक है। अतः यह स्पष्ट है कि आशाराज अन्त तक सिद्धराज का मण्डलिक बना रहा।

शाकम्भरी के चाहमान—शाकम्भरी चाहमान राजा विग्रहराज तृतीय ने चालुक्य कर्ण के विरुद्ध उदयादित्य की सहायता की थी। अतः स्पष्ट है कि शाकम्भरियों और चालुक्यों के सम्बन्ध कटु रहे होंगे। हेमचन्द के द्वयाश्रय में लिखा है कि शाकम्भरी चाहमान अर्णोराज को जयसिंह के समक्ष अपना सिर झुकाना पड़ा। स्पष्ट है कि जयसिंह ने अर्णोराज को पराजित किया होगा। सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी में लिखा है कि शाकम्भरी पति ने जयसिंह के सामने अपना सिर झुकाया, और सिद्धराज ने अपनी पुत्री का विवाह अर्णोराज के साथ किया। पृथ्वीराज विजय में लिखा है कि अर्णोराज की दो राज्ञियों में से एक राज्ञी गूर्जर थी। टीकाकार जोनराज ने अपनी टीका में यह बात जोड़ी है कि गुर्जर राजा जयसिंह की पुत्री काञ्चनदेवी का विवाह अर्णोराज से हुआ था जिनका पुत्र सोमेश्वर था जो अपने नाना जयसिंह सिद्धराज के साथ रहता था। साम्भर प्रश्तर उत्कीर्ण लेख से प्रमाणित है कि सिद्धराज ने अर्णोराज को पराजित किया। इस उत्कीर्ण लेख के प्राप्ति स्थान से तथा इस तथ्य से कि इसमें साम्भर का नाम आया है यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सिद्धराज ने सचमुच साम्भर पर कुछ समय तक राज्य किया। सम्भवतः उसने पराजित अर्णोराज के साथ अपनी पुत्री का विवाह इसलिए किया कि वह कूटनीति की दृष्टि से चाहमानों और चालुक्यों के वैमनस्य को तथा अर्णोराज के हृदय से पराजय रूपी कंटक को दूर करना चाहता था। उसकी आशाएँ फलवती हुई। अर्णोराज ने परमार नरवर्मन् के विरुद्ध सिद्धराज की सहायता की।

मालवा के परमार—जयसिंह की मालवा में असाधारण विजय और परमार राजा यशोवर्मन् का बन्धक उसके सामरिक कार्य-कलापों में सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसके राजकवि हेमचन्द्र ने इस कथानक का एक पूरे सर्ग में वर्णन किया है किन्तु इसमें ऐतिहासिक महत्त्व की नाममात्र की सूचना है। प्रतीत होता है कि सिद्धराज ने गुप्तरीति से उज्जैन में प्रवेश कर अकस्मात् यशोवर्मन् पर छापा मारा और मालवराज यशोवर्मन् को बन्दी बना लिया। वडनगर प्रशस्ति का कथन है कि जयसिंह सिद्धराज ने जिस ढंग से गौरवयुक्त मालवपति को शृंखलाबद्ध किया उससे संसार के समस्त राजा भयभीत हुए। सोमेश्वर ने लिखा है कि सिद्धराज ने धारापति को राज-शुक की तरह लकड़ी के पिंजड़े में डाल दिया....उसने नरवर्मन् की नगरी एकल धारा को ग्रहण

किया किन्तु उसकी पत्नियों को अश्रुओं की हजारों धारायें प्रदान कीं। सोमेश्वर ने अपने सुरथोत्सव में केवल इतना लिखा है कि धारा का राजा कारागार में डाला गया। बालचन्द्र ने भी लिखा है कि सिद्धराज ने धारा के अभागे राजा को एक लकड़ी के पिंजड़े में डालकर रखा और इसी हालत में उसको गुजरात लाया। अरिसिंह ने लिखा है कि सिद्धराज ने धारा के राजा यशोवर्मन् को बन्दी बनाया, और वस्तुपाल—तेजःपाल-प्रशस्ति ने मालव राजा पर सिद्धराज की विजयमात्र का उल्लेख किया है। जयसिंह सूरि ने लिखा है कि सिद्धराज ने प्रण किया था कि नरवर्मन् का बध कर वह उसकी त्वचा का अपनी तलवार के लिए म्यान बनाएगा। इस प्रण की पूर्ति १२ वर्ष तक चलने वाले अभियान के बाद हुई जब सिद्धराज धारा में प्रवेश करने में सफल हुआ। जिन-मण्डन ने भी यह कथा लिखी है। किन्तु उसने यह भी लिखा है कि सिद्धराज के मन्त्रियों ने सिद्धराज को अपने प्रण पूरा करने से रोका, क्योंकि वह जीवित पकड़ा गया था और राजा की शरीर अबाध्य है।

मेरुतुङ्ग ने इस संघर्ष का विवरणात्मक वर्णन दिया है। उसने लिखा है कि जिस समय सिद्धराज अपनी माता के साथ सोमनाथ की तीर्थयत्रा पर गया था। यशोवर्मन् ने गुजरात में प्रयाण किया और सिद्धराज के मंत्री, सान्तू से सिद्धराज की तीर्थयात्रा का पुण्य लाभ कर यशोवर्मन् लौट गया। जब तीर्थयात्रा से लौटने पर सिद्धराज को यह ज्ञात हुआ तब वह प्रकुपित हुआ और उसने मालवा पर चढ़ाई की। यह युद्ध बारह साल तक चलता रहा और अन्ततः सिद्धराज विजयी हुआ और परमार राजा को बन्दी बना कर अपने साथ अणहिलपाटक लाया।

गाला उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११३७ ई० तथा अन्य उत्कीर्ण लेखों में सिद्धराज ने अपना विरुद 'अवन्तीनाथ' लिखा है। उज्जैन खण्डात्मक प्रस्तर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि यशोवर्मन् को पराजित कर सिद्धराज ने बलात् अवन्ति-मण्डल पर अधिकार किया और उस प्रदेश को महादेव के प्रशासन में रखा। उत्कीर्ण लेखों के कथनों से प्रतीत होता है कि यह संघर्ष नरवर्मन् (ल० १०९४-११३३ ई०) के समय से आरम्भ हुआ और आशाराज और अर्णोराज ने नरवर्मन् के विरुद्ध सिद्धराज की सहायता की। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस संघर्ष में आक्रामक कौन था? मेरुतुङ्ग के अनुसार यशोवर्मन् ने संघर्ष आरम्भ किए किन्तु मेरुतुङ्ग का कथन संदिग्ध प्रतीत होता है, और उसके अनेक कथन अनैतिहासिक भी प्रमाणित हो चुके हैं। उत्कीर्ण लेखों के कथनों से प्रतीत होता है कि नरवर्मन् के शासनकाल में परमारों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी, और उनको कई पराजय सहनी पड़ी थीं। चंदेल मदनवर्मन् ने उदयपुर के समीप के महत्वपूर्ण प्रदेश पर अधिकार किया, चोलों ने मालवराजा संभवतः नरवर्मन्, को परास्त किया, और राजाओं का एक स्वतंत्र वंश

११२३ ई० में उज्जैन के ५० मील के अन्दर राज्य कर रहा था। यह संभाव्य प्रतीत होता है कि ऐसे राजा ने अपने पुत्र यशोवर्मन् को गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजा हो; या वह गुजरात सेना को परास्त करने में सफल हुआ हो। इसके अतिरिक्त ऐसी किसी विजय को किसी परमार उत्कीर्ण लेख ने अभिलिखित नहीं किया है। यशोवर्मन् का अन्तिम ज्ञात उत्कीर्ण लेख ११३५ ई० का है और, ११३६ ई० के गाला उत्कीर्ण लेख में सिद्धराज अवन्तिनाथ कहा गया है। अतः सिद्धराज ने अवश्य ही ११३५ और ११३६ ई० के बीच में धारा पर अधिकार किया होगा। दो वर्ष बाद मालवा पर महादेव नामक एक चालुक्य राज्यपाल प्रशासन कर रहा था।

कितने समय तक सिद्धराज मालवा पर अधिकार किए रहा यह ज्ञात नहीं है। दोहद उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११४० सूचित करता है कि सिद्धराज ने वाहिनि-पति केशव को दधिपद्र तथा अन्य मण्डलों में सेनापति नियुक्त किया। यशोवर्मन् के पुत्र जयवर्मन् ने महाराजाधिराज का विरुद धारण किया। जिससे प्रतीत होता है कि उसने मालव के कुछ भाग को मुक्त किया। अब तक उसका एक ही उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुआ है जो उसके आवास वर्धमानपुर से निस्सृत किया गया था। प्रतीत होता है कि बल्लाल ने उस समय उज्जैन पर अधिकार किया जब सिद्धराज की मृत्यु के बाद गुजरात के सिंहासन के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में फूट हुई।

भीनमाल के परमार—कीर्तिकौमुदी के कथन से प्रतीत होता है कि सिद्ध-राज ने पूर्वी पंजाब पर जो गौड़ प्रदेश के नाम से विख्यात था अधिकार किया। इस अभियान में सम्भवतः उदयराज सिद्धराज के साथ गया था। उदयराज के पुत्र सोमेश्वर ने सिद्धराज की सहायता से ११४१ ई० में भीनमाल के लुप्त सिंहासन पर अधिकार किया।

सिद्धराज और चंदेल—सोमेश्वर ने लिखा है कि धारा के पतन का समा-चार सुनकर महोबक (महोबा) के राजा चंदेल मदनवर्मन् ने सिद्धराज की अधीनता स्वीकार की। जयसिंह सूरि ने लिखा है कि सिद्धराज ने मदनवर्मन् को हरा कर उससे छियानबे करोड़ स्वर्ण मुद्रायें लीं। जिन-मण्डन ने विस्तार से वर्णन करते हुए लिखा है कि चंदेल राजा मदनवर्मन् सिद्धराज को कुछ द्रव्य दिए और सिद्धराज की प्रार्थना पर उससे भेंट की और उसको राजप्रासाद और राजउद्यान में घुमाया और आतिथ्य सत्कार किया। उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि सिद्धराज विजय नहीं प्राप्त कर सका और द्रव्योपहार पाकर अपने को संतोष किया या विवश होकर उसने सन्धि की। अन्तिम मत की पुष्टि कालिंजर किले से प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख से होती है जिसमें लिखा है कि मदनवर्मन् ने एक क्षण में गुर्जर राजा को परास्त किया, जिस तरह कृष्ण

ने पुराकाल में कंस को परास्त किया था। हिन्दी कवि चन्द ने भी इस अनुश्रुति का उल्लेख किया है कि मदनवर्मन् ने गुर्जर राजा पर विजय प्राप्त की।

त्रिपुरि के कलचुरि—मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि डाहल प्रदेश के राजा ने सिद्धराज को एक यमल-पत्र (मैत्री-पत्र) लिखा। हो सकता है कि यश:कर्ण (ल० १०७३-११२५ ई०) रहा हो जो संभवत: कर्ण द्वारा पराजित किया गया था।

गाहडवाल और सिद्धराज—मरुतुङ्ग ने लिखा है कि सिद्धराज का एक कूटनीतिक अभिकर्त्ता बनारस के राजा जयचन्द की राजसभा में था। इन दोनों राजाओं में अवश्य ही सौहार्द सम्बन्ध रहे होंगे, क्योंकि गाहडवालों और चंदेलराजा मदनवर्मन् में प्रतिद्वंदिता थी जैसा कि मऊ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि मदनवर्मन् ने 'काशी के राजा को मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध में अपना समय यापन करने को विवश किया। दूसरी ओर जयचन्द्र के शासन काल में लिखे गए संस्कृत ग्रन्थ रम्भामंजरी का कथन है कि 'जयचन्द्र के बाहु मदनवर्मन की राज्यश्री रूपी देवी को जो गज के समान थी, बाँधने के लिए स्तम्भ स्वरूप थे।' सिद्धराज के समय गाहडवाल सम्राट् जयचन्द्र का प्रपिता गोविन्दचन्द्र था। हो सकता है कि रूपचन्द्र ने अपने प्रपिता के शासनकाल में किसी अभियान में भाग लिया हो। यह अत्यन्त संभाव्य है कि सिद्धराज ने चंदेलों के विरुद्ध जिन्होंने इस काल में मालवा पर आक्रमण किया गाहडवालों और कलचुरियों से मैत्री गठन किया।

मालवा में पश्चिमी चालुक्य और चंदेल—मदनवर्मन् के समकालीन मालव राजा यशोवर्मन् जयवर्मन् या लक्ष्मीवर्मन् थे। किन्तु यह अत्यन्त संभाव्य है कि उसने जयवर्मन् को परास्त किया। मदनवर्मन् ने ११३४ ई० में मैल-स्वामी-महाद्वादशक से एक दानपत्र निस्सृत किया। यह ज्ञात नहीं है कि मदनवर्मन् मालवा ने इस क्षेत्र को परमारों से छीना। मदनवर्मन् के इस संभाव्य आक्रमण को दृष्टि में रखकर पंचमहल में सुरक्षा का प्रबन्ध किया। सिद्धराज ने परमारों के विरुद्ध पश्चिमी चालुक्यों के संभावित युक्तियों का सामना करने के लिए सुरक्षा का प्रबंध किया। सिद्धराज के शासन का अन्त होते पश्चिमी चालुक्य सोमेश्वर तृतीय (११२८-११३८ ई०) और जमदेकमल्ल द्वितीय (११३९-११४९ ई०) ने मालवा पर आक्रमण करने शुरू किए और इसके राजा को हराया जो संभवत: जयवर्मन् था।

सिद्धराज और पश्चिमी चालुक्य—विक्रमादित्य षष्ट ने गूर्जर राजा पर अनेक विजएँ प्राप्त कीं। उसने १०८८-८९ ई० के बीच में किसी समय विजएँ प्राप्त कीं। ११०५ के एक उत्कीर्ण लेख का कथन है कि उसके एक अधिकारी ने चोलों, मालवों और गूर्जरों पर विजय प्राप्त कीं। उसके सेनापति अनन्तपाल के उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित १११४ ई० सूचित करता है कि 'उसने गूर्जर शक्ति को कुचल दिया।'

विक्रमादित्य के ११२१ ई० के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसके एक सेनापति महामण्डलेश्वर त्रिभुवनमल्ल पाण्ड्यदेव का ११२१ ई० का उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसने सुविख्यात गूर्जर को पददलित किया। विक्रमादित्य शष्ट के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने लाट और गूर्जर को विजय किया। इसी तरह ११२२ ई० के ११२४ ई० के उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसने दक्षिण के गंगराज्य को, चोलों को, लाटों को विजित किया और पांचालों को और लाट तथा गूर्जर प्रदेशों को विजय किया। कुछ विद्वानों की राय है कि उसने लाट को विजय किया किन्तु गुजरात के राजा को भयभीत कर रखा। हो सकता है कि उसने लाट को भी विजय किया हो। हो सकता है कि उसने १०८८-८९ में नर्मदा के उस पार आक्रमण किया हो। किन्तु इस आक्रमण का कोई स्थायी परिणाम नहीं हुआ। प्रतीत होता है कि उसने गूर्जर प्रदेश पर मात्र क्षिप्राक्रमण किए। ११३१ ई० में पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति इतनी निर्बल हो गई थी कि वे सिद्धराज पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते थे। प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य के शासन के अन्तिम वर्षों में गोआ के कदम्ब वंश ने विक्रमादित्य के विरुद्ध विद्रोह किया हो। तेल्वारा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि सिद्धराज ने परमार्दि को हराया जिसका तादात्म्य विक्रमादित्य शष्ट से किया गया है।

सिद्धराज और सिन्धुराज—दोहद उत्कीर्ण लेख के अनुसार सिद्धराज ने सिन्धुराज नामक राजा को हराया जिसका तादात्म्य सिन्ध के एक सुम्र राजा से किया गया है। सोमेश्वर ने इस विजय का उल्लेख एक श्लोषात्मक श्लोक में किया है, 'वैदेही (सीता) पति, राम (सिद्धराज) ने सिन्धु पति (सागर राम के पक्ष में, नदी सिद्धराज के पक्ष में) असंख्य 'अरियों' (बन्दर या अश्वारोही) से, बाँध लिया और अनेक 'भूभृतियों' (पर्वत राम के वक्ष में, राजाओं सिद्धराज के पक्ष में) को गिरा दिया'। हो सकता है कि सिद्धराज ने सिन्ध के किसी स्थानीय शासकों को जो मुसलमान रहे हों हराया। मेरुतुंग ने जिस म्लेच्छ दूत का उल्लेख किया है हो सकता है कि वह सिन्ध के किसी ऐसे ही शासक का दूत रहा हो।

बरबरक—उज्जैन उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११३८ ई० में सिद्धराज को उपाधि बरबरक-जिष्णु दी हुई है। उसके उत्तराधिकारियों के समस्त उत्कीर्ण लेखों में भी उसकी यही उपाधि दी हुई है। यह प्रतीत नहीं होता कि बरबरक कोई जन जाति थी या वास्तविक व्यक्ति। अरिसिंह और सोमेश्वर ने बरबरक की आधिदैविक शक्तियों का उल्लेख किया है और लिखा है कि राजाओं में जयसिंह सिद्धराज के नाम से इसलिए विख्यात हुआ कि उसने बरबरक को एक श्मशान भूमि में आबद्ध किया किन्तु यह कथन ठीक नहीं क्योंकि ११३६ के गाला उत्कीर्ण लेख में जयसिंह सिद्ध-

चक्रवर्ती कहा गया है और उज्जैन उत्कीर्ण लेख में दो वर्ष बाद निस्सृत किया गया है वह बरबरक-जिष्णु कहा गया है। बूलू ने लिखा है कि बरबरक संभवतः कोई अनार्य जाति, कौली, भील, या मेर थी जो बड़ी संख्याओं में उत्तरी गुजरात में बसे। ये जातियाँ कभी-कभी (राक्षस) इसलिए कही जाती हैं कि वे निर्दय थे और उनमें सभ्यता की कमी थी। इन्द्रजी ने लिखा है कि बरबर एक अनार्य जनजाति थी जो इस समय बर्बरिया कहे जाते हैं और दक्षिण काठियावाड के बबरीवाड प्रदेश में रहते हैं। इनका तादात्म्य निश्चिय रूप से नहीं किया जा सका है।

सिद्धराज के राज्य का विस्तार—सिद्धराज के शासनकाल में चालुक्य साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। सिद्धराज ने अनेक सफल युद्धों द्वारा अपने राज्य का विस्तार किया। उसने कगार को हराकर संपूर्ण काठियावाड़ को अपने राज्य में सम्मिलित किया। आशाराज ने उसकी अधीश्वरता स्वीकार की थी जिससे प्रतीत होता है कि दक्षिणी राजपूताना का गोदवाद प्रदेश उसके नियंत्रण में था। सिद्धराज ने शाकम्भरी चाहमानों को भी हराया और कुछ समय तक साभर उसके स्वत्व में था। परमार राज्य का अधिकांश भाग जिसमें मालवा की राजधानी धारा और उज्जैनी नगरी सम्मिलित थी उसके राज्यान्तर्गत था। सिद्धराज के प्रस्तर उत्कीर्ण लेख भीनमाल, दक्षिणी राजपूताना के अन्तर्गत तल्वारा, जोधपुर जनपद के बाली साभर, काठियावाड़ के अर्न्तगत गाला जो ध्रंगद्र, गिरनार, कच्छ के अन्तंगत भद्रेश्वर पंचमहल के अर्न्तगत दोहद, ग्वालियर के अर्न्तगत उदयपुर तथा उज्जैन से पाए गए हैं। इन प्राप्ति-स्थानों से भी उसके राज्य के विस्तार की पुष्टि होती है।

दो संस्कृत हस्तलिपियों का पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है कि लाट सिद्धराज के दृढ़ नियंत्रण में था। उपर्युक्त पुष्पिकाओं में से एक में लिखा है कि यह हस्तलिपि महाराजाधिराज श्री—जयसिंह देव के विजय राज्य में लिखा गया है जब सन्तुक लाट का राज्यपाल था। इस सन्तुक का तादात्म्य सान्तू नामक मंत्री से किया जा सकता है जिसका उल्लेख मेरुतुङ्ग ने किया है। दूसरे हस्तलिखित ग्रन्थ की पुष्पिका सूचित करती है कि यह ग्रन्थ महाराजाधिराज श्री जयसिंह देव के शासनकाल में ११४१ ई० में भृगुकच्छ में लिखा गया था।

साहित्यिक कार्य—सिद्धराज की राजसभा में अनेक कवि और विद्वान थे जिनमें हेमचन्द्र असंदिग्ध रूप से अत्यंत प्रतिभावान, बहुशास्त्रज्ञ था। जिसके अप्रतिम ज्ञान के समक्ष और विद्वान प्रतिभाहीन थे। हेमचन्द्र ने सिद्ध-हेमचन्द्र नामक व्याकरण लिख कर जयसिंह सिद्धराज का नाम अमर कर दिया है। जिसको लिखने के लिए जयसिंह सिद्धराज ने परमारों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के बाद हेमचन्द्र को प्रेरित किया। प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि मालवा की लूट में हस्तलिपियाँ प्राप्त की गई थीं

जो सिद्धराज के सम्मुख प्रस्तुत की गईं। उस समय जो विद्वान वहाँ उपस्थित थे उन्होंने भोज कृत एक व्याकरण ग्रन्थ की अत्यंत प्रशंसा की। चालुक्य राजा को बड़ा दुःख हुआ कि उसके राज्य में कोई ऐसा विद्वान नहीं है जो इसकी समता का ग्रन्थ लिख सके। राजा ने 'विश्वलोकोपकाराय' 'व्याकरणं नवम्' लिखने के लिए हेमचन्द्र से प्रार्थना की। हेमचन्द्र की प्रार्थना पर कश्मीर से ८ व्याकरण ग्रन्थ मँगाए गए जो अपने में पूर्ण थे। हेमचन्द्र ने उन हस्तलिपियों का अध्ययन कर अपने व्याकरण की रचना की जिसमें ८ अध्याय और ३२ पद थे और जिसका नाम उसने राजा के सम्मान में 'सिद्ध हेमचन्द्र' (हेमचन्द्र द्वारा संकलित और सिद्धराज को समर्पित) रखा। राजा ने इसकी प्रतिलिपियाँ करा कर संपूर्ण भारत में बटवाया। हेमचन्द्र ने अपनी व्याकरण लिखने में कम से कम १५ व्याकरण ग्रन्थों से विचार ग्रहण किया था, और प्रभाचन्द्र का कथन कि हेमचन्द्र का व्याकरण ग्रन्थ ८ पूर्व ग्रन्थों पर आधारित है, गलत है।

हेमचन्द्र का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ द्व्याश्रय महाकाव्य है।

सिद्धराज के संरक्षण और देखभाल में गुजरात विद्या और साहित्य का विख्यात केन्द्र हुआ। हेमचन्द्र के अतिरिक्त उसकी राजसभा में अनेक कवि, नाटककार और ग्रन्थकार थे। उन विद्वानों में श्रीपाल का शीर्ष स्थान था जिसने विख्यात वडनगर प्रशस्ति की रचना की जिसमें कवि ने अपने को कवि-चक्रवर्ती और सिद्धराज का अभिस्वीकृत भ्राता लिखा है। श्रीपाल ने वैरोचन—पराजय नामक ग्रन्थ लिखा है। हेमचन्द्र का विख्यात एकाक्ष्य रामचन्द्र उसकी राजसभा का एक अन्य यशस्वी कवि था। आचार्य जयमंगल जिसमें कवि शिक्षा नामक ग्रन्थ तैयार किया इसी काल में हुआ। मुद्रित-कुमुदचन्द्र नाटक का नाटककार यशःचन्द्र भी उसकी सभा को शोभित करता था। उसकी सभा का एक अन्य विख्यात कवि वर्धमान था जिससे सिद्धराज वर्णना नामक पुस्तक लिखी जो इस समय अप्राप्य है।

सिद्धराज शैव था, और अपने पूर्वजों की निष्पक्ष धार्मिक नीति का अनुगमन किया। उसने न केवल जैनियों पर कृपा की जो उसके राज्य में उच्च पद पर थे, बल्कि मुसलमानों पर भी। उसके शासनकाल में उसकी सभा में जो विद्वान आए उनमें अधिकांश जैन थे। हो सकता है कि कुछ सीमा तक हेमचन्द्र ने उसके उत्तरवर्ती जीवन को प्रभावित किया हो। किन्तु वह अन्त तक शैव बना रहा। हेमचन्द्र की एक विशेषता यह थी कि उसमें साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं था।

द्रव्याश्रय में लिखा है कि सिद्धराज ने सिद्धपुर में रुद्रमहालय मन्दिर, और एक चैत्य का निर्माण किया तथा जैन भिक्षुओं और भिक्षुणियों के निर्वाह का प्रबन्ध किया। हेमचन्द्र ने सोमनाथ की तथा नेमिनाथ के चैत्य की तीर्थयात्रा का वर्णन किया है जो सिद्धराज ने की थी। प्रभावक चरित सूचित करता है कि इस यात्रा में हेमचन्द्र

भी राजा के साथ गया था। सिद्धराज इस्लाम के प्रति भी सहिष्णु था और चकित मुसलमान इतिहास लेखक मुहम्मद ऊफी ने सिद्धराज के पक्षपातहीन व्यवहार की कथाएँ लिखी हैं।

सिद्धराज का धार्मिक गुरु भाव वृहस्पति था जिसको वह परमार राजा को हरा कर मालव से लाया था।

अन्य अनेक भारतीय सम्राटों की तरह एक महान् भवन निर्माणक था। उसका बनवाया हुआ सबसे महत्वपूर्ण भवन रुद्रमहालय मन्दिर था जो भारत का सबसे विशाल मन्दिर था। भव्य भवनों के प्रति उसका प्रेम इससे प्रमाणित होता है कि उसने, सौराष्ट्र के राज्यपाल सज्जन ने राज्य के तीन वर्ष के राजस्व कि जब उस सुन्दर भवन को देखा जिसको सौराष्ट्र के राज्यपाल सज्जन ने तीन वर्ष के राजस्व का अपहरण कर, बिना किसी अधिकार के नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया जिसके सौन्दर्य से राजा इतना प्रसन्न हुआ कि अपने अपराधी राज्यपाल को क्षमा प्रदान की। सिद्धराज ने सहस्त्र लिङ्ग सरोवर का निर्माण किया जिसके कारण लोग उसको अब तक याद करते हैं। इस सरोवर के चारों ओर १,००८ छोटे मन्दिर थे जिसमें हर एक में एक शिव लिंग था। उसने विद्यार्थियों के निवास के लिए कई आश्रम स्थापित किये। उपर्युक्त भव्य सरोवर के सामने उसने एक कीर्तिस्तम्भ निर्माण किया। इस सरोवर के समीप एक 'उपाध्याय—शिक्षा गृहम्' था जिसमें शिक्षकों को शिक्षा दी जाती थी उसने दशावतार नारायण का एक मन्दिर सरस्वती नदी के तट पर बनवाया। उसके बनवाए हुए अधिकांश भवन इस समय ध्वंसावस्था में हैं। अतः भवन निर्माणक के रूप में उसका ठीक ठीक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। किन्तु उसका महत्व इसी से आंका जा सकता है कि मृत्यु के लगभग ३०० वर्ष बाद एक कवि ने इन शब्दों में उसके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है :

महालयो महायात्रा महास्थानं महासरः
यत्—कृतं सिद्धराजेन क्रियते तन् न केनचित् ॥

सिद्धराज के अन्तिम दिन—अपने अन्तिम दिनों में राजा चिन्ताकुल था कि उसके कोई पुत्र नहीं है और उसकी मृत्यु के बाद उसकी जनता पर अत्याचार होंगे। वह पुत्रार्थ मन्दिर २ जाता था और प्रत्येक देवता से पुत्र की कामना करता था। अपनी राजनिष्ठ प्रजाओं को देखकर उसके हृदय में पितृ-स्नेह उमड़ता था। हेमचन्द्र ने लिखा है कि दैवी रूप से उसको ज्ञात हुआ कि उसको पुत्र नहीं होगा तथा उसका उत्तराधिकारी कुमारपाल होगा जो कौटुम्बिक सम्बन्ध में उसका पौत्र था। इसके बाद उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गई।

कुमारपाल (ल० ११४३-७२ ई०)—समस्त प्राचीन और मध्यकालीन

भारतीय राजाओं में जितनी इतिवृत्तियाँ इस सम्राट् के सम्बन्ध में लिखी गई हैं उतनी किसी अन्य के सम्बन्ध में नहीं। हेमचन्द्र ने लिखा है कि चालुक्य भीम का पुत्र क्षेमराज था और क्षेमराज का पुत्र देव प्रसाद और पौत्र त्रिभुवन पाल था। अभयतिलकगणि सूचित करती है कि भीम का ज्येष्ठ पुत्र मूलराज, द्वितीय पुत्र क्षेमराज, और कनिष्ठपुत्र कर्ण था। हेमचन्द्र सूचित करता है कि क्षेमराज युवावस्था से ही तपस्यापरायण था। इसीलिए उसने अपने पुत्र का नाम देव प्रसाद रखा, और जब उसको सिंहासन प्रदान किया गया उसने उसे ग्रहण न किया और एकान्त वास करने के लिए दधिस्थली चला गया। सिंहासनारूढ़ होने पर कर्ण ने उसके पुत्र देवप्रसाद को उसकी देखभाल करने के लिए वहीं भेज दिया। कर्ण की मृत्यु की सूचना पाकर देवप्रसाद ने अपने को भस्म कर लिया और अपने पुत्र त्रिभुवन पाल को सिद्धराज के संरक्षण में रखा। त्रिभुवन पाल ने सिद्धराज की निष्ठापूर्वक सेवा की। हेमचन्द्र ने यह नहीं लिखा है कि उसकी कब और कैसे मृत्यु हुई। त्रिभुवन पाल का पुत्र कुमारपाल सिद्धराज की मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठा। सोमप्रभा नामक एक अन्य इतिवृत्त लेखक ने कुमारपाल की प्रायः यही वंशावली दी है, किन्तु एक बाद के लेखक प्रभाचन्द्र ने क्षेमराज के नामक उल्लेख नहीं किया है। उसने केवल इतना ही लिखा है कि देव प्रसाद कर्ण का 'बन्धु' था, और उसका पुत्र त्रिभुवन पाल कुमारपाल का पिता था। 'बन्धु' शब्द किसी भी आत्मीय या स्वजन सम्बन्ध सूचक अर्थ में लिया जा सकता है। क्षेमराज के नाम का यहाँ उल्लेख न होने के कारण बाद के लेखकों में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हुई हैं।

मेरुतुङ्ग के वर्णन के अनुसार भीम ने पट्टन की बकुलादेवी नामक एक महिला को अपने अन्तःपुर में रख लिया था जो अपने सौन्दर्य तथा अन्य गुणों के लिए विख्यात थी। बकुलादेवी का पुत्र हरिपाल का पुत्र त्रिभुवनपाल था जिसका पुत्र कुमारपाल था। जयसिंह सूरि ने लिखा है कि भीम की अलग-अलग पत्नियों से दो पुत्र हुए। जिनमें क्षेमराज ज्येष्ठ था और कर्ण कनिष्ठ। भीम ने राजा दशरथ की तरह कर्ण की माता को वचन दिया था (पित्रा दाशर्थेनेव तन् मात्रे प्राक्-प्रतिश्रुतम्) कि कर्ण उसका उत्तराधिकारी होगा। क्षेमराज ने कर्ण को राज्य दिया। क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद था जिसको कर्ण ने दधिस्थली दिया। देवप्रसाद का पुत्र त्रिभुवनपाल था जिसका ज्येष्ठ पुत्र कुमारपाल था। जिन-मण्डन ने मेरुतुङ्ग और जयसिंह सूरि के कथनों में सामंजस्य करने के लिए लिखा है कि भीम की दो पत्नियाँ थीं, बकुलादेवी और उदयमती। बकुलादेवी वृद्धा राज्ञी थीं। उसका पुत्र क्षेमराज था। कर्ण उदयमती का पुत्र था जिसको प्रसन्न करने के लिए भीम ने कर्ण को राज्य दिया यद्यपि वह क्षेमराज से छोटा था। मेरुतुङ्ग ने कुमारपाल की जो वंशावली दी है वह निश्चित रूप से गलत है। कुमारपाल का चित्तौरगढ़ खडात्मक उत्कीर्ण लेख हेमचन्द्र द्वारा दी गई कुमार-

पाल की वंशावली की पुष्टि करता है। हेमचन्द्र कुमारपाल की निम्न उत्पत्ति के संबंध में मौन है क्योंकि कुमारपाल का राजकवि और गुरु होने के नाते वह ऐसी बात नहीं लिख सकता था जिससे कुमारपाल की वैधता पर धब्बा लगे। हेमचन्द्र ने यह भी नहीं लिखा है कि क्षेमराज और कर्ण की माताएँ भिन्न थीं, जैसा कि बाद के तीन इतिवृत्त लेखक सूचित करते हैं। इस दृष्टि से प्रभाचन्द्र का कथन कि देवप्रसाद कर्ण का 'बन्धु' था और भी अर्थ पूर्ण हो जाता है। स्पष्ट है कि कर्ण और क्षेमराज सहोदर भ्राता नहीं थे।

किसी अन्य साक्ष्य से मेरुतुङ्ग के कथन की पुष्टि नहीं होती कि बकुलादेवी की पूर्व स्थिति निम्न थी। कुमारपाल जैनियों का महान् संरक्षक था। अतः मेरुतुङ्ग ऐसे कट्टर जैनी के लिए कुमारपाल की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। प्रतीत होता है कि कुमारपाल की लांछनपूर्ण कथा का मेरुतुङ्ग के पास कोई न कोई आधार रहा होगा। प्रतीत होता है कि यह अनुश्रुति प्रभाचन्द्र को भी ज्ञात थी। इसीलिए उसने क्षेमराज का नामोल्लेख नहीं किया है और देवप्रसाद को कर्ण का बन्धु लिखा है। हेमचन्द्र के इस कथन का विश्वास नहीं किया जा सकता कि क्षेमराज ने अपने त्यागमय और तपस्यापूर्ण वृत्ति के कारण सिंहासन का त्याग किया, और देवप्रसाद कर्ण की मृत्यु पर इतना शोकाकुल हुआ कि उसने अपने को भस्म कर लिया। प्रत्यक्षतः बाद के इतिवृत्त लेखकों ने इस कथन का विश्वास नहीं किया। अतः उन्होंने यह कहानी रची कि अपनी छोटी राज्ञी के स्नेहवश भीम ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासन से वंचित किया।

कुमारपाल की निम्न उत्पत्ति के कारण ही सिद्धराज उसके प्रति घृणा रखता था। अनेक इतिवृत्त लेखकों के अनुसार कुमारपाल का बहनोई कृष्णदेव सिद्धराज की सेना का एक सेनापति था। प्रभाचन्द्र के अनुसार कुमारपाल के भ्राता कीर्त्तिपाल को सिद्धराज ने नवघण के विरुद्ध, एक अभियान का नेता नियुक्त कर भेजा था। स्पष्ट है कि सिद्धराज सारे परिवार से घृणा नहीं करता था। किन्तु कुमारपाल के प्रति वह क्रोधित था क्योंकि वह उसके सिंहासन का एक दावेदार था। मेरुतुङ्ग ने ठीक ही लिखा है, 'सिद्धराज के लिए यह असह्य था कि नीच उत्पत्ति का कुमारपाल सिंहासन का उत्तराधिकारी हो, और वह उसके विनाश के अवसर की सदा ताक में रहता था।'

कुमारपाल का भ्रमण—हेमचन्द्र कुमारपाल के प्रारंभिक जीवन के संबंध में मौन है। हेमचन्द्र ने अपनी प्राकृत रचना द्वयाश्रय में कुमारपाल के दैनिक जीवन का वर्णन किया है। किन्तु उसने यह नहीं लिखा है कि सिंहासन पर बैठने के पूर्व उसकी क्या स्थिति थी। संस्कृत द्वयाश्रम में उसने केवल इतना ही लिखा है कि सिद्धराज की मृत्यु के बाद कुमारपाल सिंहासन पर बैठा।

हेमचन्द्र ने कुमारपाल के प्रारंभिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। अतः उसने उसके प्रारंभिक जीवन के संबंध में मौन रहना ही उचित समझा। कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे प्रतीत होता है कि सिद्धराज के कोप से बचने के लिए कुमारपाल को अन्य प्रदेशों में शरण लेनी पड़ी। जिसका विवरण हेमचन्द्र के अतिरिक्त बाद के समस्त इतिवृत्त लेखकों ने किया है।

हेमचन्द्र के समकालीन यशःपाल ने मोहराज पराजय नामक अपने नाटक में लिखा है कि 'गूर्जरपति चालुक्य वंशध्वज (कुमारपाल) को कौन नहीं जानता जिसने अकेले ही कुतूहलवश सकल भू-मण्डल में भ्रमण किया।'

प्रभाचन्द्र ने कुमारपाल की नियति में हेमचन्द्र ने क्या भाग लिया इसका वर्णन करते हुए कुमारपाल के प्रारंभिक जीवन के संबंध में यह लिखा है।

दैवी प्रेरणा से सिद्धराज को ज्ञात हुआ कि कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी होगा। इससे उसको अत्यंत क्रोध हुआ। यह मालूम होने पर कि उसका जीवन संकट में है कुमारपाल भिक्षु के भेष में भागा। सिद्धराज को अपने गुप्तचरों से सूचना मिली कि कुमारपाल राजधानी में लौट आया है और तीन सौ साधुओं के समूह में है। सिद्धराज ने उसको पकड़ने के निमित्त तीन सौ साधुओं को निमंत्रण दिया। राजा ने एक-एक साधुओं के पैरों को धोया। उसने कुमारपाल के चरणों पर एक कमल, एक ध्वज और एक छत्र के चिह्न देखे और गुप्तचरों को संकेत किया जिसको कुमारपाल ने देख लिया और किसी बहाने से राजप्रसाद से भाग कर हेमचन्द्र के निवास स्थान में आ छिपा। गुप्तचर उसके पीछे लगे हुए थे। हेमचन्द्र ने उसको केले के पत्तों के नीचे छिपा दिया। सैनिकों के चले जाने के बाद वह फिर आगे बढ़ा रास्ते में उसको घुड़-सवार दिखाई पड़े उसने आलि नामक किसान के यहाँ शरण ली उसने उसको धान के ढेर के नीचे छिपा दिया और सैनिकों के पूछने पर उत्तर दिया कि इधर कोई भिक्षुक नहीं आया है। इसी तरह भागते और छिपते कुमारपाल केम्बे आया और हेमचन्द्र के साथ ठहर गया। हेमचन्द्र ने यह भविष्यवाणी की कि वह सात वर्ष बाद राजा होगा। हेमचन्द्र ने एक श्रावक (संभवतः उदयन) से ३,२०० द्रम्म लेकर कुमारपाल को दिया कि जिससे उसको जीवन निर्वाह के लिए कष्ट न उठाना पड़े। इसके अनन्तर उसने एक कापालिक के भेष में यात्रा की और कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी भोपलदेवी और उनके बच्चे कुमारपाल से आ मिले। ईसवीं सन् ११४२ में सिद्धराज की मृत्यु की सूचना पाकर कुमारपाल सिंहासन पर बैठने के लिए राजधानी लौट आया। वहाँ आने पर उसकी भेंट श्रीमत् साम्ब से हुई जो उसे हेमचन्द्र के पास ले गया। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बहनोई कृष्णदेव के साथ राजप्रसाद गया जो दस हजार अश्वारोहियों का सेनापति था। वहाँ उसके अतिरिक्त सिंहासन के दो अन्य दावेदार थे जो किसी न

किसी कारण से अस्वीकृत किए गए, तदुपरान्त कुमारपाल तलवार को घुमाते हुए सिंहासन पर बैठा और राजा घोषित किया गया।

एक दूसरे इतिवृत्त लेखक मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि ज्योतिषियों ने सिद्धराज से कहा कि कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी होगा। सिद्धराज कुमारपाल की निम्न उत्पत्ति के कारण यह नहीं चाहता था कि कुमारपाल उसके सिंहासन पर बैठे। वह सदा उसके विनाश करने के अवसर की प्रतीक्षा में रहता था। सिद्धराज के मन्तव्य की आशंका से कुमारपाल गुजरात छोड़कर कई वर्षों तक साधु के रूप में प्रदेशों में रहा, किन्तु अन्ततः अणहिल पाटक को लौट आया और एक मठ में ठहरा। कर्ण के श्राद्ध के अवसर पर सिद्धराज ने समस्त साधुओं को आमंत्रित किया और जब वह उनके चरणों को धो रहा था उसकी हथेली ने कुमारपाल के कोमल पदों को स्पर्श किया। कुमारपाल के पदों की कुछ रेखाओं से सिद्धराज को ज्ञात हुआ कि जिस साधु का वह चरण धो रहा है वह राजसिंहासन के योग्य है और राजा ने उस साधु को स्थिर दृष्टि से देखा। अवसर मिलते ही कुमारपाल भेष बदल कर भागा। उसके पीछे घुड़सवार भेजे गए। आलिग नामक कुम्हार ने उसको मिट्टी के बर्त्तनों के बीच में छिपाया, कुछ लोगों ने उसको एक कांटेदार वृक्ष से काटी गई शाखाओं के नीचे उसको छिपाया। एक दिन जब वह एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा अपनी बिल से एक एक कर इक्कीस मुद्राएँ लाया। उसके बाद जब वह एक मुद्रा उठा कर अपनी बिल में चला गया तो कुमारपाल ने शेष बीस मुद्राओं को उठा लिया और वहीं छिप गया। तदुपरान्त उसने पुनः यात्रा आरंभ की और तीन दिन तक निराहार रहने के बाद उसको एक धनी महिला मिली जिसने उसको मट्ठा और कर्पूर मिश्रित कुछ पिसा हुआ चावल दिया। वह अपने पितृगृह से स्वसुर गृह जा रही थी। वह उसको अपने साथ लिवा ले गई (मेरुतुङ्ग ने उस महिला का नाम नहीं लिखा है)। तदुपरान्त कुमारपाल केम्बे पहुँच कर पाथेय का प्रबंध करने के लिए प्रसिद्ध मंत्री उदयन के निवास-स्थान को चला गया। वहाँ पहुँचने पर उसको सूचना मिली कि उदयन मठ को गया है। वह भी वहाँ गया और हेम से मिला। कुमारपाल के शरीर के असाधारण चिह्नों को देख कर उदयन ने उनके सम्बन्ध में हेमचन्द्र से प्रश्न किया। हेमचन्द्र ने कहा कि ये चिह्न संकेत करते हैं कि कुमारपाल सार्वभौमिक राजा होगा। हेमचन्द्र ने कहा कि वि० सं० ११९९ (११४२ ई०) कार्त्तिक कृष्ण द्वितीया रविवार को हस्त नक्षत्र में उसका राज्याभिषेक होगा। हेमचन्द्र ने इस भविष्यवाणी की दो प्रतियाँ बनाईं, एक राजकुमार को दिया और दूसरी उदयन को। उदयन ने यात्रा की समग्र आवश्यक वस्तुएँ प्रस्तुत कीं जिसको लेकर कुमारपाल ने मालवा को प्रस्थान किया। वहाँ जाने पर उसने कुडङ्गेश्वर के मंदिर में एक उत्कीर्ण पद्य में यह भविष्यवाणी

पढ़ी कि वह वि० सं० ११९९ में राजा होगा। सिद्धराज की मृत्यु का समाचार सुनकर वह मालवा से दरिद्रावस्था में अणहिल पाटक आया और अपने बहनोई राजकुल कान्हडदेव के घर गया। दूसरे दिन प्रातः कान्हडदेव ने अपनी सेना को युद्ध के लिए प्रस्तुत रहने का आवाहन किया, और कुमारपाल को लेकर राजाप्रसाद गया। कान्हडदेव ने पहले राजकुमार को राज्य-पट्ट पर बैठाया किन्तु यह देखकर कि उसने अपने उत्तरीयाञ्चल से भी अपने को नहीं ढका कान्हडदेव ने एक अन्य राजकुमार को उसके स्थान पर बैठाया। इस दूसरे राजकुमार ने हाथ जोड़ा अतः वह भी अस्वीकृत किया गया। तब कान्हडदेव की आज्ञा से कुमारपाल अपने वस्त्रों को अपने चारों ओर लपेटते हुए और वायु खींचते हुए सिंहासन पर बैठा और अपने हाथ की तलवार को घुमाने लगा। तदुपरान्त राज्याभिषेक हुआ। उस समय वह पचास वर्ष का था।

जयसिंह सूरी ने लिखा है कि एक बार कुमारावस्था में कुमारपाल की हेमचन्द्र से अणहिलपाटक में भेंट हुई। हेमचन्द्र ने उसको कुछ उपदेश दिया। तदुपरान्त वह दधिस्थली लौट गया। सिद्धराज के कोई पुत्र न था और वह पुत्रार्थ अनेक मंदिरों में पूजा किया। हेमचन्द्र और एक ज्योतिषी ने राजा से भविष्यवाणी की कि कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी होगा। स्वयं सोमनाथ ने इस भविष्यवाणी की पुष्टि की। अतः खेद से सिद्धराज की बुद्धि भ्रम में पड़ गई और उसने कुमारपाल से बदला लेने के लिए उसके पिता त्रिभुवनपाल को मरवा डाला। अपने पिता की श्राद्ध करने के बाद कुमारपाल अपने बहनोई कृष्णदेव के परामर्श से एक भिक्षुक के वेष में दधिस्थली से बाहर चला गया और अणहिलपाटक आया। गुप्तचरों ने राजा को सूचित किया और राजा ने अपने पिता के श्राद्ध संस्कार में समस्त भिक्षुकों को आमंत्रित किया, और उनके चरणों को धोते समय कुमारपाल के चरणों की रेखाओं को देखा। कुमारपाल वहाँ से किसी प्रकार भाग निकला और राजा के सैनिकों ने उसका पीछा किया। भीमसिंह नामक एक किसान ने उनको कांटेदार बैर के पत्तियों के ढेर के नीचे उसको शरण दी। रात को वहाँ से निकल कर वह दधिस्थली की ओर बढ़ा और चूहे से रुपया लिया। उसके बाद तीन दिन तक निराहार रहा। तब उदुम्बर गाँव के देवसिंह की पुत्रवधू देवश्री नामक एक महिला ने उसको भोजन दिया। कुमारपाल ने उसको वचन दिया कि यदि वह राजा होगा तो वह उसके मस्तक पर तिलक लगाएगी। वह फिर आगे बढ़ा किन्तु राजा के सैनिक वहाँ भी आ पहुँचे और सज्जन नामक कुम्हार ने उसको ईंटों के बीच में छिपा दिया। संकट टल जाने के बाद वह ईंटों के बीच से निकला और अपने मित्र बोसरि को देखा। दोनों मित्रों ने परामर्श किया और केम्बे को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर कुमारपाल मठ में गया जहाँ हेमचन्द्र ठहरा हुआ था। और जब वह उससे बात कर रहा था वहाँ उदयन आया। हेमचन्द्र ने उदयन

को सब बातें बताईं और यह भविष्यवाणी की कि वि० सं० ११९९ (११४२ ई०) मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी के दिन वह सिंहासन पर बैठेगा। हेमचन्द्र ने यह भविष्यवाणी लिखकर उदयन को दिया। इसी बीच गुप्तचरों ने राजा को सूचना भेजी जिसने अपने आदमी केम्बे भेजे। कुमारपाल ने हेमचन्द्र से शरण की विनती की। हेमचन्द्र ने कुमारपाल को अपनी पुस्तकों के नीचे छिपा दिया और कहा कि राजकुमार मठ में नहीं है, क्योंकि 'प्राणि-त्रानं महत् पूण्यं मिथ्यावदस्-त्व धं लघु'—किसी के प्राण की रक्षा करना महत् पुण्य है इसकी तुलना में मिथ्या कथन लघु अपराध है। उदयन की दी हुई सामग्रियों की सहायता से क्रमरहित यात्रा करता हुआ वह भड़ौंच पहुँचा। वहाँ से वह उज्जैन गया, उज्जैन से कोल्लपुर और वहाँ से कंचि गया। अन्त में वह कोलम्बपट्टन पहुँचा। वहाँ के राजा प्रतापसिंह को स्वप्न में सोमनाथ ने आज्ञा दी कि वह कुमारपाल का स्वागत करे। दूसरे दिन प्रात: प्रतापसिंह कुमारपाल को अपने प्रासाद में लाया और उसका अतिथि सत्कार किया। कई दिन तक उसके आतिथ्य का आनन्द लेकर वह उज्जैन लौट गया। वहाँ कुण्डगेश्वर (शिवलिङ्ग) के मन्दिर में उसने यह भविष्यवाणी पढ़ी कि वह ११४२ ई० में राजा होगा। उज्जैन से कुमारपाल अपने परिवार के साथ चित्तौर गया और वहाँ से अणहिलपुर लौटा, क्योंकि हेमचन्द्र की भविष्यवाणी के अनुसार उसके राज्यारोहण का दिन समीप आ रहा था।

दैवयोग से सिद्धराज की मृत्यु हुई और सामन्तों और अमात्यों की प्रार्थना पर कुमारपाल कृष्णदेव के साथ राजप्रासाद को गया और वह वहाँ राजा चुना गया, क्योंकि दो अन्य अभ्यर्थी अनुपयुक्त पाए गए—एक अत्यधिक विनम्रता और दूसरा अपने उत्तरीय वस्त्र को ठीक से सँभाल नहीं सका। वि० सं० ११९९ (सन् ११४२) मार्ग शीर्ष कृष्ण ४ रविवार को कुमारपाल सिंहासन पर बैठा। उसकी बहन प्रेमल देवी ने माङ्गलिक संस्कार किया। गोपालदेवी मुख्य राज्ञी बनाई गई और उदयन का पुत्र वाग्भट अमात्य बनाया गया।

जिन-मण्डन ने उपर्युक्त घटनाओं का वर्णन मेरुतुङ्ग और जयसिंह सूरि के आधार पर किया है। उसने कुछ नई बातें भी लिखीं हैं जिस पर बाद को विचार किया जायगा।

कुमारपाल के भ्रमण की इतनी ख्याति थी कि मुसलमान इतिहास लेखक मुहम्मद उफी ने भी लिखा है कि रायगुरपाल नामक गहरवाल का किसी राजा ने सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व अनेक वर्षों तक भिक्षुक के रूप में यात्रा के कष्टों को सहन किया और भाग्य के उतार-चढ़ाव का अनुभव किया। स्पष्ट है कि गुरपाल राजा कुमारपाल है। अबुलफज़्ल ने भी कुमारपाल सोलंकी के एकान्तवास जीवन का उल्लेख किया है।

अतः यह प्रायः निश्चय है कि कुमारपाल को अपनी युवावस्था में सिद्धराज के अत्याचार को सहन करना पड़ा और अपने जीवन रक्षार्थ गुजरात को छोड़ना पड़ा और वह सिद्धराज की मृत्यु के पश्चात् गुजरात लौटा। यहाँ पर हेमचन्द्र के प्रारंभिक जीवन की रूपरेखा देना आवश्यक है।

हेमचन्द्र का प्रारंभिक जीवन—अहमदाबाद जनपद के अन्तर्गत धंधुक ग्राम में वि० सं० ११४५ के कार्त्तिक की पूर्णिमा के रात्रि को (नवम्बर-दिसम्बर १०८८ ई०) श्री मोढवनिय वंश के चाचिग की पत्नी पाहिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम चंगदेव रखा गया। एक दिन प्रसिद्ध भिक्षु देवचन्द्र सूरि की दृष्टि चंगदेव पर पड़ी। उन्होंने उसके लक्षणों को देखकर उसको उसकी माता से माँग लिया। जब उसका पिता घर आया और उसको ज्ञात हुआ कि पाहिनी ने एक मात्र पुत्र को भिक्षु को दे दिया है तो वह अत्यन्त रुष्ट हुआ। अतः उसने देवचन्द्र का पीछा किया और अंततः कर्णावती में उससे देवचन्द्र से भेंट हुई जहाँ भिक्षु ने बालक को उदयन की देखरेख में रख दिया था। उदयन के चाचिगदेव का बड़ा सत्कार किया और चंगदेव को लाकर उसकी गोद में रख दिया। उसने अनेक सम्मानों के साथ उसको बहुत सा धन भी अर्पण किया। उदयन के व्यवहार से चाचिगदेव का रोष कम हुआ और यद्यपि उसने पुत्र के बदले धन लेना अस्वीकार किया, उसने अपने बालक को उदयन के यहाँ रहने दिया अपनी आयु के पाँचवें या नवें वर्ष चंगदेव को केम्बे में विधिपूर्वक भिक्षु की दीक्षा दी गई और उसका नाम सोमचन्द्र रखा गया। सन् ११०९ में सोमचन्द्र सूरि पद पर हेमचन्द्र के नाम से प्रतिष्ठापित किया गया। स्पष्ट है कि उदयन के परिवार से हेमचन्द्र का सम्बन्ध उसकी बाल्यावस्था से ही स्थापित हो गया था।

हेमचन्द्र तथा अन्य लेखकों के कथनों की विवेचना—हेमचन्द्र की सर्वप्रथम जीवनी प्रभाचन्द्र की लिखी हुई है। जिसमें उसने कुमारपाल के जीवन पर हेमचन्द्र के प्रभाव का वर्णन किया है। प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि जैसे ही सिद्धराज ने कुमारपाल को पहचाना। कुमारपाल ने सर्वप्रथम राजधानी में हेमचन्द्र के पास शरण ली और बाद को जब वह भड़ौच पहुँचा तो मठ में उसकी भेंट हेमचन्द्र से हुई। किन्तु मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि हेमचन्द्र और कुमारपाल की पहिली भेंट केम्बे में हुई। जयसिंह सूरि ने लिखा है कि इसके पूर्व हेमचन्द्र से कुमारपाल की भेंट सिद्धराज की राजसभा में हुई थी और वे एक दूसरे को जानते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि सिद्धराज कुमारपाल को पहचानता था। अतः यह कठिनता से विश्वास किया जायगा कि कुमारपाल ऐसा विवेकशून्य होगा कि वह राजप्रासाद गया होगा जब कि उसका जीवन संकट में था।

प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि बोसरि को उदयन के पास भेजने के बाद कुमारपाल

भड़ौंच गया और एक मठ में हेमचन्द्र से उसकी भेंट हुई। मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि पहले कुमारपाल उदयन के पास गया और यह सूचना पाकर कि मंत्री पौसधशाला गया है वह वहाँ गया और वहाँ उसकी हेमचन्द्र से भेंट हुई। मेरुतुङ्ग ने बोसरि से प्राप्त सहायता का उल्लेख नहीं किया है। यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है कि कुमार-पाल सीधे मंत्री के पास गया जब कि राजा उसके प्राणों का भूखा था। स्पष्ट है कि मेरुतुङ्ग की अपेक्षा प्रभाचन्द्र का कथन अधिक विश्वसनीय है। इसीलिए जयसिंह सूरि ने लिखा है कि कुमारपाल पहले मठ में गया और हेमचन्द्र से भेंट की और बाद को उदयन भिक्षु से भेंट करने आया और हेमचन्द्र की भविष्यवाणी से प्रभावित होकर उसने कुमारपाल की सहायता करने का वचन दिया। प्रभाचन्द्र, मेरुतुङ्ग और जयसिंह सूरि के कथनों से प्रतीत होता है कि या तो कुमारपाल को हेमचन्द्र की गतिविधियों का पता था या मूर्खतावश वह मठ में गया। जिन-मण्डन ने इस समस्या का हल इस प्रकार प्रस्तुत किया है। उसने लिखा है कि हेमचन्द्र शौच के लिए मैदान में गया था। और वहाँ उसने कुछ ऐसे चिह्न देखे जिससे उसको प्रतीत हुआ कि कोई राजकुमार समीप है। एक चिह्न यह था कि एक छिपकली एक सर्प के मस्तक पर नृत्य कर रही है। हेमचन्द्र ने पूँछ-ताँछ की और कुमारपाल को पाया और उसे मठ ले गया और जब उदयन वहाँ आया तो उसने कुमारपाल के सम्बन्ध में उसको बतलाया। कुमार-पाल ने जैन सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए वचन दिया। तदुपरान्त उदयन प्राण दण्डित राजकुमार की सहायता की। उदयन हेमचन्द्र को उसकी बाल्यावस्था से ही मानता था और उसके द्वारा प्रलोभित किए जाने पर वह कुमारपाल की सहायता करने को उद्यत हुआ।

मेरुतुङ्ग, जयसिंह सूरि और जिन-मण्डन ने कुमारपाल के राज्याभिषेक की तिथि वि० सं० ११९९ (११४२ ई०) दी है। किन्तु सिद्धराज के बाली उत्कीर्ण लेख से जिसकी तिथि वि० सं० १२०० है स्पष्ट है कि उपर्युक्त समस्त इतिवृत्त लेखक गलत हैं। प्रतीत होता है कि बाद के इतिवृत्त लेखकों की इस अशुद्धि का उत्तरदायित्व कुछ अंश में हेमचन्द्र पर है।

हेमचन्द्रकृत 'महावीरचरित' में तीर्थंकर (महावीर) की एक भविष्यवाणी है जिसके अनुसार उनके निर्वाण के १६६९ वर्ष बीतने पर ('यास्यन्ति') अर्थात् ११४२ ई० के पूर्ण होने पर कुमारपाल राज्य करेगा। इस तरह वि० सं० १२०० कुमारपाल के शासन का प्रथम वर्ष है, न कि ११९९ जैसा कि इतिवृत्त लेखकों ने भ्रमवश अशुद्ध अर्थ लगाया है। इतना ही नहीं उन्होंने हेमचन्द्र को ही इस भविष्य-वाणी का कर्त्ता मान लिया है।

प्रतीत होता है कि इतिवृत्त लेखकों ने कुमारपाल के राज्यारोहण के सम्बन्ध

में जो कथन किया है वह भी तथ्य के विपरीत है। दो उत्कीर्ण लेखों में कुमारपाल के राज्यारोहण का उल्लेख है—मंगरोल उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११४५ और भाव बृहस्पति का वेरवल-प्रशस्ति तिथ्यंकित ११५८। इन दोनों ही उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि सिद्धराज की मृत्यु के बाद कुमारपाल ने शीघ्र ही राज्य-सिंहासन पर अधिकार किया। मंगरोल उत्कीर्ण लेख तथा जयसिंह सूरि ने लिखा है कि सिद्धराज की मृत्यु 'दैवात्' हुई। प्रतीत होता है कि सिद्धराज की मृत्यु अकस्मात् हुई जिसके बाद शीघ्र ही कुमारपाल ने बलात् सिंहासन पर अधिकार किया। कुमारपाल के चुनाव के संबंध में गुजराती इतिवृत्त लेखकों के वर्णन पूर्णतया काल्पनिक प्रतीत होते हैं तथा उत्कीर्ण लेखों के कथनों के विपरीत हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इतिवृत्त लेखकों को उस कुम्हार का नाम ज्ञात हो गया जिसने कुमारपाल को शरण दी, या उस महिला का जिसने उसको भोजन दिया, किन्तु उन्होंने सिंहासन के लिए कुमारपाल के प्रतिद्वंद्वियों के समान महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नामों का उल्लेख नहीं किया है। इन इतिवृत्त लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गई वंशावली से प्रतीत होता है कि इस सिंहासन का एकमात्र वैध अधिकारी कुमारपाल था और सिंहासन पर उसका हक सिद्धराज से भी अधिक था। जिन कारणों से कुमारपाल के प्रतिद्वंद्वियों के अधिकार सामन्तों द्वारा अस्वीकार किए गए मात्र कल्पना प्रतीत होते हैं। प्रतीत होता है कि अपने बहनोई कान्हडदेव या कृष्णदेव के समर्थन से जिसके पास एक शक्तिशाली सामरिक सेना थी तथा उदयन के प्रभावशाली परिवार के समर्थन से जिसके पुत्र उच्च पदों पर नियुक्त किए गए कुमारपाल को सिंहासन प्राप्त हुआ। उस समय सिद्धराज का नाती चाहमान सोमेश्वर बाल्यावस्था में था और सोमेश्वर के पास सिंहासन के हस्तान्तरित होने के पूर्व ही कुमारपाल ने सिंहासन पर अधिकार किया।

हेमचन्द्र के जीवनी लेखक प्रभाचन्द्र ने ऐसा माना है कि कुमारपाल के राज्यारोहण में हेमचन्द्र का मुख्य हाथ था। हेमचन्द्रकृत महावीर चरित्र से प्रतीत होता है कि कुमारपाल के राजा होने के बहुत दिनों पश्चात् उससे हेमचन्द्र की भेंट हुई। हेमचन्द्र ने तीर्थङ्कर के श्रीमुख से यह भविष्यवाणी कहलाई है कि यह राजा (कुमारपाल) जैन धर्मावलम्बी अपने मंत्री के साथ उस सूरि (हेमचन्द्र) का सम्मान करने के लिए जिन-मन्दिर में जायगा जब कि वह जैन धर्म के पवित्र नियम की व्याख्या करता होगा।

सोमप्रभा जो हेमचन्द्र का समकालीन था, हेमचन्द्र के उपर्युक्त कथन की पुष्टि की है। उसने लिखा है कि कुमारपाल ने सर्वप्रथम अपने जैन मंत्री के साथ जाकर हेमचन्द्र से भेंट की, क्योंकि उस समय राजा सत्य की खोज कर रहा था। यदि हम यह स्वीकार करें कि महावीर चरित्र के श्लोक तिथ्यनुसार हैं तो यह स्पष्ट

है कि कुमारपाल ने अपने विजयों के पूर्ण होने के बाद हेमचन्द्र से भेंट की। बुहलर ने हेमचन्द्र के श्लोकों से यह आशय ग्रहण किया कि कुमारपाल एक अनुल्लिखित मंत्री के साथ जैन मंदिर गया जिस समय कि हेमचन्द्र वहाँ प्रवचन कर रहा था। हेमचन्द्र के कथनों से स्पष्ट है कि कुमारपाल के पलायन से संबंधित उपर्युक्त समस्त गाथाएँ काल्पनिक हैं। और संभवतः ये गाथाएँ बाद के सम्बन्ध को प्रेरित करने के निमित्त रची गई थीं।

बुहलर का अन्तिम कथन कुछ ही अंश तक ठीक है। हेमचन्द्र अपने कार्य-कलापों के संबंध में अत्यंत मौन है और उपर्युक्त श्लोक में उसने राजा के धर्म परिवर्तन की चर्चा की है। अतः उसके साक्ष्य से अन्तिम रूप से यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि कुमारपाल से उसकी भेंट पहले नहीं हुई थी क्योंकि सिद्धराज के शासनकाल में हेमचन्द्र ने अत्यंत ख्याति प्राप्त कर ली थी, और यह अचंभे की बात होगी यदि कुमारपाल ने अपनी संपूर्ण विजयों के बाद प्रथम बार हेमचन्द्र से भेंट की। यदि कुमारपाल और हेमचन्द्र से पहले भी भेंट हुई हो तो भी ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे ऐसा परिणाम निकाला जा सके कि हेमचन्द्र ने कुमारपाल को सिंहासन पर बैठाने के लिए सक्रिय रूप से षड्यंत्र किया हो। महावीर चरित्र से स्पष्ट है कि सिंहासन पर बैठने के पूर्व कुमारपाल ने जैन धर्म पर कृपा करने का वचन दिया हो।

बुहलर की सम्मति में हेमचन्द्र ने उदयन से कुमारपाल का परिचय नहीं कराया बल्कि मंत्री ने हेमचन्द्र का प्रवेश कुमारपाल की राजसभा में किया और उसी मंत्री के कारण हेमचन्द्र का वहाँ अत्यधिक प्रभाव हुआ। बुहलर की धारणा की पुष्टि सोमप्रभा के साक्ष्य से होती है। उदयन के पुत्रों में से तीन, वाग्भट, आम्रभट, और चारुभट का कुमारपाल के शासन में अत्यन्त प्रभाव और शक्ति थी, संभवतः उनका उत्कर्ष विपत्काल में राजा की सहायता करने के उपहारस्वरूप था। उदयन और उसके पुत्र सब राजनीतिज्ञ थे। अतः यह उनके लिए स्वाभाविक था और हेमचन्द्र के लिए अस्वाभाविक कि वे पुत्रविहीन सिद्धराज की मृत्यु के बाद अपने निर्दिष्ट व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाने के लिए षड्यंत्र करते। उत्तरकालीन इतिवृत्त लेखकों को हेमचन्द्र और उदयन के घनिष्ठ संबंधों की जानकारी थी और जिस समय उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की उस समय तक मंत्री की ख्याति कम हो गई थी और महान् भिक्षु की कीर्त्ति वृद्धि पर थी। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि समस्त इतिवृत्त लेखकों ने हेमचन्द्र को न कि उदयन को, प्रमुखता दी।

इन इतिवृत्त लेखकों के वर्णन प्रत्यक्षतः काल्पनिक हैं। उदाहरणार्थ उनका यह कथन कि कुमारपाल भिक्षु के वेष में सिद्धराज के राजप्रासाद में गया और राजा ने

उसके पैरों के कुछ चिह्नों से उसे पहचान लिया। यह संभव प्रतीत नहीं होता है कि वह स्वेच्छा से ऐसे संकट स्थान में गया हो, अतिरिक्त इसके कि वह राजा की हत्या करने के प्रयत्न में था।

जयसिंह सूरि ने लिखा है कि सिद्धराज ने कुमारपाल के पिता त्रिभुवनपाल की हत्या करा दी और कुमारपाल के उत्तराधिकारी ने उसको विष देकर मार डाला। सिद्धराज के लिए यह अधिक स्वाभाविक होता कि त्रिभुवनपाल की हत्या कराने की अपेक्षा वह कुमारपाल को मरवा डालता। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जयसिंह सूरि का साक्ष्य विश्वसनीय है।

कुमारपाल और पुराने राज्यसेवक आदि—मेरुतुङ्ग ने अपने ग्रन्थ प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि कुमारपाल अपनी प्रौढ़ावस्था और विवेक के कारण अपने प्रशासन की बाग्डोर अपने ही हाथों में रखी। इससे पुराने राज्य-सेवक चिढ़ गए और उन्होंने राजा को मार डालने का निश्चय किया। उन्होंने हत्यारों को नियुक्त किया किन्तु राजा को उनके षड्यंत्र की सूचना मिल गई और उन्होंने षड्यंत्रकारी मंत्रियों को मरवा डाला। राजा का बहनोई कान्हडदेव यह सोच कर कि वह उसका बहनोई है, और उसने उसको सिंहासन पर बैठाया है उसने उसकी निम्न उत्पत्ति के संबंध में बकने लगा। कुमारपाल ने उसको एकान्त में समझाया किन्तु धृष्ट कान्हडदेव ने उसकी नम्र चेतावनी की ओर ध्यान न दिया। अतः कुमारपाल ने मल्लों द्वारा उसके हाथ-पाँवों को क्रिया-शून्य करवा दिया और उसकी दोनों आँखें निकलवाने के बाद उसको उसके घर भेज दिया। इस घटना के पश्चात् अन्य पदाधिकारी और सामन्त प्रत्येक अवसर पर राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते थे। राजा ने वाग्भट-देव को अपना मंत्री और आलिग को 'ज्यायानप्रधान' अर्थात् अपनी राजसभा का मुख्य सदस्य बनाया।

कुमारपाल और अर्णोराज—सिंहासन पर बैठने के कुछ ही समय बाद शाकंभरी के चाहमान राजा अर्णोराज से युद्ध करना पड़ा। हेमचन्द्र ने लिखा है कि राजा आन्नो ने अपनी शक्ति के मद में कुमारपाल पर अकस्मात् आक्रमण किया। शिव-हारा नदी के समीप निवास करनेवाले राजाओं ने आन्नो या अर्णोराज की सहायता की। कुमारपाल पर पृष्ठ भाग पर आक्रमण करने के निमित्त दक्षिण के कुछ राजाओं से मैत्रीगठन किया और बल्लाल की सेनाओं से अपनी सेनाएँ संयुक्त की जो पारा नदी के समीप पूरब का राजा था। चाहड नामक एक राजकुमार ने भी उसका साथ दिया। पूर्वी मद्र, कामशमी, गोमती तट निवासी, तैक, गोष्ठा, वाहिक, रोमक, यकृल्लोम, और पाटच्छर के राजाओं ने अर्णोराज का साथ दिया। अभयतिलकगणि

ने जोड़ा है कि कुमारपाल के राजा होने के शीघ्र बाद शाकम्भरी के राजा अर्णोराज ने उसको अयोग्य समझ कर उस पर आक्रमण किया।

किन्तु प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि राजा बनने के पश्चात् कुमारपाल ने सपादलक्ष के धृष्ठ राजा अर्णोराज का दमन करने का निश्चय किया। मेरुतुङ्ग के अनुसार सिद्धराज का दत्तकपुत्र राजकुमार चाहड कुमारपाल के कुछ आज्ञाओं से अपने को अपमानित समझ कर उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया और सपादलक्ष को चला गया। वहाँ उसने राजा तथा समस्त सामन्तों को उपयुक्त उत्कोच देकर अपने पक्ष में कर लिया तब वे एक बड़ी सेना के साथ गुजरात की सीमा की ओर बढ़े।

किन्तु जयसिंह सूरि, राजशेखर, और जिन-मण्डन ने युद्ध के कारण की एक अन्य कहानी वर्णन की है जो इस प्रकार है। कुमार की बहन देवल्लदेवी का विवाह अर्णोराज से हुआ था। एक बार जब वे शतरंज खेल रहे थे अर्णोराज एक चाल चलते हुए अकस्मात् चिल्ला उठे 'इन मुड्डिको को मारो, मारो इन मुड्डिकों को' मुड्डिक का अर्थ टोपिका रहित गूर्जर (गुजराती) या जैनियों के आध्यात्मिक गुरू का मुण्डितशीर्ष चाहमान की कुपित गुजराती राज्ञी ने उससे अपनी जिह्वा को नियंत्रण में रखने के लिए कहा। उसने उससे पूछा कि क्या वह नहीं जानता कि उसका भ्राता 'राजराक्षस' है। अर्णोराज ने इसका प्रत्युत्तर एक पादघात द्वारा दिया। देवल्लदेवी अपने भ्राता कुमारपाल के पास चली गई। अतः उसने इस अपमान का बदला लेने के लिए अपनी सेना के सहित प्रयाण किया। द्वयाश्रय के अनुसार अर्णोराज इस युद्ध में आहत तथा पराजित हुआ और उसने अपनी पुत्री जह्लणा को विवाह में कुमारपाल को देकर सन्धि क्रय की। विवाह होने के बाद कुमारपाल को सूचना मिली कि उसके दो सेनापति, विजय और कृष्ण को बल्लाल ने क्रय कर लिया है। अतः कुमारपाल ने स्वयं बल्लाल के विरुद्ध प्रयाण किया और उसको मार डाला। प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि सपादलक्ष का राजा अर्णोराज अत्यन्त धृष्ठ हो गया था। अतः कुमारपाल ने एक विशाल सेना के साथ प्रयाण किया। कुछ दिनों बाद गुजरात सेना अजयमेरु (अजमेर) पहुँची। नगर घेरा गया किन्तु घोर प्रयत्न करने पर भी विजय न किया जा सका। वर्षाऋतु आरंभ हो जाने के कारण सेना अणहिल पाटक लौट आई। शीतऋतु आरंभ होते ही कुमारपाल ने अपनी सेना के साथ पुनः प्रयाण किया। किन्तु ग्रीष्म ऋतु के अंत में निष्फल होकर लौटना पड़ा। इस तरह उसने ग्यारह वर्ष में ग्यारह बार अर्णो-राज राज के विरुद्ध असफल अभियान किया। वाग्भट की सम्मति पर कुमारपाल ने अजितनाथ की वेदी पर पूजा किया और बारहवीं बार अजमेर के विरुद्ध प्रस्थान किया। इस बार अर्णोराज की सहायता सिद्धराज का दत्तकपुत्र चारुभट कर रहा था। घोर युद्ध हुआ और अन्ततः कुमारपाल की विजय हुई।

मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि राजकुमार चाहड ने गुजरात सेना के एक भाग को अपनी ओर कर लिया जिसने युद्ध-क्षेत्र में कुमारपाल के साथ विश्वासघात किया। उसने कुमारपाल के महावत को भी मिला लिया था। किन्तु भाग्यवश कुमारपाल ने महावत को बदल दिया था। कुमारपाल ने चाहड पर आक्रमण किया और चाहड ने उसके हाथी पर कूदने का प्रयत्न किया किन्तु पावदान न पाने के कारण फिसल कर जमीन पर गिर गया और कुमारपाल के सैनिकों ने उसको बन्दी कर लिया। कुमारपाल तब अर्णोराज की ओर घूम पड़ा और एक लौह शलाका से उसको आहत कर चिल्लाया 'विजय, विजय'। तदुपरान्त उसने चाहमान सरदारों के अश्वों पर आक्रमण कर उनको बन्दी किया। इसके बाद कुमारपाल ने आलिग कुम्हार को ७०० गावों सहित चित्रकूट प्रदान किया। प्रभाचन्द्र का इस युद्ध का वर्णन सामान्यतया मेरुतुङ्ग के वर्णन से मिलता है।

जयसिंह सूरि, राजशेखर, और जिन-मण्डन ने चाहड द्वारा कुमारपाल के पीलवान को मिला लेने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। जयसिंह सूरि ने लिखा है कि चारुभट (चाहड) सिद्धराज का धर्मपुत्र था। जयसिंह सूरि ने यह भी लिखा है कि युद्ध की पूर्वरात्रि में चारुभट ने चाहमान राजा को विश्वास दिलाया कि कुमारपाल की कृपणता और अकृतज्ञता के कारण केल्हण आदि अधिकांश सामन्त उससे असंतुष्ट हैं। अतः चारुभट ने प्रस्ताव किया कि ये सामन्त स्वर्ण द्वारा मिला लिए जाँय चारुभट ने यह भी कहा कि वेग से चिल्ला कर वह कुमारपाल के हाथी को भयभीत कर देगा। अर्णोराज ने गुजरात के सामन्तों को घूस दिया। दूसरे दिन प्रातः जब युद्ध आरंभ हुआ तो कुमारपाल ने अपने महावत श्यामल से पूछा कि सामन्त अकर्मण्य क्यों हैं ? तब श्यामल ने उसको तथ्य निवेदन किया। श्यामल ने हाथी के कान को कपड़े से मूँद दिया था। अतः चारुभट की चिल्लाहट निष्फल रही। कुमारपाल और अर्णोराज में द्वंद्व युद्ध हुआ जिसमें अर्णोराज की पराजय हुई। कुमारपाल अपनी तलवार घुमाते हुए उस पर टूट पड़ा और उसको मार डालने की धमकी दी, किन्तु अर्णोराज ने विनीत होकर जीवनदान की याचना की। तब कुमारपाल ने अर्णोराज को कुछेक दिनों तक एक पिंजड़े में बन्दी बना कर रखा।

प्रतीत होता है कि अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय तथ्य प्रतीत होती है। वडनगर-प्रशस्ति में अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय का उल्लेख है, और वेरावल-प्रशस्ति में भी जांगल के राजा पर उसकी विजय का उल्लेख है—इस क्षेत्र का तादात्म्य शाकम्भरी से किया गया है। कुमारपाल का चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११५० ई० सूचित करता है कि उसने शाकम्भरी के राजा को पराजित कर, और

सपादलक्ष प्रदेश को विनष्ट कर शालिपुर में अपना शिविर गाड़ा जो वर्तमान चित्तौर से चार मील की दूरी पर है।

कुछ कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कुमारपाल ने अर्णोराज को दो बार पराजित किया। जिस समय कुमारपाल अर्णोराज के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था वह आबू में पहुँचा जहाँ के राजा विक्रमसिंह ने उसको मार डालने का विचार किया। अत: अर्णोराज को हराने के बाद कुमारपाल ने विक्रमसिंह को हटा कर उसके भतीजे यशोधवल को उसके स्थान पर आबू में रखा। यशोधवल के आबू पर्वत के उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११४५ ई० प्रकट करता है कि उस समय यशोधवल आबू का महा-मण्डलेश्वर था। स्पष्ट है कि इस तिथि के पूर्व कुमारपाल ने अर्णोराज से युद्ध किया। हेमचन्द्र के द्वयाश्रय से भी इसकी पुष्टि होती है कि सिंहासनारूढ़ होने के थोड़े ही समय बाद कुमारपाल ने अर्णोराज पर आक्रमण किया।

किन्तु चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि शाकम्भरी के विनष्ट करने के थोड़े ही समय बाद कुमारपाल ने ११५० ई० में चित्तौर के समीप अपना शिविर खड़ा किया। जयसिंह सूरी ने लिखा है कि सिंहासन पर बैठने के तुरन्त बाद कुमारपाल दिग्विजय के लिए निकला। पहले वह जावालिपु गया और वहाँ से क्रमश: सपादलक्ष को प्रस्थान किया। जयसिंहसूरि के अनुसार यह दिग्विजय पूर्ण होने के बाद वह युद्ध हुआ जिसका कारण अर्णोराज द्वारा देवल्लदेवी का अपमान किया जाना था। किन्तु उसने यह नहीं लिखा है कि सपादलक्ष से कुमारपाल कुरुमण्डल, मालव, और वहाँ से चित्तौर गया। जिन-मण्डन ने लिखा है कि अर्णोराज को पराजित करने के बाद कुमारपाल ने सात बार मेडाटक को पददलित किया और पल्ली में अदरक बुवाया। पञ्चाशकवृत्ति की जैन भिक्षु स्थिरमतिगणि द्वारा कृत प्रतिलिपि की पुष्पिका से भी इसकी पुष्टि होती है जिसने इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि ११५० में पूर्ण की। प्रतीत होता है कि स्थिरमतिगणि ने कुमारपाल के जिस अभियान का उल्लेख किया है वह वही अभियान है जिसकी चर्चा जयसिंह सूरि और जिन-मण्डन ने की है। स्पष्ट है कि अर्णोराज के विरुद्ध किए गए प्रथम अभियान में कुमारपाल चित्तौर और पल्ली पर आक्रमण नहीं किया था। इन दोनों अभियानों के समय के बीच में लगभग सात वर्ष का अन्तर था। मेरुतुङ्ग ने भी लिखा है कि कुमारपाल ने एक अभियान उदयन के पुत्र अपव्ययी चाहड के नेतृत्व में अर्णोराज के विरुद्ध भेजा। इस अभियान में चाहड ने बम्बेर नगर पर अधिकार कर सात करोड़ मोहर एकत्र किया और कुमारपाल के पास भेजा। वहाँ उसने कुमारपाल का आधिपत्य स्थापित कर राज पदाधिकारियों की नियुक्ति की।

हरविलाश शारदा का मत है कि कुमारपाल ने अर्णोराज के विरुद्ध दो युद्ध

किए। पहले युद्ध का कारण यह था कि अर्णोराज सिद्धराज के दत्तक पुत्र चाहड (बाहड) का पक्ष लेकर कुमारपाल के स्थान पर उसको राजसिंहासन पर बैठाना चाहता था। सन् ११५० के दूसरे युद्ध के कारण कुमारपाल की बहन अपनी राज्ञी देवल देवी के प्रति अर्णोराज के दुर्व्यवहार था। हेमचन्द्र ने सिद्धराज और चाहड के संबंध का कोई उल्लेख नहीं किया है। प्रभाचन्द्र ने लिखा है कि चाहड सिद्धराज का 'पुत्रक' था। मेरुतुङ्ग के अनुसार चाहड सिद्धराज का 'प्रतिपन्न पुत्र' था। किन्तु राजशेखर ने लिखा है कि चाहड मालवा का राजकुमार था। हेमचन्द्र और उसका टीकाकार अभयतिलक गणि इस संबंध में मौन हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त लेखकों के साक्ष्य में विरोध है। प्रतीत होता है कि चाहड सिद्धराज का दत्तक पुत्र नहीं था। सिद्धराज के सिंहासन पर अर्णोराज के पुत्र सोमेश्वर का उचित हक था। प्रतीत होता है इसी कारण अभयतिलक गणि ने लिखा है कि कुमारपाल को असहाय्य समझ कर अर्णोराज ने उसके राज्य पर आक्रमण किया।

द्वितीय आक्रमण के संबंध कहा गया है कि कुमारपाल की मात्र एक बहन प्रेमलदेवी थी जिसका विवाह कान्हडदेव के साथ हुआ था। देवलदेवी की कहानी सर्वप्रथम जयसिंह सूरी के ग्रन्थ में आई है, किन्तु मेरुतुङ्ग, हेमचन्द्र, और उसका टीकाकार उभयतिलक गणि ने इस कला का उल्लेख नहीं किया ;है। प्रतीत होता है यह कथा यह दिखाने के लिए रची गई कि जैनधर्म की खिल्ली उड़ानेवाले व्यक्ति को उसकी पत्नी और साले ने दण्ड दिया। सच तो यह है कि अपने समस्त युद्ध समाप्त हो जाने के बाद कुमारपाल ने जैनधर्म ग्रहण किया। इस तिथि सम्बन्धी कठिनाई को दूर करने के लिए जयसिंहसूरि ने महावीरचरित के कथन का उल्लेख किया है। उसने कुमारपाल की दिग्विजय करने के बाद उसी अध्याय में अर्णोराज के विरुद्ध किए गए अभियान की चर्चा की है। जयसिंहसूरी तथा उसके अनुयायी अन्य लेखकों के वक्तव्य आग्रह्य हैं।

संभवतः प्रथम युद्ध का कारण अर्णोराज की राज्यलिप्सा थी जिसमें उसकी पराजय हुई। दूसरी बार अर्णोराज ने कुमारपाल पर उस समय आक्रमण किया जब कुमारपाल बल्लाल तथा संभवतः कुछ अन्य सामन्तों के उत्कर्ष को रोकने में व्यस्त था। इस युद्ध में कुमारपाल और अर्णोराज में द्वंद्व युद्ध हुआ। इसी कारण कुमारपाल की विरुद थी 'निज-भुज-रणाङ्गण-विनिर्जित—शाकम्भरी-भूपाल'।

कुमारपाल और चाहमान विग्रहराज चतुर्थ—विग्रहराज चतुर्थ ने ११३५ ई० तक जावालिपुर को ज्वालापुर, पल्लिका को पाली (तुच्छ ग्राम) और नड्डुल को नड्वल (नरकुल, सरकंडा) में परिवर्तित किया। कहा जाता है कि उसने सज्जन को पराजित किया जो पृथ्वी पर मात्र दुष्ट व्यक्ति था उसने कृतान्त (यम) की ओर गमन

किया। प्रतीत होता है कि विग्रहराज ने चित्तौर में किसी चालुक्य सामन्त को परास्त किया। प्रतीत होता है कि ११७० ई० तक चाहमानों और चालुक्यों के संबंध शान्तिपूर्ण हो गए जब सोमेश्वर शाकम्भरी के सिंहासन पर बैठा। बिझोलिया प्रस्तर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि सोमेश्वर ने सोमेश्वर (भगवान् सोमनाथ) की कृपा से अपना पैतृक राज्य पुनः प्राप्त किया। हो सकता है कि इस कथन में यह संकेत हो कि उसने अपना सिंहासन कुमारपाल की सहायता से प्राप्त किया।

कुमारपाल और आबू के परमार—हेमचन्द्र ने लिखा है कि जिस समय कुमारपाल अर्णोराज के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था रास्ते में वह अपनी सेना के साथ आबू में ठहरा और परमार विक्रमसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया। प्रभाचन्द्र, जयसिंह-सूरि, और जिन-मण्डल सूचित करते हैं कि विक्रमसिंह ने कुमारपाल की हत्या करने को सोचा। उसने एक वह्नि-यंत्र (एक प्रकार का जतु-गृह) बनाया और कुमारपाल को अपने राजप्रासाद में भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। कुमारपाल ने निमंत्रण अस्वीकार किया किन्तु दूसरों को भेजा। एक चालुक्य अधिकारी ने वहाँ वह्नि-यंत्र देखा और वहाँ से लौटने पर कुमारपाल को सूचित किया कि विक्रमसिंह विश्वासघात करना चाहता था। उस समय कुमारपाल का ध्यान अर्णोराज की ओर था। अतः उसने उस समय विक्रमसिंह के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। किन्तु अर्णोराज को पराजित करने के बाद जब कुमारपाल पुनः आबू आया तो उसने विक्रमसिंह को बन्दी किया और उसके स्थान पर उसके भतीजे यशोधवल को सिंहासन पर बैठाया जो रामदेव का पुत्र था। यशोधवल और उसके पुत्र चालुक्यों के प्रति राजनिष्ठ रहे और संकटकाल में उनका साथ दिया। विक्रमसिंह अणहिलपाटक लाया गया और कारागार में डाल दिया गया। आबू पर्वत उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित १२३० ई० में लिखा है कि यशोधवल रामदेव का पुत्र था। स्पष्ट है कि ईसवी सन् ११४३ और ११४५ के बीच विक्रमसिंह के स्थान पर यशोधवल गद्दी पर बैठा।

कुमारपाल और नड्डूल के चाहमान—जिस तरह आबू का यशोधवल कुमारपाल का राजनिष्ठ सामन्त था उसी प्रकार चाहमान राजकुमार आल्हणदेव उसका विश्वासपात्र सामन्त था। नड्डूल का चाहमान राजा आशाराज सिद्धराज का सामन्त था। प्रतीत होता है कि आशाराज के बाद नड्डूल पर कुछ समय तक राज किया जो आशाराज के भाई पृथ्वीदेव का पुत्र था। ११४१ ई० का एक उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि रत्नपाल के बाद उसका पुत्र रायपाल कुछ समय तक नड्डूल पर शासन किया। स्वयं रायपाल के उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११३२-११४५ सूचित करते हैं कि मारवाड़ के अन्य भागों पर राज्य किया। यह अर्थयुक्त बात है कि ११४५ ई० के बाद रायपाल का कोई अभिलेख नहीं पाया गया है अतः यह सुझाव दिया गया है

कि रायपाल ने अर्णोराज का साथ दिया जिसके दण्डस्वरूप कुमारपाल ने उससे उसका राज्य छीन लिया। यह भी सुझाव दिया गया है कि आशाराज के पुत्र कटुकराज ने कुछ समय तक ११४३ ई० में नड्डूल पर राज्य किया। प्रतीत होता है कि इन राजकुमारों के राज्य के बाद कुछ समय के लिए चाहमानों के हाथ से नड्डूल निकल गया और वहाँ कुछ समय तक कुमारपाल के दण्डनायक जिसका विभिन्न नाम वैजक, वयजलदेव और वैजल्लदेव कहा गया है कुछ समय तक नड्डूल पर राज्य किया। उसके नाम ११५१ और ११५६ ई० के बीच निस्सृत किए गए उत्कीर्ण लेखों में पाए जाते हैं। प्रतीत होता है कि वैजल्लदेव के बाद नड्डूल कुमारपाल के प्रत्यक्ष शासन में था। किन्तु ११६१ के बाद कुमारपाल ने आल्हण को वहाँ का सिंहासन सौंप दिया। सम्भव है कि विग्रहराज ने कुमारपाल पर ११६१ ई० के पूर्व आक्रमण किया। सून्धा पर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि आल्हण की सेना ने कुमारपाल की ओर से सौराष्ट्र के पर्वतीय भागों के उपद्रवों का दमन किया। ११७१ ई० के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि आल्हण का पुत्र केल्हण कुमारपाल का सामन्त था। कुछ एक इतिवृत्त लेखकों के कथनानुसार अर्णोराज के विरुद्ध कुमारपाल के अभियान में केल्हण उदासीन था। हो सकता है कि इस कारण कुमारपाल ने ११५२ ई० में आल्हण से उसका राज्य छीन लिया हो और बाद को क्षमा प्रदान कर ११६० ई० उसका राज्य लौटा दिया। आल्हण ने केराडु से सन् ११५२ में एक उत्कीर्ण लेख निस्सृत किया। और उसके अन्य उत्कीर्ण लेख नड्डूल से निस्सृत किए गए थे। अतः यह स्पष्ट नहीं है कि ११५२ ई० में आल्हण नड्डूल में शासन कर रहा था या नहीं।

कुमारपाल और किराडु के परमार—परमार सोमेश्वर के केराडु उत्कीर्ण लेख से यह आशय निकलता है कि सिद्धराज के सामन्तों की राजनिष्ठा से संतुष्ट होकर कुमारपाल ने उनको उनके पद पर पुष्ट किया। उसी उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि ११६१ ई० में सोमेश्वर ने जज्जक को कुमारपाल की अधीनता स्वीकार करने को विवश किया और उसके दो गढ़—एक जैसलमेर राज्य में और एक जोधपुर में—छीने। किन्तु बाद को जब जज्जक ने कुमारपाल को अपना अधीश्वर मान लिया तब उसको उसका राज्य दे दिया गया। इस उत्कीर्ण लेख से यह आशय निकलता है कि किराडु परमार सोमेश्वर के अधिकार में ११४८ से ११६१ ई० तक था। हो सकता है कि ११५२ के कुछ पूर्व किराडु और नड्डूल पर आल्हण का अधिकार था। किन्तु बाद को किराडु से आल्हण हटा लिया गया और सोमेश्वर का उस पर अधिकार बना रहा।

कुमारपाल और बल्लाल—कुमारपाल ने मालव राजा बल्लाल को परास्त किया और जैसा कि वडनगर-प्रशस्ति में लिखा है उसके शिर को अपने प्रासाद के

सिंहद्वार पर लटका दिया । हेमचन्द्र ने लिखा है कि बल्लाल को अपनी सेना अर्णोराज की सेना से पारा नदी के समीप संयुक्त करना था जिस समय अर्णोराज कुमारपाल पर आक्रमण करने को बढ़ा । किन्तु हेमचन्द्र ने यह नहीं लिखा है कि बल्लाल ने युद्ध में भाग लिया । सम्भवतः कुमारपाल ने जिन दो सेनापतियों विजय और कृष्ण को अर्णोराज से बल्लाल के मिलने को रोकने के लिए भेजा था इसी कारण बल्लाल और उसकी सेना अर्णोराज से मिल न सकी । प्रतीत होता है अर्णोराज की पराजय के बाद बल्लाल कुमारपाल की आज्ञा पालन करने के लिए तैयार न था । इसके अतिरिक्त कुमारपाल के सेनापति विजय और कृष्ण बल्लाल से मिल गए । अतः कुमारपाल अपनी सेना लेकर शीघ्रतापूर्वक बढ़ा और बल्लाल को परास्त किया । इस युद्ध में परमार यशोधवल ने कुमारपाल की सहायता की और जैसा कि आबू पर्वत उत्कीर्ण लेख में लिखा है उसने 'शीघ्रतापूर्वक मालवपति बल्लाल का वध किया ।' वडनगर प्रशस्ति में इसका उल्लेख है जिसकी तिथि ११५१ ई० है । चित्तौर गढ़ उत्कीर्ण लेख में जिसकी तिथि ११५० है केवल अर्णोराज की पराजय की चर्चा है । प्रतीत होता है कि ११५० और ११५१ ई० के बीच में बल्लाल परास्त किया गया । कुमारपाल चिन्तामणि नामक ग्रन्थ के कथनानुसार कुमारपाल ने पद्मपुर के राजा पद्मनाथ की पुत्री पद्मावती के साथ विवाह किया जिसके साथ सोलह सुन्दर नारियाँ, सात करोड़ द्रव्य और ७०० सैन्धव घोड़े मिले । पद्मपुर का तादात्म्य आधुनिक पद्मपवा से किया गया है जो पारा और सिन्धु नदियों के संगम पर स्थित है ।

कुमारपाल और मल्लिकार्जुन—मेरुतुङ्ग ने लिखा है कि कुमारपाल को यह अप्रिय लगा जब उसने सुना कि मल्लिकार्जुन अपने को राज-पितामह कहता है । मल्लिकार्जुन उत्तरी कोंकण का शिलाहार राजा था । ऐसा सुझाव दिया गया है कि युद्ध का यह पर्याप्त कारण नहीं प्रतीत होता कि कुमारपाल ने मल्लिकार्जुन के विरुद्ध इसलिए एक अभियान भेजा कि वह अपने को राज-पितामह कहता । हो सकता है कि कुमारपाल ने राज्य विस्तार के लिए कोंकण विजय करने के लिए सेना भेजी हो । यह भी हो सकता है कि मल्लिकार्जुन ने ही गुजरात के दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया हो जिससे विवश होकर कुमारपाल ने उसके विरुद्ध कार्यवाही की हो, क्योंकि उस समय कदम वंश और होयशल वंश में घोर संघर्ष चल रहा था । अतः मल्लिकार्जुन को अपने राज्य की दक्षिणी सीमा पर आक्रमण होने की आशंका नहीं थी ।

सौराष्ट्र में युद्ध—कुमारपाल ने सौराष्ट्र के राजा के विरुद्ध युद्ध किया । प्रतीत होता है कि सौराष्ट्र का यह राजा समसुर था जो अमीरों का नेता था । प्राची प्रस्तर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि कुमारपाल ने अमीरों का दमन करने के

लिए गुमदेव को नियुक्त किया जो गुमदेव की तलवार से भयभीत थे। सून्धा पर्वत उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि नड्डूल चाहमान आल्हणदेव ने गुर्जर राजा की सहायता की और सौराष्ट्र के पर्वतीय भाग के उपद्रवों का दमन किया। सम्भवतः इस लेख में अमीरों के विरुद्ध किए गए अभियान का उल्लेख है।

युद्ध के कारण और परिणाम—कुमारपाल को सर्वप्रथम अर्णोराज के आक्रमण से अपने सिंहासन की रक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध के बाद विक्रमसिंह और बल्लाल से भी कुमारपाल को युद्ध करना पड़ा क्योंकि उन्होंने समझा कि कुमारपाल पूर्णतया अर्णोराज को पददलित और परास्त नहीं कर सका है और उसकी शक्ति कम है। इन युद्धों के फलस्वरूप मालवा पर उसका अधिकार हो गया और यह भीम द्वितीय के शासनकाल तक चालुक्यों के अधीन बना रहा। कुमारपाल ने मल्लिकार्जुन को हराया किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि कितने समय तक शिलाहार राज्य पर चालुक्यों का अधिकार रहा, क्योंकि मल्लिकार्जुन के उत्तराधिकारी अपरादित्य द्वितीय के ११८७ ई० के उत्कीर्ण लेख में उसको महाराजाधिराज—कोंकण-चक्रवर्ती कहा है। जिससे यह आशय विकलता है कि उस तिथि तक वह चालुक्य दासता से मुक्त हो गया था। नड्डूल और किराडु चालुक्यों के अधीन था। सौराष्ट्र और कच्छ चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत थे। कुमारपाल ने विग्रहराज चतुर्थ को गुजरात की ओर बढ़ने से रोका। इस तरह कुमारपाल ने पश्चिमी भारत की एकता को बनाए रखा जो सिद्धराज द्वारा अतिपरिश्रम से स्थापित की गई थी। हेमचन्द्रकृत कुमारपाल चरित या प्राकृत द्वयाश्रय में कुमारपाल के राज्य विस्तार का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है। हेमचन्द्रकृत महावीरचरित में भी भविष्यवाणी के रूप में लिखा गया है कि कुमारपाल तुरुष्कों के राज्य तक के प्रदेश को, सुरसरि गंगा तक, विन्ध्या तक और समुद्र तक के प्रदेश को विजय करेगा। इतिवृत्त लेखकों और उत्कीर्ण लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुमारपाल के राज्य की सीमा दक्षिण में विन्ध्या और कम से कम ताप्ती नदी तक; पश्चिम की ओर सौराष्ट्र और कच्छ तक; उत्तर की ओर चित्तौर से जैसलमेर तक, और पूरब में कम से कम भिलसा तक फैला हुआ था।

कुमारपाल का धर्म—कुमारपाल जैनधर्म का महान् संरक्षक था। हेमचन्द्र ने महावीरचरित में लिखा है कि विजय यात्रा समाप्त करने के बाद कुमारपाल अपने जैन मंत्री के साथ हेमचन्द्र के पास गया और उसने कुमारपाल को जैनधर्म के सिद्धान्तों को समझाया और उसका धर्म परिवर्तन किया। सोमप्रभा ने लिखा है कि ब्राह्मणों की धर्म व्याख्या से कुमारपाल को संतोष नहीं हुआ तब उसका मंत्री वाहड उसको हेम-चन्द्र के पास ले गया। जिसके उपदेश से राजा जैनधर्म ग्रहण कर बारहों प्रतिज्ञाओं

किया। मोहराज पराजय नामक नाटक में कुमारपाल के धर्म परिवर्तन को कृपासुन्दरी के साथ उसके विवाह के रूप में वर्णन किया गया है। जिन-मण्डन के अनुसार यह विवाह अर्थात् धर्म परिवर्तन ११५९ ई० में हुआ। यद्यपि उसने जैनधर्म ग्रहण कर लिया था फिर भी वह अपने पूर्वजों के धर्म के प्रति उदासीन नहीं था। द्वयाश्रय सूचित करता है कि कुमारपाल ने पशु-वध निषेध करने बाद शिवकेदारनाथ और सोमनाथ के मन्दिरों का पुनर्निर्माण किया। हेमचन्द्र ने यह भी लिखा है कि कुमारपाल ने कुमारेश्वर के मंदिर का निर्माण किया। उसके उत्कीर्ण लेख शिववन्दना से आरंभ हुए हैं और एक भी ऐसा उत्कीर्ण लेख प्राप्त नहीं हुआ है जिसमें किसी जैन दैवत्व की वन्दना की गई हो। उसके सामन्तों द्वारा निस्सृत किए गए उन उत्कीर्ण लेखों में भी शिव की वन्दना की गई है जिनमें कुछ दिनों पर पशु-वध की मनाही की गई है। भाववृहस्पति के ११६९ ई० के उत्कीर्ण लेख में कुमारपाल 'माहेश्वर-नृप-आग्रणि:' किन्तु जालोर उत्कीर्ण लेख और कई पुष्पिकाओं में तथा हेमचन्द्र द्वारा कुमारपाल परमार्हत कहा गया है। सोमेश्वर के सुरथोत्सव काव्य से यह आशय निकलता है कि यद्यपि कुमारपाल ने मंदिरों का पुनर्निर्माण या कम से कम एक मंदिर का निर्माण किया, ब्राह्मण पुरोहित की ओर वह उदासीन था। यह कहना भ्रामक है कि कुमार-पाल ने शक्तिशाली और धनी बणिकों को जो जैन धर्मावलम्बी थे अपनी ओर करने के लिए जैनधर्म ग्रहण किया। यह भी कहना सत्य नहीं है कि युद्धों के कारण उसका कोष क्षीण हो गया था और जैन सम्प्रदाय वालों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए उसने जैनधर्म ग्रहण किया क्योंकि यदि उसको धन की कमी होती तो वह संतान-हीन मृतकों की सम्पत्ति का राजसात्करण बन्द न करता क्योंकि यह राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत था। यह अधिक संभाव्य प्रतीत होता है कि कुमारपाल की कार्य-वाहियों के फलस्वरूप गुजरात और राजपूताना में जैनधर्म का प्रसार हुआ और उसके धर्म परिवर्तन करने पूर्व गुजरात में जैनियों का बोलबाला न रहा हो। इस संबंध में कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। उसने पशु-वध, मद्यपान, द्यूत, और परस्त्रीगमन का निषेध किया। कहाँ तक उसकी आज्ञाओं का प्रभाव हुआ कहा नहीं जा सकता। प्राकृत द्वयाश्रय के अनुसार स्वयं कुमारपाल की राजसभा में राजा के पार्श्व में एक वेश्या बैठती थी। हेमचन्द्र ने लिखा है कि प्रात: दैनिक कृत्य से विवृत्त होने के बाद कुमारपाल के मस्तक पर ब्राह्मण तिलक लगाते थे और वह मन्दिरों में जाता था और श्रमगृह में व्यायाम करने के बाद वह पार्श्वनाथ की पूजा करने के लिए कुमारपाल विहार में जाता था। सोमप्रभा सूचित करता है कि कुमारपाल प्रात: पंचनमस्कार पवित्र जैन मंत्रियों का उच्चारण करता था और पूज्य तीर्थंकरों का ध्यान करता था। कुमार विहार में पूजा करने के बाद वह हेमचन्द्र के धार्मिक प्रव-

चनों को सुनने के लिए जाता था। वह सूर्यास्त के ४८ मिनट पूर्व भोजन करता था।

हेमचन्द्र के ग्रन्थ से सूचना मिलती है कि ब्राह्मण धर्म के प्रति कुमारपाल का मोह था। किन्तु सोमप्रभा के वर्णन से जिसने अपना ग्रन्थ कुमारपाल की मृत्यु के प्राय: १० वर्ष बाद लिखा ज्ञात होता है वह जैनधर्म का पालन करता था। ब्राह्मण धर्म के प्रति कुमारपाल की आसक्ति का उसके ग्रंथ में बिलकुल उल्लेख नहीं है। हो सकता है कि अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में ब्राह्मण धर्म का पालन करना उसने छोड़ दिया हो यह भी संभाव्य है कि बाद के जैन इतिवृत्त लेखकों ने प्रचारार्थ यह दिखाने का प्रयास किया हो कि कुमारपाल पूर्णरूपेण जैनी था और उसने ब्राह्मण धर्म से समस्त संबंध तोड़ लिए थे। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि कुमारपाल ने जैनधर्म स्वीकार किया था। हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में लिखा है कि 'कुमारपाल राजर्षि चालुक्य परमार्हत' था। प्रतीत होता है कि हर्षवर्धन की तरह वह ब्राह्मण धर्म को मानता था और साथ एक अन्य धर्म को भी ग्रहण किए हुए था।

कुमारपाल की मृत्यु—जयसिंह सूरि ने लिखा है कि कुमारपाल अपने दौहित्र प्रतापमल्ल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहता था। कुमारपाल के भतीजे अजयपाल को इसकी सूचना लग गई। अत: उसने कुमारपाल के अस्वस्थ्य होने पर विष मिला दूध पिला दिया। कुमारपाल को विष का प्रभाव मालूम होने पर उसने अपने मन को समस्त सांसारिक विषयों से निवृत्त कर इस संसार से कूच किया। उसकी मृत्यु ११७३ ई० में हुई। किन्तु इतिहासज्ञ जयसिंह सूरि इस कथन पर विश्वास नहीं करते।

अध्याय | ६

अजयपाल

(ल० ११७२-७५ ई०)

अजयपाल के पुत्र भीम के पुरोहित सोमेश्वर ने जो अजयपाल का लगभग समकालीन था अपने ग्रन्थ सुरथोत्सव में लिखा है कि कुमारपाल के पुत्र ने सूर्यग्रहण के अवसर पर उसके (सोमेश्वर के) पिता को बहुत से रत्न दान में दिए; इसके बाद के श्लोक में सोमेश्वर ने अजयपाल के नाम का उल्लेख किया है और इसमें सन्देह नहीं कि उसका आशय था कि अजयपाल कुमारपाल का पुत्र है। समस्त इतिवृत्त लेखकों में अजयपाल और कुमारपाल के ठीक संबंध की जानकारी प्राप्त करने का सर्वोत्तम अवसर सोमेश्वर को था। स्पष्ट है कि अजयपाल कुमारपाल का पुत्र था न कि भतीजा। जयसिंह सूरि तथा अन्य जैन इतिवृत्त लेखकों ने लिखा है कि अजयपाल जैन धर्मियों पर अत्याचार करता था। विष देने की कथा जैन लेखकों ने बाद को गढ़ी। प्रभाचन्द्र और मेरुतुङ्ग ने विष देने की बात नहीं लिखी है।

अजयपाल और शाकम्भरी के चाहमान—उसके पुत्र भीम द्वितीय के ताम्रपट में अजयपाल की उपाधि करादिकृत समपादलक्ष-क्षमापाल दी हुई है। जिससे ज्ञात होता है कि उसने अजमेर के चाहमान राजा को परास्त किया जो संभवतः सिद्ध राज का पौत्र सोमेश्वर था। अरिसिंह ने लिखा है कि सपादलक्ष के राजा ने अजयपाल के पास एक रजत मण्डप भेजा। कीर्तिकौमुदी में लिखा है कि अजयपाल ने जांगल के राजा से एक स्वर्ण मण्डप तथा उसके मत्तहाथियों को छीना। बालचन्द्र ने भी लिखा है कि अजमेर के चाहमान राजा अजयपाल के पास उपहार भेजा करता था। अतः स्पष्ट है कि अजयपाल ने अजमेर के राजा को परास्त किया और उसकी अधीनता स्वीकार करने और कर देने को विवश किया।

अजयपाल और सामन्तसिंह—आबू-प्रशस्ति तिथ्यंकित १२३० ई० के एक श्लोक में वर्णन है कि प्रह्लादन की तलवार ने यशस्वी गूर्जर राजा की प्रतिरक्षा करने में कुशलता प्रदर्शित की जब युद्ध क्षेत्र में सामन्तसिंह ने उसकी शक्ति भंग की। इस गूर्जर राजा का तादात्म्य अजयपाल से, और सामन्तसिंह का गुहिलोत सामन्तसिंह

से तादात्म्य किया गया है। संभवतः इस युद्ध में अजयपाल को एक गहरा घाव लगा जिसको इतिवृत्त लेखक सोमेश्वर के पिता ने अच्छा किया। सुकृतकीर्ति कल्लोलिनी का श्लोक सूचित करता है कि अजयपाल ने शत्रुसेना को एक संकीर्ण घाटी में परास्त किया, और शत्रु राजा परास्त होकर लौटा जिसने अजयपाल और उसकी राज्ञी दोनों को बन्दी कर लेने की प्रतिज्ञा की थी।

प्रतीत होता है कि सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी के श्लोक में अजयपाल और सामन्त सिंह के बीच के युद्ध का उल्लेख है इस साक्ष्य तथा आबू प्रशस्ति के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम सामन्तसिंह ने अजयपाल को परास्त किया। किन्तु बाद को अजयपाल ने प्रह्लादन की सहायता से सामन्तसिंह को हराया। ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि गुहिलोत सामवन्तसिंह ने कभी गुजरात पर आक्रमण किया। अतः यह संभाव्य प्रतीत होता है कि कुमारपाल की मृत्यु के बाद चालुक्यों के आधिपत्य से चित्तौर प्रदेश को छुड़ाने का प्रयास किया। यह नहीं कहा जा सकता कि सामन्तसिंह को कितनी सफलता मिली। कुम्भलगढ़ उत्कीर्ण लेख और आहड दानपत्र से स्पष्ट है कि सामन्तसिह ने भले ही अजयपाल को किसी मुठभेड़ में हराया हो किन्तु इससे चालुक्यों की भूमि संबंधी कोई हानि नहीं हुई।

अजयपाल और जैन—मेरुतुङ्ग द्वारा लिपिबद्ध की हुई कथाओं से ज्ञात होता है कि अजयपाल ने घोर जैन-विरोधी कार्यवाहियाँ कीं। उसने कुमारपाल द्वारा मंदिरों को ढहा दिया। उसने मल्लिकार्जुन के विजेता आम्रभट या आम्बड को मरवा डाला क्योंकि उसने अजयपाल को अपना अधीश्वर मानना अस्वीकार किया। अजयपाल ने कपरदिन् नामक एक ब्राह्मण को अपना मुख्य मंत्री बनाया किन्तु उसी रात को उसको जीवित भुनवा दिया। हेमचन्द्र के विख्यात शिष्य रामचन्द्र को अजयपाल ने एक उष्ण ताम्रपट्ट पर बैठाया। रामचन्द्र ने इसी स्थिति में एक श्लोक का कुछ अंश उच्चारण किया और मर गया।

इसमें संदेह नहीं कि अजयपाल उत्साहपूर्वक ब्राह्मणधर्म को मानता था। स्वयं उसके तथा उसके पुत्रों के उत्कीर्ण लेखों में वह परम-माहेश्वर कहा गया है। श्रीधर के देवपट्टन-प्रशस्ति में कहा गया है कि अजयपाल ने वैदिक धर्म के वृक्ष को फिर बढ़ने दिया। इसके अतिरिक्त अजयपाल ने कुमारपाल की राख को प्रयाग में पवित्र नदियों के जल में प्रवाहित किया। सोमेश्वर ने लिखा है कि इस राजा के शासन में शिवजी की पूजा नित्य प्रतिदिन होती थी, और ब्राह्मणों को अच्छे उपहार दिए जाते थे। इससे प्रतीत होता है कि अजयपाल ब्राह्मण धर्म को कट्टरता से मानता था, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह जैनियों पर अत्याचार करता था। कुमारपाल के अतिरिक्त कोई भी चालुक्य राजा जैन नहीं था। किन्तु उन लोगों राज्यकालों में भी जैन धर्म

उतने ही जोरों से फूलता फलता रहा जितना कि कुमारपाल के शासनकाल में। मेरुतुङ्ग का वर्णन इस कारण और भी संदेहास्पद है कि मेरुतुङ्ग के पूर्व के किसी इतिवृत्त लेखक ने अजयपाल के जैनधर्म विरोधी कार्यकलापों का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि ये सब ग्रन्थकार जैनी थे, और उनमें से कुछ अजयपाल के समकालीन थे।

कुमारपालप्रतिबोध के ग्रन्थकार सोमप्रभा ने अपने एक अन्य ग्रन्थ शतार्थ-काव्य में हेमचन्द्र, सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल आदि अपने कुछ महान् समकालीनों के संबंध में प्रशंसात्मक बातें लिखी हैं। यश:पाल का नाटक मोहराज पराजय कुमार-पाल के धर्म परिवर्त्तन का वर्णन करता है। उसने अपने संबंध में लिखा है कि वह महान् राजा अजयदेव के कमलरूपी चरणों पर हंस है। यश:पाल एक विख्यात जैनी तथा संभवत: अजयपाल का मंत्री था। अरिसिंह और बालचन्द्र ने अजयपाल की रूढ़िगत श्लोकों में प्रशंसा की है और उदयप्रभा ने इन्द्र से उसकी तुलना की है। वस्तुपाल-तेज:पाल-प्रशस्ति उसके संयम की प्रशंसा करती है। पार्श्वनाथचरित के लेखक माणिक्य चन्द्र ने उसके धार्मिक सहिष्णुता के प्रमाण स्वरूप लिखा है कि कुमारपाल और अजयपाल की राजसभाओं का वर्धमान आभूषण था, और जैन सिद्धान्त पर अपने प्रवचनों से इन दोनों राजाओं की राजसभाओं को शोभित करता था। उपर्युक्त अधिकांश पुस्तकें विशिष्ट जैन अभिरुचि की घटनाओं का वर्णन करने के लिए लिखी गई थीं, और इनमें से किसी भी ग्रन्थकार ने अजयपाल के धार्मिक अत्याचार के संबंध में एक भी शब्द नहीं लिखा है। इन लेखकों के बहुत बाद के लेखक मेरुतुङ्ग ने सर्वप्रथम अजयपाल के जैन धर्म विरोधी कार्यकलापों के संबंध में कथाएँ लिपिबद्ध की हैं। मेरुतुङ्ग की ग्रन्थरचना के लगभग अर्द्ध-शताब्दी बाद जयसिंह सूरि ने अजय-पाल द्वारा कुमारपाल को विष देने की बात लिखी है तभी से अन्य अनेक इतिवृत्त लेखकों ने इस घटना को दुहराई है। प्रतीत होता है कि मेरुतुङ्ग ने सौम्य जैनयतियों की अपेक्षा कोई अन्य, संभवत: मौखिक प्रमाण पर विश्वास कर इन कथाओं को लिपिबद्ध किया है। मेरुतुङ्ग का साक्ष्य तथा उसके बाद के अन्य अनेक इतिवृत्त लेखकों का साक्ष्य अग्राह्य है।

अजयपाल की उपलब्धि का आकलन—अजयपाल का शासन असफल नहीं कहा जा सकता। उसके शासनकाल में चालुक्य साम्राज्य पूर्ववत् पूर्ण बना रहा। उदयपुर प्रस्तर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि मालव प्रदेश भिलसा तक पूर्णतया उसके नियंत्रण में था। उसकी सेना इतनी सशक्त थी कि उसकी मृत्यु के बाद जब उसका अप्रौढ़ बालक मूलराज द्वितीय सिंहासन पर बैठा तो उसने मुसलमान आक्रामकों को असाधारण रूप से दलन किया। उसका साम्राज्य दृढ़ और स्थिर था।

इससे प्रकट होता है कि उसका राज्य स्वेच्छा तथा अत्याचारपूर्ण नहीं था। उसकी मृत्यु २५ मार्च और ६ या ७ अप्रैल ११७५ ई० के बीच हुई।

मूलराज द्वितीय (ल० ११७५-११७८ ई०)—मूलराज द्वितीय या बाल-मूलराज बाल्यावस्था में ही अपने पिता अजयपाल के सिंहासन पर बैठा। उसने तीन वर्ष से अधिक राज्य नहीं किया, क्योंकि उसके भ्राता और उत्तराधिकारी भीम द्वितीय का उत्कीर्ण लेख तिथ्यंकित ११७८ ई० उपलब्ध है।

इस बालक राजा के शासनकाल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना मुसलमान सेना की पराजय है। उसके उत्तराधिकारियों के शिलालेखों में उसकी प्रशंसा अनिवार्य रूप से इन शब्दों में की गई है: 'पराभूत-दुर्जय-गर्जनक-आधिराज' या 'म्लेच्छ-तमो-निचयच्छन्न-मही-वलय-प्रद्योतन-वालार्क'।

सोमेश्वर, बालचन्द्र, अरिसिंह, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी तथा भीम के शासन काल के उत्कीर्ण लेख और मेरुतुङ्ग ने तुरुष्कों और म्लेच्छ सेना पर मूलराज की विजय का वर्णन किया है। फोर्ब्स, बुहलर, जेक्शन, होडीवाल और हबीबउल्ला के मत से पराजित मुसलमान सेना का नेता मुइज़्ज़उद्दीन मुहम्मद बिनसाम था जो मुहम्मद घोरी के नाम से विख्यात है। मुसलमान इतिहास लेखकों के अनुसार नहरवाल का राजा भीम द्वितीय ने मुइज़्ज़उद्दीन पर विजय प्राप्त की थी। डॉ० रे का यह सुझाव मान्य नहीं है कि सिन्ध के सुम्र मुसलमान थे तथा आक्रमणकारी थे। मूलराज की उपाधि 'गर्जनक-आधिराज' थी। इसका अर्थ है गर्जनक का विजेता। बुहलर ने लिखा है कि गर्जनक का व्युत्पत्ति सम्बन्धी अर्थ गर्जन करने वाला है और यह शब्द ग़ज़नी के लिए आया है। पृथ्वीराज विजय में भी ग़ज़नी के लिए गर्जन शब्द का प्रयोग हुआ है। पृथ्वीराज विजय के टीकाकार जोनराज ने इसकी इन शब्दों में व्याख्या की है: 'गर्जनाख्यो देश-विसेशो गर्जनं गर्जितं च'। अत: निश्चय है कि इतिवृत्त लेखकों और उत्कीर्ण लेखों ने गज़निवी सेना के पराजय का उल्लेख किया है।

समस्त भारतीय स्रोतों ने मूलराज की उदारतापूर्वक प्रशंसा इसलिए की है कि उसने मुइज़्ज़उद्दीन की मुख्य सेना को सचमुच परास्त किया। जब मुइज़्ज़उद्दीन ने ११७८ ई० में गुजरात पर आक्रमण किया।

विजय का महत्व—इस विजय ने मुसलमान आक्रमण की प्रगति एवं दिशा को पूर्णरूपेण अवरोध किया। इस विजय के फलस्वरूप मुसलमान आक्रमणकारी दक्षिणी राजपूताना और गुजरात में टिक न सके। उनकी शक्ति क्षीण हुई और वे शाकम्भरी के चाहमानों पर आक्रमण करने में असमर्थ हुए। वह अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में असमर्थ था और उसको विवश होकर गज़नी लौटना पड़ा। दूसरे वर्ष खैबर दर्रे से भारत में प्रवेश किया और युक्ति से लाहौर पर अधिकार किया और

अन्ततः चाहमानों से युद्ध किया। इस पराजय के बाद मुइज़ुद्दीन ने फिर गुजरात पर आक्रमण नहीं किया। इस पराजय के बाद मुसलमान सेना को ग़ज़नी तक जाने में अनेकानेक कष्टों को झेलना पड़ा। इस पराजय की याद मुसलमानों को बहुत दिन तक बनी रही। सून्ध पर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि नड्डूल चाहमान केल्हड़ ने तुरुष्कों को पराजित कर एक स्वर्ण तोरण निर्माण किया। केल्हण के भ्राता कीर्त्तिपाल ने भी तुरुष्कों को कासह्रद स्थान पर हराया। प्रतीत होता है कि यह दोनों मूलराज के सामन्त थे और उन्होंने अपने सम्राट् की ओर से तुरुष्कों से युद्ध किया। कासह्रद का तादात्म्य कयद्रम से किया गया है। यह वही स्थान है जहाँ पर दूसरे वर्ष मुसलमान फिर आए किन्तु अपनी पूर्व पराजय की घटना का स्मरण कर वे हिन्दुओं पर आक्रमण करने का साहस न कर सके।

मालवा पर अभियान—मूलराज के शासन काल में मालवा में विद्रोह हुआ। प्रतीत होता है कि मुसलमान आक्रमण, गुजरात का अकाल, और मूलराज द्वितीय के बालकपन और अननुभव के कारण परमारों ने चालुक्यों को मालवा के बाहर खदेड़ने का सुअवसर देखा। प्रतीत होता है उस समय चालुक्य राज्य के अनुभवी सेनापति अन्य स्थानों पर लगे हुए थे। अतः राजपुरोहित कुमार को मालवा के विरुद्ध सेना का नेतृत्व दिया गया। प्रतीत होता है कि कुमार अपने कार्य में सफल हुआ और 'राज्ञी सर' के समीप मुइज़ुद्दीन की पराजित सेना की टुकड़ियों को परास्त करने में सफल हुआ। स्पष्ट है कि मूलराज के शासन काल में मालवा चालुक्य साम्राज्य का अंग बना रहा।

मूलराज की मृत्यु—मुइज़ुदीन को पराजित करने के बाद मूलराज की मृत्यु हुई क्योंकि उसके भ्राता और उत्तराधिकारी भीम द्वितीय के उत्कीर्ण लेख की पूर्वतम ज्ञात तिथि ११७८ ई० है। सोमेश्वर ने विलाप किया है कि विधाता ने कल्पद्रुम-अंकुर को द्रुतगति से उन्मूलित किया।

भीम द्वितीय (ल० ११७८-१२४१ ई०) भीम का राज्यारोहण और राजनीतिक स्थिति—जिस समय भीम द्वितीय अपने भ्राता मूलराज के असामयिक मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठा उसकी अवस्था छोटी थी, किन्तु उसके राज्य का विस्तार प्रायः उतना ही था जितना कि कुमारपाल ने अपनी मृत्यु के समय छोड़ा था। उत्तर में इसमें मेवाड़ और आघाटपुर सम्मिलित थे, दक्षिण में इसमें भड़ौच तक का लाट प्रदेश सम्मिलित था; उत्तर-पूरब में इसमें वागड प्रदेश था। सम्भवतः मालवा का भाग जिसमें धारा भी सम्मिलित था चालुक्य साम्राज्य का अंग था। अनेक उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र भी इसमें सम्मिलित था।

भीम के राज्यारोहण के समय राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन स्पष्ट

दृष्टिगोचर हुए। उत्तर में दुर्बल यामिनियों का स्थान शक्तिशाली घोरियों ने लिया। यद्यपि मूलराज द्वितीय ने उनकी प्रगति को रोका किन्तु तराइन के द्वितीय युद्ध में उनकी विजय हुई जिसका परिणाम गुजरात के लिए दुर्भाग्यपूर्ण हुआ। दक्षिण में चोलों तथा कल्याणी के पश्चिमी चालुक्यों का अन्त हुआ और उनका स्थान पाण्ड्यों, कालिङ्ग के पूर्वी गंगों ने, दोर समुद्र के होयसलों, और देवगिरि के यादवों ने लिया। कुछ समय बाद पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति को कलचुरि सेनापति विज्जल ने धराशायी किया। चालुक्य भीम द्वितीय को उनके उत्तराधिकारियों—होयसलों और यादवों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। पश्चिमी चालुक्य राज्य को हड़पने के लिए यादवों और होयसलों में धरवार जनपद के उत्तर में मलप्रभा और कृष्णा नदियों के के तटों पर युद्ध हुए जिसमें होयसल बल्लाल विजयी हुआ और मलप्रभा नदी यादवों और होयसलों के बीच सीमा निर्धारित हुई। इस तरह दक्षिण में यादवों के राज्य विस्तार में अवरोध होने के कारण उन्होंने उत्तर की ओर ध्यान केन्द्रित कर गुजरात पर बारंबार आक्रमण किए।

मूलराज द्वितीय के समय मालवा के परमारों ने चालुक्य आधिपत्य के विरुद्ध सिर उठाया और कुछ समय बाद वे अपने देश को मुक्त करने में सफल हुए। अपने देश को स्वतंत्र करने के पश्चात उन्होंने अपनी गत पराजय और अवमानता का बदला लेने के लिए गुजरात पर बारंबार आक्रमण किए। इसी समय भीम को अपने मण्डलिकों के राजनिष्ठा—त्याग से गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हुई। प्रान्तीय राज्यपालों ने राज्य को आपस में बाटने का प्रयत्न किया। ऐसी परिस्थिति में अर्णोराज विद्रोहियों के विरुद्ध युद्ध में प्राणोत्सर्ग कर राज्य को डूबने से बचाया। इस साहसिक कार्य में उसके पुत्र और पौत्र लवण प्रसाद और वीरधवल के आगामी महत्ता की नींव रखी जो बाघेला वंश के वास्तविक संस्थापक थे।

एक ही समय में भीम को बाह्य और आन्तरिक उपद्रवों का सामना करना पड़ा। आन्तरिक उपद्रवों के कारण विदेशी आक्रमण को प्रोत्साहन मिला जिससे उसकी शक्ति और गौरव का ह्रास हुआ। इस कारण और भी आन्तरिक उपद्रव हुए। बाघेलों ने तीन या चार पीढ़ियों तक साम्राज्य की उत्साहपूर्वक सेवायें कीं किन्तु चालुक्य साम्राज्य विनाश से बच न सका।

भीम और होयसल वंश—विष्णुवर्धन् और उसके पौत्र वीर बल्लाल द्वितीय ने जो ११७३ ई० में सिंहासन पर बैठा अपनी शान्ति की अतिसय वृद्धि की। उसके कुछ उत्कीर्ण लेखों में लिखा है कि जब बल्लाल द्वितीय समरयात्रा के लिए निकलता था तो गूर्जर काँपते थे। मालव विन्ध्य जंगलों में छुपता था और चोलिक समुद्र तट की शरण लेता था। बेलगामी प्रस्तर उत्कीर्ण लेख (११९२ ई०) सूचित करता है कि

बल्लाल ने अत्यन्त बेग से मालवा में प्रवेश कर उसको जोरों से झकझोरा। ११९० ई० के एक उसके उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि मालव राजा और गुर्जर राजा तथा लाल (लाट) तथा चोल राजे मिलकर उसके विरुद्ध लड़े किन्तु उसने अकेले ही उनसे युद्ध किया और उनको पददलित किया।

उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रतीत नहीं होता कि उसने गुर्जरों को कोई विशेष क्षति पहुँचायी हो, भले ही उसने लाट के विरुद्ध लूट अभियान किया हो।

यादवों का भीम पर आक्रमण—यादव राजा भिल्लम ने भीम पर एक वृहद्‌काय आक्रमण किया। सुन्धापर्वत उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि चाहमान केल्हण ने भिल्लम नामक एक दक्षिणी राजा को परास्त किया। इस साक्ष्य के आधार पर यह कहा गया है कि भिल्लम ने भीम को हरा कर दक्षिणी मारवाड़ तक बढ़ गया और वहाँ केल्हण द्वारा पराजित किया गया। यह भी हो सकता है कि भीम की सहायता करने के लिए केल्हण आया हो और दक्षिणी राजा के आक्रमण को निष्फल किया हो।

भीम और शाकम्भरी के चाहमानों से युद्ध—चन्दबरदाई के पृथ्वीराज-रासो में लिखा है कि भीम और पृथ्वीराज में दो युद्ध हुए, एक नागोर के और दूसरा आबू पर्वत के समीप। आबू के युद्ध का उल्लेख प्रहलादनकृत व्ययोग-पार्थपराक्रम नामक नाटक में भी है। उपर्युक्त तथा अन्य साक्ष्यों से विदित होता है कि चाहमानों और चालुक्यों की पुरानी शत्रुता भीम के राज्यारोहण के बाद पुनः भड़की किन्तु ११८७ ई० तक दोनो राजाओं में शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए।

गुजरात पर मुसलमान आक्रमण—तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज के पराजय होने के पाँच वर्ष के अन्दर ही कुतुबुद्दीन के नेतृत्व में आक्रामक मुसलमान सेना की उमड़ती हुई धारा का भीम को सामना करना पड़ा। इस युद्ध के संबंध का एकमात्र हिन्दू स्रोत जिनपालकृत खरतर-गच्छ पट्टावलि है, किन्तु मुसलमान लेखकों के कई इतिहास ग्रन्थों में इस युद्ध की चर्चा है। निज़ामी और फ़िरिस्ता ने लिखा है कि नहरवाल के राजा का एक मण्डलिक जतवन ने हन्सी पर घेरा डाला किन्तु कुतुबुद्दीन के शीघ्र आ जाने के कारण हिन्दू भागे और पछाड़े गए। निज़ामी के अनुसार जतवन मारा गया। किन्तु फिरिस्ता ने लिखा है कि गुजरात के अंचल तक उसका पीछा किया गया। निज़ामी ने लिखा है कि जिस समय क़ुतुबुद्दीन अजमेर था (फिरिस्ता के अनुसार दिल्ली में था) उसको सूचना मिली कि विद्रोह मेयर नरहवाल के राजा से सहायता लेकर मुसलमानों पर धावा बोलने वाले हैं जो बहुत ही अल्पसंख्या में हैं। क़ुतुबुद्दीन शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचा और यद्यपि गर्मी का महीना था उसने दिन भर युद्ध किया दूसरे दिन प्रातः नहरवाल की सेना युद्ध क्षेत्र में आ धमकी और मुसलमानों

को अजमेर के किले में शरण लेने को विवश किया।

विजयोल्लास में गुजरात की सेना ने कुतुबुद्दीन का पीछा किया और कई महीने तक कुतुबुद्दीन को अजमेर के किले में घेरे रही। इसकी सूचना मुइजुद्दीन के पास ग़ज़नी में पहुँची। उसने एक बड़ी सेना अपने कई विख्यात सेनापतियों के नेतृत्व में कुतुबुद्दीन की रक्षा करने के हेतु भेजी। किन्तु इस सेना के पहुँचने के पूर्व हिन्दू सेना पीछे हट गयी और आबू पर्वत के नीचे उस स्थान पर जम गई जहाँ उसने ११७८ ई० में मुइजुद्दीन को बुरी तरह पछाड़ा था।

गजनी से प्राप्त अधिक बलन से अपने को दृढ़ कर कुतुबुद्दीन ने ११९७ ई० के जनवरी के महीने में नहरवाल की ओर प्रस्थान किया और ४ फरवरी, ११९७ ई० को कुतुबुद्दीन की सेना के सामने पहुँचा। अतः हिन्दू उसी स्थान को ग्रहण किए हुए थे जहाँ उन्होंने मुइजुद्दीन को हराया था अतः उस स्थान पर युद्ध करना मुसलमानों ने अपशकुन समझा। निजामी ने लिखा है कि 'मुसलमानों की झिझक देखकर हिन्दू उनका सामना करने के लिए आगे बढ़े'। निजामी ने लिखा है कि ऊषा काल से मध्याह्न तक दृढ़ता से युद्ध हुआ जिसमें पचास हजार हिन्दू मारे गए। रायकरण बीस हाथियों तथा बहुत-सा सामान छोड़ कर भागा। मुसलमानी सेना ने नहरवाल को अपने अधिकार में किया। महावलि में लिखा है कि जिनपति सूरि ने मुसलमानों द्वारा अणहिलपाटक के लूट और ध्वंस का दृश्य देखा था।

प्रतीत होता है कि मुसलमान सेना ने केम्बे और सोमनाथ की पुण्ड्यस्थली पर अधिकार करने का प्रयास किया। अणहिल पाटक की भौगोलिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि उसकी प्रतिरक्षा की जा सके। अतः प्रतीत होता है कि हिन्दू सेनापति समुद्रतट की ओर पीछे हट गए और जब विजयोल्लास में मुसलमान सेना ने केम्बे और सोमनाथ के किलेबन्द स्थानों पर धावा किया तो हिन्दुओं ने उनका खूब संहार किया और उनका पीछा कर उनको गुजरात के बाहर खदेड़ दिया। श्रीधर की देवपत्तन प्रशस्ति में लिखा है कि 'श्रीधर ने प्रलय के उदधि की उमड़ती हुयी तरंगों की तरह वीर हम्मीर की सेना को घास की तरह काटा'।

एक हस्तलिपि की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि १२०१ ई० में भीम अणहिल पाटक में राज्य कर रहा था।

परमार आक्रमण—गुजरात पर से मुसलमान संकट टला ही था कि मालवा के परमारों ने उस पर आक्रमण किया। विन्दुवर्मन् की पराजय के बाद परमारों ने अपनी शक्ति दृढ़ कर ली थी। वेदपाल के मानधाता पट्टों में लिखा है कि विन्ध्यवर्मन् गुर्जरों को निर्मूल करने के लिए उत्सुक था। उसने बाहुबल से धारा को उनके आधिपत्य से छुड़ाया था। जैन गुरु आशाधर ने भी इसकी पुष्टि की है। उसने लिखा है

कि मूलेक्ष राजा द्वारा सपादलक्ष्य प्रदेश के विजय करने के बाद वह विन्ध्यवर्मन् की राजसभा धारा में उपस्थित हुआ। टीकाकार ने उस म्लेच्छ राजा का तादात्म्य साहिबन्दिम तुरुष्कराज से किया है जो निःसन्देह सहबुद्दीन का विकृत रूप है। अतः धारा की विमुक्ति अवश्य ही तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद हुयी होगी जो ११९२ ई० में हुआ था।

विन्ध्यवर्मन् के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात परमारों ने अपनी शक्ति दृढ़ कर ली किन्तु चालुक्यों की शक्ति क्षीण हो गई क्योंकि उनकी सेना का एक भाग मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने में काम आया। उनकी इस निर्बलता का लाभ उठाकर विन्ध्यवर्मन् के पुत्र सुभटवर्मन् ने लाट पर एक सफल अभियान किया और अणहिल पाटक पर आक्रमण किया जैसा कि देवपाल के मानधाता पट्टों से प्रतीत होता है, जिसमें लिखा है कि 'सुभटवर्मन् की शौर्यरूपी अग्नि गरजने वाले गुर्जर के बदन में आज भी दावानल के रूप में सुलग रही है।' प्रतीत होता है कि सुभटवर्मन् ने अणहिलपाटक पर उस समय आक्रमण किया जब मुसलमान आक्रामक वहाँ से चले गए थे और वहाँ अव्यवस्था फैली हुई थी। अतः स्पष्ट है कि यह आक्रमण १२०४ ई० के बाद हुआ होगा। क्योंकि एक हस्तलिपि की पुष्पिका से ज्ञात है कि १२०४ ई० में भीम वहाँ राज्य कर रहा था। समकालीन गुजरात इतिवृत्तों से पता चलता है कि सुभटवर्मन् ने दभोई को विजित किया और कुछ समय तक उस पर राज्य किया।

अरिसिंह ने लिखा है कि मालवपति ने दर्भवती के वैद्यनाथ मन्दिर के सुवर्ण कुम्भों को अपहृत किया किन्तु बाद को वस्तुपाल ने उनको वहाँ फिर स्थापित किया। दो अन्य समकालीन ग्रन्थों का कथन है कि सुभटवर्मन् ने वैद्यनाथ के मन्दिर से सुवर्ण-कुम्भों को हटाया। स्पष्ट है कि उसने १२१० ई० के पूर्व दभोई पर आक्रमण किया था। श्रीधर से देवपट्टन प्रशस्ति में भी इस आक्रमण का उल्लेख है जिसमें लिखा है उसने अपने मंत्रवल से मुसलमानों के और सुभटवर्मन् के आक्रमणों के विरुद्ध अपने किले की प्रतिरक्षा की। उसका किला सोमनाथ के समीप था। अतः वह अवश्य ही सोमनाथ तक गया होगा। यद्यपि कि इसका कोई प्रमाण नहीं है कि उसने उस पर अधिकार किया।

प्रतीत होता है कि अर्णोराज के पुत्र लवण प्रसाद ने सुभटवर्मन् को पीछे हटाकर गुजरात की रक्षा की। सोमेश्वर ने लिखा है कि उसकी दृढ़ता के सामने सुभटवर्मन् का विरोध ठहर न सका और उसे लौटना पड़ा। बालचन्द ने लिखा है कि इस युद्ध का लाभ यादवों ने उठाया।

मेरुतुंग ने लिखा है कि सुभटवर्मन् के पुत्र अर्जुनवर्मन् ने जयन्तसिंह या जैसिंह को हराया जो गुजरात सिंहासन का अपहर्ता था और कुछ समय तक वहाँ

राज्य किया था । प्रतीत होता है कि इस युद्ध के फलस्वरूप अर्जुनवर्मन् ने जयसिंह से सन्धि की और उसके बदले में उसको 'जयसिंह से चालुक्य; महि महेन्द्र, गुहिता, देवी जैश्री' प्राप्त हुयी । यह मुख्य पर्व पर्वत की घाटी में हुआ था । अर्जुनवर्मन् के पिपलिया नगर दानपत्र में इसकी चर्चा है जो १२१० ई० में निस्सृत किया गया था । अर्जुनवर्मन् के भोपाल दानपत्र से ज्ञात होता है कि वह १२१३ ई० में भड़ौच पहुँचा । परमारों का अधिपत्य संकटपूर्ण था और सिंह नामक चाहमान के हाथ में चला गया । प्रतीत होता है कि तेरहवीं शती के तृतीय दक्षक में चालुक्यों ने लाट पर फिर से अधिकार किया और नर्वदा के तटों पर एक यादव सेना को परास्त किया । एक हस्तलिपि की पुष्पिका सूचित करती है कि १२३१-३२ में भृगुकच्छ लवणप्रसाद के पौत्र बीसलदेव के अधिकार में था ।

लाट में राजनीतिक परिवर्तन—प्रतीत होता है कि परमारों के शासन की समाप्ति के बाद लाट पर यादव वंश बारम्बार आक्रमण करता रहा । जिसके फलस्वरूप कुछ स्थानीय वंशों को अपनी सत्ता स्थापित करने का अवसर मिला । इसी समय चालुक्यों ने भी अपने इस अपहृत प्रदेश को पुन: प्राप्त करने का प्रयास किया और उस तरह यह अभागा प्रदेश लगभग चार दशकों तक एक युद्ध-क्षेत्र बना रहा । सोमेश्वर की कीर्तिकौमुदी, बालचन्द का वसन्त विलास तथा समकालीन ऐतिहासिक नाटक हम्मीरमदमर्दन ने इस दीर्घकालीन संघर्ष के विभिन्न घटनाओं को अभिलिखित किया है । इन ग्रन्थों से प्रकट होता है कि यह प्रदेश चाहमानसिंह के अधिकार में आया जिसको परमार वंश सहायता कर रहा था किन्तु यादवों के आक्रमण के समय परमारों ने साथ न दिया । अत: सिंह को चालुक्यों से सहायता लेनी पड़ी । कुछ समय बाद सिंह के भतीजे शंख या संग्राम सिंह ने यादवों की सेना को बुरी तरह पछाड़ा । प्रतीत होता है कि सिंह और चालुक्यों की मैत्री से अर्जुनवर्मन् असंतुष्ट हुआ उसने १२१३ ई० में सिंह के स्थान पर शंख को सिंहासन पर बैठाया । एक दशक के बाद सिंहन के नेतृत्व में यादवों ने लाट पर पुन: आक्रमण किया । लवण प्रसाद और वीरधवल ने यादवों का प्रतिरोध करने का प्रयास किया किन्तु इसी समय मारवाड़ के राजाओं ने विद्रोह किया । अत: लवण प्रसाद ने सिंहन से मैत्री की और अपने पुत्र वीरधवल के साथ मारवाड़ को प्रस्थान किया । उनकी अनुपस्थिति में शंख ने केम्बे पर आक्रमण किया किन्तु वस्तुपाल ने उसको पराजित किया । अत: शंख ने यादव सिंहन को गुजरात पर पुन: आक्रमण करने के लिए प्रलोभित किया । इस समय चालुक्यों के लिए विकट स्थिति उत्पन्न हो गई । मारवाड़ के राजाओं ने विद्रोह किया । मालवा का राजा परमार देवपाल आक्रमण करने को प्रस्तुत हुआ, और इसी समय एक मुसलमान आक्रमण का संकट आ उपस्थित हुआ । किन्तु लवण प्रसाद की

कूटनीति से शंख और सिंहन का संबंध-विच्छेद हुआ, मारवाड़ के राजाओं ने अधीनता स्वीकार की और मुसलमान आक्रामक पीछे हटाये गए ।

यादव आक्रमण—चालुक्यों के पड़ोसी राजाओं में परमारों की अपेक्षा यादव अधिक शक्तिशाली थे। यादव भिल्लम ने चालुक्यों पर जो आक्रमण आरम्भ किया वह कई पीढ़ियों तक चलता रहा। भिल्लम के पुत्र जयतुगि का १२०० ई० का उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसने गुर्जरों को विजित किया। वसन्तविलास का कथन है कि जिस समय लवण प्रसाद सुभटवर्मन् के विरुद्ध लड़ रहा था। यादव सेना कालकूट के रूप में आई किन्तु शंख ने उसको पीछे हटाया।।

जयतुगि के पुत्र सिंघन ने अपने पिता और प्रपिता की नीति का और भी अधिक उत्साह से अनुगमन किया और गुर्जरों के गर्व को भंग किया। उसके बाद उसका पुत्र राम सिंहासन पर बैठा और उसके शासनकाल में गुजरात के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी गई। यह युद्ध नर्वदा के तट पर हुआ जिसमें बहुसंख्यक गुजराती सैनिक मारे गए।

कवि सोमेश्वर ने अपनी कीर्तिकौमुदी में गुजरात पर सिंघन के आक्रमण का वर्णन किया है। उसमें लिखा है कि "जिस समय गुजरात में चारों ओर शान्ति विराजमान थी दक्षिणेन्द्र सिंहन ने गुजरात की समृद्धि से ईर्ष्यालु होकर उस प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। जब गुजरातियों को यह समाचार मिला तो भय से काँपने लगे। उन्होंने गृहों का निर्माण करना और अनाजों को इकट्ठा करना रोक दिया और उनके पौधे खेतों में वैसे ही खड़े रहे। शत्रु की सेना जैसे-जैसे आगे बढ़ती गई वैसे वैसे वे पीछे हटते गए। लवण प्रसाद के पास अल्प सेना थी किन्तु वह शत्रु की विशाल और उत्कृष्ट सेना का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। शत्रु रास्ते में गाँवों को जलाते चले आ रहे थे वे भृगुकच्छ तक बढ़ गए जहाँ कि उस समय भी खेतों में प्रचुर फसलें खड़ी थीं। कवि सोमेश्वर ने लिखा है कि गुर्जर राजा यादव आक्रामकों को अजेय न समझा। इसी समय मारवाड़ के चार राजे लवण प्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल के विरुद्ध उठ खड़े हुए। गोध्र और लाट के मण्डलिकों ने भी लवण प्रसाद की सेना का साथ छोड़ दिया और मारवाड़ राजाओं से जा मिले। अतः लवण प्रसाद ने यादवों की सेना के विरुद्ध न बढ़कर मरु राजाओं का दमन करने के लिए पीछे मुड़ा। सोमेश्वर ने लिखा है कि यादव सेना ने आगे बढ़ने का साहस नहीं किया क्योंकि "सिंह के चले जाने के बाद भी मृग उसके पथ से नहीं जाते।"

आर० जी० भण्डारकर ने सोमेश्वर के कथन की आलोचना करते हुए लिखा है कि यदि यादव सेना के प्रयाण से जनता इतनी भयभीत हुयी, सिंहन की सेना इतनी विशाल थी, और गुर्जर लवण प्रसाद पीछे हट गया था तो क्या कारण है कि यादव

सेना आगे नहीं बढ़ी ? अवश्य ही लवणप्रसाद ने कर देने का वचन दिया होगा। यमलपत्र में लवणप्रसाद और यादवों में जो सन्धि हुयी, वह दी हुयी है । इसमें लिखा है कि महाराजाधिराज; श्रीमत् सिंहन और महामण्डलेश्वर—राणक, श्री लवण प्रसाद अपने-अपने राज्य की सीमा के अन्दर रहेंगे और एक दूसरे के देश पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि कोई प्रबल शत्रु उनमें से किसी पर भी आक्रमण करेगा तो वे मिलकर उसका सामना करेंगे। यदि कोई कुलीन किसी के राज्य से मूल्यवान वस्तु लेकर दूसरे के राज्य में शरण लेगा तो उसको समस्त मूल्यवान वस्तु के समेत लौटाना पड़ेगा। लेख पद्धति के एक अन्य अभिलेख से प्रतीत होता है कि जिस समय लवण प्रसाद अपनी लघु सेना को लेकर यादव सेना का सामना कर रहा था उसका पुत्र वीरधवल एक दूसरी सेना लेकर यादवों के प्रदेश को लूटना आरम्भ किया। वीरधवल ने यह कार्य इतनी सफलता से किया कि सिंहन के लिए संधि करने के अतिरिक्त अन्य चारा न रहा और उसने बराबरी की शर्तों पर सन्धि कर ली।

यह सन्धि गुजरात के लिए अत्यन्त लाभकारी थी। इससे न केवल यादव आक्रमण से गुजरात को छुटकारा मिला, बल्कि गुजरात पर किसी अन्य शक्ति के आक्रमण करने की दशा में यादव सहायता का भी वचन मिला और इससे परमारों के लुण्ठन आक्रामकों के विरुद्ध रक्षा हुयी। यह सन्धि यह भी संकेत करती है कि लाट गुजरात का अंश बना रहा। इस सन्धि में परमारों की कोई चर्चा नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उस समय परमारों का कोई प्रभाव नहीं था।

सिंहन के लिए इस सन्धि का कोई मूल्य न था क्योंकि उसने गुजरात पर पुनः आक्रमण किया। जब शंख ने उसको सहायता देने का वचन दिया मंत्री वस्तुपाल ने अपनी कूटनीति द्वारा गुजरात की रक्षा करने में समर्थ हुआ। सम्भवतः इस बार सिंहन लौट गया किन्तु १२३७ ई० के लगभग उसने दूसरी सेना अपने पुत्र राम के नेतृत्व में गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजी। बीसलदेव ने इस सेना को परास्त किया और उसके सेनापति का बध किया।

शंख—शंख लाट का राजा था। यादव सेना के द्वारा लाट पर बारम्बार आक्रमण करने के कारण शंख ने प्रमुखता ग्रहण की। वह सिन्धुराज का पुत्र था। उसका अपर नाम संग्राम सिंह था। उसके पूर्वजों के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं है किन्तु प्रतीत होता है कि वह चाहवान वंश का था। हम्मीर मदमर्दन का कथन है कि जिस समय यादवों ने सिंह पर आक्रमण किया तो उसके मित्र मालव राज ने उसका साथ न दिया। अतः उसने वीरधवल से संधि की। सम्भवतः इस समय शंख यादवों के प्रयाण को रोकने के लिए आगे बढ़ा और प्रमुखता ग्रहण की। बाद को शंख ने यादवों से मैत्री की और उसके उसकाने पर सिंहन ने गुजरात पर दूसरी बार आक्रमण

किया। किन्तु यह आक्रमण असफल कर दिया गया और शंख और सिंहन की मैत्री भंग हुयी।

मारवाड़ में विद्रोह—यादवों के आक्रमण का लाभ उठाकर मारवाड़ के मण्डलिकों ने दो बार विद्रोह किए। पहली बार चार विद्रोही राजे थे जिनको लवण प्रसाद और वीरधवल ने पददलित किया। दूसरी बार उदयसिंह, सोमसिंह और धारावर्ष ने विद्रोह किया। धारावर्ष चन्द्रावती का परमार राजा था उसने भीम के सिंहासनारूढ़ होने के अवसर पर चालुक्यों से सम्बन्ध विच्छेद करने का प्रयास किया किन्तु असफल होने पर मुसलमान आक्रमण के समय मूल्यवान सहायता प्रदान की किन्तु बाद को उसने फिर विद्रोह किया और उसका दमन किया। उदयसिंह कीर्तिपाल का पौत्र जावालिपुरु का चाहमान था उसने तुरुष्कों के गर्व को भंग किया और सिन्धुराज का वध किया।

हम्मीरमदमर्दन में लिखा है कि मेवाड़ के गुहिलोत राजा जैत्रसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। वह १२०७ ई० में मेवाड़ और आघाट पर राज्य-कर रहा था। गुहिलोतों ने १२०७-१२२७ ई० के बीच में किसी समय अपने को स्वतन्त्र घोषित किया और इस तरह मेवाड़ और आघाट चालुक्यों के हाथ से कुछ समय के लिए निकल गए।

गुजरात पर मुसलमान आक्रमण—हम्मीरमदमर्दन ने वीरधवल को एक मुसलमान सेनापति को हराने का श्रेय दिया है। वीरधवल को एक गुप्तचर ने मुसलमानों द्वारा मेवाड़ में नरनारियों और शिशुओं के निर्दय संहार के किए जाने की सूचना दी। जनता इतनी आतंकित हुई कि उसने आत्महत्या करना स्वीकार किया। कुछ कूपों में कूद पड़े, कुछ ने अपने घरों में आग लगाकर अपने को भष्मसात किया और कुछ लोग क्रोध में भरकर शत्रुओं पर टूट पड़े। इन मुसलमान आक्रामकों का नेता भीलच्छ्वीकार था। वस्तुपाल ने कूटनीति द्वारा उसको मेवाड़ से भगाया। राजशेखर के प्रबन्धकोष में सूचना है कि वस्तुपाल को ज्ञात हुआ कि दिल्ली सुरत्राण श्रीभोजदीन अपनी सेना सहित आबू पर्वत की ओर बढ़ा आ रहा है। वस्तुपाल वीरधवल की आज्ञा से एक लाख अश्वारोदियों को लेकर सुरत्राण का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। उसने अर्बुदगिरि के नायक धारावर्ष को आदेश भेजा कि वह म्लेच्छ सैनिकों को दर्रे के अन्दर प्रवेश करने दे और जब वे प्रवेश कर चुकें तो दर्रे को बन्द कर दे। यवनों के वहाँ प्रवेश कर जाने पर वस्तुपाल उन पर टूट पड़ा और बहुत से यवन मारे गए और बहुत से यवनों ने अपने दाँतों तले अँगुली दबायी और शेष ने तोबा किया किन्तु उनमें से एक भी जीवित न छोड़ा गया। एक लाख मुसलमानों के कटे हुए सिर को वस्तुपाल ने वीरधवल के पास भेजा। प्रतीत होता है कि राज-

शेखर ने वस्तुपाल की कीर्ति बढ़ाने के लिए एक प्राचीन घटना के आधार पर यह कथा गढ़ी है। मूलराज द्वितीय ने ११७८ ई० में मुइजुद्दीन बिनसाम को हराया था।

कच्छ पर आक्रमण—जगदुचरित सूचित करता है कि इसी काल में पारा के पिठदेव ने कच्छ पर आक्रमण किया और सम्पूर्ण प्रदेश को नष्ट कर कुछ काल तक भद्रेवर पर आक्रमण किया और बाद को वहाँ की परिखा को गिरा कर लौट गया। बूलर ने पिठदेव का तादात्मय एक सुम्र राजा से किया है जिसको मुसलमान इतिहास लेखक पिठु, पहटू, या फटु कहते हैं। बूलर ने लिखा है कि पारा कच्छ का पर्कर नामक एक अंश है। जगदुचरित के अनुसार सुम्र हिन्दू थे।

जगदुचरित का कथन है कि चालुक्य की एक सेना ने मुदगलों पर विजय प्राप्त कर विश्व को शान्ति प्रदान की। बूलर के अनुसार मुदगल, मुगल थे किन्तु ऐसी कोई सूचना नहीं है कि इस अवधि में कोई मुगल या मंगोल आक्रमण हुआ हो। सम्भवत: जलालुद्दीन मँगबरनि ने आक्रमण किया हो। क्योंकि तारीखे जहनकुशी में लिखा है कि जलालुद्दीन ने नहरवाल को लूटा और वहाँ से बहुत से बन्दियों को लाया। कभी-कभी मुसलमान इतिवृत्त लेखक सम्पूर्ण गुजरात के लिए नहरवाल शब्द का प्रयोग करते थे। हो सकता है कि यह आक्रमण कच्छ के विरुद्ध किया गया हो। अपहर्ता जयन्त सिंह—जन्यत सिंह के उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि उसने भीम की राजधानी पर अधिकार कर लिया। लेख में उसको "चालुक्य-कुल-कल्पबल्ली-विस्टारण-दीप्त-अभिनव-सिद्धराज कहा है।" प्रतीत होता है कि १२२३-२६ के बीच में भीम ने उसको राजधानी से बाहर कर दिया। उसने राजधानी अणहिलपाटक पर १२०५ और १२१० ई० के बीच अधिकार किया।

लवणप्रसाद और वीरधवल : बाघेल वंश—भीम के शासन काल में लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल ने गुजरात के इतिहास में महत्वपूर्ण भाग अभिनीत किया। हो सकता है कि उन्होंने अपहर्ता जयन्त सिंह को अणहिलपाटक से बाहर निकालने में भीम की सहायता की हो। बाघेलों के उदय का कारण अनेक लेखक भिन्न-भिन्न कारण देते हैं। सोमेश्वर के अनुसार गुर्जरराजलक्ष्मी ने लवणप्रसाद को स्वप्न दिया कि भीम के अकुशल हाथ से छीनकर राज को अपने पुत्र वीरधवल की सहायता से राज्य करे। सोमेश्वर ने यह भी लिखा है कि उसने लवण प्रसाद को दीवी के आदेश का पालन करने के लिए प्रेरित किया और बिना भीम से पूछे वस्तुपाल और तेज पाल को अपना मंत्री नियुक्त किया। अरिसिंह ने लिखा है कि भीम को स्पप्न हुआ कि वह लवणप्रसाद को सर्वेश्वर, उसके पुत्र वीरधवल को युवराज बनाये और जैन धर्म का प्रसार करे। दूसरे दिन भीम ने राजसभा में घोषणा की कि अर्णोराज की सहायता के उपलक्ष में वह उसके पुत्र लवणप्रसाद को सर्वेश्वर और उसके पौत्र

वीरधवल को युवराज बनाएगा। भीम ने वस्तुपाल और तेजहपाल भ्राताओं को वीरधवल का सलाहकार नियुक्त किया।

सोमेश्वर के कथन से प्रतीत होता है कि लवण प्रसाद ने विश्वासघात किया और भीम से उसका सिंहासन छीन लिया क्योंकि संस्कृत कवि अपने संरक्षकों के कलुषपूर्ण आर्यों को थकने के लिए इस प्रकार के स्वप्नों को गढ़ते थे। सोमेश्वर का यह कथन कि उसने लवणप्रसाद को राजसत्ता ग्रहण करने की सलाह दिया, अत्यन्त घृणित है। विशेष रूप से इस कारण की सोमेश्वर और उसके पूर्वज चालुक्य राजाओं के वंशानुगत राजपुरोहित थे। इसके अतिरिक्त यह और भी अधिक भर्त्सना युक्त है कि उसने राजा के रूप में भीम की निन्दा की है और उसको अयोग्य ठहराया है। किसी अन्य लेखक ने भीम के प्रति वैसे शब्दों का व्यवहार नहीं किया है अन्य समकालीन ग्रन्थों में लिखा है कि भीम ने स्वेच्छा से अपना अधिकार लवणप्रसाद और उसके पुत्र को सौंपा। हो सकता है कि सोमेश्वर और वीरधवल के द्वारा प्रेरित किए जाने पर लवण प्रसाद ने भीम को खुली राजसभा में सत्ता हस्तांतरण घोषित करने के लिए विवश किया हो। अरिसिंह ने लिखा है कि भीम ने वीरधवल को युवराज नियुक्त किया। सम्भवतः इसका अर्थ यह है कि लवण प्रसाद ने भीम को अपने जीवन काल तक राजसत्ता भोगने दिया। सम्भवतः भीम के शासन काल में ही वीरधवल की मृत्यु हुई। इस प्रबन्ध का कम से कम यह परिणाम निकला कि गुजरात सिंहासन पर बाघेलों का वैध दावा हो गया।

आबू पर्वत उत्कीर्ण लेख तथा गिरनार के छः उत्कीर्ण लेखों से पुष्टि होती है कि लवण प्रसाद नाम का ही नहीं बल्कि वस्तुतः भी राजा था। गिरनार उत्कीर्ण लेखों की सामग्री से स्पष्ट है कि वे पाँच विभिन्न लोगों द्वारा लिपिबद्ध किए गए थे। किन्तु लवण प्रसाद और उसके पुत्र वीरधवल के उपाधियों से सम्बन्धित खण्ड सामान्य हैं। सम्भवतः जैन साधुओं ने सोमेश्वर का अनुकरण किया।

लवणप्रसाद की शक्ति की वृद्धि का कारण उस समय के गुजरात की राजनीतिक दशा थी। मूलराज द्वितीय की मृत्यु के बाद शीघ्र ही प्रान्तीय राजपालों ने विद्रोह किया क्योंकि सिंहासन पर एक के बाद एक छोटे आयु के राजा ने सिंहासन ग्रहण किया। परमार और यादव भीम पर बारम्बार आक्रमण किया करते थे। चाहमान पृथ्वीराज भी उसके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। मुसलमान आक्रमण हुआ और मुसलमान सेना ने भीम की राजधानी पर अधिकार किया और उसको भागकर अपने राज्य के एक दूर के कोने में शरण लेनी पड़ी। राजधानी से मुसलमानों के निकाले जाने के बाद एक अपहर्ता ने राजधानी पर अधिकार कर लिया। धारावर्ष और अन्य मण्डलिकों ने सम्राट की गिरती हुई दशा को देखकर स्वतन्त्र हो गए। लाट भी

चालुक्य भीम के हाथ से निकल गया। इस विपत्तियों में मात्र बाघेलों ने भीम का साथ दिया। अर्णोराज ने प्रान्तीय राजपालों के विरुद्ध लड़ते हुए अपने प्राण गँवाए। लवणप्रसाद ने यादव और परमार आक्रमणों से गुजरात की रक्षा की और जब मुसलमानों ने गुजरात पर आक्रमण कर लिया तब उन्हें बाहर खदेड़ा। उसने मण्डलिकों के विद्रोह का दमन किया और सम्भवतः अपहर्ता जयत्तसिंह को सिंहासनच्युत किया। उसके पुत्र वीरधवल ने केम्बे पर पुनः अधिकार किया और सफलतापूर्वक यादवों और परमारों के आक्रमणों को निष्फल किया। यही कारण है कि भीम ने लवण प्रसाद और वीरधवल को असीमित सत्ता प्रदान की तथा वीरधवल को अपना युवराज घोषित किया। उसका चुनाव अच्छा था, और बाघेलों ने निष्ठापूर्वक उसकी सेवाएँ कीं और राज्य को सुदृढ़ किया। गुजरात में शान्ति और व्यवस्था स्थापित की और आक्रामकों से गुजरात की रक्षा की। इतिवृत्त लेखकों ने भीम की उदारता का उल्लेख किया है।

त्रिभुवनपाल—त्रिभुवनपाल के तिथ्यंकित १२४२ ई० के उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि त्रिभुवनपाल भीम के बाद सिंहासन पर बैठा और अणहिलपाटक में राज्य किया। दूताङ्गद नामक नाटक से सूचना मिलती है कि त्रिभुवनपाल के राज्य में कम से कम सोमनाथ सम्मिलित था। त्रिनुवनपाल का शासन काल अत्यन्त अल्प था। उसके शासन काल के अन्त के साथ बाघेलों के शासन का आरम्भ हुआ। हो सकता है कि त्रिभुवनपाल की मृत्यु से भीम के वंश का अन्त हुआ और किसी वैध उत्तराधिकारी के अभाव में बाघेलों ने शक्ति ग्रहण की हो।

●

अध्याय | ४

बाघेल वंश

बाघेल नाम—बाघेल मूलराज प्रथम के चालुक्य वंश से भिन्न एक अन्य चालुक्य वंश की शाखा थे। उनका नाम व्याघ्रपल्ली, (व्याघ्र की मांद) के नाम पर पड़ा जो अणहिलपाटक के दस मील दक्षिण-पश्चिम में एक ग्राम है, यह वंश व्याघ्र-पल्लीय या बाघेल कहलाता था। इस वंश का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण व्यक्ति अर्णोराज हुआ जो एक सामन्त था। उसने अपनी राजनिष्ठा और शौर्य के बल पर पदोन्नति की। उसने प्रान्तीय राजपालों के विद्रोह का दमन करने में अपने प्राण अर्पण किए। उसके पुत्र लावण्य प्रसाद या लवणप्रसाद भीम का महामण्लेश्वर और राणक था। लवण प्रसाद के पुत्र वीरधवल ने गुजरात के विरुद्ध किए गए अनेक आक्रामकों को पीछे खदेड़ा उसके बाद उसका पुत्र बीसलदेव महामण्डलेश्वर राणक नियुक्त किया गया।

बीसलदेव—बीसलदेव वीरधवल का कनिष्ठ पुत्र था। केम्बे में वह १२३८ ई० में महामण्डलेश्वर राणक था और कुछ मात्रा में स्वतन्त्र कार्य करता था। प्रतीत होता है कि भीम की मृत्यु के बाद उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित की और त्रिभुवन पाल को हराकर वह गद्दी पर बैठा। हो सकता है कि त्रिभुवनपाल की दैवीमृत्यु के बाद वह गुजरात के सिंहासन पर बैठा हो। इतना निश्चय है कि वह १२४५ ई० में गुजरात के सिंहासन पर आरूढ़ था।

मालवा पर आक्रमण—बीसलदेव ने मालवा पर आक्रमण कर धारानगरी को ध्वंस किया और उसमें आग लगा दी। उसके लगाए हुए आग से उमड़ते हुए धुएँ से आकाश में भयानक अँधेरा छा गया। प्रतीत होता है कि यह आक्रमण देवपाल के शासन में इल्तुतमिश द्वारा लूट के बाद किया गया था। जिस समय देवपाल का उत्तराधिकारी जयतुगिदेव मालवा पर शासन कर रहा था। अतः बीसलदेव को कोई कठोर अवरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

मेवाड़ पर आक्रमण—बीसलदेव ने मेवाड़ के राजा को हराया और एक हसिया की तरह मेदपाट प्रदेश के दुर्दमनीय शासन रूपी लता को मूल सहित काट दिया।

बीसलदेव और यादव वंश—प्रतीत होता है कि भीम के शासनकाल में बीसलदेव ने यादव सेना को परास्त किया जिसने राम के नेतृत्व में गुजरात पर आक्रमण किया। कादी दान पत्र में लिखा है कि उसने बड़वानल की तरह सिंहन की सेना-रूपी समुद्र को सोख लिया। सम्भवतः यादवों पर विजय प्राप्त करने के बाद बीसलदेव ने लाट पर विजय प्राप्त करने में भी भाग लिया, किन्तु इन विजयों के पश्चात सिंहन के उत्तराधिकारियों, कृष्ण और तत्पश्चात् उसके भाई महादेव ने बीसलदेव को युद्ध में पछाड़ा।

होयसल वंश से मैत्री—यादवों के त्रास से अपनी रक्षा करने के लिए बीसल ने होयसलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसने सिलाहार राजा से भी मैत्री की जो कोकण पर राज्य कर रहे थे और जो यादवों से भयभीत थे।

नागर ब्राह्मण और बीसलदेव—जिन-हर्ष गणि ने लिखा है कि बीसलदेव नागर ब्राह्मणों के पक्ष में था। उसने एक नागर ब्राह्मण को अपना मुख्य मन्त्री नियुक्त किया तथा दर्भवतीपुर (दभोई) में एक धार्मिक अनुष्ठान कर नागर ब्राह्मणों की विभिन्न शाखाओं का निर्माण किया—बीसलनागर, सत्पद्र (सथोद्र), कृष्णपुर (कृशोर), चित्रपुर (चितोद्र) और प्रस्निक (प्रस्नोर)—और ब्राह्मणों के निवास के लिए ब्रह्मपुरियों का निर्माण किया। बीसलदेव ब्राह्मण धर्म का श्रद्धालु भक्त था।

वह साहित्य तथा कला का संरक्षक था उसकी राजसभा में अनेकानेक नागर कवियों के अतिरिक्त सुकृत संकीर्तन का ग्रन्थकार अरि सिंह और उसका शिष्य अमरचन्द्र, कामसूत्र की जयमंगली का टीका रचयिता यशोधर और कीर्तिकौमुदी का ग्रन्थकार सोमेश्वर भी थे। प्रशस्तिकार कवि नामक ने लिखा है कि राज-अनुग्रह प्राप्त करने के लिए विद्वानों को उसकी राजसभा में वेदों की परीक्षा देनी पड़ती थी। अन्य हिन्दू राजाओं की तरह वह धर्म सहिष्णु था। उसकी सभा का कवि अरिसिंह जैन था और उसका राजगुरु सोमेश्वर जैन वस्तुपाल और तेजपाल की प्रशंसा में प्रशस्तियों की रचना करता था। उसके शासन काल में जैन और ब्राह्मण धर्म साथ-साथ मैत्री पूर्व विकास करते रहें। वस्तुपाल और तेजहपाल जैनी थे किन्तु उन्होंने ब्राह्मण मन्दिरों का निर्माण किया।

उसके शासनकाल में एक अकाल पड़ा जो तीन वर्ष तक बना रहा और जिसमें व्यापारी जगडु ने अनाज वितरण किया।

अर्जुनदेव—अर्जुनदेव बीसलदेव के ज्येष्ठभ्राता प्रतापमल का पुत्र तथा बीसलदेव का उत्तराधिकारी था। मुरलीधर मंदिर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि अपनी मृत्यु के पूर्व बीसलदेव ने अर्जुनदेव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। प्रतीत होता है कि सिंहन के पौत्र रामचन्द्र ने अर्जुन को पराजित किया।

अर्जुनदेव का मंत्री मालदेव था। अर्जुनदेव के राज्य का विस्तार अणहिल-पाटक से कच्छ तक का सम्पूर्ण प्रदेश था और उसमें काठियावाड़ भी सम्मिलित था। उत्तर में उसके राज्य का विस्तार ईदर तक था। उसने मुसलमानों को वीरवल में एक मस्जिद बनाने की अनुज्ञा प्रदान की जो सोमनाथ के समीप था। प्रत्यक्ष है कि उसके राज्य में बहुसंख्यक मुसलमान विशेष कर नाविक रहते थे। उसके बाद राम सिंहासन पर बैठा। जिसने अपनी मृत्यु के समय अपने कनिष्ठ भ्राता शारङ्गदेव को अपना उत्तराधिकारी बनाया क्योंकि उसका पुत्र उस समय बहुत छोटा था।

शारङ्गदेव—प्रतीत होता है कि जिस समय शारङ्गदेव गुजरात के सिंहासन पर बैठा उस समय गुजरात संकट से घिरा हुआ था और उसने वराह की तरह गुर्जर प्रदेश का उद्धार किया।

मालव प्रदेश के लिए वह धूमकेतु था। उस समय मालवा के परमार वंश की शक्ति अत्यन्त क्षीण थी क्योंकि वहाँ के राजा के मंत्री कोका या गोगा ने मालवा राज्य के एक भाग पर अपना अधिकार जमा लिया था तथा उसी समय अलाउद्दीन की सेना ने मालवा पर आक्रमण किया था। मुसलमान शासक अपने राज्य का उत्तरोत्तर विस्तार करते हुए दक्षिण की ओर बढ़ते चले आ रहे थे, किन्तु हिन्दू राजे इस भयंकर शत्रु रूपी संकट से आँख मूँदकर छोटे-छोटे युद्धों और लूटमारों में व्यस्त थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी सैनिक शक्ति क्षीण हुयी, उस समय मंगोलों ने दिल्ली पर आक्रमण किया और आबू पर भी चढ़ाई की। उस समय अधिकांश मंगोल बौद्ध धर्मावलंबी थे। किन्तु उस समय हिन्दू सभी विदेशियों को तुरुष्क समझते थे और उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध मैत्री करने का प्रयास न किया। समरसिंह ने आबू के समीप मंगोलों के आक्रमण को रोका, और उस प्रदेश पर अधिकार किया। किन्तु शारङ्गदेव ने बीसलदेव की सहायता से उस प्रदेश को समरसिंह से छीन कर प्रतापसिंह को प्रदान किया। सम्भवतः इस कारण समरसिंह ने मुसलमानों का साथ दिया जब उलुगखाँ के नेतृत्व में मुसलमान सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया। समरसिंह का शत्रु दल से मिल जाना शारङ्गदेव के उत्तराधिकारियों के लिए अत्यन्त कुप्रभावकारी हुआ।

गुजरात पर अलाउद्दीन का आक्रमण—शारङ्गदेव के बाद १२९६ ई० में राम का पुत्र कर्ण उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके सिंहासन पर बैठने के तीन वर्ष के अन्दर ही मुसलमान सेना की बाढ़ ने गुजरात को आप्लावित किया। उसके बाद एक दूसरा मुसलमान आक्रमण हुआ जिससे गुजरात से हिन्दू राज्य को सदा के लिए विलीन हो गया। अलाउद्दीन के पूर्व के मुसलमान शासक जनता को आतंकित करने के लिए और उनका नैतिक पतन करने के लिए, उनका सामूहिक संहार, लूटपाट, अग्नि द्वारा नगर ध्वंस तथा मंदिरों की तोड़-फोड़ करते थे। किन्तु अलाउद्दीन ने

मुसलमान शासन का विस्तार करने की नीति अपनाई। उसने देखा कि गुजरात के बन्दरगाहों में बहुसंख्यक मुसलमान जनता व्यापार करने के लिए निवास करती है और उधर की ही ओर से अनेकानेक व्यापारिक वस्तुएँ पाश्चात्य देशों को भेजी जाती हैं।

अतः अलाउद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण करने के लिए निश्चय किया। इस बार समरसिंह ने आबू के समीप मुसलमान सेना को रोकने का प्रयास नहीं किया या उनकी गहरी क्षति न कर सका। यदि ऐसा न होता तो मुसलमान सेना विपक्षी प्रदेशों से होकर गुजरात में आकर कर्ण को पराजित न करती और न गुजरात को लूटती ही।

मुसलमान लेखक इसामी के कथनानुसार कर्ण प्रत्यक्षतः इस आक्रमण के लिए तैयार न था। अतः उसने एक किले में शरण ली। बाद को आशा पल्ली के समीप एक युद्ध हुआ जिसमें कर्ण पराजित किया गया। मुसलमान सेना ने केम्बे, सोमनाथ और सूरत को लूटा। सोमनाथ मंदिर की रक्षा करते हुए दो वाज योद्धा, मालसूत और पदमल ने अपने प्राण अर्पण किए। जिनके नाम का एक उत्कीर्ण लेख प्राप्त है। सम्भवतः इसी प्रकार का अवरोध हर स्थान पर किया गया किन्तु सफलता न मिली। प्रतीत होता है कि कर्ण इस आक्रमण के प्रति पूर्णतया असावधान था, नहीं तो उसको आबू के उस ऐतिहासिक दर्रे पर मुसलमान सेना का अवरोध करना था जहाँ इसके पूर्व दो अवसरों पर मुस्लिम सेना बुरी तरह पराजित की गई थी।

इसामी ने लिखा है कि गुजरात पर पूर्ण अधिकार करने के लिए एक दूसरा अभियान किया गया और गुजरात मुसलमान साम्राज्य में मिला लिया गया।

चारण परम्परा के अनुसार कर्ण के दो नागर मंत्री थे—माधव और केशव। कर्ण ने माधव की पत्नी का अपहरण किया, और केशव की हत्या की, इस कारण माधव अलाउद्दीन के पास पहुँचा और मुसलमान सेना लेकर आया। कहा नहीं जा सका कि इस कथा में सत्यांश कितना है किन्तु मेरुतुंग ने भी इस नीचतम विश्वासघात का अभिलेखन किया है। वह मुसलमान आक्रमण के समय गुजरात में उपस्थित था और अपने आँखों अणहिलपाटक की लूट और ध्वंस को देखा था। उसने अपनी पुस्तक 'विचारश्रेणी' में लिखा है कि नागर ब्राह्मण माधव मुसलमानों को लाया। गुटको नामक गुजरात राजाओं के वंशावली में भी माधव की इस कारण भर्त्सना की गई है जो १५३३ ई० में लिखी गई थी। अतः प्रतीत होता है कि उपर्युक्त कथन तथ्यपूर्ण हैं। सम्भवतः कर्ण के साथ विश्वासघात किया गया और उसको इतनी शीघ्रता-पूर्वक अपनी राजधानी से भागना पड़ा कि वह अपने राजप्रासाद की महिलाओं को भी हटा न सका और सब की सब आक्रामकों के हाथ पड़ गईं। इस विश्वासघात का दारुण दुख कर्ण को भोगना पड़ा और पराजयरूपी अपमान की अन्तिम घूँट पीने के बाद इतिहास में फिर उसका नाम न आया। इस तरह—चालुक्य वंश का अन्त हुआ।

●

खण्ड ८

पाल वंश और सेन वंश

अध्याय | १

वंग राज्य की स्थापना

१. साम्राजिक गुप्तों के अधीन बंगाल—चौथी शती ईस्वी के आरंभ में बंगाल में जो विभिन्न स्वतंत्र राज्य थे वे सब समुद्रगुप्त के समय तक गुप्त साम्राज्य में विलीन हो गए। केवल समतट राज्य बचा था जिसके शासक 'सम्राट् समुद्रगुप्त को विभिन्न प्रकार के उपहार देकर, उसकी आज्ञाओं का पालन कर, और उसके पास जाकर, उसके प्रति श्रद्धा अर्पण कर उसको संतुष्ट करते थे,' अर्थात्, समतट सामन्त राज्य था और गुप्त सम्राट् की अधीश्वरता स्वीकार करता था किंतु अपने आन्तरिक प्रशासन के संबंध में वह पूर्ण स्वतंत्र था। दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप मेहरौली नामक स्थान पर एक लौह-स्तंभ है जिस पर एक उत्कीर्ण लेख खुदा हुआ है। उसमें चंद्र नामक राजा के अन्य सामरिक पराक्रमों के अतिरिक्त यह लिखा है कि उसने 'वंग प्रदेशों में अपने शत्रुओं को युद्ध में हरा कर पूर्णतया नष्ट किया जिन्होंने संयुक्त होकर उसका विरोध किया था'।

यह चंद्र कौन था—चंद्रगुप्त प्रथम या चंद्रगुप्त द्वितीय या कोई अन्य चंद्र—इसके लिए कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। बंगाल को जिसने भी विजय किया हो किंतु उत्कीर्ण लेख संबंधी अभिलेखों से यह असंदिग्ध है कि कुमारगुप्त प्रथम के समय में पुण्ड्रवर्धन-भुक्ति (उत्तरी बंगाल) गुप्त साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक खण्ड था। इसका प्रभार एक उपरिक के हाथ में था जिसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट् करता था। प्रान्त विभिन्न जनपदों में बँटा था जिनके पदाधिकारियों की नियुक्ति उपरिक करता था। ५०७-८ ई० में महाराज वैन्यगुप्त समतट प्रदेश का शासक था और उसने द्वादशादित्य की उपाधि धारण की, स्वर्ण मुद्राएँ चलाईं और तिपेरा जनपद में भूमिदान किया। स्पष्ट है कि वह साम्राजिक गुप्तवंश का था और समतट प्रदेश गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित किया जा चुका था। बाद को साम्राजिक गुप्तवंश के ह्रास का, और सम्भवतः आंतरिक अनैक्य और विरोध का भी लाभ उठा कर वह खुलेरूप से सम्राट् बन बैठा।

२. बंगाल के स्वतंत्र राज्य—छठवीं शती ईस्वी के आरंभ में गुप्त साम्राज्य के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) के उपरिक ने

महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण की जैसा कि नालंदा में मिले हुए एक मुहर से स्पष्ट है। पूर्वी बंगाल में वैन्यगुप्त वस्तुतः स्वतंत्र राजा के रूप में राज्य कर रहा था। अर्द्धशती के अन्दर यशोधर्मन् की व्यापक विजयों ने महाशक्तिशाली गुप्त साम्राज्य पर प्राणघातक आघात किए। मन्दसोर उत्कीर्ण लेख में इस महान् सामरिक साहसिक योद्धा ने गर्व किया है कि उसने ब्रह्मपुत्र नदी तक के प्रदेश को जीत लिया है। किन्तु यशोधर्मन् का साम्राज्य अल्पकालीन था और छठवीं शती ईस्वी के मध्य के बाद इसका कोई नाम या चिह्न दिखाई नहीं पड़ा। हूणों के आक्रमणों द्वारा निर्बल हुआ गुप्त साम्राज्य यशोधर्मन् के आक्रमणों के सामने धराशायी हुआ। गुप्त साम्राज्य के पतन और यशोधर्मन् द्वारा स्थायी आधार पर साम्राज्य का पुनः निर्माण न कर सकने के कारण उत्तरी भारत में राजनीतिक विघटन हुआ, और अनेकानेक स्वतंत्र सत्ताओं ने जन्म लिया। इनमें से अधिक प्रमुख ये थे : (१) स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) का पुण्यभूति वंश; (२) कोसल (अवध) का मौखरि वंश; (३) मगध और मालवा के उत्तरकालीन गुप्तवंश। बंगाल ने भी इस राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाया, विदेशी जुआँ को उत्तार फेंका और छठवीं शती ईस्वी में दो स्वतंत्र राज्यों, (१) वंग और (२) गौड़ की स्थापना हुई।

३. समतट या वंग का राज्य—गुप्त साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर बंगाल में जो सर्वप्रथम स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ उसमें पूर्वी और दक्षिणी बंगाल और पश्चिमी बंगाल का दक्षिणी भाग सम्मिलित था। फरीदपुर जनपद में पाँच उत्कीर्ण लेख मिले हैं जिनमें गोपचन्द्र, धर्मादित्य और समाचार देव नामक तीन शासकों के नाम आए हैं। इन तीनों राजाओं की उपाधि 'महाराजाधिराज' से प्रमाणित होता है कि वे स्वतंत्र और शक्तिशाली राजा थे। इन राजाओं के कुछ ही समय पूर्व और संभवतः उसी प्रदेश पर वैन्य गुप्त नामक राजा राज्य करता था जिसकी उपाधि महाराज थी। महाराजाधिराज की उपाधि परिवर्तित स्थिति का, और गुप्तवंश की साम्राजिक सत्ता के अंतिम चिह्न का संकेत करती है। यह तथ्य कि समाचारदेव ने स्वर्णमुद्राएँ प्रचलित कीं इससे भी इसकी पुष्टि होती है।

गोपचन्द्र जो सम्भवतः इस स्वतंत्र राज्य का संस्थापक था अवश्य ही छठवीं शती ईस्वी के द्वितीय चरण के पूर्व रहा होगा अर्थात् वैन्यगुप्त की एक पीढ़ी के अन्दर। क्योंकि जैसाकि हमने ऊपर मान लिया है महाराज विजयसेन दोनों का ही सामन्त था। गोपचन्द्र, धर्मादित्य, और समाचारदेव की उत्तरतम सात तिथियाँ ५२५ और ५७५ ई० के बीच के लगभग होंगी। इन राजाओं के छः दानपत्रों से प्रतीत होता है कि बंगाल में एक स्वतंत्र और स्थायी राज्य था जिससे जनता को शांति मिली और उसकी समृद्धि हुई।

वंग के इस स्वतंत्र राज्य का कब और कैसे पतन हुआ यह ज्ञात नहीं है। महाकूट उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि चालुक्य राजा कीर्तिवर्मन् ने अन्य प्रदेशों के अतिरिक्त अंग, वंग, कलिंग और मगध को विजय किया कीर्तिवर्मन् के शासनकाल की समाप्ति ५९७-९८ ई० में हुई। अतः बंगाल में उसकी विजय छठवीं शतीं ईस्वी के अंतिम चरण में रखी जा सकती है। कीर्तिवर्मन् को कितनी सफलता मिली यह ज्ञात नहीं है। किन्तु हो सकता है कि वंग के राज्य के विखण्डन पर इसका प्रभाव पड़ा हो। संभवतः शशांक के अधीन गौड़ राज्य के उत्कर्ष ने वंग के स्वतंत्र राज्य पर मार्मिक आघात पहुँचाया हो।

गौड़ का उत्कर्ष—इस समय के लगभग से पश्चिमी बंगाल का उत्तरी भाग और उत्तरी बंगाल का संपूर्ण भाग गौड़ राज्य के नाम से विख्यात हुआ। दक्षिणी और पूर्वी बंगाल वंग राज्य कहा जाता था। पुण्ड्र या वरेन्द्री (उत्तरी बंगाल), राढ या सुह्म (पश्चिमी बंगाल), और समतट या हरिकेल (पूर्वी बंगाल) नामों का भी प्रयोग किया जाता था। साम्राजिक गुप्तों का आधिपत्य वंग या समतट की अपेक्षा गौड़ पर अधिक प्रबल था। दामोदरपुर के एक ताम्रपट्ट से प्रमाणित होता है कि कम से कम ५४४ ई० तक उत्तरी बंगाल पर गुप्त अधीश्वरता थी। उत्तरकालीन गुप्त राजा महासेनगुप्त ने कामरूप के राजा सुस्थितवर्मन् को लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी के तट पर पराजित किया। उसका काल छठवीं शती ईस्वी के अन्त में है। इससे प्रतीत होता है कि उत्तरी बंगाल पर उत्तरकालीन गुप्तों की राज्य छठवीं शती ईस्वी भर बना रहा। उसका काल सातवीं शती ईस्वी का आरंभ है।

गौड़ों का प्रथम ऐतिहासिक राजा जयनाग था। प्रतीत होता है कि उसी समय के लगभग जयनाग ने स्वतंत्रता प्राप्त की जिस समय महासेनगुप्त के विरुद्ध मौखरियों ने, और चालुक्यों ने आक्रमण किए। प्रतीत होता है कि इसी समय के लगभग मौखरियों ने बिहार के राज्य पर और गौड़ों ने बंगाल के राज्य पर अधिकार किया। गौड़ों ने पश्चिमी और मध्य बंगाल में अपना राज्य स्थापित किया। प्रतीत होता है उनका नेता जयनाग और उनकी राजधानी कर्ण सुवर्ण थी। इसके बाद मौखरियों और गौड़ों में संघर्ष हुआ और अन्ततः गौड़ मगध पर अपना शासन स्थापित करने में सफल हुए। उन्होंने मौखरियों को उत्तर प्रदेश की ओर ढकेल दिया। गौड़ों की सफलता का एक कारण यह भी था कि उस समय मौखरि वंश में झगड़े चल रहे थे। ईशानवर्मन् के पौत्र और सूर्य वर्मन् के पुत्र मौखरि भाष्करवर्मन् ने अपने भाँजे महाशिवगुप्त बालार्जुन के यहाँ शरण ली, और नालंदा मुहर में उल्लिखित मौखरि सुव....या सुच....अपने ज्येष्ठ भ्राता ग्रहवर्मन् के आधिपत्य का उल्लंघन कर मगध में स्वतंत्र हो गया। जयनाग ने मगध पर अपनी विजय की स्मृति में साम्राजिक गुप्तों

के ढांचे की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित कीं। जयनाग ने शशाङ्क को मगध का राज्यपाल या महासामन्त नियुक्त किया। जयनाग ने सोन नदी पर स्थित रोहतासगढ़ को अपनी राजधानी बनाया क्योंकि मौखरि राज्य के पूर्वी सीमा पर होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व था। इसी स्थान पर शशाङ्कदेव के मुहर का ढाँचा मिला है। शशाङ्क गौड़ था और उसका उदय गौड़ राजा जयनाग के अधीन हुआ।

शशाङ्क का राज्यारोहण तथा विजय—जयनाग के बाद शशाङ्क गौड़ साम्राज्य का सम्राट् हुआ। हो सकता है कि वह अपहर्ता हो, क्योंकि उसकी मुद्राओं पर जयनाग का नाम उत्कीर्ण है। प्रतीत होता है कि वह कर्णसुवर्ण के सिंहासन पर लगभग ६०२ ई० में बैठा। वह ६१९ ई० में राज्य कर रहा था और उसकी मृत्यु ६३७ ई० में हुई। उसका साम्राज्य विशाल था। वह मगध का और प्रायः संपूर्ण बंगाल का स्वामी था।

माधवराज द्वितीय के गंजामपट्ट (६१९-२० ई०) सूचित करते हैं कि वह कोंगुध (गंजाम) मण्डल का महाराजाधिराज था। शशाङ्क दण्डयुक्ति और उत्कल (उत्तरी उड़ीसा) का स्वामी था, और मिदिनापुर और बलसोर जनपदों से होकर उसने गंजाम पर चढ़ाई की थी। उड़ीसा की उसकी विजय प्रमाणित करती है कि उसकी अधीश्वरता दक्षिण-पश्चिम बंगाल पर थी जिसके अन्तर्गत ताम्रलिप्ति (तमलुक) था। बाण ने लिखा है कि वह गौड़ का राजा था और ह्वेनसांग सूचित करता है कि उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण थी। इस तरह वह मध्य और पश्चिम बंगाल का राजा था। उत्तर बंगाल या पुण्ड्रवर्धन पर भी शशाङ्क का राज्य था। अनुश्रुति के अनुसार वहाँ के बोगरा जनपद के एक सरोवर से उसका नाम संबंधित है। आर्य-मन्जु श्री मूल-कल्प ने शशाङ्क को पुण्ड्र से संबंधित किया है। असम में पाए गए एक उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि एक गौड़ सेना ने लौहित्य को पार कर कामरूप में प्रवेश किया। यह काम पुण्ड्रवर्धन से सुगमतापूर्वक हो सकता था।

शशाङ्क के साम्राज्य में मगध सम्मिलित था। चीनी यात्री ने मगध में शशाङ्क के बौद्ध विरोधी कार्यों की निंदा की है। रोहतासगढ़ में उसके मुहर का ढाँचा नालंदा और गया में उसकी मुद्राएँ पाई गई हैं। कहा जाता है कि पश्चिम की ओर उसके राज्य का विस्तार वाराणसी तक था।

उसने कामरूप देश पर आक्रमण किया लेकिन असफल रहा, क्योंकि महासेनगुप्त द्वारा सुस्थितवर्मन् की पराजय के बाद कामरूप सेना का पुनः संगठन किया गया था। गौड़ों के इस आक्रमण से कामरूप के शासकों के कान खड़े हो गए। अतः भाष्करवर्मन् ने हर्ष के पास मैत्री-दूत भेजा और हर्ष से मैत्री की।

शशाङ्क के राज्य में वर्तमान उत्तर प्रदेश, संपूर्ण मगध, उड़ीसा और बंगाल

का बहुत बड़ा भाग था। हर्षचरित से संकेत होता है कि शशाङ्क का उत्कर्ष मौखरियों और वर्धमानों से संघर्ष करने के पूर्व हो चुका था और उसके अधीन सामन्त मण्डल था।

शशाङ्क, मौखरि और वर्धन—उत्तर भारत के एक बड़े भाग पर शशाङ्क का राज्य था उसकी बढ़ी हुई शक्ति देख कर मौखरि राजा ग्रहवर्मन् ने थानेश्वर के शक्तिशाली पुष्यभूति वंश से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। पुण्यभूति वंश की मालवा के देवगुप्त से शत्रुता थी और शशाङ्क की बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। ऐसी स्थिति में मालवा के देवगुप्त और गौड़ों से मैत्री गठन होना स्वाभाविक था। देवगुप्त ने शशाङ्क से मैत्री की और उसको उसकी शक्ति के सहारा का आश्वासन मिला। इसी समय थानेश्वर पर संकट आया। हूणों ने विद्रोह किया, राजवर्धन हूणों से लड़ने के लिए गया और इधर प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई। उस समय केवल हर्ष-वर्धन राजधानी में था। उसकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। अतः देवगुप्त ने कन्नौज पर आक्रमण किया, ग्रहवर्मन् को मार डाला, राज्यश्री को कारागार में डाला और थानेश्वर पर आक्रमण करने को प्रस्तुत हुआ। थानेश्वर लौटने पर राजवर्धन को कन्नौज के पतन की सूचना मिली। उसने अत्यंत क्षिप्रगति से कन्नौज की ओर प्रस्थान किया, और कन्नौज से दूर किसी स्थान पर देवगुप्त को युद्ध में परास्त किया। देवगुप्त को हराने के बाद राजवर्धन ने कन्नौज की ओर प्रयाण किया किन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व शशाङ्क ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। इस युद्ध के बाद देवगुप्त का पता न चला। हो सकता है कि वह इस युद्ध में काम आया हो। देवगुप्त की इस पराजय का लाभ कलचुरि बुद्धराज ने उठाया और मालवा पर अधिकार कर लिया। उसने ६०९ ई० में विदिशा से भूमिदान किया। इस विजय के फलस्वरूप राजवर्धन कन्नौज को प्राप्त न कर सका, और न राज्यश्री को कारागार से मुक्त कर सका। अब शशाङ्क और राजवर्धन में युद्ध होना अनिवार्य था, क्योंकि शशाङ्क उसके बहनोई की राजधानी कन्नौज पर अधिकार किए हुए था, और उसकी बहन श्रृंखला में पड़ी हुई थी। बाण और ह्वेनसांग ने लिखा है कि शशाङ्क ने राजवर्धन के प्रति सम्मान दिखा कर उसको अपने शिविर में आमंत्रित किया, और वहाँ उसका वध कर दिया गया। यह घटना ६०६ ई० में हुई।

प्रतीत होता है कि शशाङ्क कन्नौज को 'गुप्त' नामक अपने किसी अधिकारी को सौंपकर लौट गया, क्योंकि उसको कामरूप के राजा के आक्रमण का भय था। उस 'गुप्त' नामक अधिकारी ने राज्यश्री को मुक्त कर दिया। शशाङ्क का भास्कर-वर्मन् की ओर से शंकित होना ठीक ही था, क्योंकि भास्करवर्मन् ने हर्ष से स्थायी

संधि के लिए एक दूत भेजा था जो हर्ष को रास्ते में मिला जब वह थानेश्वर से शत्रुदमन करने के लिए प्रयाण कर रहा था।

हर्ष ने शशाङ्क को दण्ड देने के लिए बहुत बड़ी तैयारियाँ कीं जिसका वर्णन बाण ने हर्षचरित में किया है। किन्तु बाण ने यह नहीं लिखा कि इस तैयारी का परिणाम क्या हुआ ? उसने भूमि पर एक स्वर्ण मुद्रा के गिरने की घटना का उल्लेख है। जिसको राजसभासदों ने अपशकुन माना। हो सकता है कि अप्रत्यक्षरूप से बाण ने हर्ष की असफलता का संकेत किया हो। बाण ने सिन्ध के राजा पर और हिमालय प्रदेश के राजा पर हर्ष की विजय का उल्लेख किया है, किन्तु शशाङ्क के युद्ध के संबंध में वह मौन है। ह्वेनसांग ने भी इसके संबंध में कुछ नहीं लिखा, यद्यपि उसने पुल्केशी के विरुद्ध हर्ष की असफलता, मगध में पूर्णवर्मन् का उदय, हिरण्य पर्वत, लक्षमन आदि के राजनीतिक दशा के परिवर्तन का उल्लेख किया है। शशाङ्क के गंजाम ताम्रपट्टों (६१९-२० ई०) से प्रतीत होता है कि उस तिथि तक शशाङ्क अपने पूर्ण वैभव में था और उसकी कोई गहरी पराजय न हुई होगी। ह्वेनसांग ६३७ ई० में मगध गया था। उसने मगध में शशाङ्क द्वारा किए गए कलाकृतियों के विनाश की चर्चा की है। सि-यु-कि में यह नहीं लिखा है कि हर्ष ने शशाङ्क से बदला लिया किन्तु ह्वेनसांग की जीवनी में लिखा है कि हर्ष ने अपने भाई की मृत्यु की शीघ्र ही बदला लिया। स्पष्ट है कि सि-यु-कि और जीवनी में अन्तर है। हर्ष की तैयारियों से केवल इतना हुआ कि शशाङ्क को संपूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार करने की उच्चाकांक्षा का त्याग करना पड़ा। वह कन्नौज और मौखरि राज्य से चला गया। संभव है हर्ष के प्रशंसकों ने इस अधूरी सफलता को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा हो।

शशाङ्क के अन्तिम वर्ष—एल्लन ने लिखा है कि शशाङ्क निश्चय ही बौद्ध धर्म का उत्पीड़क था। हो सकता है कि चीनी यात्री ने मगध में किए गए उसके अत्याचारों को बढ़ा कर लिखा हो। यह भी हो सकता है कि बौद्ध ग्रहवर्मन् और बौद्ध राजवर्धन की हत्या के कारण और शशाङ्क द्वारा मगध से बौद्ध धर्मावलम्बी मौखरियों के निष्कासन से मगध के बौद्ध शशाङ्क के विरुद्ध हो गए हों। हो सकता है कि शशाङ्क को मगध के बौद्धों की राजनिष्ठा के प्रति संदेह हो गया हो। ह्वेनसांग ने एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया है जिससे प्रतीत हो कि शशाङ्क ने कर्णसुवर्ण में कोई बौद्ध धर्मविरोधी कार्य किया हो। प्रतीत होता है कि उसने गौड़ में धर्म के संबंध में परम्परागत भारतीय सहिष्णुता की नीति अपनाई। प्रतीत होता है मगध में बौद्धों पर अत्याचार करने का कारण राजनीतिक था, धार्मिक नहीं। लिखा है कि शशाङ्क की मृत्यु के तुरंत बाद पूर्णवर्मन् मगध के सिंहासन पर बैठा। हो सकता है कि वह असंतुष्ट बौद्धों का नेता रहा हो।

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि शशाङ्क की किस सन् में मृत्यु हुई। ह्वेनसांग ६३७ ई० में प्रथम बार मगध गया। उसने लिखा है कि कुछ समय पूर्व बौद्ध धर्म के शत्रु और उत्पीड़क शशाङ्क ने बोधिवृक्ष को काट डाला। किन्तु कुछ ही महीने बाद पूर्णवर्मन् मगध के सिंहासन पर बैठा और पुण्य कार्यों द्वारा वृक्ष को पुनः जीवित किया। स्पष्ट है कि शशाङ्क की मृत्यु के तुरन्त बाद पूर्णवर्मन् मगध की गद्दी पर बैठा और शशाङ्क की मृत्यु ६३७ ई० के पूर्व हुई। हो सकता है कि उसकी मृत्यु लगभग ६२५ ई० में हुई हो।

आर्यमंजुश्री मूल कल्प में लिखा है कि शशाङ्क की मृत्यु के बाद गौड़-तन्त्र ने पारस्परिक अविश्वास, उठे हुए शस्त्र और आपसी ईर्ष्या का रूप धारण किया; एक राजा एक सप्ताह के लिए; दूसरा एक महीने के लिए; उसके बाद प्रजातन्त्रात्मक संविधान। प्रतीत होता है कि शशाङ्क की मृत्यु के बाद गौड़ की यह स्थिति हुई और शशाङ्क की मृत्यु कुछ एक महीने बाद पूर्णवर्मन् मगध का स्वतंत्र राजा हुआ। गंजाम के शैलोद्भव वंश ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की। बंगाल हर्ष के नियंत्रण में आ गया और अन्ततः उड़ीसा भी।

मूल्यांकन—उसके चरित्र और सफलताओं का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकता क्योंकि उसके संबंध में प्रर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। वह एक महान् राजा था और उसका व्यक्तित्व असाधारण था। बंगाल का वह प्रथम ऐतिहासिक शासक था जिसने साम्राज्य विस्तार के अपने स्वप्नों को साकार किया। साम्राजिक ढाँचे की जो नींव उसने रखी थी उसी पर बाद को पालों ने अपना साम्राज्य बनाया। मौखरि शासकों ने उसके देश को नीचा दिखाया था। उसका उसने सफलतापूर्वक बदला लिया। गौड़ और कन्नौज के बीच में ५०० वर्ष से चलते हुए संघर्ष को उसने एक नया रूप दिया और कन्नौज सम्राट् हर्षवर्धन गौड़ पर बिना अधिकार किए लौट आया। यदि बाण और ह्वेनसाङ्ग की तरह उसका कोई जीवनी लेखक होता तो वह भी संभवतः प्रायः उतना ही प्रतापी प्रतीत होता। किंतु बाण और ह्वेनसाङ्ग की प्रत्यक्ष शत्रु-भावना ने उसके नाम पर कालिमा लगाई और उसकी कीर्ति को कलंकित किया।

शशाङ्क और राजवर्धन की मृत्यु—बाणभट्ट ने हर्षवर्धन की युद्ध तैयारियों का वर्णन करने के पश्चात् अकस्मात् अपना वर्णन समाप्त कर दिया। अतः हम वास्तविक युद्ध के संबंध में पूर्णतया अंधकार में हैं। बाणभट्ट ने यह भी नहीं लिखा कि राज्यश्री भाग कर विंध्यपर्वत क्यों गई जबकि उसके भाई राजवर्धन का राज्य समीप ही था और वहाँ पहुँचना अधिक सरल था। राज्यश्री के भृत्य समवादक के मुख से जो बात उसने कहलाई है उससे प्रतीत होता है कि जिस दिन प्रभाकर

वर्धन के मर जाने की सूचना फैली उसी दिन मालवपति द्वारा ग्रहवर्मन् मार डाला गया और उसकी राज्ञी राज्यश्री कन्नौज में कारागार में डाली गई। उसके बाद उसने भण्ड के कथन को लिखा है जो उसने जनता के बीच सुना था। उसमें कहा गया है कि सम्राट् राजवर्धन् के स्वर्ग जाने के बाद गुप्त नामक एक व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अधिकार किया। राज्ञी राज्यश्री कारागार से निकल पड़ी और 'अपने अनुचरों के साथ विंध्य जंगल में चली गई। बाद को राज्यश्री के अनुचरों ने हर्ष को बतलाया कि 'गौड़ उपद्रव' के समय वह बन्दी की गई और बाद को गुप्त नामक एक विशिष्ट पुरुष द्वारा राज्यश्री ने बंधन से छुटकारा पाया, और राजवर्धन की मृत्यु का समाचार सुन कर उसने भोजन ग्रहण करना अस्वीकार किया। दुरावस्था में वह विंध्य जंगलों में घूमती रही और अन्त में हताश होकर उसने चिता पर मरने का दृढ़ निश्चय किया। बाणभट्ट के एक ही कहानी के तीन कथनों में साम्य नहीं है। समवादक के अनुसार मालव नरेश देवगुप्त ने कन्नौज पर अधिकार किया। संभवतः गुप्त शब्द से भंडि का तात्पर्य देवगुप्त से है। किन्तु अनुचरों ने राज्यश्री के बंधन का कारण गौड़ उपद्रव बतलाया। किन्तु भंडि के अनुसार 'राज्यश्री बंधन से निकल पड़ी', संभवतः उस गुप्त की आँख बचाकर या उसके विरोध में जिसने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। अनुचरों के अनुसार उसकी मुक्ति गुप्त नामक एक विशिष्ट व्यक्ति के कृपालु कार्य से हुई। बाणभट्ट के कथन से यह ज्ञात नहीं होता कि ये दोनों गुप्त एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न-भिन्न।

प्रतीत होता है कि ग्रहवर्मन् को पराजित करने और मार डालने के बाद मालवपति देवगुप्त ने मालव की ओर प्रयाण किया। इसी बीच शशाङ्क अपने मित्र राजा देवगुप्त के सहायतार्थ कन्नौज पहुँचा। स्पष्ट है कि जिस समय शशाङ्क कन्नौज पर अधिकार किए हुए था राज्यवर्धन से उसकी मुठभेड़ हुई। इसके बाद बाणभट्ट ने दोनों विपक्षियों के संबंध में केवल इतना ही लिखा है कि गौड़ाधिपति की दिखावटी आवभगत का विश्वास करके, वह अकेला, शस्त्रहीन दशा में अपने ही भवन में मारा गया (गौड़ाधिपतेन मिथ्योपचारोपचित विश्वास मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवने एव व्यापादितम्)। इसके संबंध में ह्वेनसाङ्ग भी अनिश्चित और अस्पष्ट है उसने लिखा है कि शशाङ्क राज्यवर्धन के संबंध में अपने मंत्रियों से बहुधा कहा करता था, कि 'यदि सीमा के देश का राजा सद्गुणी हो तो यह अपने देश के राज्य के लिए दुःख की बात है। 'इस पर मंत्रियों ने राजा को एक सम्मेलन में बुलाया और उसकी हत्या कर दी।' आगे चलकर उसने हर्ष के मंत्रियों के निम्नलिखित कथन को उद्धृत किया 'राज्यवर्धन के मंत्रियों की त्रुटि से उसको अपने शरीर को शत्रु के हाथ में देना पड़ा; यह उन मंत्रियों का दोष है' बाण के कथन से इसका साम्य नहीं है। ह्वेनसाङ्ग के

कथन से प्रतीत होता है कि राज्यवर्धन किसी 'मिथ्योपचार' के वश में न था बल्कि मंत्रियों की योजना (या षड्यंत्र ?) के फलस्वरूप राज्यवर्धन शत्रुओं के चंगुल में फँसा। यहाँ पर मंत्रियों के दोष पर बल दिया गया है न कि शशाङ्क के किसी कपट पूर्ण कार्य पर। इन दोनों समकालीन वर्णनों के अतिरिक्त हर्ष के उत्कीर्ण लेख हैं जिसमें लिखा है कि अपने वचन को निभाने के कारण (सत्यानुरोधेन) राज्यवर्धन को अपने शत्रु के निवास-स्थान पर अपने प्राणों को तिलांजलि दी।

बाणभट्ट और ह्वेनसाङ्ग दोनों ही कहते है कि शशाङ्क ने कपट से राज्यवर्धन की हत्या की। किन्तु उनके अत्यावश्यक विवरण भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त हर्ष के उत्कीर्ण लेख तथा ह्वेनसाङ्ग के एक कथन ने विश्वासघात का बिलकुल ही कोई उल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात है कि यह सभी विवरण जानबूझ कर अनिश्चित और अस्पष्ट हैं जिसका कारण समझ में नहीं आता।

शशाङ्क और हर्ष में शत्रुता थी। अतः बाण और ह्वेनसाङ्ग उसके (शशाङ्क) प्रति अनुकूल थे। ह्वेनसाङ्ग ने शशाङ्क की बौद्ध विरोधी कार्यवाहियों के प्रति अपने क्रोध को छिपाया नहीं है। ह्वेनसाङ्ग ने शशाङ्क द्वारा बौद्धधर्म के परिपीड़न के और उसको गर्हित मृत्यु के सम्बन्ध में जो कुछ भी लोकापवाद सुना उनको उसने लिपिबद्ध कर दिया है। बाण ने शशाङ्क के लिए 'गौड़ाधम' और 'गौड़भुजंग' आदि शब्द प्रयोग किए हैं जिससे उसके प्रति उसकी भावना स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त उन दोनों की कहानियाँ इतनी अनिश्चित और इनमें इतना असामान्य तत्व है कि दृढ़तम साक्ष्य के बिना उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। शशाङ्क और राजवर्धन में कोई दुर्भावना या शत्रुता थी इसकी चर्चा ह्वेनसाङ्ग ने नहीं की है, उनमें स्वार्थ संघर्ष भी कोई नहीं था। राजवर्धन के सद्गुण के प्रति शशाङ्क की मात्र ईर्ष्या ने उसके मंत्रियों को राजवर्धन की हत्या करने के लिए प्रेरित किया। राजवर्धन का शासनकाल इतना अल्प था कि शशाङ्क को उसके सद्गुण से प्रभावित होने तथा उसके विषय में अपने मंत्रियों से बहुधा चर्चा करने का अवसर न मिला होगा। यद्यपि राज्यवर्धन शशाङ्क से लड़ने के लिए निकला था जो उसका प्राणघाती शत्रु था, कन्नौज पर अधिकार कर लिया था और राज्यश्री को जेल में डाले हुए था। फिर भी बाण ने यह मान लिया कि वह अपने शत्रु से मिलने के लिए अकेला और बिना शस्त्र लिए जाने को प्रलोभित किया जा सका। बाणभट्ट ने यह भी नहीं लिखा कि वे प्रलोभन किस रूप में थे जिससे कि राज्यवर्धन के इस असाधारण आचरण को क्षम्य माना जाय। यह कथा विचारयुक्त नहीं है और अपूर्ण है।

डॉ० डी० सी० गांगुली ने लिखा है कि 'यह सोचने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि बाण और ह्वेनसाङ्ग ने शशाङ्क के चरित्र को ऐसे अभियोगों से कलंकित किया

है जिनको वे असत्य समझते थे, किन्तु ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। समकालीन अँग्रेज लेखकों ने सिराजुद्दौला, नेपोलियन और टीपू सुलतान का और मुसलमान लेखकों ने शिवाजी का और मराठा लेखकों ने अफ़ज़ल का पक्षपातहीन चरित्र-चित्रण नहीं किया है। बौद्ध परम्पराएँ भी शशाङ्क के विश्वासघात के सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं। आर्यमंजुश्री मूल-कल्प के अनुसार राज्यवर्धन की हत्या शशाङ्क ने नहीं नग्न जाति के एक राजा ने की थी। राज्यवर्धन की मृत्यु के सम्बन्ध में ह्वेनसाङ्ग ने मंत्रियों के दोष पर बल दिया है। यह बात अर्थपूर्ण है क्योंकि राज्यवर्धन बौद्ध था और उसके मंत्री सर्वसंभाव्यत: कट्टर हिन्दू थे। ह्वेनसाङ्ग ने अ-बौद्धों द्वारा हर्ष के जीवन लेने के प्रयास का उल्लेख किया है। सनातन धर्म के महान् रक्षक के रूप में शशाङ्क की ख्याति थी। संभव है राज्यवर्धन के मंत्रियों ने उसकी सहायता से राज्यवर्धन की मृत्यु का षड्यंत्र रचा हो। किन्तु यह मात्र अनुमान है।

शशाङ्क के प्रति विश्वासघात का अभियोग हर्ष ने भी नहीं लगाया जिसके भाई का बध किया गया था। ज्ञात सूचनाओं के परिप्रेक्ष में हर्ष के उत्कीर्ण लेखों का कथन ग्राह्य प्रतीत होता है कि राज्यवर्धन ने शत्रु के गृह में अपने प्राणों को छोड़ा जहाँ वह प्रतिज्ञावश (सत्यानुरोधेन) या अपने वचन का पालन करने के लिए गया था।

●

अध्याय | २

शशाङ्क के बाद राजनीतिक विखण्डन

१. गौड़ राज्य—शशाङ्क की मृत्यु गौड़ राज्य के लिए एक महान् राजनीतिक दारुण विपत्ति प्रभावित हुई। उसका राज्य और उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् के हाथ में चली गई। किन घटनाओं के फलस्वरूप उसका राज्य पूर्ण धराशायी हुआ यह ज्ञात नहीं है। शशाङ्क की मृत्यु के थोड़े ही समय बाद ६३८ ई० के लगभग ह्वेनसाङ्ग ने बंगाल में यात्रा की। उसने लिखा है कि उस समय कजंगल (राजमहल के आसपास का प्रदेश) के अतिरिक्त मुख्य बंगाल में चार राज्य थे—१. पुण्ड्रवर्धन, २. कर्णसुवर्ण, ३. समतट और ४. ताम्रलिप्ति।

ह्वेनसाङ्ग के वर्णन से स्पष्ट है कि शशाङ्क की मृत्यु के बाद उत्तरी और पश्चिमी बंगाल का बंधन टूट गया और वे अलग-अलग राज्य हो गए और उसकी मृत्यु के कुछ एक वर्षों के बाद भाष्करवर्मन् ने इन दोनों प्रदेशों को जीत लिया, और बंगाल के बाहर के राज्य को हर्षवर्धन ने हस्तगत किया। आर्यमंजुश्री-मूलकल्प नामक बौद्ध ग्रंथ में भी इसकी चर्चा है। उसमें लिखा है कि शशाङ्क की मृत्यु के बाद गौड़-तंत्र ने अविश्वास, उठे हुए शस्त्र और पारस्परिक ईर्ष्या का रूप ग्रहण किया। एक सप्ताह के लिए एक (राजा) और दूसरे के लिए दूसरा'। अराजकता, अनिश्चितता और राजनीतिक विखण्डता के इस सामान्य चित्र की हर्ष और भाष्करवर्मन् की विजयों से पूर्णतया पुष्टि होती है। भाष्करवर्मन् के आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न अराजकता और अनिश्चितता के समाप्त होने पर शशाङ्क के एक पुत्र ने अपने वंश के शासन के पुनः स्थापन का निष्फल प्रयास किया।

इस घटना के पश्चात् एक शती से अधिक समय तक गौड़ का इतिहास पूर्ण अंधकार में है। हर्ष की मृत्यु (६४६-४७ ई०), उसके मंत्री द्वारा राज्य का अनधिकार अपहरण, और चीनी दूत वंग-ह्वेन-से की विचित्र सामरिक कार्यवाहियों से पूर्वी भारत में राजनीतिक अस्तव्यस्तता और अनिश्चितता उत्पन्न हुई। यह स्थिति मोटे रूप से ६५० से ७५० ई० तक रही।

चीनी सैनिकों की विजय से उत्तर भारतीय राजनीति में एक नए तत्त्व का प्राबल्य हुआ। तिब्बत के शक्तिशाली राज्य स्त्रंग-सन गपों ने जिसका नेपाल के ऊपर

आधिपत्य था और जिसने चीनी लूत-वंग-ह्वेन-से को सहायता दी थी भारत में विजय लाभ किया। कहा जाता है कि उसने आसाम को जीता, और धीरे-धीरे प्रायः आधे भारत का स्वामी हो गया। निश्चित साक्ष्य उपलब्ध है कि भाष्करवर्मन् की मृत्यु के बाद एक म्लेच्छ शासक ने उसके राज्य वंश का विच्छेद किया। हो सकता है तिब्बती आक्रमण के बाद इस प्रदेश पर खड्ग राजवंश ने अधिकार किया हो जिनका सातवीं शती ई० में बंगाल के कुछ भागों पर राज्य था। तिब्बती आधिपत्य अल्पकाल तक था और ७०४ ई० के लगभग भारतीय राज्यों ने तिब्बत के आधिपत्य को उखाड़ फेंका। संभाव्यतः तिब्बती आक्रमण के संकट का भारतीय राजनीति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

मगध में उत्तर कालीन गुप्तवंश की स्थापना से भी भारतीय राजनीति पर प्रभाव पड़ा। हर्ष की मृत्यु के बाद आदित्यसेन उसके तीन उत्तराधिकारियों ने इस राज्य पर लगभग ६५० से लगभग ७२५ ई० तक राज्य किया। प्रत्यक्षतः वे शक्तिशाली शासक थे। शैलराज वंश के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि उनका राज्य पौण्ड्र प्रदेश पर था। यह विजय ७२५ ई० के लगभग हुई। विद्वानों ने पौण्ड्र प्रदेश को उत्तरी बंगाल से तादात्म्य किया है क्योंकि यह प्रदेश पुण्ड्र और पौण्ड्रनाम से विख्यात था।

कन्नौज के शासक यशोवर्मन् ने ७२५ और ७३५ ई० के बीच में किसी समय समस्त उत्तरी भारत में एक विजय अभियान किया, और गौड़ के राजा पर आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप उसकी पराजय और मृत्यु हुई। उसके राज कवि वाक्पतिराज ने 'गौड-वहो' नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसका अर्थ है गौड़ के राजा का वध। इस पुस्तक का आरम्भ मगध के राजा के वध का वर्णन करने के लिए हुआ और इस पुस्तक का अन्त गौड़ के राजा के वध का उल्लेख करके हुआ। कुछ लोगों ने माना है कि मगध के राजा और गौड़ के राजा एक ही व्यक्ति थे। यशोवर्मन् ने गौड़ और वंग दोनों को विजय किया और इस तरह संपूर्ण वर्तमान बंगाल उसके हाथ में चला गया। किन्तु संभवतः ७३६ ई० के कुछ ही वर्षों बाद कश्मीर के राजा ललितादित्य ने उसको बुरी तरह पराजित किया। इसके फलस्वरूप ललितादित्य अपने को उन विभिन्न राज्यों का अधीश्वर मानता था जिस पर यशोवर्मन् का आधिपत्य था। संभाव्यतः उसने इस अधिकार को कार्यरूप में परिणित करने के लिए एक दिग्विजय किया। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि गौड़ के राज्य ने उसकी अधीनता स्वीकार की। प्रतीत होता है कि गौड़ में अनेक स्थानीय राजा थे जो स्वतन्त्र हो गए थे और आपस में लड़ते थे क्योंकि वहाँ कोई ऐसी केन्द्रीय शक्ति नहीं थी जो उन्हें नियंत्रण में रख सके। नेपाल के लिच्छवि वंशीय राजा जयदेव द्वितीय के ७५९ या ७४८ ई० एक के उत्कीर्ण

लेख में लिखा है कि श्वसुर भगदत्त राजवंश का हर्ष 'गौड़, उद्र, कलिङ्ग और कोसल' का राजा है।

२. वंग का राज्य—ह्वेनसाङ्ग ने लिखा है कि समतट में एक ब्राह्मण वंश राज्य कर रहा था। उसने बंगाल में ७३८ ई० के लगभग यात्रा की थी। प्रतीत होता है कि इस ब्राह्मण राजवंश को उन बौद्ध राजाओं के वंश ने उच्छेद किया जिनके नाम का अंतिम शब्द खड्ग है। उनके ताम्रपट्टों में तीन शासकों के नाम मिले हैं खड्गोद्यम, उसका पुत्र जातखड्ग और इसका पुत्र देवखड्ग। अन्तिम राजा के पुत्र का नाम राजराज और राजराजभट था। वे सब श्रद्धालु बौद्ध थे। प्रतीत होता है खड्-गोद्यम 'नृपाधिराज' इस राज्य का संस्थापक था। उनका राज्यकाल सातवीं शती के उत्तरार्ध में और आठवीं शती के आरंभ में था। बौद्ध इत्सिग यात्री के वर्णन से पता चलता है कि समन्तात और राजभट नामक राजा सातवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में राज्य कर रहा था। चीनी साक्ष्य से प्रतीत होता है कि खड्गवंश लगभग ६५० और ७०० ई० के बीच राज्य करता था पर उनके राज्य में प्राय: संपूर्ण पूर्वी और दक्षिणी बंगाल सम्मिलित था, किन्तु इसकी पुष्टि नहीं हुई है। प्रतीत होता है कि तिप्पेरा प्रदेश पर लोकनाथ का राज्य था जो खड्गवंश का सामन्त था। तिब्बती भिक्षु तारानाथ ने कुछ अनुश्रुतियों को लिपिबद्ध किया है जिनमें लिखा है कि सातवीं शती ई० के मध्य में वंग में चंद्रवंश राज्य कर रहा था और इसके अन्तिम दो शासक गोभिचंद्र और ललितचन्द्र थे।

तारानाथ ने लिखा है कि ललितचंद्र की मृत्यु के बाद गौड़ और वंग में अराजकता और अस्तव्यस्तता फैली। उसने लिखा है कि प्रत्येक क्षत्रिय, ब्राह्मण, कुलीन पुरुष व्यापारी अपने ही घर में राजा था। समकालीन अभिलेखों में भी लिखा है कि आठवीं शती ई० के मध्य में बंगाल में कोई केन्द्रीय शासन नहीं था और पूर्ण अस्त-व्यस्तता थी। प्रत्येक स्थानीय सरदार ने राजकीय अधिकार ग्रहण कर लिया था; शक्ति का बोलबाला था अर्थात् मत्स्य-न्याय था। इस दयनीय राजनीनिक विखण्डन के कारण थे—विदेशी आक्रमण तथा गौड़ और वंग में बारम्बार शासक वंशों का परि-वर्तन। इन कारणों से शासनतंत्र छिन्न-भिन्न हो गया था। जनता ने अवश्य ही अकथ-नीय कष्टों को सहन किया होगा।

तिब्बत और भारत के सम्बन्ध—स्रांग सान नामक एक अप्रसिद्ध सरदार ने ५८१ ई० और ६०० ई० के बीच किसी समय बिखरी हुई पहाड़ी जातियों को एक कर तिब्बत में एक शक्तिशाली राज्य की नींव डाली। उसके पास लगभग एक लाख सैनिकों की सेना थी और उसने मध्यभारत अर्थात् बिहार और संभवत: उत्तर प्रदेश में एक विजय अभियान किया। उसका पुत्र स्रांग-सान गैम्पों एक विख्यात राजा था।

वह अपनी राज्ञी के प्रभाव से बौद्ध हो गया और अपने देश में बौद्ध धर्म का प्रवेश किया। भावी पीढ़ी ने उसको बोधिसत्व पद्मपाणि का अवतार माना। उसने भारतीय पंडितों को तिब्बत में आमंत्रित किया और तिब्बती वर्णमाला को भारतीय साँचे में ढाला। उसने बौद्ध धर्म ग्रंथों को तिब्बती भाषा में अनुवाद कराया, और अनेकानेक मठों और महलों को लहसा में स्थापित किया जो उसकी राजधानी थी और समस्त दिशाओं में तिब्बत के आधिपत्य का विस्तार किया।

सांग्र सान सम्राट् हर्षवर्धन का समकालीन था। हर्ष की मृत्यु (६४६-६४७ ई०) के बाद भारत में अव्यवस्था और अराजकता फैली और उसके एक मंत्री ने साम्राजिक सिंहासन को हस्तगत किया। प्रत्यक्षतः उसका अधिकार बिहार में था और उसका नाम चीनी ग्रंथों में तीरभुक्ति (तिरहुत, उत्तर बिहार) का अर्जुन या अरुणाश्व दिया हुआ है। चीनी पुरावृत्त कथा के अनुसार अर्जुन ने एक चीनी दूत मण्डल पर आक्रमण किया जिसको चीनी सम्राट् ने हर्ष के पास भेजा था। अर्जुन ने इस दूत मण्डल के अधिकांश सदस्यों को मार डाला और उनके सामान को लूट लिया जिसका कारण चीनी कथा में नहीं दिया हुआ है। इस दूत मण्डल का नेता वंग-ह्वेन से भाग कर नेपाल गया और सात हजार सैनिक नेपाल से और बारह सौ सैनिक तिब्बत से लेकर भारतीय मैदानों में आया और अर्जुन को बुरी तरह परास्त कर उसको बन्दी बना लिया और बंदी रूप में चीन ले गया। वंग-ह्वेन-से ने अर्जुन की राजधानी को लूटा, और भारत के लगभग ५८० प्राचीर युत् नगरों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। कामरूप के राजा भाष्करवर्मन् ने भी वांग-ह्वेन-से की विजयी सेना को सामग्रियाँ भेजी। यह घटना ६४७ और ६४८ ई० में संभवतः गंडकी नदी से अनति दूर गंगा नदी के उत्तर में बिहार के मैदानों में घटित हुई।

यह कथा आख्यायिका ऐसी प्रतीत होती है। मालूम नहीं इसमें कितना ऐतिहासिक तथ्य है। क्योंकि यह स्वीकार करना कठिन है कि अर्जुन ने बिना किसी कारण दूतमण्डल पर आक्रमण किया, उसकी सेना पूर्णतया परास्त की गई, और ८०० सैनिकों ने उसके देश को पूर्णतया पददलित किया।

कहा जाता है कि स्रांग सान गैम्पो ने असम और नेपाल को विजय किया और आधे जम्बुद्वीप पर उसका आधिपत्य था। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय नेपाल तिब्बत का एक मण्डलिक राज्य था और लगभग २०० वर्ष तक ऐसे ही रहा। स्रांग सान गैम्पो की मृत्यु ६५० ई० के लगभग हुई। उसके बाद उसका पौत्र कि-लि—प-पू (६५०-६७९ ई०) गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि उसने मध्यभारत तक अपने राज्य का विस्तार किया। नेपाल और मध्यभारत ने ७०२ ई० में तिब्बत के विरुद्ध विद्रोह किया, नेपाल पददलित किया गया, और मध्यभारत लूटों से सुरक्षित न रहा।

क्योंकि ७१३-४१ ई० के अवधि में तिब्बतियों और अरबों के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए एक दूत मंडल मध्यभारत से चीन गया। कश्मीर का शक्तिशाली राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ भी तिब्बत के विरुद्ध संघर्षों में लगा था और ७३६ और ७४७ ई० के बीच चीन को एक दूत मण्डल भेजा जिसने चीनी राज सभा के सामने यह बात रखी कि कश्मीर के राजा और मध्यभारत के राजा ने मिलकर भारत से तिब्बत को जाने वाले पाँच मार्गों को बंद कर दिया और तिब्बतियों को कई बार हराया। ललितादित्य की मृत्यु के बाद तिब्बतियों को रोकने का कार्य बंगाल के पाल राजाओं पर आ पड़ा जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय | ३

पाल वंश

पाल वंश की स्थापना आठवीं शती ई० के लगभग मध्य में हुई। इसकी स्थापना से बंगाल के इतिहास में एक नए युग का आरंभ हुआ। इनका शासन चार सौ वर्ष से अधिक समय तक रहा।

१. आरंभिक इतिहास—सौ वर्ष से अधिक समय तक बंगाल में अव्यवस्था और अनिश्चितता का प्राबल्य रहा। जनता को दीर्घकाल तक अकथ विपत्तियों को सहन करना पड़ा। उनमें राजनीतिक बुद्धि और आत्मत्याग की भावना जागृत हुई। उन्होंने अनुभव किया कि एक दृढ़ केंद्रीय शासन के अभाव में राजनीतिक विखण्डन तथा विदेशी आक्रमणों को रोकना कठिन है। उन्होंने यह बात समझ ली कि जब तक अनेकानेक छोटे-छोटे राजा स्वेच्छा से अपने अधिकार त्याग नहीं करते जो देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्वतंत्र बन बैठे थे, तब तक देश में शान्ति नहीं हो सकती। अतः उन्होंने राष्ट्रीय हित के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का त्याग किया और बिना किसी संघर्ष के उन्होंने गोपाल नामक एक जनप्रिय वीर पुरुष के आधिपत्य को स्वीकार किया। इस तरह बंगाल में एक रक्त विहीन क्रान्ति हुई। इस स्मरणीय घटना का उल्लेख खलीमपुर ताम्रपट्ट में किया गया है जो धर्मपाल (७७०-८०२ ई०) के शासन-काल में ८०२ ई० में निस्सृत किया गया था :

'मात्स्यन्यायम् अपोहितं प्रकृतिभिर् लक्ष्म्याः करं ग्राहितः।'
'श्री-गोपाल इति क्षितीश-शिरसां चूडामणिस् तत्-सुतः॥'

'उसका पुत्र श्री गोपाल राजाओं के शिरों का चूड़ामणि था। प्रकृतिजनों ने मात्स्य-न्याय का अन्त करने के लिए उसको लक्ष्मी का हाथ पकड़ा दिया।' कीलहार्न ने इस श्लोक के अर्थ की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'स्वेच्छाचारिता का अन्त करने के लिए जिसमें हरेक व्यक्ति अपने पड़ोसी का भक्ष्य था जनता ने गोपाल को राजा बनाया।' संभवतः स्वतंत्र शासक राजाओं ने उसको गद्दी पर बैठने के लिए आमंत्रित किया। तिब्बती इतिहास लेखक लामा तारा नाथ ने एक कथा लिखी है जिससे इसकी सत्यता प्रमाणित होती है।

सोड्ढल (ग्यारहवीं शती ईस्वी का गुजरात का एक कवि) कृत उदयसुन्दरी

कथा में लिखा है कि धर्मपाल मान्धाता के वंश का था जो एक विख्यात सूर्यवंशी राजा था। इससे इस मत की पुष्टि होती है कि पालवंश के राजा सूर्यवंश थे। कमौलीपट्ट में है कि विग्रहपाल तृतीय (१०५५ ई०) सूर्यवंशी था। सन्ध्याकर नन्दी कृत रामचरित की टीका में स्पष्ट लिखा है कि रामपाल (१०७७ ई०) एक क्षत्रिय राजा से उत्पन्न हुआ था। लामा तारानाथ ने भी लिखा है कि गोपाल एक क्षत्रिय स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसकी पुष्टि पालों के वैवाहिक संबंधों से भी होती है जो उन्होंने राष्ट्रकूटों और कलचुरियों से की। मंजुश्री-मूलकल्प उसको निम्न जाति (दासजीविन:) का लिखा है। पालों के अभिलेखों में उनके जाति का कोई उल्लेख नहीं है क्योंकि वे बौद्ध थे।

पालों के ताम्रपट्टों का आरम्भ भगवान् बुद्ध की स्तुति से होता है। इस वंश के अनेक राजा बौद्ध धर्म के महान् संरक्षक थे। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार गोपाल ने नालंदा में एक विहार की तथा अनेक धार्मिक पाठशालाओं की स्थापना की थी। तारानाथ ने गोपाल के शासनकाल के बौद्ध अध्यापकों की एक लम्बी सूची दी है। गोपाल के समस्त उत्तराधिकारी बौद्ध धर्म के कट्टर अनुयायी थे और उनकी राजसभा लगभग चार सौ वर्ष तक उस मृतप्राय धर्म की भारत में अंतिम गढ़ प्रमाणित हुई। इसी कारण पालवंश के राजाओं को अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध जगत में एक महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त था। उन्होंने उत्तरकालीन बौद्ध धर्म के मूलस्रोत को अक्षुण्ण बनाए रखा जिसकी धाराएँ उत्तर में तिब्बत को गईं और दक्षिण और पूरब में भारतीय द्वीप समूह तक पहुँची।

पालवंश के पूर्वज कहाँ के रहने वाले थे इसके संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह वरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) या वंग (पूर्वी और दक्षिण पूर्वी बंगाल) का रहने वाला था। तारानाथ के वर्णन में कठिनाई का सबसे अच्छा हल दिया हुआ है। उसने लिखा है कि गोपाल पुण्ड्र वर्धन (उत्तर में हिमालय की चोटी से लेकर दक्षिण में सुन्दरवन के अन्तर्गत खाड़ी तक का प्रदेश जिसकी भागारथी (जाह्नवी) पश्चिम में वर्धमान से अलग करती है) के समीप एक क्षत्रिय वंश में पैदा हुआ था किन्तु बाद को बंगाल का शासक चुना गया। उसने सम्पूर्ण बंगाल पर अपने आधिपत्य को दृढ़ किया। नारायण पाल के समय से आगे के पाल राजाओं के ताम्रपट्ट दानपत्र एक श्लोक से आरंभ होते हैं जो बुद्ध और गोपाल दोनों की प्रशंसा में है। उनके समस्त विरुद दोनों को ही समान रूप से लागू हैं, उदाहरणार्थ देखिए :

'जित्वाय: कामक्-आरि-प्रभवम् अभिभवं शाश्वतीम्-प्राप शान्तीं'

गोपाल के पक्ष में इसका अर्थ होगा कि उसने अत्याचारियों के आक्रमणों

का दमन कर, अपने राज्य में शान्ति स्थापित की। 'कामकारी' का अर्थ होगा कि वे जो किसी नियंत्रण को स्वीकार नहीं करते और स्वेच्छाचारी हैं। इसमें उस अराजकता और राजनीतिक विघटन की ओर संकेत है जो गोपाल के सिंहासन पर बैठने के पूर्व वहाँ व्याप्त थी।

सारांश यह है कि गोपाल ने उद्दण्ड और उच्छृंखल तत्त्वों के नियंत्रित कर बंगाल में स्थायी शांति स्थापित की। उसके शासनकाल में शांति रही और उसने कोई साहसिक सामरिक अभियान नहीं किया। देवपाल के मुंगेर ताम्रपट्ट में ऐसा संकेत भी है। तारानाथ के अनुसार उसने ४५ वर्ष और मंजुश्री-मूलकल्प के अनुसार २७ वर्ष राज्य किया। यह प्रतीत नहीं होता कि उसने अतिदीर्घ काल तक राज्य किया हो क्योंकि संकट काल में जब वह सिंहासन पर बैठने को आमंत्रित किया गया तब उसकी अवश्य ही प्रौढ़ावस्था रही होगी, और तब तक वह अवश्य ही योग्यता और पराक्रम प्रमाणित कर चुका होगा।

२. पाल साम्राज्य—धर्मपाल (ल० ७७०-८१० ई०)—गोपाल के बाद लगभग ७७० ई० में उसका पुत्र धर्मपाल सिंहासन पर बैठा। उसने पाल राज्य को वैभव और शक्ति के शिखर पर पहुँचाया। जब वह गद्दी पर बैठा उस समय राष्ट्रकूट राज्य कर रहे थे। उसके शासनकाल के समय राष्ट्रकूट ध्रुव (ल० ७८०-७९४ ई०) और उसके पुत्र गोविन्द तृतीय (ल० ७९४-८१४ ई०) ने उत्तरी भारत में अपनी सत्ताओं का विस्तार करने के लिए शक्तिशाली समरिक अभियान किए। यद्यपि उनकी सफलताएँ अस्थायी थीं। उनके मुख्य विपक्षी प्रतिहार थे उनके राजा वत्सराज (ल० ७८०-८०८ ई०) ने मालवा और राजपूताना में अपनी शक्ति दृढ़ कर पूर्वी भारत की ओर अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयत्न किया। उसने गोड़ाधिपति को हराया किन्तु उसकी विजय अल्पकालीन थी क्योंकि राष्ट्रकूट ध्रुव ने उसको हरा कर बाद में गंगा-यमुना दोआब में गौड़धिपति को परास्त कर अपनी विजय पूर्ण की।

अतः प्रत्यक्ष है कि सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही समय बाद धर्मपाल ने भारत के तीन मुख्य शासकों के बीच जो त्रिदलीय संघर्ष हुआ उसमें भाग लिया। गौड़ और प्रतिहार दोनों की साम्राजिक आकांक्षाएँ थीं जिनके फलस्वरूप उनके बीच में युद्ध हुए। धर्मपाल को उत्तराधिकार में एक दृढ़ और शक्तिशाली राज्य मिला। पश्चिम में राजनीतिक स्थिति उसकी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप थी। अतः उसने पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार करना आरंभ किया। यशोवर्मन् और ललितादित्य की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो आक्रामकों को रोक सके। उधर प्रतिहार नरेश वत्सराज के हृदय में भी साम्राजिक आकांक्षाएँ हिलोरें मार रही थीं और उसने भी उत्तर और पश्चिम में विजय अभियान करने का सुअवसर देखा। इन

दोनों का समान लक्ष्य साम्राजिक नगर कन्नौज पर अधिकार करना था। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी-दलों में दोआब में किसी स्थान पर संघर्ष हुआ। धर्मपाल की इस मुठभेड़ में हार हुई और इस पराजय का फल गम्भीर हुआ होता यदि राष्ट्रकूट ध्रुव बीच में पड़कर वत्सराज को भीषणरूप से परास्त न किए होता।

हेला-स्वी (क्ृ) त गौड़राज्य-कमला मत्तम् प्रवेश्याचिरात् दुर्मार्गम् प्रतिव्व (ब) लैर्यावत्स-राजम् व (ब) लैः। गौड़ीयम् शरदिन्दुपाद-धवलम्-च्छत्र द्वयम्-केवलम् तस्मान्नाहृत तद्-यशोऽपि ककुभम् प्रान्ते-स्थितम् तत्क्षणात् ॥

उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि प्रतिहार राजा वत्सराज, ('हेला स्वी (क्ृ) त गौड़राज्य-कमला मत्तम्') गौड़ राज्य तक प्रवेश कर गया। किन्तु इससे यही अर्थ निकलता हो ऐसा नहीं है। गौड़ और वंग पर सचमुच अधिकार करने की बात तो दूर रही। हो सकता है कि वत्सराज से गौड़ाधिपति की मुठभेड़ दोआब में या उसके पड़ोस में बंगाल की सीमाओं से दूर प्रदेश में हुई हो जैसा कि ध्रुव के साथ उसकी मुठभेड़ में हुआ था। यह अधिक संभाव्य है क्योंकि वत्सराज के कोई भी ऐसे सविस्तार प्रादेशिक विजयों का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जैसा कि मालवा से बंगाल के मध्य तक की किसी विजय-यात्रा में अर्थ निकलता है। इस कथन पर कोई विशेष महत्त्व न देना चाहिए कि उसने गौड़ के छत्रों को अपहृत किया, क्योंकि ध्रुव ने भी यही दावा किया है यद्यपि हम निश्चय रूप से जानते हैं कि यह मुठभेड़ बंगाल से दूर दोआब में हुई। 'पृथ्वीराज-विजय' के एक श्लोक में लिखा है कि चाहमान राजा दुर्लभराज की तलवार ने गंगा और सागर के संगम पर डुबकी लगाकर और गौड़ भूमि का आस्वादन कर अपने को पवित्र किया। दुर्लभराज का पुत्र नागभट का सामंत था इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि दुर्लभराज वत्सराज का सामंत था और बंगाल के अभियान में उसके साथ गया। किन्तु उपर्युक्त घटनाओं के लगभग चार शतियों बाद रचित स्फुट श्लोकों के आधार पर ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय करना अति संदिग्ध है।

वत्सराज को हराने के बाद, स्पष्ट है कि ध्रुव उसके राज्य से प्रयाण करता हुआ सीधे दोआब तक गया। यहाँ उसने धर्मपाल का सामना किया और उसको पराजित किया। किन्तु यह स्पष्टतः स्थायी विजय नहीं थी जिसका कि धर्मपाल के लिए कोई गहरा परिणाम हुआ हो। ध्रुव अपने केन्द्रीय स्थान से इतना दूर था कि विजय प्राप्त कर लेने के बाद वह कोई लाभ न उठा सका। सम्भाव्यतः और भी कारण थे जिससे कि वह दक्खिन लौट गया। गौड़ाधिपति ने पश्चिम में अवश्य ही इलाहाबाद तक के आगे के प्रदेश को विजय किया होगा क्योंकि ध्रुव से उसकी मुठभेड़ गंगा के दोआब में हुई। इस परिस्थिति से और इस तथ्य से कि यह युद्ध अवश्य ही ७८०

ई० के बाद किसी समय हुआ होगा कोई संदेह नहीं रह जाता कि गौड़ाधिपति धर्मपाल था न कि उसका कोई पूर्वज ।

धर्मपाल राष्ट्रकूट ध्रुव द्वारा पराजित तो हुआ किंतु इससे उसे महान् लाभ हुआ । उसका परम शत्रु वत्सराज अब 'पथविहीन मरुस्थल में शरणार्थी' था और विजयी कर्णाट सेना द्वारा उसका राज्यपद दलित किया गया । आगामी कुछ दिनों के लिए धर्मपाल को उस ओर से विरोध का कोई डर न रहा अतः वह अपने विजय अभियान पर अग्रसर रहा और उत्तरी भारत की दूरतम सीमाओं तक गया ।

नारायण पाल के भागलपुर ताम्रपट के अनुसार धर्मपाल ने इन्द्रराज को तथा अन्य शत्रुओं को हरा कर और महोदय (कन्नौज) का आधिपत्य प्राप्त कर उसे चक्रायुध को प्रदान कर दिया। कुछ विद्वानों ने इन्द्रराज का इन्द्रायुध से तादात्म्य किया है जिसका नाम जिन सेन के हरिवंश में आया है । किन्तु यह अधिक संभाव्य है कि इन्द्रराज राष्ट्रकूट ध्रुव का भाई था । ध्रुव ने लाटेश्वर-मंडल का भार उसको सौंपा जिसमें संभाव्यतः गुजरात तथा उत्तर के अन्य राष्ट्रकूट प्रदेश सम्मिलित थे । मुंगेर ताम्रपट्ट से प्रमाणित है कि कन्नौज विजय करने के बाद धर्मपाल ने बहुत आगे तक सामरिक अभियान किया । इसमें लिखा है कि धर्मपाल के विजयी अभियान की अवधि में उसके अनुचरों ने केदार, गोकर्ण, (नेपाल में) गंगा और सागर के संगम तथा अन्य अनेक तीर्थ स्थानों में धार्मिक कृत्य किए । केदार निश्चय ही गढ़वाल में हिमालय पर स्थित केदारनाथ है । इस श्लोक से यह निश्चित रूप से विदित होता है कि धर्मपाल ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग पर अधिकार किया ।

धर्मपाल के खलीमपुर ताम्रपट्ट में वर्णन है कि धर्मपाल ने भोज, मृत्यु, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गान्धार, और कीर के राजाओं के समक्ष चक्रायुध को कान्य कुब्ज की गद्दी पर बैठाया । ऐसा प्रतीत होता है कि अपने विजय अभियान की समाप्ति पर धर्मपाल ने एक साम्राजिक सम्मेलन कन्नौज में किया जिसका आधिपत्य उसने अपने बाहुबल से प्राप्त किया था । इस सम्मेलन में कन्नौज के सामन्त राजाओं के रूप में उपर्युक्त राजा सम्मिलित हुए और चक्रायुध का राजगद्दी संस्कार प्रत्यक्ष देखा । यह धर्मपाल के विजय की चरम सीमा थी और यह इस बात का साक्ष्य है कि धर्मपाल ने उत्तरी भारत की अधीश्वरता औपचारिक रूप से ग्रहण की थी ।

ग्यारहवीं शती ईस्वी के पूर्वार्ध में गुजराती कवि सोड्ढल ने उदयसुन्दरी कथा नामक एक चम्पूकाव्य लिखा था जिसमें सम्राट् धर्मपाल को उत्तरापथ स्वामिन् लिखा है । खलीमपुर ताम्रपट्ट में जिन राज्यों के नाम आए हैं उनमें से गान्धार, मद्र और कुरु क्रमशः पश्चिमी, मध्य, और पूर्वी पंजाब में स्थित थे और कीर पंजाब के उत्तरी पूर्वी भाग में कांगरा जनपद में था । मत्स्य वर्तमान अलवर, जयपुर और

भरतपुर के आसपास का प्रदेश है। अवन्ति वर्तमान मालवा है। भोज, यदु और यवन प्रदेश भारत के किस भाग में थे यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यवन प्रदेश सिन्धु घाटी में या उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में था। भोज वर्तमान बरार के आसपास का प्रदेश था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि धर्मपाल का आधिपत्य पंजाब, पूर्वी राजपूताना, मालवा और बरार पर था।

सामन्त राज्य सम्राट् के केन्द्रीय राज्य में सम्मिलित नहीं किए गए थे किन्तु वे सम्राट् की अधीश्वरता स्वीकार करते थे और प्रथा या संधियों के अनुसार सामरिक सहायता देते थे। बंगाल और बिहार जो साम्राज्य के मूलविन्दु थे धर्मपाल के प्रत्यक्ष शासन में थे। बिहार और पंजाब की सामाओं के बीच का प्रदेश कन्नौज में सम्मिलित था और पंजाबा, पूर्वी राजपूताना, मालवा, बरार के अनेक छोटे राज्य और सम्भवत: नेपाल भी (स्वयंभू पुराण के अनुसार) सामन्त राज्य थे।

प्रतिहार वत्सराज की पतन के बाद धर्मपाल ने अबाध रूप से अपने राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार किया। किन्तु प्रतिहारों ने अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को तिलांजलि नहीं दी थी। वत्सराज के पुत्र और उत्तराधिकारी नागभट द्वितीय ने अपने राज्य को पुन: प्राप्त करने के लिए घोर प्रयत्न किया। उसने सिन्धु, आन्ध्र, विदर्भ और कलिंग के राजाओं से मैत्री की। प्रतीत होता है उसने पाल और राष्ट्रकूट साम्राज्यों की सीमा पर के राज्यों का एक संगठित संघ बनाया और अपने परम शत्रु धर्मपाल से लोहा लेने का निश्चय किया। उसने धर्मपाल के आश्रित चक्रायुध पर आक्रमण किया और सिंहासनच्युत किया। उत्तरी भारत के साम्राज्य के लिए अब नागभट और धर्मपाल में युद्ध होना अनिवार्य था। इस संघर्ष के लिए नागभट ने सविस्तार तैयारियाँ कीं और उसके सामन्त राजाओं ने उसकी सहायता निष्ठापूर्वक की। प्रतिहार राजा बाहुक का जोधपुर उत्कीर्ण लेख सूचित करता है कि उसके पिता कक्क ने मुद्गगिरि (मुंगेर) में गौड़ों के विरुद्ध युद्ध कर ख्याति प्राप्त की। कहा जाता है कि प्रतिहारों के एक दूसरे सामन्त बाहुक धवल ने धर्म (धर्मपाल) नामक राजा को परास्त किया। शंकरगण नामक एक दूसरे सामन्त का कथन है कि उसने गौड़ प्रदेश को जीत कर अपने अधीश्वर को अर्पण किया। संभवत: इन सामन्तों ने धर्मपाल के विरुद्ध नागभट के अभियान में भाग लिया। प्रतीत होता है कि नागभट धर्मपाल के राज्य के बीचोबीच पहुँच गया था। धर्मपाल की इस निर्बलता या तैयारी की कमी का कारण प्रतीत नहीं होता। हो सकता है कि इसी समय के लगभग तिब्बत के राजा ने आक्रमण किया हो। प्रतिहार अभिलेखों के अनुसार नागभट द्वितीय ने धर्मपाल को भयंकर रूप से परास्त किया। किन्तु प्रतिहार नरेश के भाग्य में विजय से प्राप्त लाभों को भोगने को बदा नहीं था। एक बार पुन: राष्ट्रकूटों ने प्रतिहार साम्राज्य की स्थापना

के स्वप्न को भंग कर दिया। नागभट द्वितीय के विजयी जीवन में उनके वंशानुगत शत्रु ने अड़चन डाल दी जिस तरह उसने उसके पिता वत्सराज के विजयी जीवन में बाधा पहुँचायी थी।

प्रतिहार अभिलेखों से स्पष्ट है कि नागभट ने राष्ट्रकूट सामाज्य के सीमा पर के राज्यों से मैत्री की थी और मालवा के किलों पर अधिकार किया था। सम्भवत: मालवा उस समय राष्ट्रकूट राज्य के अधीन था और राष्ट्रकूट राज्य से उत्तरी भारत जाने का रास्ता भी मालवा से होकर था। उधर धर्मपाल को भी सहायता की घोर आवश्यकता थी। हो सकता है कि उसने समान शत्रु के विरुद्ध राष्ट्रकूट सम्राट् से सहायता माँगी हो। जो कुछ भी कारण हो इस युद्ध का प्रभाव निर्णयकारी था। नागभट की शक्ति पूर्णतया चकनाचूर कर दी गई और गोविन्द तृतीय ने सीधे उसके राज्य से होकर कम से कम गंगा-यमुना दोआब तक विजय-यात्रा की।

गोविन्द तृतीय के विजय अभियान ने धर्मपाल और चक्रायुध के आसन्न विनाश से रक्षा की। धर्मपाल और चक्रायुध ने स्वेच्छा से गोविन्द तृतीय को समर्पण किया (अमोघवर्ष के संजन पट्ट) हो सकता है कि यह पूर्व नियोजित रहा हो। इस समर्पण का कोई अर्थ नहीं था क्योंकि गोविन्द तृतीय शीघ्र ही दक्खिन को लौट गया और धर्मपाल अपने साम्राज्य का पुन: संगठन करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया।

प्रतीत होता है प्रतिहारों की सत्ता मुख्य रूप से राजपूताना तक सीमित हो गई और धर्मपाल के साम्राज्य में कोई विशेष कमी नहीं हुई। अत: जब देवपाल अपने पिता धर्मपाल की गद्दी पर बैठा तब उसके राज्य में अशान्ति नहीं थी।

मूल्यांकन—जब वह सिंहासन पर बैठा तब उसका साम्राज्य छोटा था किन्तु अपने पराक्रम और कूटनीतिज्ञता से उत्तरी भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उसने अनेक युद्ध किए और उसको कभी-कभी गहरी हार खानी पड़ी और उसकी स्थिति संदिग्ध हुई किन्तु उसकी निर्भीक आत्मा ने समस्त अड़चनों पर विजय प्राप्त की और उसके नेतृत्व में बंगाल ने साम्राजिक वैभव और सामरिक कीर्ति की ऐसी लीला आरंभ की जिसका कि पहले कोई उदाहरण नहीं है। साम्राजिक नगर कन्नौज को जिस लोभ ने शशाङ्क के राज्य को विनष्ट किया उसी ने उसकी महान् सफलता का पथ निर्माण किया और उत्तरी भारत में एक साम्राज्य की स्थापना करने का बंगाल का स्वप्न अंततः पूर्ण हुआ। वह प्रदेश जो केवल दो पीढ़ियों पहले विदेशी आक्रामकों द्वारा पददलित हुआ और प्राय: पूर्ण राजनीतिक विघटन को सहन किया। सहसा संपूर्ण उत्तरी भारत की दूरस्थ सीमाओं तक की स्वामिनी बनी। यह एक आश्चर्य के शिवा और कुछ न था, सारा प्रदेश इसके अभूतपूर्व शासक के आश्चर्यमय सफलता और विजयों की कहानियों से गूँज उठा। राजकवि ने धर्मपाल के खलीमपुर

ताम्रपट्ट में ठीक ही लिखा है : 'सीमाओं पर ग्वालों द्वारा, वनों में वनवासियों द्वारा और गाँवों के अंचलों में ग्रामीणों द्वारा और प्रत्येक आँगनों में खेलते हुए बालक समूहों द्वारा और प्रत्येक हाटों में तौल के संरक्षकों द्वारा और आमोद गृहों में पिंजड़े में बंद तोतों द्वारा अपनी प्रशंसाओं की गीतें सुनकर वह सलज्ज होकर अपना मुख फेरकर झुका लेता है'।

तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार धर्मपाल बौद्ध धर्म का एक महान् संरक्षक था। कहा जाता है कि उसने मगध में गंगा के तट के एक पहाड़ी की चोटी पर विख्यात विक्रमशील विहार की नीव रखी जिसमें विभिन्न विषयों के पढ़ाने वाले ११४ अध्यापक थे और जिसमें एक केन्द्रीय मन्दिर था और जिसके चारों ओर १०७ अन्य मन्दिर थे और सब एक प्राचीर से घिरे हुए थे। धर्मपाल ने ओदन्तपुरी में एक भव्य मठ का निर्माण किया। पहारपुर में पाई गई कुछ मिट्टी का मोहरों पर लघु उत्कीर्ण हुए लेखों के अनुसार धर्मपाल ने सोमपुर विहार की स्थापना की थी। तारानाथ ने लिखा है कि धर्मपाल ने ५० धार्मिक पाठशालाओं की स्थापना की। धर्मपाल महान् बौद्ध ग्रंथकार हरिभद्र का संरक्षक था। सम्राट् के लिए यह एक महान् श्रेय की बात है कि युद्ध और राजनीति में फँसे रहने पर भी वह ऐसे धार्मिक और शांतिपूर्ण कार्यों की ओर ध्यान दे सका और उनको कार्यान्वित कर सका।

किन्तु इसका अर्थ नहीं है कि वह किसी भी प्रकार से ब्राह्मण धर्म का विरोधी था धर्मग्रन्थों में लिखे गए वर्ण-नियमों का उसने पालन किया और ब्राह्मण धर्म की देवता की पूजा के लिए भूमि दान किया। उसका मन्त्री ब्राह्मण गर्ग था जिनके वंशज कई पीढ़ियों तक इस पद पर बने रहे। इससे प्रकट है कि राजनीति किसी भी प्रकार से धर्म द्वारा प्रभावित नहीं थी।

देवपाल (ल० ८१०-८५० ई०)—परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज देवपाल ८१० ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। उसमें उसके पिता का पराक्रम तथा अन्य सद्गुण थे। देवपाल ने साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा और इसकी सीमाओं को बढ़ाया भी। बादाल स्तम्भ उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि उसके मन्त्री दर्भ पाणि की कूटनीतिज्ञता और दर्भ पाणि के पौत्र केदार मिश्र की बुद्धिमत्ता से देवपाल सम्पूर्ण उत्तरी भारत हिमालय से लेकर विंध्यपर्वतों तक और पूर्वी से पश्चिमी सागरों तक भेट उगाह सका और उत्कलों का उच्छिन्न कर, हूणों के मद को दमन कर और द्राविड़ों और गुर्जरपतियों की उद्दण्डता को विनष्ट कर समुद्र-मेखला कृत पृथ्वी का भोग किया। स्वयं देवपाल के दानपत्र से प्रकट है कि अपने विजय अभियान में वह पश्चिम में काम्बोज तक और दक्षिण में विंध्यपर्वतों तक गया। प्रतीत होता है उसने अपने पिता का विशाल साम्राज्य शान्तिपूर्ण रूप से प्राप्त किया और अपने अधिकार

को दृढ़ता से जमाया। लगभग ४० वर्ष तक राज्य किया किन्तु युद्ध और संहार और विघटन का यह युद्ध था अतः उसको अनेक युद्ध करने पड़े।

प्राग्ज्योतिष (ब्रह्मपुत्र घाटी जिसका एक भाग कामरूप नाम से भी विख्यात था) के राजा ने देवपाल की अधीनता स्वीकार कर ली। उत्कल (उड़ीसा) को देवपाल ने पूर्णतया पददलित किया। हूणों की एक शाखा हिमालय के समीप उत्तर पथ में राज्य करती थी। देवपाल ने इन पर आक्रमण किया और सफलता प्राप्त की उसके बाद वह कम्बोज तक गया जो पंजाब के उत्तर पश्चिम में और गान्धार के ठीक ऊपर था। राष्ट्रकूटों द्वारा दी गई भयंकर पराजय के बाद प्रतिहार राजपूताना तक सीमित रहे। एक जैन ग्रन्थ में लिखा है कि नागभट द्वितीय ने कन्नौज पर अधिकार किया। यह कार्य उसने अपनी मृत्यु की तिथि ८३३ ई० के कुछ ही पूर्व किया होगा। नागभट का पुत्र रामचन्द्र का शासन प्रतिष्ठित ही था और अप्रत्यक्ष साक्ष्यों से प्रकट है कि उसने अपने शत्रुओं के हाथों गहरी हारें खाईं। रामभद्र के पुत्र उत्तराधिकारी ने प्रतिहारों को एक नया जीवन और शक्ति प्रदान की और अपने पिता द्वारा खोए हुए प्रदेशों को पुनः जीता। वराह और दौलतपुर ताम्रपट्टों से प्रकट है कि उसने कन्नौज पर अधिकार किया और ८३६ ई० तक कालंजर मण्डल को और ८४३ ई० तक राजपूताना के अपने पैतृक प्रदेश गुर्जरत्रा को पुनः प्राप्त किया किन्तु उसकी विजय अल्पकालीन थी क्योंकि ८६१ ई० में गुर्जरत्रा प्रतिहार वंश की एक दूसरी शाखा के अधिकार में था। राष्ट्रकूटों ने ८६७ ई० के पूर्व किसी समय भोज को हराया।

प्रतीत होता है देवपाल ने जिस गुर्जरपति के दर्प का दमन किया था वह भोज प्रथम ही था। यह घटना ८४० और ८५० ई० के बीच हुई होगी जिसकी विजय का श्रेय प्रथम मन्त्री दर्भपाणि के पौत्र केदार मिश्र ने लिया। संभवतः इसी के कुछ समय बाद राष्ट्रकूटों ने भोज को हराया। इन एक के बाद एक पराजयों से वह इतना निर्बल हो गया कि गुर्जरत्रा भी उसके हाथ से निकल गया जो राजपूताना में जोधपुर के आस-पास था।

संभवतः खजुराहो के चंदेलों ने भोज के विरुद्ध युद्ध में देवपाल की सहायता की। भोज कालंजर मण्डल पर ८३६ ई० में राज्य कर रहा था। देवपाल ने ८४० ई० के लगभग उसको परास्त किया और तब से खजुराहो और उसके पड़ोस की भूमि लगातार चंदेलों के हाथ में रही (यद्यपि बाद को उन्होंने प्रतिहारों की अधीश्वरता स्वीकार किया)। भोज के पराजित हो जाने के बाद देवपाल ने खजुराहो के समीप के प्रदेश का आधिपत्य चंदेलों को पुरष्कार स्वरूप दिया। खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि चंदेल वाक्पति ने विंध्य को अपना प्रमोद पर्वत बनाया और वाक्पति का पुत्र विजय राम की तरह अपने युद्ध अभियानों में भारत के दक्षिणतम बिन्दु तक भी पहुँचा

संभवतः अपने मित्र के लाभ के लिए, 'सुहृद्-उपकृति-दक्ष' जैसा कि खजुराहो उत्कीर्ण लेख में लिखा है। देवपाल ने भी विंध्य प्रदेश पहुँचने का दावा किया है और जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, यह विश्वास करने के लिए कारण है कि उसने दूरतम दक्षिण तक एक अभियान भेजा अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि आदि चंदेल नरेश देवपाल के मित्र थे और उन्होंने पाल नरेश की सहायता से भोज को कालंजर से निकाला।

देवपाल ने द्रविड़ों को भी हराया जिनसे राष्ट्रकूटों से तादात्म्य किया जाता है। अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए देवपाल को अपने दोनों वंशानुगत शत्रुओं से मुठभेड़ करनी पड़ी और इसमें वह सफल रहा। उसका राष्ट्रकूट विपक्षी निश्चय ही अमोघवर्ष था। द्रविड़ शब्द का प्रयोग दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप के अर्थ में किया जाता है अतः यह संभाव्य है कि देवपाल ने इस प्रदेश के पाड्य राजा श्री-मार श्री-वल्लभ को हराया जो ८१५-८६२ ई० के लगभग राज्य करता था। सिन्नमनुर पट्टों के अनुसार इस पाड्य राजा ने गांगों, पल्लवों, चोलों, कलिंगों और मगधों आदि को कुम्बकोनम स्थान पर हराया। मगधों से तात्पर्य पाल नरेश से है क्योंकि उस समय मगध उसके आधिपत्य में था। उत्कल विजय करने के बाद देवपाल का संपर्क कलिंगों से हुआ तथा दक्षिण की अन्य शक्तियों से भी जिनका नाम ऊपर दिया गया है। ये शक्तियाँ राष्ट्रकूटों की शत्रु थीं क्योंकि राष्ट्रकूट ध्रुव और गोविन्द तृतीय ने उनको बारंबार परास्त किया था। राष्ट्रकूटों के विरुद्ध उनकी समान शत्रुता ने इस मैत्री को दृढ़ता प्रदान की और उन्होंने देवपाल के समान शक्तिशाली शासक का सहारा प्राप्त किया।

इस तरह यह पूर्ण संभाव्य है कि देवपाल ने पाड्य शासक श्रीमार श्री वल्लभ के मद को चूर्ण किया। मुंगेर ताम्रपट्ट वर्णन करता है कि देवपाल का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से और दक्षिण में रामेश्वरम् सेतुबन्ध से घिरा था। प्रतीत होता है पाड्य राज्य में रामेश्वरम् के समीप उसकी कुछ सामरिक विजय को राजकवि ने बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। इसी तरह चंदेल राजा विजय का यह दावा कि वह अपने विजय अभियान में दूरतम दक्षिण तक पहुँचा जहाँ राम ने अपना सेतु बनाया था। यह उसने अवश्य ही किसी शक्तिशाली राजा के साथ में ऐसा किया होगा। प्रतीत होता है कि यह राजा देवपाल था। दो राज कवियों ने जो भिन्न-भिन्न प्रदेश के थे और जिन्होंने भिन्न-भिन्न समय में लिखा इस आधाररहित कथा को गढ़ा होगा ऐसा विश्वास करना कठिन है। उपलब्ध साक्ष्य इसके संबंध में मौन हैं किंतु यह विजय अभियान पूर्णतया काल्पनिक नहीं माना जा सकता।

मूल्यांकन—देवपाल ने संभवतः ८१० ई० और ८५० ई० के बीच में कम-

से कम ३५ वर्ष राज्य किया। उसके शासनकाल में पाल साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर था। उसका आधिपत्य संपूर्ण उत्तरी भारत पर आसाम से कश्मीर के अंचलों तक माना जाता था। उसकी विजयी सेनाओं ने सिन्धु से ब्रह्मपुत्र के ऊपरी क्षेत्रों तक और हिमालय से विंध्य तक और संभवतः भारत के दक्षिणतम छोर तक भी प्रयाण किया। उसका नाम और कीर्ति भारत के बाहर दूर तक विख्यात था और शैलेन्द्र वंश के राजा बालपुत्र देव ने जो जावा, सुमात्रा और मलय प्रायद्वीय में राज्य कर रहा था उसके पास एक दूत भेजा। यह दूत मंडल पाँच गाँवों का दान माँगने आया था। शैलेन्द्रराजा इन गाँवों को एक मठ को अर्पण करना चाहता था जिसका उसने नालन्दा में निर्माण किया था उन दिनों नालंदा का मठ अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध संस्कृति का केन्द्र था और इसके संरक्षक होने के नाते बौद्ध जगत में उच्च स्थान था। देवपाल बौद्ध धर्म का महान् संरक्षक था और उसने शैलेन्द्र राजा की प्रार्थना स्वीकार किया। घोस्रवा उत्कीर्ण लेख से भी ज्ञात है कि नालंदा मठ में उसकी रुचि थी और बौद्ध धर्म के प्रति उसकी गहरी श्रद्धा थी। इसका कथन है कि देवपाल ने इन्द्रगुप्त का स्वागत किया और उसको नालंदा मठ का अध्यक्ष नियुक्त किया। वह नग्रहार (जलालाबाद) का एक ब्राह्मण और विद्वान बौद्ध भिक्षु था।

अरब यात्री और व्यापारी सुलेमान ने भारत की कई यात्राएँ की थीं। उसने ८५१ ई० में अपनी यात्रा का वर्णन लिखा। उसने लिखा है कि पाल राजा अपने पड़ोसियों राष्ट्रकूटों और गुर्जर प्रतिहारों से युद्ध छेड़े हुए थे। अपने विपक्षियों की अपेक्षा उसकी सेना बड़ी थी। अपने सामरिक अभियानों में वह ५० हज़ार हाथी ले जाता था। प्रतीत होता है कि बंगाल और बिहार के बाहर के प्रदेश उसके प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं थे। वहाँ स्थानीय राजा राज्य करते थे जो पालों की अधीश्वरता मानते थे। देवपाल के मुंगेर ताम्रपट्ट से भी इसकी पुष्टि होती है।

सोड्ढलकृत उदयसुन्दरी-कथा में लिखा है कि अभिनन्द नामक एक विख्यात कवि पाल शासक युवराज के दरबार में था जो महान् विजयी था और जिसका विरुद हारवर्ष था और वह विक्रमशील का पुत्र था। उसमें यह भी लिखा है कि वह 'धर्म-पाल-कुल-कैरव-कानन-इन्दु' और पाल-कुल-चन्द्र, पाल-कुल-प्रदीप' आदि था।

साहित्यिक साक्ष्य से प्रतीत होता है कि वह ग्यारहवीं शती ई० के पूर्व और सम्भाव्यतः दसवीं शती ई० के पूर्व था।

तिब्बत और भारतवर्ष के राजनीतिक सम्बन्ध के विषय में पहले लिखा जा चुका है। यद्यपि ललितादित्य ने उन पर कई विजयें प्राप्त कीं फिर भी तिब्बती शासकों ने अपनी आक्रमण नीति को नहीं छोड़ा। तिब्बती वृत्तों में ७५५-८३६ ई० काल में भारत में उनकी महान् सफलताओं का वर्णन किया गया है। तिब्बती राजा

खि-स्रांग-ल्दे-बतसन (७५५-९७ ई०) अत्यंत शक्तिशाली राजा था और बोधिसत्त्व मंजुश्री का अवतार माना जाता था। 'उसने चारों दिशाओं में समस्त प्रदेशों को जीता जिसमें पूरब में चीन और दक्षिण में भारत सम्मिलित था।' नवीं शती ई० में प्राप्त एक तिब्बती पुस्तक में लिखा है कि उसके पुत्र मु-तिग बतसन-पो के जम्बूद्वीप का दो या तीन भाग उसके अधिकार में था। इसके बाद रत्न-प-कन (लगभग ८१७-लगभग ८३६ ई०) नामक राजा ने गंगा सागर तक भारत को विजय किया। भारतीय स्रोत ग्रंथों में तिब्बत से किसी सामरिक अभियान का उल्लेख नहीं है। हो सकता है कि ७५०-८५० ई० के काल में बंगाल पर तिब्बत का प्रभाव पड़ा हो जिसकी जानकारी हमें नहीं है।

३. साम्राज्य का ह्रास और पतन—देवपाल के उत्तराधिकारियों के शासन काल में निरंतर ह्रास और विखण्डन होता गया जिससे उत्तर भारत में पाल वंश की राजनीतिक शक्ति का कोई महत्त्व न रहा। (१) विग्रहपाल प्रथम लगभग ८५०-८५४ ई०। (२) नारायण पाल लगभग ८५४-९०८ ई०। (३) राज्यपाल लगभग ९०८-९४० ई०। (४) गोपाल द्वितीय लगभग ९४०-९६० ई०। (५) विग्रहपाल द्वितीय लगभग ९६०-९८८ ई०।

विग्रहपाल प्रथम—देवपाल के बाद विग्रहपाल सिंहासन पर बैठा। देवपाल के मुंगेर ताम्रपट्ट में लिखा है कि उसने अपने पुत्र राज्यपाल को युवराज पद पर अभिषिक्त किया और यह पुत्र उसके शासन के तैंतीसवें वर्ष जीवित था अर्थात् उसकी मृत्यु के ७ या ८ वर्ष पूर्व तक। हो सकता है कि राज्यपाल की मृत्यु हो गई हो या उसके चाचा जयपाल ने जो देवपाल का महान् सेनापति था और जिसने अपने चचेरे भाई राजा देवपाल के लिए उड़ीसा और असम विजय किया था अपनी सेना की सहायता से अपने ही लड़के को सिंहासन पर बैठा दिया हो। यह अनुमान इसलिए होता है कि पाल साम्राज्य का अकस्मात् पतन हुआ तथा आन्तरिक विघटन हुआ और अंग, वंग, और मगध राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ जैसा कि ८६६ ई० के एक राष्ट्रकूट अभिलेख में लिपिबद्ध है।

विग्रहपाल शान्त और धार्मिक प्रकृति का था और उसकी यही मनोवृत्ति अंत तक बनी रही। उसने सिंहासन त्याग कर अपने पुत्र नारायण पाल को दे दिया और धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए एकान्त वास करने लगा।

नारायण पाल—नारायणपाल विग्रहपाल का पुत्र था। उसने कम से कम ५४ वर्ष तक राज्य किया। प्रतीत होता है कि उसने भी अपने पिता की तरह कोई सामरिक विजय नहीं प्राप्त की। संभवतः ये दोनों पाल शासक निर्बल थे। राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के अभिलेखों से भी इसकी पुष्टि होती है जो पालवंश के वंशानुगत शत्रु

थे। राष्ट्रकूटों के सिरुर उत्कीर्ण लेख (८६६ ई०) सूचित करता है कि अंग, वंग, और मगध के शासक राजा अमोघवर्ष (८१५—लगभग ८८० ई०) के वंश में थे। संभवत: राष्ट्रकूट सेनाओं ने वेङ्गि विजय करने के बाद पूर्वी समुद्री तट से होकर दक्षिण की ओर से पाल राज्य में प्रवेश किया। संभवत: इस कारण पालवंश की सामरिक शक्ति और उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा कम हुई। संभवत: इसी काल में उड़ीसा के शुल्कि राजा महाराजाधिराज रणस्तम्भ ने राढा का एक भाग हस्तगत किया।

इन पराजयों से संभवत: प्रतिहार राजा भोजदेव को भी अपनी महत्वाकांक्षा पूरा करने का अवसर मिला और उसके प्रयत्न सफल हुए। प्रतीत होता है वह निर्बाध मगध तक बढ़ता गया। भोज ने विस्तृत तैयारियाँ की थीं। कहलापट्ट सूचित करता है कि गोरखधुर का कलचुरि राजा गुणाम्बोधिदेव ने जिसने भोजदेव से कुछ प्रदेश प्राप्त किया गौड़ों की अधीश्वरता छीन ली। यह भी संभाव्य है कि डाहल के कलचुरि राजा कोक्कल्ल ने भी भोज की सहायता की थी।

कहा जाता है कि उसने भोज को भय से मुक्त किया और वंग तथा अन्य विभिन्न राज्यों के कोषों को लूटा। संभाव्यत: गुहिलोत राजा गुहिलद्वितीय भी भोज के साथ गया था क्योंकि यह कहा जाता है कि उसने गौड़ राजा को पराजित किया। (चात्सू उत्कीर्ण लेख) गुहिल के पिता हर्षराज ने भोज के आरंभिक शासनकाल के अभियानों में भाग लिया था। अत: यह अत्यंत संभाव्य है कि भोज के इस सफल अभियान में वह भी साथ रहा हो।

इस तरह भोज ने पालो के विरुद्ध एक वृहद् संघ संगठित किया। प्रतीत्र होता है उसने उनको भयंकर रूप से हटाया। दक्षिण में राष्ट्रकूटों से उसे कोई कष्ट न था। क्योंकि वे स्वयं अपने घरेलू झगड़े में फँसे थे, और उसने पालों की शक्ति तोड़ दी थी। उत्तरी भारत में जो विशाल साम्राज्य उसने स्थापित किया था, उसको वह भोग सकता था। पश्चिम में उसने पंजाब में स्थित करनाल को एवं काठियावाड़ प्रायद्वीप को विजय किया था और संभाव्यत: उसने अपने साम्राज्य को सिंधुघाटी में स्थित मुसलमान राज्यों की सीमाओं तक अपना राज्य विस्तार किया था। पूरब में गोरखपुर के कलचुरि तथा जेजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चंदेल उसके आधिपत्य को स्वीकार करते थे और पाल पददलित थे। इतने विशाल साम्राज्य के साधनों से संयुक्त होकर उसके पुत्र और उत्तराधिकारी महेंद्रपाल ने निर्दय कठोरता से पुन: पालों पर विजय प्राप्त की। पटना और गया जनपदों में पाए गए उसके ६ अभिलेखों से यह असंदिग्ध है कि उसने मगध को प्रतिहार साम्राज्य में मिलाया थोड़े ही समय पूर्व राजशाही जनपद के पाहार पुर नामक स्थान की खुदाई में जमीन के अन्दर एक स्तम्भ पाया गया है जिससे

प्रमाणित होता है कि उत्तरी बंगाल भी कुछ समय के लिए प्रतिहारों के हाथ में चला गया था। इस विजय में भोज के व्यक्तित्व और उसकी संगठन शक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाल राजाओं की असफलता, उनकी व्यक्तिगत अक्षमता, दूरदर्शिता और कूटनीतिज्ञता की कमी सूचित करती है। इन कारणों के अतिरिक्त और भी कारण हो सकते हैं। हो सकता है कि देवपाल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए झगड़ा हुआ हो। असम और उड़ीसा के अभिलेखों से प्रतीत होता है कि यह प्रदेश जिनको देवपाल ने अपने अधीन कर लिया था पुनः शक्तिशाली हो गए। असम में राजा हर्जर (८२९-३० ई०) ने साम्राजिक उपाधियाँ धारण की थीं। उसके पुत्र वनमाल के अभिलेख ने उसको अनेक युद्धों का विजेता लिखा है। उड़ीसा में शैलोद्भववंश ने करवंश के अवशेषों पर अपना आधिपत्य पुनः स्थापित किया और सैन्यभीत तृतीय माधववर्मन्-श्रीनिवास (लगभग ८५० ई०) अपने वंश की महत्ता स्थापित की। कहा जाता है कि उसने और उसके उत्तराधिकारी ने अपनी राजनीतिक प्रभुता के चिन्ह स्वरूप अश्वमेध वाजपेय तथा अन्य यज्ञ किए।

इन दोनों अधीन राज्यों का उत्कर्ष पाल राजाओं की निर्बलता का कारण या प्रभाव रहा हो किन्तु निश्चयात्मकरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

विग्रहपाल प्रथम ने एक हैहय राजकुमारी से विवाह किया। इसका प्रभाव जो कुछ भी हुआ हो किन्तु इतना निश्चय है कि नारायणपाल के शासन की समाप्ति के पूर्व ही पालों ने उत्तरी बंगाल और मगध पर पुनः अधिकार कर लिया। बिहार में पाए गए नारायणपाल के उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है कि मगध राज्य कम से कम ८७० ई० तक उसके अधिकार में रहा। प्रतीत होता है कि ६०४ ई० तक प्रतिहारों की शक्ति पर्याप्त निर्बल हो गई थी क्योंकि ६१५ और ६१७ ई० के बीच किसी समय राष्ट्रकूटों से महेन्द्रपाल के पुत्र प्रतिहार राजा महीपाल को भयंकर रूप से परास्त किया। उसकी राजधानी लूटी गई और उसके शत्रु ने उग्रता से उसका पीछा किया। यह विपत्ति संकेत करती है कि महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद सम्भवतः आंतरिक उपद्रवों के कारण प्रतिहार शक्तिहीन हो गए और पालों को अपनी पूर्वस्थिति प्राप्त कर लेने के लिए अवसर दिया। बिहार में पाए गए नारायण पाल के एक उत्कीर्ण लेख से प्रतीत होता है कि पाल राजा ने ६०८ ई० के लगभग, यदि पूर्व नहीं, उत्तरी बंगाल और बिहार को पुनः प्राप्त किया।

राष्ट्रकूट अभिलेखों का कथन है कि कृष्ण द्वितीय 'गौड़ों को नम्रता की प्रतिज्ञा देने वाला गुरु था' और 'उसकी आज्ञा अंग, कलिंग, गंग, और मगध मानते थे।' कृष्ण द्वितीय के अभियान का क्या स्वरूप और परिणाम था ज्ञात नहीं है।

नारायण पाल की मृत्यु ८०८ ई० के लगभग हुई। इसके बाद उसके पुत्र राज्य-

पाल ने कम से कम ३२ वर्ष राज्य किया। राजकीय अभिलेखों में उसको बड़े-बड़े तालाबों और ऊँचे मंदिरों के निर्माण का श्रेय दिया है। उसके बाद उसका पुत्र गोपाल द्वितीय गद्दी पर बैठा। इन दोनों राजाओं के अभिलेख मगध में पाए गए हैं। एक ताम्रपट्ट से प्रतीत होता है कि उत्तरी बंगाल उसके अधिकार में था। प्रतिहारों की गहरी हार हुई और राष्ट्रकूटों से वैवाहिक संबंध द्वारा युद्ध विराम दृढ़ किया जा चुका था। प्रतीत होता था पालों के घोर विपत्ति का काल समाप्त हो चुका है। किन्तु अभाग्यवश दो महाशक्तियों, चंदेलों और कलचुरियों ने उत्तरी भारत में अपना राजनीतिक प्रभुत्त्व जमाने का प्रयत्न किया। अतः पालों को उनके आक्रामक साम्राज्यवाद की प्रचण्ड चोट सहन करनी पड़ी।

चंदेल यशोवर्मन् ने संपूर्ण उत्तरी भारत में निरंतर सामरिक अभियान किए और हिमालय से मालवा तक और कश्मीर से बंगाल तक के संपूर्ण प्रदेश पर उसका बोलबाला रहा। उत्तरी भारत के मध्य में कालंजर के किले का एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। उसकी विजय से चंदेलों का महत्त्व बढ़ा। उनके अभिलेखों में लिखा है कि यशोवर्मन् 'गौड़रूपी क्रीड़ा-लता को काटने के लिए तलवार था' और उसके पुत्र धंग ने राढ़ा और अंग की महाराज्ञियों को कारागार में रखा। प्रतीत होना है राज्यपाल और उसके दो उत्तराधिकारियों गोपाल द्वितीय और विग्रहपाल द्वितीय के शासनों में यशोवर्मन् और धंग के हाथों बंगाल की बुरी गति हुई। इसी समय के लगभग कलचुरि युवराज प्रथम और उसके पुत्र लक्ष्मण राज ने बंगाल के विभिन्न भागों पर धावे किए। उनके आमक्रणों का क्या स्वरूप था और क्या प्रभाव पड़ा ज्ञात नहीं है।

ये विदेशी आक्रमण पालराज्य की सामरिक निर्बलता और राजनीतिक विघटन के कारण और परिणाम दोनों माने जा सकते हैं। कलचुरि और चंदेल उत्कीर्ण लेखों में अंग, राढ़ा, गौड़, और बंगाल को पृथक् इकाईयों के रूप में उल्लेख किया गया है। ऐसे साक्ष्यों की कमी नहीं है कि जिनसे यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त पृथक् विभिन्न राज्य स्वतंत्र या अर्द्ध-स्वतंत्र थे।

विग्रहपाल द्वितीय के शासन के अन्त के पूर्व या इसके कुछ ही समय बाद पालों का पैतृक राज्य एक अपहर्ता के हाथ में था जो संभाव्यतः कम्बोज राजाओं के वंश का था और जो इस समय के लगभग पश्चिम और उत्तरी बंगाल में राज्य कर रहे थे। सारांश यह है कि दसवीं शती ईस्वी के उत्तरार्ध में पाल राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। पूरब और दक्षिण बंगाल से भी उनका नियंत्रण समाप्त हो गया था। एक बौद्ध राजा महाराजाधिराज कान्तिदेव हरिकेल राज्य पर राज्य कर रहा था जो समतट और उड़ीसा के बीच के समुद्र तट पर था। उसका शासनकाल ८५०-९५० ई० की अवधि में था। देवपाल की मृत्यु के बाद जो ह्रास काल आरंभ हुआ उसका लाभ

उठा कर कान्तिदेव ने पूर्वी बंगाल में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। गोपाल द्वितीय और उसके पुत्र और उत्तराधिकारी विग्रहपाल द्वितीय के शासन काल में तीन सुअस्पष्ट राज्य थे। (१) चन्द्रराज्य जिसमें पूर्वी और दक्षिणी बंगाल सम्मिलित था; (२) काम्बोज-पाल राज्य जिसमें उत्तरी और पश्चिमी बंगाल सम्मिलित था; और मुख्य (३) पालराज्य जिसमें अंग और मगध थे।

महीपाल के बानगढ़ दानपत्र में वर्णन है कि विग्रहपाल द्वितीय की गज सेनाएँ जल से भरे हुये पूर्वी प्रदेशों में, दक्षिण में मलय पर्वतों पर, पश्चिम में मरु प्रदेशों में, और उत्तर में हिमालय पर्वतों पर घूमते फिरे हैं। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ लगाया है कि विग्रहपाल के हाथों से उसके पैतृक राज्य निकल जाने के बाद उसकी सेनाएँ सहायता या शरण प्राप्त करने के लिए विभिन्न दिशाओं में घूमती फिरीं। इसमें संकेत किया गया है कि विग्रहपाल द्वितीय, गोपाल द्वितीय, और संभवतः विग्रह पाल तृतीय के शासनों में कितना महान् संकट आ पड़ा।

४. महीपाल (ल० ९८८-१०३८ ई०) के अधीन पुनःस्थापन—बानगढ़ दानपत्र में लिखा है कि महीपाल ने 'अवधिकृत-विलुप्त' पैतृक राज्य जिसपर दूसरे राजवंश ने अधिकार कर लिया था पुनः प्राप्त किया। प्रतीत होता है कि महीपाल ने अपने राज्यारोहण के तीन वर्ष के अंदर उत्तरी और पूर्वी बंगाल पुनः प्राप्त किया।

राजेन्द्र चोल के एक सेनापति ने १०२१ से १०२३ ई० तक अपने देश को पवित्र करने के लिए गंगा जल लाने के उद्देश्य से उत्तर की ओर अभियान किया। उसने उड़ीसा और कोसलै-नाडु को जीत कर दण्ड भुक्ति, राढा और बंगाल को विजय किया। चोल विजय से जनता को क्षति और कष्ट भोगने पड़े किंतु देश की राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। महीपाल के उत्कीर्ण लेखों से प्रतीत होता है कि उत्तरी और दक्षिणी बिहार उसके अधिकार में था उसका राज्य तिरहुत पर था और संभवतः १०२६ के लगभग बनारस भी उसके राज्य के अन्तर्गत था। कलचुरि अभिलेखों का कथन है कि कलचुरि शासक गांगेय देव ने अंग के शासक (महीपाल) को हराया।

मूल्यांकन—जिस समय महीपाल सिंहासन पर बैठा था पाल शक्ति निम्नतम गहराईयों में धँस गई थी और अपने ही पैतृक भूमि पर उनका कोई आधिपत्य न था किन्तु महीपाल ने अपने पैतृक प्रदेशों को पुनः प्राप्त किया और राजेन्द्र चोल और गांगेय देव के प्रबल आक्रमणों से अपनी रक्षा की। वह बंगाल के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार पुनः स्थापित कर सका और अपने राज्य का विस्तार बनारस तक किया। इसका सबसे महान् श्रेय उसकी क्षमता और सामरिक प्रतिभा को है। बहुत कुछ

अंशों तक इस सफलता का श्रेय उत्तरी भारत की राजनीतिक परिस्थितियों को भी है। सुलतान महमूद के विनाशकारी और बारंबार आक्रमणों के फलस्वरूप उत्तरी भारत की महान् शक्तियों की शक्ति और साधन क्षीण थे और उनका ध्यान पश्चिम की ओर लगा था फिर भी सब कुछ देखते हुए महीपाल की सफलताएँ अत्यन्त प्रशंसनीय हैं और देवपाल के बाद वह पाल सम्राटों में सबसे महान् था। उसने पाल साम्राज्य की आसन्न विनाश से न केवल रक्षा की बल्कि कुछ सीमा तक अपने साम्राज्य की वृद्धि भी की। यह उसके पराक्रम और कूटनीतिज्ञता का फल था।

उसने बनारस (सारनाथ सहित) और नालंदा के धार्मिक भवनों की मरम्मत कराई। बोध-गया में उसने दो मन्दिर बनवाए उत्तरी और पश्चिमी बंगाल में अनेकानेक बड़े तालाब और नगरों की स्थापना की। बंगाल की जनता महान् सम्राट् धर्मपाल और देवपाल के नामों को भूल गई है किन्तु महीपाल का नाम लोकप्रिय गीतों में एक संक्राति काल में देश की रक्षा करने वाले एक राजा की स्मृति के रूप में आज भी जीवित है।

५. पालराज्य का विखण्डन—महीपाल के बाद उसका पुत्र नयपाल सिंहासन पर बैठा और कम से कम पन्द्रह वर्ष राज्य किया (ल० १०३८-१०५५ ई०)। कलचुरि राजा कर्ण या लक्ष्मी कर्ण से उसका दीर्घकालीन युद्ध हुआ। स्पष्ट है कि गांगेय देव की आक्रामक नीति का अनुसरण उसके पुत्र और उत्तराधिकारी ने किया। कलचुरि अभिलेखों ने वंग और गौड़ के राजाओं के विरुद्ध कर्ण के अभियानों का उल्लेख किया है।

तिब्बती पुस्तकों के अनुसार १०२६ ई० तक बनारस महीपाल के अधिकार में था किन्तु १०३४ ई० में कलचुरि राज गांगेय के हाथ में चला गया। सम्भाव्यत: गांगेय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कर्ण भी इस संघर्ष को चलाता रहा तिब्बती अनुश्रुतियाँ कलचुरियों के इस दावे की पुष्टि करती हैं कि गांगेय देव ने अंग के शासक को पराजित किया। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद कलचुरियों को हार खानी पड़ी और उन्होंने सन्धि की।

यह सन्धि अल्पकालिक थी क्योंकि विग्रहपाल तृतीय (ल०१०५५-१०७० ई०) के शासन काल में कलचुरि कर्ण ने पालों पर पुन: धावा किया। इस समय उनकी स्थिति दृढ़ थी उन्होंने परमारों और चंदेलों को पराजित किया था और महानदी की ऊपरी घाटी पर अधिकार कर लिया था। वीरभूमि जनपद के अन्तंगत पाईकोर स्थान पर कर्ण द्वारा निर्मित एक स्तम्भ मिला है जिससे यह प्रमाणित होता है कि वह कम से कम पश्चिमी बंगाल तक की सीमा तक पहुँच गया था। कलचुरि अभिलेखों में लिखा है कि वंग कर्ण की भय से काँपता था और गौड़पति उसकी सेवा में था।

संध्याकर, नंदीकृत रामचरित के टीकाकार ने लिखा है कि विग्रहपाल तृतीय ने कर्ण को पराजित किया। स्पष्टत: इस द्वितीय अभियान में भी कर्ण की पराजय हुई। सम्भवत: एक संधि हुई और इस मैत्री को पुष्ट करने के लिए कर्ण की पुत्री यौवनश्री का विवाह विग्रहपाल तृतीय से हुआ। पाल शासक पश्चिमी बंगाल पर नयपाल और विग्रहपाल तृतीय का आधिपत्य धीरे-धीरे कम हो रहा था। पूर्वी बंगाल पालों के हाथ से निकल गया था और पहिले चन्द्रवंश के और बाद को वर्मन् वंश के अधीन एक पृथक् राज्य बन गया था। उस समय बंगाल में कई और छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य भी थे। पाल राजे कलचुरियों से निरंतर संघर्ष में व्यस्त थे और उनको बंगाल में अपने पुराने प्रदेशों को पुन: प्राप्त करने का अवसर न मिलता था। कलचुरियों के पड़ोसी राज्यों ने कर्ण को बारंबार पराजित कर ग्यारहवीं शती ईस्वी के तीसरे पाद को समाप्त होते-होते उसकी शक्ति को चकनाचूर कर दिया था। किंतु पाल इसका लाभ न उठा सके। क्योंकि कर्णाट के चालुक्यों ने उस पर हमला कर दिया था। चालुक्यों के राज-कवि विह्लण ने सूचित किया है कि युवराज विक्रमादित्य छठवाँ अपने पिता सोमेश्वर प्रथम के जीवन काल में विजय अभियान पर निकला। गौड़ तथा कामरूप और अन्य अनेक राजाओं को पराजित किया। यह अभियान १०६८ ई० के बहुत पूर्व किया गया था। चालुक्य अभिलेखों ने बंगाल के विरुद्ध किए गए सामरिक अभियानों का उल्लेख किया है। उन्हीं तिथियों में बंगाल में बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ घटीं। उनमें से एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि राढा या पश्चिमी बंगाल में कर्णाट क्षत्रियवंश, सेनों का शासन, और वंग या पूर्वी बंगाल में सिंहपुर के वर्मनों का शासन स्थापित हुआ।

ग्यारहवीं शती ईस्वी के मध्य में उड़ीसा का महाशिवगुप्त ययाति नामक सोम वंशी शासक ने बंगाल पर आक्रमण किया। उसने अपनी विभिन्न विजयों की गणना करने के बाद एक दानपत्र में लिखा है कि 'गौड़ और राढा के आकाश को वेग से हिलाने से उत्पन्न हुई वायु से उसको ठंढक मिली, और वह वंग के निर्मल आकाश में पूर्णमासी का चन्द्रमा था'। प्रतीत होता है उत्तरी, पश्चिमी, और पूर्वी बंगाल के विरुद्ध किए गए कुछ सामरिक अभियानों की ओर इसका संकेत है। प्रतीत होता है राजेन्द्र चोल के सफल अभियान से और पाल साम्राज्य के विखण्डन से उड़ीसा के राजा को प्रोत्साहन मिला। बंगाल पर इन दोनों का प्रभाव विनाशकारी था।

पश्चिम और दक्षिण के इन विदेशी आक्रमणों के कारण पाल साम्राज्य की नींव हिल गई। पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी बंगाल उनके हाथ से निकल गए थे और मगध में भी उनकी शक्ति शनै: शनैः छायामात्र रह गई थी। ग्यारहवीं शती ईस्वी के मध्य के लगभग पाल साम्राज्य तंत्र चकनाचूर हो रहा था। पश्चिमी बंगाल में एक

नई शक्ति वर्मन् वंश का उदय हुआ और ग्यारहवीं शती-ईस्वी के आरंभ या मध्य में कामरूप भी गौड़ नरेश के विरुद्ध सिर उठा रहा था।

६. विघटन और अस्थायी पुनरुत्थान—महीपाल द्वितीय (ल० १०७०-७५ ई०)—विग्रहपाल तृतीय के तीन पुत्र थे—महीपाल द्वितीय, शूरपाल द्वितीय और रामपाल। ज्येष्ठ पुत्र महीपाल अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचे गए। सामन्त राजाओं ने उसके विरुद्ध एक सुसंगठित विद्रोह किया। उसके सलाहकारों ने विद्रोहियों से लड़ने के लिए मना किया क्योंकि उसकी सेना पर्याप्त रूप से सशस्त्र नहीं थी। किन्तु वह न माना और लड़ाई में उसकी मृत्यु हुई और वरेन्द्री दिव्य नामक कैवर्त्त जाति के एक उच्च अधिकारी के हाथ में चला गया।

रामपाल ने बाद को वरेन्द्री को पुनः प्राप्त किया जिसका विवरण समकालीन संस्कृत काव्य रामचरित में दिया हुआ है। इस ग्रंथ के रचयिता संध्याकर नंदी हैं। इसमें १०७०-११२० ई० का बंगाल का इतिहास दिया हुआ है। यह ग्रंथ विवरणात्मक तथा आलोचनात्मक है किन्तु इसका ग्रंथकार रामपाल का पक्षपाती और महीपाल के प्रति द्वेषपूर्ण था। प्राचीन बंगाल का यह एकमात्र विश्वस्त ऐतिहासिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ श्लेष में लिखा है। इसके प्रत्येक श्लोक द्विअर्थी हैं। एक रूप में पढ़ने पर पूरी रामायण की कथा है और दूसरे रूप में पढ़ने पर इसमें रामपाल देव का इतिहास है। रामचरित के हस्तलिखित प्रति में रामचरित का संस्कृत मूलपाठ तथा पूरे प्रथम सर्ग पर और दूसरे सर्ग के ३५ श्लोकों पर एक संस्कृत टीका है। मूलपाठ की अपेक्षा टीका में रामपाल के शासन के संबंध में अधिक विवरण दिया हुआ है। मूलपाठ की ग्रन्थकार संध्याकर नंदी है जिसने इस ग्रन्थ का निर्माण रामपाल के द्वितीय पुत्र मदनपाल देव के शासन ने किया। ग्रन्थकार को रामपाल के तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासन की घटनाओं को जानने के असाधारण अवसर प्राप्त थे, क्योंकि उसका पिता संधि विग्रहक था। उसने महीपाल के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'भूतं सत्यं नयो नीतं तयीररक्षणे युक्तः प्रसक्तः (महीपाल न तो सत्य का और न सद्-नीति का पालन करता था। वह कपट का सहारा लेता था) इस पुस्तक से महीपाल द्वितीय के चरित या शासन की जानकारी प्राप्त करना असम्भव है। केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता तथा राज्य के विभिन्न भागों में विखण्डन की सामान्य प्रवृत्ति संभवतः इस विद्रोह के कारण थे। महीपाल द्वितीय इस अवसर के योग्य अपने को न बना सका और उसके व्यक्तिगत गुण इतने सक्षम नहीं थे कि वह इस संकट को पार कर सके। इसकी पुष्टि में कोई तथ्य नहीं है कि वह विशेष रूप से अयोग्य राजा था या पाल राज्य के पतन के लिए वह विशेष रूप से जिम्मेदार था। संभवतः वह परिस्थितियों का शिकार था जिस पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं था।

कैवर्त्त राजाओं के अधीन वरेन्द्री—प्रतीत होता है कि दिव्य महीपाल के अधीन एक उच्च अधिकारी था जिसने महीपाल की हत्या कर राज्य के अधिकांश भाग को हस्तगत कर लिया। रामचरित में लिखा है कि वरेन्द्री पालों का पैतृक गृह था जिस पर दस्यु और उपधि-व्रति दिव्य ने अधिकार कर रखा था। उसकी टीका में लिखा है कि व्रति का अर्थ है क्षद्मन्। इसका अर्थ यह हुआ कि दिव्य एक दुष्ट था यद्यपि उसने दावा किया कि उसके कार्य कर्त्तव्य बुद्धि से प्रेरित थे। अर्थात् विद्रोह का कारण उसने देश-भक्ति बताया। इस पुस्तक से स्पष्ट है कि ग्रंथकार दिव्य को एक दुष्ट और उसके द्वारा सिंहासन पर अधिकार जमा लेने को विद्रोह मानता था रामचरित में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह प्रतीत हो कि शासक राजा के अत्याचारों से देश की रक्षा करने के लिए उसने सिंहासन पर अधिकार किया था। दिव्य राज्य का एक उच्च अधिकारी था। उसने केन्द्रीय सत्ता की कमजोरी का, राज्य में उथल-पुथल का और राजघराने के भाइयों में मनमुटाव का भी लाभ उठा कर उसने अपने स्वामी की हत्या कर स्वमेव राजा बन बैठा इसमें संदेह नहीं कि दिव्य ने महीपाल की हत्या की। भोज के सिंहासनारूढ़ हो जाने के बाद पूर्वी बंगाल का राजा जाट वर्मन ने दिव्य पर हमला किया और दिव्य की सेना को मार भगाया। यह स्पष्ट है कि वरेन्द्री और वंग के दो स्वतन्त्र राज्य एक दूसरे के शत्रु थे। दिव्य ने वरेन्द्री में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी क्योंकि उसके बाद इस वंश के तीन वंशजों ने उत्तरोत्तर राज्य किया। रामपाल न केवल वरेन्द्री पर अधिकार करने में असफल हुआ बल्कि दिव्य ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। इससे प्रमाणित होता है कि दिव्य एक योग्य और सशक्त राजा था। रामचरित के ग्रंथकार ने दिव्य के पौत्र भीम की एक शासक के रूप में बहुत प्रशंसा की है। उसके विवरण से प्रतीत होता है कि पालों के समय में या उनके उखड़ जाने के बाद देश में बड़ी उथल-पुथल थी जिसकी भीम ने सुव्यवस्थित किया और देश में शान्ति और समृद्धि हुई। इधर वरेन्द्री में भीम अपने राज्य को दृढ़ कर रहा था और उधर रामपाल भीम को उखाड़ने की तैयारियाँ कर रहा था।

रामपाल का शासन—मदनपाल के मनहली ताम्रपट्ट से स्पष्ट है कि शूर-पाल सिंहासन पर बैठा। सम्भाव्यतः उसके राज्य में मगध का कुछ भाग और राढा था बाद को केवल वंग या इसका एक भाग रह गया। डर था कि राज्य का शेष भाग भी पाल वंश के हाथ से निकल जायगा अतः पूर्ण हताश होकर रामपाल ने जहाँ कहीं से भी सहायता मिल सकती थी सहायता माँगा। वह घर-घर घूमा और शक्तिशाली राजाओं की सहानुभूति और सहायता प्राप्त किया जो पहले उसके सामन्त थे। उसके प्रयत्न सफल हुए। भूमि और प्रचुर धन देकर उसने कुछ ऐसे सशस्त्र राजाओं को

मिला लिया जिनके पास सुसज्जित सेनाएँ थीं। रामचरित में बंगाल के इन स्वतन्त्र या अर्द्ध स्वतन्त्र राजाओं की सूची दी हुई है और यह अत्यंत ऐतिहासिक महत्व की सूची है। इस सूची से बंगाल के राजनीतिक विखण्डन का एक चित्र सामने आता है।

रामपाल की मित्र शक्तियों में सर्वप्रमुख उसका मामा मथन या महरण था जो अपने दो पुत्रों और एक भतीजे के साथ रामपाल का साथ दिया। मित्र राजाओं की बडी और सुसज्जित सेनाओं के साथ उसने अपने महा प्रतिहार राष्ट्रकूट शिवराज को वरेन्द्री पर अधिकार करने के लिए भेजा। जिसमें अश्वारोही, गज-सेना और पदाति थे। उसने वरेन्द्री को लूटा। यह सूचना मिलने पर कि आंचलिक थानों पर उसकी सेना ने अधिकार कर लिया है रामपाल की सम्पूर्ण सेना ने नावों के बेड़ों द्वारा गंगा को पार किया और उसके उत्तरी तट पर सुरक्षापूर्वक पहुँच गई। एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें गजारोही भीम बंदी बना लिया गया इससे युद्ध के भाग्य का निर्णय हो गया भीम की सेना भागी और रामपाल के 'अनियंत्रित सैनिकों' ने उसके शिविर को लूटा। इसके बाद भीम के मित्र हरि ने सैनिकों को एकत्रित कर वीरता से लड़ा और कुछ सफलताएँ भी प्राप्त कीं। किंतु रामपाल के पुत्र ने जिस पर इस युद्ध का भार था 'युद्ध-कालिक उपहारों को देकर स्वर्ण घटों को खाली किया।' हरी और भीम के अनुयायियों में कुछ मनमुटाव उत्पन्न किया जिससे एक दूसरे को अड़चन हुई अंततः हरि मिला लिया गया इससे भीम की सेना के भाग्य पर मुहर लग गई और संपूर्ण साम्राज्य रामपाल के समक्ष धराशायी था। इस विद्रोह का दमन कर रामपाल ने भीम से भयंकर बदला लिया। भीम वध-स्थल ले जाया गया और उसकी आँखों के सामने उसके परिवार के महत्वपूर्ण सदस्यों का वध किया गया और उसके बाद स्वयं भीम की 'बाण-समूह' से हत्या की गई। इस तरह भीम के जीवन और वरेन्द्री के विद्रोह का अन्त हुआ।

भीम की पूर्ण पराजय के बाद रामपाल ने उसके विशाल कोष पर तथा 'अपने प्रियतम देश वरेन्द्री पर दीर्घकाल के पश्चात् अधिकार किया' उसने शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। रामपाल ने करों में कमी की। कृषि की उन्नति की और जनोपयोगी महान् निर्माण कार्यों की रचना की, और नियमित प्रशासन प्रारम्भ किया। देश को भयंकर शासन से छुटकारा मिला; शत्रुओं द्वारा संहार और अग्निकाण्ड समाप्त किया गया; और कृषि द्वारा भूमि लहलहा उठी। रामपाल ने शासन का भार अपने पुत्र को सौंपा जो उसकी आज्ञाओं के अनुसार कार्य करते हुए शासन का भार ग्रहण किया और आंतरिक व्यवस्था की स्थापना की। रामपाल की राजधानी रामावती में थी जो अन्त तक पालों की राजधानी बनी रही।

वरेन्द्री में अपनी शक्ति को दृढ़ कर रामपाल ने पूरब और दक्षिण में पड़ोस

के प्रदेशों को अधीन कर अपने वंश के प्राचीन गौरव की स्थापना करने का प्रयत्न किया। पूर्वी बंगाल के वर्मन् राजा उसकी रक्षा में आया और एक हाथी अपना रथ अर्पण किया। रामपाल ने कामरूप को अपने नियंत्रण में लिया। असम का पराजित राजा सम्भवतः धर्मपाल था। इस विजयी अभियान का नेतृत्व एक सामन्त राजा ने किया था। राढा के सामन्त राजा उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हुए और संभवतः उनकी सहायता से उसने उड़ीसा पर आक्रमण किया और अपनी विजयों का कलिंग तक विस्तार किया। इस समय उड़ीसा राजनीतिक विघटन की स्थिति में था। कलिंग के उत्तरकालीन पूर्वी गंगराजे उत्तर में अपने राज्य विस्तार करने में लगे थे। राजा देवेन्द्रवर्मन् राजराज का कथन है कि उसने १०७५ ई० के कुछ पूर्व उड़ीसा को विजय कर लिया है। किन्तु यह उड़ीसा की विजय पूरी न हुई थी क्योंकि उसका पुत्र अनंतवर्मन् चोडगंग (१०७६-११४७ ई०) उत्कल के पराजित राजा के स्थान पर दूसरे राजा को (१११२ ई० के पूर्व किसी समय) बैठाया और १११८ ई० के उत्कीर्ण लेख में उसने दृढ़तापूर्वक कहा है कि सारे उत्कल प्रदेश पर उसकी सम्पूर्ण अधीश्वरता थी। किन्तु प्रतीत होता है कि ११३५ ई० के कुछ पूर्व तक उड़ीसा न तो अंतिम रूप से विजित और पूर्वी गंग साम्राज्य में सम्मिलित नहीं हुआ। क्योंकि उसी वर्ष के एक उत्कीर्ण लेख में अनंतवर्मन् ने उत्कल के विजय का उल्लेख किया है। सम्भाव्यतः उस तिथि के कुछ समय बाद वह अपनी राजधानी उड़ीसा के कटक नगर में ले गया। दक्षिण से पूर्वी गंग उड़ीसा की भूमि निरंतर अपहृत किए जा रहे थे और उत्तर की ओर से भी वह अभागा देश आक्रमणों से बचा न रहा रामचरित ग्रंथ में लिखा है कि दण्डमुक्ति के राजा जयसिंह ने उत्कल के राजा कर्ण केशरी को पराजित किया था। इस सामन्त की विजय से रामपाल की उत्कल की विजय में सुविधा हुई। उधर पूर्वी गंग की भी शक्ति उत्कल में बढ़ रही थी और रामपाल का भयभीत होना निर्मूल नहीं था क्योंकि बाद को अनंतवर्मन् चोड गंग ने सीधे गंगा के तट तक विजय अभियान किया। उत्कल का राजा अनंतवर्मन् चोड गंग और रामपाल दोनों का दाँव-मात्र था। क्योंकि दोनों प्रतिद्वन्द्वी राजे एक दूसरे की महत्वाकांक्षा को निष्फल करने के लिए अपने आश्रितों को उड़ीसा के सिंहासन पर बैठाते थे। रामपाल का आश्रित एक सोम-वंशी केशरी राजा था जिसको स्पष्टतः राजराज देवेन्द्रवर्मन् (लगभग १०७५ ई०) ने हराया था और अपने एक नामांकित को उसकी जगह बैठाया था। कुछ समय बाद रामपाल ने पराजित राजा (या उसके उत्तराधिकारी) की सहायता कर उसको सिंहासन पर पुनः बैठाया। १११२ ई० के लगभग अनंतवर्मन् चोड गंग ने पुनः पुराने राजा को सिंहासन पर बैठाया इस तरह अभागे उड़ीसा राज्य पर केवल पाल और पूर्वी गंग राजाओं में द्वंद्व युद्ध होता रहा। सम्भवतः रामपाल की मृत्यु के बाद गंग

राजा को उड़ीसा विजय करने और अपने राज्य में सम्मिलित करने की सफलता मिली। रामचरित में लिखा है कि रामपाल ने निशाचरों को विनष्ट कर कलिंग तक के सारे प्रदेश की रक्षा की रामपाल गंगराजा को रोक रखने में इस कारण भी सफल हुआ कि चोल राजा कुलोत्तुंङ्ग (१०७०-१११८ ई०) ने गंग राज्य पर आक्रमण किया और सम्भवतः ग्यारहवीं शती के अंतिम वर्षों में या बारहवीं शती के आरम्भ के वर्षों में चोल कलिंग के उत्तरतम प्रदेश में घुस गए। ज्ञात नहीं है कि रामपाल और चोलों में कोई साठ-गाँठ थी। तामिल पद्य कलिंगट्टू में उन जातियों के नाम दिए हुए हैं जिन्होंने उत्तर कलिंग के चोल विजयों के सम्बन्ध में कुलोत्तुंग को श्रद्धांजलि अर्पण की थीं। उनमें वंग, बंगाल, और मगध के नाम हैं। कुमोत्तुंग ने 'गंगा और काबेरी नदियों के बीच के प्रदेश का राजा' उपाधि की धारण की थी। इस प्रकार के कथनों में कोई बल 'नहीं है। फिर भी हो सकता है कि रामपाल ने विवादास्पद आंचलिक भूमि के सम्बन्ध में नाम के लिए चोल राजा की अधीश्वरता स्वीकार कर मैत्री सम्बन्ध बनाए रखना नीति कुशलता समझी हो क्योंकि इस समय के लगभग चोल राजा पूर्वी गंग और उत्तर कालीन चालुक्यों दोनों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। इन दोनों ही शक्तियों ने रामपाल के प्रदेश में आक्रमण किया था। अतः उसने समान शत्रुओं के विरुद्ध चोलों का सहारा प्राप्त करने के लिए चोलों से मैत्री की हो।

कर्णाटों ने बंगाल विजय करने के प्रयत्न किए थे किन्तु रामपाल ने उन्हें ऐसा करने न दिया। इस समय चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्टम् कर्णाट पर राज्य कर रहा था। उसने और उसके पूर्वजों ने बंगाल पर आक्रमण किये थे। किन्तु इन आक्रमणों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात पाल राज्य की सीमाओं के अन्दर दो कर्णाट शासक वंशों की स्थापना थी—पश्चिमी बंगाल में सेन वंश की, और मिथिला या उत्तरी बिहार में न्याय देव की। रामपाल ने सेनों को आगे बढ़ने न दिया किन्तु अन्त में वे पालों को बंगाल से खदेड़ने में सफल हुए। उनका इतिहास अलग अध्याय में दिया गया है। कर्णाटिक उत्पत्ति का एक सामन्त राजा नान्य १०९७ ई० में मिथिला के सिंहासन पर बैठा और उसके वंश ने दीर्घकालीन तक उस प्रांत पर राज्य किया। रामपाल के शासन काल में मिथिला निश्चित रूप से पालों के हाथों से निकल गई।

रामपाल को गाहडवालों से भी मोर्चा लेना पड़ा। इस वंश का संस्थापक चन्द्रदेव था। जो ग्यारहवीं शती ई० के अन्तिम चरण में जीवित था। इस वंश का राज्य प्रायः सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश पर था और उनकी राजधानी सम्भवतः वाराणसी थी। यद्यपि कन्नौज का साम्राजिक नगर उनके राज्य के अन्तर्गत था और उस वंश के राजे अपने को कान्यकुब्जपति भी कहते थे फिर भी वे कभी-कभी वाराणसी या काशी के राजा कहलाते थे। सम्भाव्यतः गाहडवाल राज्य और पालों के राज्य की

सीमाएँ एक दूसरे को छूती थीं। अतः उनमें विरोध होना स्वाभाविक और प्रायः अवश्यंभावी था। राहन दानपत्र (तिथ्यंकित ११०९ ई०) में गाहड़वाल राजा मदन-पाल के पुत्र गोविन्दचन्द्र के सम्बन्ध में यह वर्णन है कि 'वह गौड़ के दुर्दमनीय शक्ति शाली वृद्धाकार हाथियों के पंक्तियों के अग्रिम मण्डलाकार को चीरने में भयंकर था' यह युद्ध अवश्य ही रामपाल से हुआ था। इस युद्ध का क्या कारण था और इसमें किसकी विजय हुई कहा नहीं जा सकता। 'धृत-मध्यप्रदेश-तनिमा' पद द्वारा वरेन्द्री की राजनीतिक अवस्था का वर्णन किया गया है। जिसका अर्थ है कि रामपाल ने मध्यदेश की बढ़ती हुई शक्ति को (गाहड़वाल राज्य को) रोक रखा।

मूल्यांकन—रामपाल की सफलताओं और विजयों का श्रेय उसके व्यक्तित्व और सद्गुणों को है। अपनी जन्म-भूमि वरेन्द्री से निर्वासित होकर संकटपूर्ण जीवन बिताते हुए रामपाल ने न केवल सम्पूर्ण बंगाल पर अपना आधिपत्य पुनः स्थापित किया बल्कि असम और उड़ीसा पर भी अपनी प्रभुता स्थापित की। उसने भीम सदृश्य वीर और लोकप्रिय राजा की शक्ति को चूर्ण किया। गंग, चालुक्य, और गाहड़वाल सदृश्य विकट शत्रुओं से अपने राज्य की रक्षा करने में सफल हुआ। रामचरित के ग्रन्थकार ने ठीक ही लिखा है कि रामपाल की अधीनता में वरेन्द्री ने दीर्घकाल तक शान्ति का आनन्द लिया। कोई दुष्ट-पुरुष उसकी शान्ति को भंग न कर सका। रामपाल अवश्य ही काफी अवस्था तक जीवित रहा। मनहली ताम्रपट्ट के अनुसार उसने अपने पिता के जीवनकाल में ही युद्ध क्षेत्र में अपने शौर्य को प्रदर्शित किया था। अतः अपने दो भाइयों के राज्यारोहण के बाद जब वह सिंहासन पर बैठा तब उसकी उमर कम न रही होगी। चण्डिमड प्रतिमा उत्कीर्ण लेख से प्रकट है कि उसने कम से कम ४२ वर्ष तक राज्य किया। अपने मामा महण की मृत्यु का समाचार सुनकर वह शोक से अभिभूत हो गया। महण और उसके दो पुत्र तथा भतीजा उसके महान् संकट काल में उसके सबसे प्रबल सहायक थे। रामपाल इस दुख को सहन न कर सका। और मुंगेर में गंगा जी में डूब कर अपनी जीवन लीला समाप्त की। जैसा कि भारत में प्राचीन प्रथा थी।

७. पाल शासन का अन्त—प्रतीत होता है रामपाल की मृत्यु के बाद के काल में आन्तरिक उपद्रव थे। कुमारपाल, गोपाल तृतीय, मदनपाल (लगभग ११२०-११५५ ई०) के काल में पाल राज्य का पतन हुआ। पतन के क्या कारण थे यह ठीक ज्ञात नहीं है। किन्तु आन्तरिक विखण्डन और विदेशी आक्रमण निश्चय ही इसके कारण थे।

कुमारपाल के शासन के आरम्भ में उपद्रव शुरू हुए। कमौली पट्ट का कथन है कि कुमारपाल के मंत्री वैद्यदेव ने दक्षिण बंगाल में एक समुद्री युद्ध विजय प्राप्त की

और पूरब में तिग्य देव के विद्रोह का दमन किया। अनुमानतः तिग्यदेव कामरूप का सामन्त राजा था जिसको रामपाल ने विजय किया क्योंकि इस विद्रोह का दमन करने के बाद उस प्रदेश का राजा हो गया जिसमें प्राग्ज्योतिष-भुक्ति और कामरूप-मण्डल सम्मिलित थे। वैद्यदेव वस्तुतः स्वतंत्र बन बैठा।

इसी समय के लगभग पूर्वी बंगाल में वर्मन् वंश स्वतंत्र था जिसकी राजधानी विक्रमपुर थी। रामपाल के समय में वर्मन् शासक उसकी रक्षा में आया था किन्तु वेलाव ताम्रपट्ट से ज्ञात होता है कि भोजवर्मन् एक स्वतंत्र राजा था। दक्षिण बंगाल में वैद्यदेव का सामरिक अभियान संकेत करता है कि या तो अनंतवर्मन् चोड गंग से या उत्तरकालीन चालुक्यों से पुनः युद्ध आरंभ हुआ। जिसके फलस्वरूप सेन वंश का प्रादुर्भाव हुआ। पीछे लिखा जा चुका है कि पूर्वी गंग राजा का विजय अभियान ११३५ ई० के पूर्व गंगा के तट पर मिदनापुर तक था। उसने गंगा के तट पर मन्दार के राजा को भी पराजित किया। किन्तु पाल अभिलेखों का कथन है कि कुमारपाल के शासनकाल में दक्षिण बंगाल के अभियानों में पालों की विजय हुई। रामचरित के एक श्लोक से भी संकेत मिलता है कि कलिंग में मदनपाल को कुछ सफलता मिली या कलिंग के राजा को परास्त करने की शक्ति उसमें थी। किंतु कुछ ही समय बाद पालों के और अनन्तवर्मन् के राज्यों के बीच के अंचल प्रदेश में एक शक्ति उदय हुई जिसने दोनों को हराया और जो अपनी विजयी सेना उनके राज्यों के केन्द्र तक ले गई। ये सेन थे जिन्होंने निश्चय ही पालों और पूर्वी गंगों के दक्षिण बंगाल में अपने पैर जमाने के लिए जो युद्ध चल रहा था उसका लाभ उठाया। इसी समय उत्तर-कालीन चालुक्यों ने भी आक्रमण किए जिससे उनके कार्य में सुविधा हुई। हो सकता है कि कुमारपाल के शासन काल में दक्षिण बंगाल में जो समुद्री अभियान किए गए थे वे सेनों के विरुद्ध किये गए थे।

पश्चिम में अब तक रामपाल ने गाहडवालों को रोक रखा था। किंतु उनकी मृत्यु का और पालों की निर्बलता का लाभ उठाकर उन्होंने और प्रदेश जीते। मानेर पट्टों का कथन है कि ११२४ ई० तक वे पटना जनपद तक बढ़ गये थे। लर पट्टों से स्पष्ट है कि ११४६ ई० में गाहडवाल राजा गोविन्द्र चन्द्र मुंगेर पर अधिकार किए हुए था। किन्तु जयनगर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि ११५४ ई० के लगभग मदनपाल ने मुंगेर को पुनः प्राप्त कर लिया था। गाहडवालों के विरुद्ध इस युद्ध में अंग के राजा चन्द्रदेव ने मदनपाल की अधिकाधिक सहायता की। वह महण का पौत्र सुवर्णदेव का पुत्र था और उसका सम्बन्धी था। रामचरित के ग्रंथकार ने भी इस मैत्री की बड़ी प्रशंसा की है। रामचरित का कथन है कि संकटकाल में जब उसका राज्य अव्यवस्थित था मदनपाल ने एक सच्चरित राजा से मैत्री की। रामचरित से

प्रतीत होता है कि मदनपाल के राज्य में और भी उपद्रव हुए थे।

प्रतीत होता है कि मदनपाल ने विजयसेन को हराया जो दक्षिणी और पश्चिमी बंगाल का राजा बन बैठा था। संभवतः यह विजय निर्णायक नहीं थी। किंतु इस आक्रमण से उत्तरी बंगाल में मदनपाल की शक्ति पर्याप्त निर्बल हो गई। हो सकता है मिथिला के कर्णाट शासक ने गौड़ पर आक्रमण किया हो। पीछे लिखा जा चुका है कि नान्यदेव ने गौड़ और वंग की शक्तियों को तोड़ा। नान्यदेव का पुत्र मदनपाल का समकालीन था और संभाव्यतः उसके राज्य पर आक्रमण किया हो और कुछ सफलता प्राप्त की हो।

आन्तरिक विघटन और विदेशी आक्रमणों के कारण पालराज्य धराशायी हुआ। मदनपाल के शासन के कम से कम आठवें वर्ष तक उत्तरी बंगाल का अधिकांश भाग यदि संपूर्ण नहीं तो उसके राज्य के अन्तर्गत था। उसके बाद उत्तर बंगाल में उसके राज्य का कितना विस्तार था और वह किस रूप का था यह ज्ञात नहीं है। जयनगर प्रतिमा उत्कीर्ण लेख प्रकट करता है कि उसके शासन के चौदहवें वर्ष में मुंगेर जनपद पर उसका राज्य था। सेनों, गाहडवालों और मिथिला के कर्णाट शासकों की शक्तियों को देखते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मदनपाल की मृत्यु के समय पश्चिमी, दक्षिणी, और पूर्वी बंगाल में, और पश्चिमी और उत्तरी बिहार में पालों का आधिपत्य समाप्त हो चुका था और पालराज्य मध्य और पूर्वी बिहार तक सीमित था, संभाव्यतः उसमें उत्तरी बंगाल का भी एक भाग सम्मिलित था। मदनपाल की मृत्यु के दस वर्ष के भीतर सेनों द्वारा धर्मपाल और देवपाल के वंशज इस अंतिम आश्रय स्थान से भी खदेड़ दिये गए, और इतिहास से उनका नाम विलुप्त हो गया।

प्रतीत होता है गोविन्दपाल पालवंश का अंतिम राजा था। गौड़ राज्य पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के पूर्व सेन वंश के राजाओं को संभाव्यतः उसके विरुद्ध कई बार सेनाएँ भेजनी पड़ीं।

अध्याय | ४

सेन वंश

१. सेन राजाओं की उत्पत्ति—सेन वंश का मूलस्थान कर्णाट था जो दक्षिण भारत में है। उनका मूलस्थान वर्तमान मैसूर और हैदराबाद राज्य का वह प्रदेश है जहाँ कन्नड भाषा बोली जाती है। वे 'ब्रह्म-क्षत्रि' वर्ण के थे।

देवपारा उत्कीर्ण लेख के अनुसार चंद्र वंशोत्पन्न वीरसेन आदि दक्षिणी प्रदेश के शासक थे। उस सेन वंश में ब्रह्म-क्षत्रियों का शिरोभूषण सामन्त सेन उत्पन्न हुआ। माधै नगर दानपत्र में यही वर्णन कुछ संक्षिप्त रूप में है। उसमें लिखा है कि सामन्त सेन कर्णाट-क्षत्रिय वंश का शिरोभूषण था। देवपारा उत्कीर्ण लेख में सामन्त सेना को कर्णाट की लक्ष्मी के लूटने वालों का संहारक कहा है। प्रतीत होता है कि कर्णाट सेन वंश का प्रथम व्यक्ति था जो दक्षिण से आकर बंगाल में बसा। प्रत्यक्षतः सामन्त सेन इतना शक्तिशाली और पराक्रमी था कि उसका पुत्र बंगाल में एक राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ। उसने राजकीय पदवियाँ धारण कीं। डॉ० डी० आर० भंडारकर ने ब्रह्म-क्षत्रिय का अर्थ दिया है 'वे जो पहिले ब्राह्मण थे और बाद को क्षत्रिय हो गए', अर्थात् 'वे जिन्होंने ब्राह्मण वृत्ति के स्थान पर क्षत्रिय वृत्ति ग्रहण की'। सेन अभिलेखों में सामन्त सेन को 'ब्रह्म-वादी' लिखा है। श्री एन० जी० मजुमदार ने इसका अर्थ लगाया है कि 'वह उतना ही ब्राह्मण था जितना क्षत्रिय' माधै नगर दानपत्र में सेन राजाओं के सामरिक पराक्रमों का वर्णन करने में ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी पदों का प्रयोग किया गया है उनके संबंध में कहा गया है कि उन्होंने 'त्रैलोक्य विजय करने के अनुरूप 'ऋतु' के लिए तैयारियाँ कीं'।

इस वंश के अनेक उत्कीर्ण लेखों में 'सेनान्वय' के जैन शिक्षकों की एक या अधिक पंक्तियाँ दी हुई हैं। इससे यह अत्यधिक संभाव्य है कि बंगाल के सेन जैन शिक्षकों की इस कर्णाटक वंश के थे।

पाल अभिलेखों से प्रतीत होता है कि उन्होंने बहुसंख्यक विदेशियों को नौकर रखा था। पाल उत्कीर्ण लेखों में देवपाल के समय से मदनपाल के समय तक के राजकीय कर्मचारियों की सूची में नियमित रूप से यह पद आता है, 'गौड़-मालव-खश-हूण-कुलिक-कर्णाट-लाट-चाट-भाट'। हो सकता है कि केन्द्रीय शक्ति के निर्बल पड़ जाने

पर कुछ कर्णाट कर्मचारियों ने धीरे-धीरे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली हो। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है काम्बोजों ने भी दसवीं शती ईस्वी में बंगाल में सम्भवतः इसी प्रकार अपने राज्य की स्थापना की थी। नैहटि ताम्रपट्ट के कथनानुसार सामान्त सेन के बहुत पूर्व सेन राढ़ा में रहते थे। यह भी हो सकता है कि सेन विदेशी आक्रामकों के साथ आए हों और विजित प्रदेशों में स्वतंत्र राज्य स्थापित किये हों। पीछे लिखा जा चुका है कि कर्णाट युवराज विक्रमादित्य ने १०६८ ई० के लगभग किसी समय बंगाल और असम के विरुद्ध एक विजयी आक्रमण का नेतृत्व किया था। इसके पूर्व और बाद को भी कई आक्रमण हुए। सन् ११२१ और ११२४ ई० के उत्कीर्ण लेखों में विक्रमादित्य द्वारा अंग, वंग, कलिंग, गौड़, मगध, और नेपाल विजय का उल्लेख है। सोमेश्वर तृतीय (११२७-३८ ई०) ने गर्व किया है कि उसने आन्ध्र दविड़, मगध, और नेपाल के राजाओं के सिरों पर पैर रखें। विज्जल (ल० ११४५-११६७ ई०) ने भी कहा है कि उसने वंग, कलिंग, मगध, और नेपाल को विजय किया। कहा जाता है कि उसके पुत्र सोम ने भी नेपाल और कलिंग विजय किया और गौड़ों की श्रद्धांजलि पाया। प्रतीत होता है कि ये राजे अपने दूरस्थ अधीश्वर के प्रति अपनी नाममात्र की वश्यता दिखाते थे। और सम्भवतः उन्हीं कर्णाट राजाओं के साथ वे इस युद्ध में गए थे। क्योंकि यह संभाव्य नहीं प्रतीत होता कि वे अपने बल पर वंग, मगध, और नेपाल पर कोई आक्रमण करते। इसी समय के लगभग जब सेन बंगाल में अपनी अधीश्वरता स्थापित कर रहे थे दूसरा कर्णाट राजा नान्यदेव बिहार और नेपाल में यही कर रहा था। यह भी संभाव्य है कि गाहडवाल जिन्होंने इसी समय के लगभग एक शक्तिशाली राज्य को स्थापना की जिसकी राजधानी कन्नौज थी कर्णाट के रहने वाले थे।

प्रतीत होता है चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम ने परमार राजा भोज प्रथम की राजधानी पर धावा बोलकर और कलचुरि राजा कर्ण को हरा कर उत्तरी भारत में कर्णाट आधिपत्य का रास्ता खोल दिया। जिसके फलस्वरूप उत्तरी भारत में सशक्त कर्णाट राज्य स्थापित हुए। यह अत्यंत संभाव्य है कि चालुक्य वंश के कर्णाट राजाओं की सामरिक विजयों की वेगवती धारा में सेन राजा सामन्त सेन या उसके उत्तराधिकारी, और नान्यदेव भी उत्तरी भारत में शक्तिशाली राज्यों की स्थापना की। प्रतीत होता है कि सोमेश्व र प्रथम और विक्रमादित्य षष्ठ के शासन के समय ग्यारहवीं शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध में और बारहवीं शती ईस्वी के प्रारंभिक वर्षों में उत्तर पर चालुक्य आक्रमणों के साथ बंगाल में सेनों का और बिहार में नान्यदेव का उत्कर्ष हुआ।

सेन राजे—सेन वंश का इतिहास सामन्त सेन से आरम्भ होता है। उसने

कर्णाट में विभिन्न युद्धों में अपना शौर्य प्रमाणित किया और वृद्धावस्था में गंगा के तट पर के वनों में स्थित पवित्र आश्रमों में आया जाया करता था, सम्भवतः राढा के किसी भाग में (वर्तमान वर्दवान क्षेत्र)। यह प्रतीत नहीं होता कि उसने कोई राज्य स्थापित किया हो। प्रतीत होता है उसका पुत्र हेमन्त सेन शासक था और ग्यारहवीं शती ईस्वी के अंतिम चरण में जीवित था। दिव्वोक के विद्रोह के बाद पाल राज्य का विखण्डन हुआ सम्भवतः जिससे राढ़ा में उसको एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का अवसर मिला।

विजय सेन (ल० १०९५—११५८ ई०)—हेमन्त सेन के बाद उसका पुत्र विजयसेन सिंहासन पर बैठा। वह अवश्य ही एक छुद्र राजा रहा होगा लेकिन उसने प्रायः संपूर्ण बंगाल को जीत कर अपने वंश की महत्ता की नींव रखी। किन स्थितियों में उसने राढा के अन्य राजाओं को हरा कर और अन्त में वर्मनों से पूर्वी बंगाल और पालों से उत्तरी बंगाल का कम से कम कुछ भाग जीत सका हमें निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं है। सम्भवतः बंगाल में उसकी सफलता और नान्यदेव की बिहार में सफलता उत्तरी भारत में कर्णाट आधिपत्य से सम्बन्धित है। विजय सेन नान्यदेव का समकालीन था सम्भवतः वह उस समय सिंहासन पर था जब रामपाल ने भीम के विरुद्ध अपने अभियान में द्रव्य और प्रदेशों का प्रचुर उपहार देकर राढा के स्वतंत्र राजाओं की सहायता प्राप्त की। रामचरित में निद्रावली के विजयराज नामक मित्र सामन्त राजा का नाम आया है। उससे विजयसेन का तादात्म्य हो सकता है किन्तु यह निश्चय नहीं है। आनन्दभट्टकृत बल्लाल चरित (इस पुस्तक की यथार्थता संदिग्ध है) में उसके सम्बन्ध में 'चोड गंग-सखः' पद आया है। प्रतीत होता है कि उसने अनन्त वर्मन् चोड गंग से मैत्री कर के राढा में अपना आधिपत्य स्थापित किया हो।

देवपारा उत्कीर्ण लेख में स्पष्ट लिखा है कि उसने कई स्वतंत्र राजाओं से युद्ध किये और नान्य, वीर, राघव, वर्धन, और गौड़, कामरूप, और कलिंग के राजाओं पर विजय प्राप्त की। उसके शत्रुओं में प्रमुख नान्य तथा गौड़पति थे। नान्य कर्णाट का राजा था जिसने १०९७ ई० के लगभग मिथिला विजय किया। भारत के नाट्यसूत्र की एक टीका नान्य ने लिखी थी। जिसकी पुष्पिका में लिखा है कि उसने वंग और गौड़ की शक्तियों को भंग किया। नान्यदेव ने प्रथम उत्तरी बिहार में अपने राज्य को दृढ़ किया और तब बंगाल की ओर ध्यान दिया जहाँ राजनीतिक विघटन हो रहा था। आरंभ में उसको कुछ सफलता मिली हो किन्तु अंत में उसकी हार हुई और वह मिथिला लौट गया। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि पहले दोनों कर्णाट राजे विजयसेन और नान्य ने वंग और गौड़ की शक्तियों को तोड़ने के लिए अपनी सेनाओं को संयुक्त किया हो किन्तु बाद को उन दोनों में मनमुटाव हुआ

हो और विजय-उपलब्धि के संबंध में युद्ध हुआ हो, जिसमें विजयसेन विजयी हुआ यह भी संभाव्य है कि विजय सेन ने नान्य का पीछा किया और मिथिला उसके राज्य की सीमाओं के अन्दर तक पीछा किया हो और मिथिला को अपने ही शासन में रखा हो।

देवपारा उत्कीर्ण लेख के अनुसार गौड़पति विजयसेन के सामने न ठहर सका और पलायन किया। उस समय संभवत: मदनपाल राज्य कर रहा था और उसका राज्य उत्तरी बंगाल तक ही सीमित था। देवपारा उत्कीर्ण लेख का कथन है कि विजय सेन ने देवपारा (राजशाही नगर के लगभग सात मील पश्चिम) में प्रद्युम्नेश्वर का भव्य मंदिर निर्माण किया। इससे प्रमाणित होता है कि उत्तरी बंगाल के कम से कम एक भाग पर विजयसेन की विजय पूर्ण थी। संभवत: उत्तरी बंगाल के इसी अभियान के सिलसिले में विजयसेन का कौशाम्बी के राजा वर्धन से संघर्ष हुआ और उसने उसको परास्त किया। यह भी सम्भव है कि उत्तरी बंगाल के इस अभियान में उसके पौत्र लक्ष्मण ने भाग लिया हो।

इस असाधारण विजय के बाद भी विजयसेन के पुत्र और पौत्र को भी संघर्ष करना पड़ा और संभवत: उसका पौत्र प्रथम राजा था जिसने गौड़ेश्वर की गौरव युक्त उपाधि धारण की। प्रतीत होता है कि अपनी हार के बाद भी पाल नरेश जो गौड़ेश्वर कहते थे दक्षिणी बिहार के अपने केन्द्र से युद्ध चलाते रहे जो लक्ष्मण सेन के शासन-काल में समाप्त हुए।

सेन शक्ति का मूल केन्द्र राढा था जहाँ से उन्होंने सम्पूर्ण वंग को जीता और अपनी शक्ति दृढ़ की और वंग में वर्मन् वंश का राज्य समाप्त किया जिनकी राजधानी विक्रमपुर थी। देवपारा उत्कीर्ण लेख का कथन है कि विजयसेन ने कामरूप के राजा को खदेड़ दिया। बाद को जैसा कि मधैनगर दानपत्र में लिखा है कि लक्ष्मणसेन ने काम-रूप को बलात् पददलित किया। विजयसेन ने कलिंग के राजा राघव पर विजय प्राप्त किया। कहा जाता है कि लक्ष्मणसेन ने पुरी में विजय स्तम्भ खड़ा किया पता नहीं कि उसने यह विजय अपने पितामह के शासनकाल में किया या उस समय किया जब वह गौड़ का शासक बना।

देवपारा उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि 'उसका बेड़ा पश्चिम में राज्यों की उसकी विजय लीला में गंगा की धारा से होकर गया। यह नौ-सैनिक अभियान नान्य-देव के या गाहडवाल राजा गोविन्दचन्द्र के या पाल राजा (मदनपाल या गोविन्दपाल जो उस समय भी दक्षिणी बिहार के एक भाग में राज्य कर रहा था) के विरुद्ध था। प्रतीत होता है इसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

मूल्यांकन—बंगाल के इतिहास में विजयसेन का दीर्घ और समृद्धिशाली शासन महत्त्वपूर्ण था इस सम्राट् ने पाल राज्य के आंतरिक विखण्डन और विदेशी

आक्रमणों से उत्पन्न उपद्रवों और कष्टों का अंत किया । राजतंत्र धूल में मिल रहा था उसकी उसने युद्ध नीति से रक्षा की । बंगाल के स्वार्थी राजाओं में राजनीतिक बुद्धिमत्ता की कमी थी । उनमें स्वार्थ भरा था और देश की एकता का उच्चादर्श वे भूल गए थे । उनकी मित्रता प्राप्त करने के लिए रामपाल ने उनको प्रचुर उपहार दिए जिससे उनका लोभ और भी तीव्र हुआ । उनको दबाने के लिए एक शक्तिशाली राजा की आवश्यकता थी और एक बलशाली कर्णाट राजा इस कार्य के योग्य प्रमाणित हुआ । विजयसेन में असाधारण साहस और सामरिक प्रतिभा थी । उसने इन छोटे राजाओं का दमन किया और 'परमेश्वर, परम भट्टारक, महाराजाधिराज' की साम्राजिक पदवियाँ और 'अरिराज-वृषय-शंकर' की गौरवान्वित उपाधि धारण की । विजयसेन के दीर्घ और स्मरणीय शासन का जिसने बंगाल में पुनः शान्ति और समृद्धि स्थापना की जनता पर गहरा प्रभाव डाला । जिसकी गूंज देवपारा के प्राप्त एक प्रस्तरखण्ड पर लिखित एक उत्कृष्ट कविता में है । जिसकी रचना उमापतिधर ने की थी । यह भी कहा जाता है कि विख्यात् कवि श्री हर्ष की 'गौड़ोविश-कुल-प्रशस्ति तथा 'विजय-प्रशस्ति' विजयसेन के सफल और विजयी जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर लिखी गई थी । श्री-हर्ष विजयसेन का समकालीन था ।

बल्लाल सेन (ल० ११५८-११७९ ई०)—विजयसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बल्लाल सेन गद्दी पर बैठा । अद्भुत सागर में लिखा है कि बल्लाल सेन के बाहु गौड़ के राजारूपी हाथी को बाँधने के लिए स्तम्भ थे । हो सकता है कि यह स्वयं गोविन्दपाल था जिसने गौड़ राजा पर विजय प्राप्त की और गौड़ेश्वर की उपाधि धारण की बल्लाल चरित की पुरानी अनुश्रुतियों के अनुसार बल्लाल सेन ने मगध पर विजय प्राप्त की । कहाँ तक इसमें सत्यता है कहा नहीं जा सकता । नान्यदेव के बाद मिथिला का इतिहास अंधकार में है । हो सकता है कि उस पर बल्लाल सेन और उसके उत्तराधिकारी का राज्य रहा हो । दूसरी बात यह है कि मिथिला में लक्ष्मण सेन के नाम से संबंधित एक संवत् चलता था । उत्कीर्ण लेख और परंपरा से प्रतीत होता है कि बल्लाल सेन कशासनकाल में शान्तिपूर्ण कार्य किए गए । सामाजिक सुधार हुए और सनातन हिन्दू धर्म-कर्म का पुर्नरजागरण हुआ । वह एक महान् विद्वान और यशस्वी ग्रंथकार था । उसके दो ग्रंथ दान सागर और अद्भुत सागर अब भी प्राप्य हैं । राजनीनिक शत्ता के रूप में सेन वंश की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी-चढ़ी थी । उसने एक चालुक्य राजा की रामदेवी नामक कन्या से विवाह किया जो संभाव्यतः जगदेकमल्ल द्वितीय की थी । इससे प्रकट होता है कि वे अपनी पैत्रिक भूमि कर्णाट से अब भी संपर्क रखे हुए थे । उसने भी अपने पिता की तरह अन्य साम्राजिक उपाधियों के साथ 'अरिराज-निःशंक-शंकर' उपाधि धारण की । उसने अपने पिता से

उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य को अक्षुण्ण रखा। मोटे तौर से उसके राज्य में मुख्य बंगाल और उत्तर बिहार सम्मिलित थे।

अद्भुत सागर में लिखा है कि बल्लालसेन ने १०८६ ई० में अद्भुत सागर की रचना आरम्भ की किन्तु इसके पूर्ण करने के पहले ही गंगा और यमुना के संगम पर 'निर्जर पुर' को गया और अपने राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने, अद्भुत सागर को पूर्ण करने का कार्य अपने पुत्र लक्ष्मण सेन पर छोड़ा। निर्जर पुर का अर्थ है 'देवताओं का नगर' अर्थात् स्वर्ग। किन्तु यह किसी स्थान का भी नाम हो सकता है। त्रिवेणी के समीप गंगा के तट पर रहा हो। यह भी हो सकता है कि वृद्ध राजा और राज्ञी ने गंगा के पवित्र जल में डूब कर त्रिवेणी में स्वेच्छा से अपने प्राणों का अन्त किया हो। 'साम्राज्य-रक्षा-महादीक्षा-पर्व'' पद से प्रतीत होता है कि सिंहासन छोड़ने के पूर्व उसने अपने पुत्र का अभिषेक संस्कार किया। किन्तु यह निश्चय नहीं है।

लक्ष्मणसेन (ल० ११७६—१२०५ ई०)—बल्लाल सेन का पुत्र लक्ष्मणसेन ११७६ ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। उसने साम्राजिक उपाधियों में 'गौड़ेश्वर पद' जोड़ा और 'अरिराज-मदन-शंकर' उपाधि धारण की। विजयसेन और बल्लाल सेन के अपने राजकीय अभिलेखों में उनके साथ 'परम-महेश्वर' उपाधि जोड़ी जाती थी किन्तु लक्ष्मणसेन के राजकीय अभिलेखों में उस उपाधि के स्थान पर 'परम-वैष्णव' या 'परम नारसिंह' उपाधि जोड़ी गई है। लक्ष्मण सेन के पूर्व राजकीय अभिलेखों का आरम्भ शिव-स्तुति से होता था किन्तु उसके समय में नारायण की स्तुति से होने लगा। उसकी साम्राजिक उपाधि में भी अकस्मात् परिवर्तन हुआ। इससे प्रतीत होता है कि लक्ष्मण सेन परम वैष्णव हो गया यद्यपि उसके पूर्वज शैव थे। उसकी राज सभा में बंगाल का अत्यन्त यशस्वी वैष्णव कवि जयदेव था। अन्य विख्यात् कवि धोयी, शरण, और सम्भाव्यत: गोवर्धन के सदृश्य विख्यात् कवि उसकी राजसभा की शोभा बढ़ा रहे थे। महान् विद्वान् हलायुध उसका महामंत्री तथा महा-धर्माध्यक्ष था। स्वयं राजा और राजवंश के अन्य सदस्य विद्वान् थे और श्रीधरदास द्वारा संग्रहीत 'सयुक्ति-कर्णामृत' नामक पद्य ग्रन्थ में उनके कुछ श्लोक अब भी सुरक्षित हैं। लक्ष्मण सेन ने ज्योतिष ग्रन्थ अद्भुत सागर को पूर्ण किया जिसको उसके पिता ने आरम्भ किया था।

उसके अपने तथा उसके पुत्रों के ताम्रपट्टों में सब दिशाओं में प्राप्त उसकी विजयों की चर्चा है। उसकी राजसभा के कवि शरण और उमापति धट ने स्फुट श्लोकों में बिना नाम के उसकी महान् सामरिक विजयों की प्रशंसा की है। उसके अपने अभिलेखों में गौड़, कामरूप, कलिंग, और काशी के राजाओं पर उसकी विजयों का विशेष उल्लेख है। उसने अपनी सामरिक विजय की स्मृति में पुरी, काशी,

और प्रयाग में स्तम्भ खड़े किए। हो सकता है कि लक्ष्मण सेन ने इन सामरिक अभियानों में अपने पितामह के शासनकाल में भाग लिया हो। जिस समय सेन बंगाल में अपनी शक्ति दृढ़ कर रहे थे, उस समय मध्य और पूर्वी मगध में पाल राज्य कर रहे थे और इसका उत्तरी भाग गाहडवालों के हाथ में था। मगध में सेनसत्ता का विस्तार करने में विजयसेन के प्रयासों को अधिक सफलता नहीं मिली। हो सकता है गोविन्द पाल को पराजित करने से पाल शक्ति को गहरा धक्का लगा हो क्योंकि ऐसा प्रतीत है कि गोविन्दपाल सम्पूर्ण मगध गाहडवालों के हाथों में चला गया। सासाराम के समीप तथा पटना जनपद में और बोध गया में गाहडवालों के उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं जिससे प्रतीत होता है कि उनके राज्य का विस्तार मध्य मगध में हो गया था।

मगध में गाहडवाल शक्ति की वृद्धि सेनों के लिए एक प्रत्यक्ष संकट था। लक्ष्मणसेन ने गाहडवालों को मगध से खदेड़ दिया और उसकी विजयी सेना गाहडवाल राज्य के मध्य में पहुँची। गाहडवाल राजा के विरुद्ध लक्ष्मण सेन के इस अभियान का स्थायी प्रभाव निश्चय नहीं किया जा सकता। गया जनपद मुसलमान आक्रमण के पूर्व लक्ष्मण सेन के अधिकार में था। बनारस और इलाहाबाद तक के उसके अभियान साहसिक धावे के रूप में थे। सम्भाव्यतः इससे उनकी शक्ति और प्रतिष्ठा निर्बल हुई और उनको व्यस्त कर रखा उस समय जब उनको मुसलमान आक्रमणों के विरुद्ध संघ में सम्मिलित होने के लिए शान्ति और पूर्ण बल की आवश्यकता थी।

उमापति धर ने चेदि राजा के पराजय का उल्लेख किया है। दूसरी ओर कलचुरि राजा के सामन्त ने भी गौड़ राजा को पराजित करने का दावा किया है। इससे प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों ने विजय का दावा किया है, हो सकता है कि यह संघर्ष अनिर्णीत रहा हो।

प्रतीत होता है लक्ष्मण सेन ने सब दिशाओं में बंगाल के अंचलों से बहुत दूर सामरिक अभियान किए। उसके प्रयासों को सफलता मिली किन्तु अंत में उसको विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनकी शक्ति का अकस्मात् पतन क्यों हुआ ? इसके पर्याप्त विवरण प्राप्त नहीं हैं। पश्चिमी सुन्दरवन में प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख से प्रकट है कि ११९६ ई० में डोम्मणपाल नामक एक व्यक्ति सुन्दरवन के अन्तर्गत खाड़ी के पूर्वी भाग का स्वतंत्र राजा बन बैठा था। यह विद्रोह लक्ष्मण सेन की वृद्धावस्था में उसकी सत्ता की निर्बलता तथा उसके राज्य का विखण्डन संकेत करता है। सम्भवतः इसी समय के लगभग देव परिवार ने मेघना नदी के पूरब में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। इसी उथल-पुथल की अवधि में १२०२ ई० के लगभग किसी समय जब लक्ष्मण सेन सम्भवतः अत्यन्त वृद्ध था बंगाल पर मुसलमानों ने आक्रमण किया जो उस समय तक प्रायः सम्पूर्ण उत्तरी भारत को विजय कर चुके थे।

उत्तरी भारत के हिन्दू राज्यों की व्यापक निर्बलता का लाभ उठा कर मुहम्मद बखत्यार खिलजी नामक एक तुर्की सैनिक ने अपने ही ओर से पूर्वी भारत में लूटमार करने के लिए धावे करने लगा। एक धावे में उसने पटना जनपद के अन्तर्गत बिहार नामक स्थान के एक विख्यात् बौद्ध मठ पर और बाद को संपूर्ण मगध पर अधिकार कर लिया। इस आसन्न संकट के विरुद्ध बंगाल की प्रतिरक्षा के लिए लक्ष्मण सेन ने क्या प्रयत्न किया था ज्ञात नहीं है। सम्भाव्यतः उसने राजमहल पहाड़ियों के दर्रों से होकर गंगा के किनारे-किनारे बिहार से बंगाल को जाने वाले सैनिक रास्तों पर सैनिकों को नियुक्त किया। किन्तु मुहम्मद बखत्यार झारखण्ड, सूनसान पहाड़ियों और जंगलों से एक अश्वारोही दल ले गया और वेगपूर्वक बढ़ते हुए अकस्मात् नदियों के समक्ष उपस्थित हुआ जहाँ उस समय लक्ष्मण सेन ठहरे हुए थे। उसकी गति इतनी तीव्र थी कि जब वह नगर के फाटक पर पहुँचा तो उसके साथ केवल अठारह सैनिक थे। लोगों ने उनको घोड़ों के व्यापारी समझा और मुहम्मद ने इस छद्म को बनाए रखने के लिए नगर में धीरे-धीरे बढ़ा। महल के फाटक पर पहुँचने के समय तक उसके और सैनिकों ने नगर में प्रवेश कर लिया और तब एक साथ ही महल और नगर पर आक्रमण किए गए। लक्ष्मण सेन दोपहर का भोजन कर रहा था जिस समय महल के फाटक से और नगर के अन्तराल से चिल्लाहट हुई। संकटपूर्ण स्थिति की सूचना पाकर वह महल से निकल कर पूर्वी बंगाल चला गया। मुहम्मद बखत्यार को किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा और जब उसकी पूरी सेना आ गई तो उसने नगर पर अधिकार कर लिया और उसको अपना केन्द्र बनाया। बाद को नदिया को उजड़ी अवस्था में छोड़ कर वह लखनावती चला गया और उसको अपनी राजधानी बनाया। उसको सेनों से कोई संघर्ष करना पडा या उसके राज्य का क्या विस्तार था इसकी कोई निश्चयात्मक सूचना नहीं है।

नदिया के आक्रमण के बाद कम से कम तीन या चार वर्ष तक लक्ष्मण सेन ने पूर्वी बंगाल में राज्य किया। बंगाल में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के अन्त को चिह्नित करने वाली यह एक युगान्तकारी घटना थी। किन्तु सेन वंश ने इसको अधिक महत्व नहीं दिया और उनके राज कवि उमापतिधर म्लेच्छों पर लक्ष्मण सेन की विजय की प्रशंसा में कविता रचा। लक्ष्मण सेन के पुत्रों ने भी यवनों पर विजय का दावा किया है। उनके अभिलेखों में उनकी लम्बी-चौड़ी उपाधियाँ लिखी जाती रहीं।

इस आक्रमण के ५० वर्ष बाद मौलाना मिनहाजुद्दीन ने तबकाते-नासिरी नामक एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा है। जिसमें उसने 'विश्वसनीय लोगों' से सुनी सुनाई सूचना के आधार पर उसने नदिया के विजय की कहानी लिखी है। इसमें अनेक असंगल बातें लक्ष्मण सेन के जन्म के, ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों के और लक्ष्मण सेन

द्वारा ८० वर्ष तक राज्य करने के सम्बन्ध की अनेक अनंगल कहानियाँ दी हैं, जो सम्भवत: पुराने मुसलमान सैनिकों के कल्पना की उपज थीं। लक्ष्मण सेन एक वीर योद्धा और राजा था। बिहार पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने की सूचना पाकर नदिया वासियों ने नगर को खाली कर दिया और लक्ष्मण सेन के मंत्रिगण अनेक ज्योतिषी तथा अन्य बुद्धिमान व्यक्ति लक्ष्मण सेन को राय दे रहे थे कि राजा को इस प्रदेश को छोड़ देना चाहिए क्योंकि शास्त्रों के अनुसार यह प्रदेश शीघ्र ही मुसलमानों के हाथ में चला जायगा। लक्ष्मण सेन को यह भी सूचना दी गई कि मुहम्मद का वाह्य रूप शास्त्रों में कथित तुर्की विजेता के रूप से मिलता है। तदुपरांत अधिकांश ब्राह्मण और धनी व्यापारी पूर्वी बंगाल, असम तथा अन्य स्थानों को भाग गए किन्तु लक्ष्मण सेन ने उनकी कायरतापूर्ण सम्मति या उदाहरण का अनुगमन नहीं किया।

ऐसे समय में जब नदिया पर तुर्कों के आक्रमण का भय था यह विश्वास करना कठिन है कि राजकीय अधिकारी मुहम्मद की गतियों से अनवगत थे, उस समय भी जब कि उन्होंने सेन राज्य की सीमाओं के अन्दर भी आ गए थे। तब भी उन्होंने बिना किसी पूँछ-ताँछ के विदेशियों के एक दल को नगर के अन्दर प्रवेश करने दिया उस समय भी कोई सैनिक मुठभेड़ नहीं हुई जब कि मुहम्मद की शेष सेना ने नगर में प्रवेश किया। मिनहाज के कथनानुसार इस आक्रमण के बाद भी ५० वर्षों तक लक्ष्मण सेन के उत्तराधिकार पूर्वी बंगाल में राज्य करते रहे। मिनहाज के वर्णन से भाषित होता है कि सेनों का सैनिक तथा असैनिक संगठन बिल्कुल निष्प्राण था। यदि ऐसा होता तो उनके राज्य के आधे भाग पर तुर्कों का अधिकार हो जाने के पश्चात् भी सेनों का राजनीतिक संगठन बना रहा और वे आधी शताब्दी तक तुर्कों से लड़ते रहे जो बिलकुल उनके द्वार पर जमे थे। यह विश्वास करना कठिन है कि ऐसे आसन्न संकट के समय भी राजधानी की प्रतिरक्षा के लिए अत्यंत साधारण सावधानियाँ भी नहीं की गईं, विशेष रूप से उस समय जब कि स्वयं राजा वहाँ उपस्थित था। यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि जब नदिया पर लगभग एक वर्ष से तुर्की आक्रमण की आशंका थी और बहुसंख्यक निवासी नगर से बाहर चले गए थे और वृद्ध राजा साहसपूर्वक वहाँ ठहरा हुआ था तब भी इसकी प्रतिरक्षा के लिए कोई भी प्रबंध नहीं किए गए थे और बिना तलवार उठाए आक्रामक नगर के अन्दर चले आए। मिनहाज ने उस समय प्रचलित अनेक काल्पनिक कथाओं को लिख रखा है।

वृद्ध राजा ने अपने मंत्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता, विवेकता, और कूटनीतिज्ञता दिखाई। वास्तव में उसके सेनापति और मंत्री दोषी हैं जिन्होंने ऐसे संकट के समय अपने राजा और स्वामी के प्रति विश्वासघात किया या उन्होंने अपने

कर्त्तव्य के प्रति दण्डनीय असावधानी की। साहस और वीरता का श्रेय राजा को है जिसने बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम के अनेकानेक युद्ध क्षेत्रों में निर्भीकता और सामरिक दक्षता प्रकट की थी। मिन्हाज ने लक्ष्मण सेन के सम्बन्ध में लिखा है कि वह एक महान् राजा था.....। उसके हाथ से एक भी अत्याचार के कार्य, छोटे या बड़े, नहीं हुए। वह सुलतान कुतुबुद्दीन के समान एक महान् राजा था। इस तरह मिनहाज ने उनके गुणों की प्रशंसा की है।

मूल्यांकन—लक्ष्मण सेन का नाम इतिहास में एक महान् और उत्कृष्ट शासक के रूप में अमर रहेगा। बंगाल में वह अंतिम महान् हिन्दू वीर था जिसके लिए उसका देश गर्व कर सकता है। अपने मंत्रियों और सामन्तों की अपेक्षा उसने कहीं अधिक साहस और देशभक्ति दिखलाई। तबकाते-नासिरी के लेखक ने पृथ्वीराज के समान विख्यात् राजा की महानता और शौर्य के सम्बन्ध में मौन है। किन्तु उसने 'बंगाल का महान् राय' लक्ष्मण सेन की अत्यधिक प्रशंसा की है। अवश्य ही कोई ऐसा अच्छा कारण होगा कि उसकी मृत्यु के बाद लगभग सौ वर्ष तक गया प्रदेश के निवासी प्रेमवश उसके नाम से चिपके रहे और उसके और उसकी स्मृति में मिथिला (उत्तर बिहार) में उसके नाम पर एक संवत् चलाया। वह एक वीर और एक शक्तिशाली राजा था। इसके साथ ही वह एक कवि तथा कला और साहित्य का महान् संरक्षक था और दानशीलता तथा उसके अन्य व्यक्तिगत के कारण उसकी स्नेहपूर्ण ख्याति बहुत दिनों तक जीवित रही। यद्यपि उसके जीवन के अंतिम समय में उस पर और उसके राज्य पर दारुण विपत्ति आई।

लक्ष्मणसेन के उत्तराधिकारी—लक्ष्मणसेन ने कम से कम २७ वर्ष राज्य किया और १५०५ ई० के बाद किसी समय उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसके दो पुत्र विश्वरूपसेन और केशव सेन ने क्रम से राज्य किया। उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है कि उनका राज्य कम से कम पूर्वी और दक्षिणी बंगाल पर था।

सामान्य साम्राजिक उपाधियों के अतिरिक्त विश्वरूप सेन ने 'अरि राज-वृष-भांक-शंकर-गौड़ेश्वर' और केशव सेन ने अरिराज-असह्य-शंकर गौड़ेश्वर की उपाधि धारण की। इनके पूर्वज पहले शैव और बाद को वैष्णव हो गए थे। ये सौर्य थे अर्थात् सूर्यभगवान की पूजा करते थे।'

सेन वंश के अभिलेखों तथा तबकाते-नासिरी पुस्तक से प्रतीत होता है कि लगभग अर्द्ध शती तक लखनावती के मुसलमान शासक वंग को अपने अधीन नहीं कर सके। हो सकता है कि कभी उनकी हार होती रही और कभी जीत और उन्होंने कर भी संग्रह किया हो। किन्तु सेन वंश के शासकों का यह दावा कि उन्होंने मुसलमानों को पराजित किया यथार्थ माना जा सकता है। तबकाते-नासिरी के अनुसार लक्ष्मण

सेन के उत्तराधिकारी कम से कम १२४५ ई० तक, और सम्भाव्यत: १२६० तक बंगाल में राज्य करते रहे।

सेन सत्ता की अंतिम समाप्ति में मुसलमान आक्रामकों का उतना ही हाथ था जितना कि विद्रोही सामन्त राजाओं का। खाड़ी जनपद में ११९६ ई० या इसके कुछ पूर्व सामन्त डोम्मणपाल स्वतंत्र बन बैठा। मुसलमानों द्वारा पश्चिमी और उत्तरी बंगाल के विजय किए जाने के बाद सेनों की शक्ति और प्रतिष्ठा में कमी आई और इसका लाभ उठाकर स्थानीय सामन्त राजाओं ने अपनी-अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। तिप्पेरा के अन्तर्गत पट्टिकेरा राज्य के सामन्त रणवंकमल्ल श्री-हरिकालदेव १२२१ ई० में स्वतंत्र बन बैठा। इसी समय के लगभग देव परिवार ने मेघना नदी के उस पार एक शक्तिशाली राज्य स्थापित किया कहा जाता है १२३१ से १२४३ ई० तक इस परिवार के राजा दामोदर ने तिप्पेरा, नोआखली और चटगाँव जनपदों पर राज्य किया। तेरहवीं शती ई० के अन्त होते-होते महान् सेनवंश का नाम बंगाल के इतिहास से विलीन हो गया।

मूल्यांकन—सेन वंश ने बंगाल में देवपाल के राज्य के सदृश एक गठित और शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। उनके द्वारा सनातन हिन्दू धर्म का बंगाल में बोलबाला हुआ तथा संस्कृत साहित्य का बंगाल में चर्मोत्कर्ष हुआ। बौद्ध धर्म का अंतिम रूप धर्म और समाज का विघटनकारी था और बंगाल में इसका प्राबल्य होने के कारण उस प्रदेश में इस्लाम को विलक्षण सफलता मिली। कर्णाट के बलिष्ठ हिन्दू शासक वंश सेन ने हिन्दू समाज में जो नया उत्साह और जीवन फूंका मुख्यतया उसी के कारण हिन्दू समाज, संस्कृति और धर्म ने इस्लाम के आक्रमणों से कुछ अंश में अपने को सुरक्षित रख सका। किंतु वे विदेशी थे और उनका शासन अल्पकालीन था संभवत: वे इसी कारण एक सुगठित राष्ट्रीय जीवन का निर्माण न कर सके जो बंगाल में मुसलमानों की दुर्दमनीय प्रगति का सामना कर सकता। सम्पूर्ण उत्तरी भारत के पराभव के बाद सम्भवत: बिहार और आधा बंगाल भी अंतत: उनके हाथ में चला जाता किंतु जिस तरह बिना किसी विरोध के ये उनके हाथों में चले गए यह उन प्रदेशों के निवासियों के साहस, पराक्रम और राजनीतिक संगठन पर एक कलंक है। पूर्वी बंगाल शेष भारत पर शासन करने वाली मुस्लिम सत्ता का लगभग अर्द्ध शती तक अत्यन्त वीरतापूर्ण प्रतिरोध और सफल प्रतिरक्षा की। किंतु बंगाल के निर्मल नाम पर जो कलंक लग गया उसको यह भी न मिटा सका। बंगाल पर जो घोर संकट आया उसका दोष लक्ष्मण सेन के सिर पर मढ़ा जाता है। किंतु वह अपने मंत्रियों, परामर्शदाताओं और राजकीय अधिकारियों की अपेक्षा कहीं अधिक साहसी और देश भक्त था। इसके लिए बंगाल की जनता भी दोषी है जिनके नैतिक और राजनीतिक पतन के बिना इस प्रकार की स्थिति पैदा न होती जिसका शिकार अभागा लक्ष्मण सेन हुआ।